जातक

[प्रथम खण्ड]

भदन्त आनन्द कौसल्यायन



२०१३

हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग

प्रकाशक
हिन्दी साहित्य सम्मेलन
प्रयाग



मुद्रक
सम्मेलन मुद्रणालय
प्रयाग

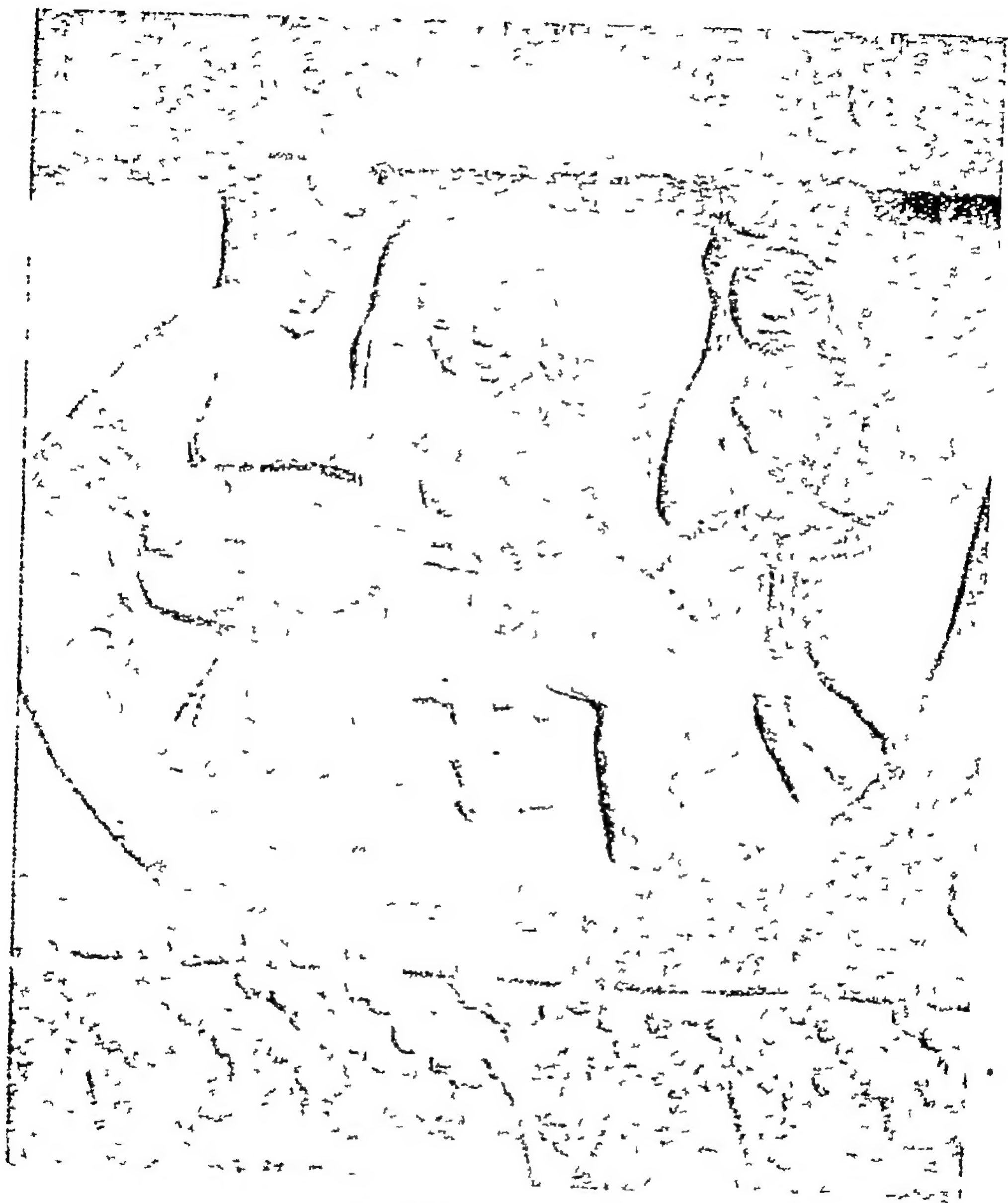
प्रथम परिचय के दिन से ही

मेरे

परम श्रद्धाभाजन

राहुल सांकृत्यायन

को



मखादेव जातक (९)

वस्तु-कथा

पालि वाङमय मे तिपिटक (त्रिपिटक) का विस्तार इस प्रकार है[1]—

१ **सुत्तपिटक,** निम्नलिखित पाँच निकायो में विभक्त है—

(१) दीघनिकाय, (२) मज्झिमनिकाय, (३) सयुत्तनिकाय, (४) अगुत्तरनिकाय, (५) खुद्दकनिकाय।

खुद्दकनिकाय के १५ ग्रन्थ है—

(१) खुद्दकपाठ, (२) धम्मपद, (३) उदान, (४) इतिवुत्तक, (५) सुत्तनिपात, (६) विमानवत्थु, (७) पेतवत्थु, (८) थेरगाथा, (९) थेरी गाथा, (१०) **जातक,** (११) निद्देस, (१२) पटिसम्भिदामग्ग, (१३) अपदान, (१४) बुद्धवस, (१५) चरियापिटक।

२. **विनयपिटक** निम्नलिखित भागो मे विभक्त है—

(१) महावग्ग, (२) चुल्लवग्ग, (३) पाराजिका, (४) पाचित्तियादि, (५) परिवार पाठ।

३. **अभिधम्मपिटक** पिटक मे सात ग्रन्थ है—

(१) धम्मसगणि, (२) विभग, (३) धातुकथा, (४) पुग्गल पञ्ञत्ति, (५) कथावत्थु, (६) यमक, (७) पट्ठान।

आचार्य बुद्धघोष के समय तक अर्थात् चौथी पाँचवी शताब्दी ई० में इन सब ग्रन्थो अथवा इन ग्रन्थो में से लिये गए उद्धरणो के लिए 'पालि' शब्द व्यवहृत होता था। आचार्य बुद्धघोष ने इन ग्रन्थो में से जहाँ कही कोई उद्धरण लिया है वहाँ 'अयमेत्थ पालि' (यहाँ यह पालि है) वा 'पालिय वुत्त' (पालि मे कहा गया है) का प्रयोग किया है। जिस प्रकार पाणिनि ने 'छन्दसि' शब्द से वेदो का तथा

---

[1] **सुमङ्गल विलासिनी (दीघनिकाय-अट्ठकथा) की निदान-कथा।**

'भापायाम्' से तत्कालीन प्रचलित सस्कृत का उल्लेख किया है, उसी प्रकार आचार्य्य बुद्धघोप ने 'पालिय' से तिपिटक वा मूलवचन को तथा 'अट्ठकथाय' मे उनके समय में सिहल-द्वीप में विद्यमान सिहल-अट्ठकथाओ को याद किया है।

अट्ठकथा वा अर्थकथा का मतलब है अर्थ सहित कथा। तिपिटक को समझने के लिए भाष्य की आवश्यकता पडती थी। कहा जाता है कि महेन्द्र स्थविर जब बुद्ध शासन की स्थापना करने के लिए सिहल गये, तब वे तिपिटक के साथ उसकी अर्थकथाएँ भी ले गये थे।[1] हो सकता है कि अट्ठकथाओ की रचना तो सिहल में ही हुई हो, लेकिन उनको अधिक प्राचीन बनाने के लिए महेन्द्र से उनका सम्बन्ध जोड दिया गया हो। आरम्भ मे तिपिटक के सूत्रो को समझाने के लिए, उनके अर्थो को अधिक स्पष्ट करने के लिए, उनके साथ कथाएँ कहने की भी परिपाटी रही होगी, जिन्हें पीछे लेख-बद्ध कर दिया गया।

सिहल अर्थकथाओ का पीछे आचार्य्य बुद्धघोप द्वारा पालि रूपान्तर हुआ। सिहल में वे केवल सिहल वासियो के काम की थी, पालि में होने से वे अन्य देश-वासियो के लिए भी उपयोगी हुई। वे रूपान्तर इतने सुन्दर बने कि उनका आदर तिपिटक के समान होने लगा।[2]

'पालि' असल में किसी भाषा का नाम नही रहा है। भाषा का नाम तो रहा है मागधी। पालि तो केवल मूल-वचन का पर्य्यायवाची शब्द रहा है।

जो अर्थकथाएँ इस समय उपलब्ध है, वे इस प्रकार हैं—

१	समन्त पासादिका	विनय अट्ठकथा।
२	सुमगलविलासिनी	दीघनिकाय अट्ठकथा
३	पपच सूदिनी	मज्झिम निकाय अट्ठकथा
४	सारत्थ पकासिनी	सयुत्त निकाय अट्ठकथा

---

[1] बुद्धघोष कृत चारो निकायो की अट्ठकथाओ में आरम्भ में ही इस प्रकार आता है—

सीहलदीप पन आभाता वसिना महामहिन्देन,
ठपिता सीहलभासाय दीपवासीनमत्थाय।

[2] पालि विय तम्मगहु (महावंस)।

५. मनोरथ पूरिणी अगुत्तर निकाय अट्ठकथा
६ खुद्दकनिकाय के ग्रन्थो पर भिन्न भिन्न नामो से अट्ठकथाएँ
७. अट्ठ सालिनी धम्मसगणि पर अट्ठकथा
८ सम्मोह विनोदनी विभग अट्ठकथा
९ पञ्चप्पकरण अट्ठकथा जिसमें निम्नलिखित पाँच अट्ठकथाएँ है—

(१) धातुकथाप्पकरण अट्ठकथा
(२) पुग्गल पञ्ञत्तिप्पकरण अट्ठकथा
(३) कथावत्थु अट्ठकथा
(४) यमकप्पकरण अट्ठकथा
(५) पट्ठानप्पकरण अट्ठकथा।

ऊपर जो तिपिटक का वर्गीकरण दिया है, अट्ठकथाचार्य्यो का मत है कि वह राजगृह में हुई प्रथम सगीति के अनुसार है। उनका कहना है कि भगवान् बुद्ध के परिनिर्वाण के बाद सुभद्र भिक्षु ने भिक्षुओ को सान्त्वना देते हुए कहा कि "आवुसो! मत शोक करो। मत रोओ! हम मुक्त हो गए। उस महा-श्रमण से पीडित रहा करते थे कि यह करो और यह न करो। अव हम जो चाहेंगे करेंगे, जो नही चाहेंगे उसे नही करेंगे।"[1] तब महाकश्यप स्थविर को भय हुआ कि कही सद्धर्म का अन्तर्धान न हो जाय। उसके रक्षार्थ उन्होने पाँच सौ अर्हत भिक्षुओ की एक सगीति बुलाई। उस सगीति में पहले उपालि महास्थविर से पूछ कर विनय का सगायन हुआ और बाद मे आनन्द महास्थविर से सुत्त और अभिधम्म पिटक पूछा गया। एक मत है कि जातक, महानिद्देस, चुल्लनिद्देस, पटिसम्भिदामग्ग, सुत्तनिपात, धम्मपाद, उदान, इतिवुत्तक, विमानवत्थु, पेतवत्थु, थेरगाथा तथा थेरीगाथा अभिधम्मपिटक के अन्तर्गत सगृहीत हुए। दूसरा मत है ये ग्रन्थ तथा चरिया-पिटक, अपदान और बुद्धवस मिलकर खुद्दकनिकाय के नाम से सुत्तन्त पिटक के अन्तर्गत गिने गए।[2]

---

[1] देखो चुल्लवग्ग वशशतिका स्कन्धक (राहुल साकृत्यायन द्वारा हिन्दी में अनूदित)।

[2] सुमङ्गल विलासिनी तथा समन्त पासादिका की निदान कथा।

लेकिन प्रथम सगीति का जो वर्णन चुल्लवग्ग मे आया है, उस वर्णन में कही तिपिटक का जिकर नही। और तो क्या पिटक शब्द ही नही। उस समय 'धम्म और विनय' का सगायन हुआ था। 'धम्म और विनय' के अन्तर्गत ठीक कितना वाङ्मय रहा, कहना कठिन है। तो भी जब चुल्लवग्ग में द्वितीय सगीति का विस्तृत वर्णन मिलता है तो इतना तो कह ही सकते है कि प्रथम सगीति मे सारे चुल्लवग्ग का सगायन (पाठ) नही हुआ।

ऐसा प्रतीत होता है कि अशोक काल पर्य्यन्त बुद्धवचन के दो ही विभाग रहे—धम्म और विनय तथा उस समय तक तिपिटक के ग्रन्थो की रचना होती रही। अभिधम्मपिटक के एक ग्रन्थ—कथावत्थु—के रचयिता स्पष्ट ही अशोक-गुरु मोग्गलिपुत्त तिस्स स्थविर थे।[1]

बुद्धवचन का एक प्राचीन वर्गीकरण स्वय तिपिटक में है। उसके अनुसार बुद्धवचन इन नौ भागो में विभक्त है—

(१) सुत्त, यह शब्द सूत्र तथा सूक्त दोनो सस्कृत शब्दो का रूपान्तर समझा जाता है। कुछ लोगो ने पालि सुत्त को सूत्र कहा है। दूसरो ने आपत्ति की है—क्योकि यह पाणिनि के व्याकरण सूत्रो की तरह छोटे आकार के नही है, इसलिए इन्हें सूत्र न कह कर सूक्त कहना चाहिए, जैसे वेद के सूक्त।

सस्कृत बौद्ध साहित्य में सुत्तो को सूत्र ही कहा गया है। इतर सस्कृत साहित्य मे भी आश्वलायन सूत्र आदि गृह्य सूत्रो से अपेक्षाकृत समान होने के कारण सुत्तो को सूत्र कहना ही ठीक होगा। अगुत्तर निकाय के एकक निपात आदि में जो छोटे छोटे बुद्ध-वचन है, वे ही वास्तव में प्राचीन सूत्र है। और जिन सूत्रो को सूक्त कहने की अधिक प्रवृत्ति होती है, वह इन सूत्रो पर लिखे गए वेय्याकरण (व्याख्याएँ) है।

यहाँ तो इतना ही अभिप्रेत है कि अशोक के समय मे बुद्ध वचन के एक अश के लिए सुत्त शब्द व्यवहृत होता था।

(२) गेय्य—अलगद्दूपम सुत्त (मज्झिम निकाय २२ वाँ सूत्र) की अट्ठ-कथा मे लिखा है कि सुत्तो में जो गाथाओ का हिस्सा है वह गेय्य है, उदाहरण के लिए सयुत्त निकाय का आरम्भिक हिस्सा। सभी प्रकार की गाथाओ को

---

[1] अट्ठसालिनि, कथावत्थु अट्ठकथा।

यदि गेय्य माना गया होता तो, उन गाथाओ का कोई पृथक वर्गीकरण रहा होता। प्रतीत होता है कि किसी खास तरह की गाथाओ की ही सज्ञा गेय्य रही होगी।

(३) **वेय्याकरण**—अर्थ है व्याख्या। किसी सूत्र का विस्तारपूर्वक अर्थ करने को वेय्याकरण कहते है। भविष्यद्वाणी के, अर्थ में जातक में व्याकरण शब्द आया है। किन्तु इस शब्द का न तो उस व्याकरण से कुछ सम्बन्ध है और न सस्कृत वा पालि के व्याकरण साहित्य से।

(४) **गाथा**—बुद्धघोपाचार्य्य ने धम्मपद, थेरगाथा और थेरीगाथा की गिनती गाथा मे की है। इनमें से थेरगाथा में अशोक के भाई **वीतसोक** की गाथाएँ उपलब्ध है।[1] इससे तथा इसकी रचना शैली से सिद्ध है कि इस ग्रन्थ का वर्तमान रूप भगवान के परिनिर्वाण के तीन चार सौ वर्ष बाद का है।

(५) **उदान**—मूल अर्थ है उल्लास-वाक्य। **खुद्दकनिकाय** मे जो **उदान** नामक ग्रन्थ है उसके अतिरिक्त **सुत्तपिटक** मे जहाँ तहाँ और भी अनेक उदान आए है। यह कहना कठिन है कि इनमें से कितने उदान अशोक से पूर्व के है।

(६) **इतिवुत्तक**—खुद्दक निकाय का इतिवुत्तक १२४ इतिवुत्तको का सग्रह है। इनमे से कुछ अशोक के समय के और पहले के भी हो सकते है।

(७) **जातक**—यह कथा-साहित्य सर्व प्रसिद्ध है। अनेक दृश्य साँची[2] भरहुत[3] आदि के स्तूपो की वेष्ठनी (रेलिग) पर खुदे मिलते हैं जो कि १५० ई० पू० के आसपास के है। इस पर विस्तृत विचार आगे किया ही गया है।

अब्भुतधम्म—अर्थ है असाधारण-धर्म। हो सकता है कि भगवान बुद्ध और उनके शिप्यो में जो असाधारण बाते रही उनका वर्णन करने वाला कोई ग्रन्थ रहा हो, किन्तु इस प्रकार का कोई ग्रन्थ न अब प्राप्य है न आचार्य बुद्धघोष के ही समय मे रहा है। उन्होने लिखा है "भिक्षुओ, ये चार आश्चर्य्य अद्भुत धर्म आनन्द में है" इस क्रम से (अर्थात् बुद्ध के इस वाक्य के अनुसार)

---

[1] **इमस्मि बुद्धप्पादे अट्ठारस वस्साधिकान द्विन्नं वस्स सतानं मत्थके धम्मासोकरञ्जो कणिट्ठभाता हुत्वा निब्बत्ति। तस्स वीतसोकोति नामं अहोसि (वीतसोक थेरस्स गाथा वण्णना)।**

[2] **साँची—भेलसा (प्राचीन विदिशा) के पड़ोस में।**

[3] **भरहुत—इलाहाबाद से १२० मील दक्षिण-पश्चिम एक गांव।**

जितने भी आश्चर्य अद्भुतधर्मो से युक्त सूत्र हैं, वे सभी अब्भुत-धम्म जानने चाहिए।"[1]

(९) वेदल्ल—महावेदल्ल और चुल्लवेदल्ल दो सुत्त है।[2] इन दोनो सूत्रो मे (१) महाकोट्ठित तथा सारिपुत्र के, (२) भिक्षुणी धम्मदिन्ना तथा उसके पूर्व आश्रम के पति के प्रश्नोत्तर हैं। इनमे वेदल्ल नाम के सग्रह में किस प्रकार के सूत्र रहे होगे, इसका कुछ अनुमान लग सकता है। प्रतीत होता है कि भगवान बुद्ध के साथ श्रमण-ब्राह्मणो के जो प्रश्नोत्तर होते थे, वे वेदल्ल कहलाते थे।

सारे तिपिटक मे वा नौ अगो वाले बुद्ध वचन मे कितना वास्तव मे बुद्ध तथा उनके शिष्यो का उपदेश है और कितनी पीछे की भर्ती, कहना कठिन है।

अशोक के भाब्र शिलालेख[3] मे सात बुद्धोपदेशो का नाम आया है, जिनको-

---

[1] चत्तारो में भिक्खवे, अच्छरिया अब्भुता धम्मा आनन्देति आदिनयपवत्ता सब्बेपि अच्छरियब्भुतधम्मपटि-संयुत्ता सुत्तन्ता अब्भुतधम्मंति वेदितब्बा।

[2] मज्झिम निकाय, (४३, ४४)।

[3] . . .भगवता बुधेन भासिते सवे से सुभासिते वा ए चु खो भते हमियाये दिसेया हेव स धमे चिलठितिके होसतीति अलहामि हक तं वतवे (?) इमानि भन्ते धंम पालियायानि विनयसमुकसे अलियवसानि अनागत भयानि मुनिगाथा मोनेयसूते उपतिसपसिने ए चा लाघुलोवादे मुसावाद अधिगिच्च भगवता बुधेन भासिते एतान भते धमपलियायानि इच्छामि किं ति (?) बहुके भिखुपाये च भिखुनिये चा अभिखिनं सुनयु चा उपधालेयेयु चा हेव हेवा उपासका चा उपासिका चा (?) एतेनि भते इम लिखापयामि अभिहेत म जानतति (अशोक के धर्म लेख —जनार्दन भट्ट, एम० ए०)।

हिन्दी— जो कुछ भगवान् बुद्ध ने कहा है सब सुभाषित है। पर जैसे मुझे दिखाई देता है कि इस प्रकार सद्धर्म चिरकाल तक स्थित रहेगा, कहना उचित समझता हूँ। मै इन धर्मपर्यायो को—विनय समुकसे और मृषावाद के बारे में भगवान् द्वारा उपदिष्ट राहुलोवाद को चाहता हूँ। क्या चाहता हूँ? यही कि बहुत से भिक्षु और भिक्षुणियाँ सुनें तथा धारण करें। इसी प्रकार उपासक उपासिकायें भी। भन्ते, मै यह लेख लिखवाता हूँ कि लोग मेरा अभि-प्राय जानें।

अशोक चाहता था कि भिक्षु भिक्षुणियाँ, उपासक उपासिकाएँ सुनें तथा धारण करें। वे बुद्धोपदेश ये है—

(१) विनयसमुकसे, (२) अलियवसानि, (३) अनागतभयानि, (४) मुनिगाथा, (५) मोनेयसूते, (६) उपतिसपसिने, (७) लाघुलोवादे मुसावाद अधिगिच्च भगवता बुद्धेन भासिते।

वे बुद्धोपदेश वर्तमान त्रिपिटिक में कौन कौन से है, इनका अनेक विद्वानो ने विचार किया है। श्री धम्मानन्द जी कोसम्बी को वे इस क्रम से स्वीकृत है[1]—

(१) विनयसमुकसे=धम्मचक्कपवत्तन सुत्त
(२) अलियवसानि=अरियवसा (अगुत्तर, चतुक्क निपात)
(३) अनागत भयानि=अनागत भयानि (अगुत्तर, पञ्चक निपात)
(४) मुनिगाथा=मुनि सुत्त (सुत्तनिपात)
(५) मोनेयसूते=नाळकसुत्त (सुत्तनिपात)
(६) उपतिस पसिने=सारिपुत्तसुत्त (सुत्तनिपात)
(७) लाघुलोवाद=राहुलोवाद (मज्झिम नि० सुत्त ६१)

इन सात सुत्तो मे से चार सुत्त सुत्तनिपात से लिए गए हैं। इससे सुत्तनिपात का महत्त्व तथा प्राचीनता स्वय-सिद्ध है। सुत्तनिपात खुद्दक निकाय का एक ग्रन्थ है, और निद्देस, नाम से सुत्तनिपात के ही कुछ सुत्तो की एक टीका भी खुद्दक-निकाय के अन्तर्गत है। इससे अनुमान होता है कि सुत्तनिपात खुद्दक निकाय के निद्देस सदृश ग्रन्थो की अपेक्षा एक या दो शताब्दि प्राचीन है।

बुद्धवचन का नौ अगो के रूप में जो प्राचीनतर वर्गीकरण है, उसमे भी जातक का समावेश होने से उसकी प्राचीनता तथा महत्त्व स्पष्ट ही है। जब हम देखते है कि साँची, भरहुत आदि स्थानो मे अनेक जातक कथाओ के चित्र उत्कीर्ण है,[2] तब उनकी प्राचीनता तथा महत्त्व और भी बढ जाता है।

जातक शब्द का अर्थ है जन्म सम्बन्धी। विकासवाद के अनुसार एक फूल को विकसित होने के लिए, उस पुष्प की जाति विशेष के अस्तित्व में आने में

---

[1] भगवान बुद्ध (मराठी); इण्डियन ॲण्टीक्वेरी १९१२, फरवरी।

[2] भरहुत शिलालेख—श्री बरुआ तथा सिनहा—कलकत्ता यूनिवर्सिटी १९२६)।

लाखो वर्ष लग जाते है। तब क्या कोई भी प्राणी साठ या सत्तर, अधिक से अधिक सौ वर्ष के जीवन में बुद्ध बन सकता है? उसे इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए अनेक जन्म धारण करने ही होगे। गौतम बुद्ध को भी धारण करने पडे। बुद्ध होने से पूर्व अपने सब पिछले जन्मो तथा अन्तिम जन्म में उनकी सज्ञा बोधि-सत्त्व रही। बोधि का अर्थ बुद्धत्व और सत्व का अर्थ प्राणी—बुद्धत्व के लिए प्रयत्नशील प्राणी। जातक में बोधिसत्व के पाँच सौ सैतालिस जन्मो का उल्लेख है।

लेकिन बौद्ध तो आत्मा को ही नही मानते। फिर यह जन्मान्तरवाद कैसा? जब आत्मा ही नही, तो पुनर्जन्म कैसे हो सकता है? प्रश्न समुचित है। सामान्यतया सभी अबौद्ध दर्शन आत्मवाद के बिना जन्मान्तरवाद की कल्पना कर ही नही सकते। भगवद्गीता ने जिस जन्मान्तरवाद को स्वीकृत किया है, वह आत्मवाद की ही भित्ति पर है।

बुद्धधर्म किसी आत्मा को जो शाश्वत तथा नित्य समझा जाता है नही स्वीकार करता। आचार्य वसुबन्धु[1] कृत अभिधर्मकोष की एक कारिका है—

नात्मास्ति, स्कन्धमात्र तु कर्मक्लेशाभिसस्कृतम्।
अन्तराभव-सन्तत्या कुक्षिमेति प्रदीपवत् ॥३–१८॥

आत्मा नाम का कोई नित्य ध्रुव, अविपरिणाम स्वभाव वाला पदार्थ नही है। कर्म से तथा (अविद्या आदि) क्लेशो से अभिसस्कृत पञ्चस्कन्ध[2] मात्र ही पूर्व-भव सतति क्रम से एक प्रदीप से दूसरे प्रदीप के जलने की तरह गर्भ में प्रवेश पाता है।

इसी प्रकार राजा मिलिन्द[3] ने महास्थविर नागसेन से प्रश्न किया—यदि सक्रमण[4] नही होता तो पुनर्जन्म कैसे होता है?

हाँ महाराज, बिना सक्रमण हुए पुनर्जन्म होता है।

१ भन्ते, सो कैसे होता है? कृपया उपमा देकर समझाएँ।

---

[1] आचार्य वसुबन्धु का समय चौथी-पाँचवीं शताब्दी है।
[2] रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार, तथा विज्ञान।
[3] राजा मिलिन्द का समय ई० पू० १५० है।
[4] आत्मा का एक शरीर को छोड कर दूसरे को धारण करना।

महाराज! यदि कोई एक वत्ती से दूसरी वत्ती जला ले तो क्या यहाँ एक वत्ती दूसरी मे सक्रमण करती है?

नही भन्ते!

महाराज! इसी तरह विना सक्रमण हुए पुनर्जन्म होता है।

२ कृपया फिर भी उपमा देकर समझाएँ?

महाराज! क्या आपको कोई श्लोक याद है जो आपने अपने गुरु के मुख से सीखा था?

हाँ, याद है।

महाराज! क्या वह श्लोक आचार्य के मुख से निकल कर आपके मुख मे घुस गया?

नही भन्ते!

महाराज! इसी तरह विना सक्रमण हुए पुनर्जन्म होता है।

भन्ते! आपने अच्छा समझाया।

फिर राजा बोला—भन्ते! ऐसा कोई जीव है जो इस शरीर से निकल कर दूसरे में प्रवेश करता है?

नही, महाराज।

भन्ते! यदि इस शरीर से निकल कर दूसरे शरीर मे जाने वाला नही है, तब तो वह अपने पाप कर्मो से मुक्त हो गया।

हाँ, महाराज! यदि उसका फिर जन्म नही हो तो अलवत्ता वह अपने पापकर्मो से मुक्त हो गया और यदि वह फिर जन्म ग्रहण करे तो मुक्त नही हुआ।

कृपया उपमा देकर समझाएँ।

महाराज! यदि कोई आदमी किसी दूसरे का आम चुरा ले तो दण्ड का भागी होगा या नही?

हाँ भन्ते! होगा।

महाराज! उस आम को तो उसने रोपा नही था जिसे इसने लिया, फिर दण्ड का भागी कैसे होगा?

भन्ते! उसके रोपे हुए आम से ही यह भी पैदा हुआ, इसलिए वह दण्ड का भागी होगा।

महाराज! इसी तरह, एक पुरुष इस नामरूप से अच्छे बुरे कर्म करता है।

उन कर्मों के प्रभाव से दूसरा नामरूप जन्म लेता है। इसलिए वह अपने पाप कर्मों से मुक्त नहीं हुआ।

भन्ते! आपने ठीक समझाया।[1]

जब तक मनुष्य की अविद्या-तृष्णा का नाश नहीं होता, तब तक उसका अच्छा बुरा कर्म ही उसका सब कुछ है। भगवान् का उपदेश है—"भिक्षुओ, सभी को इस बात पर सदा मनन करना चाहिए कि मेरा जो कुछ भी है कर्म ही है, कर्म ही दायाद है, कर्म ही से उत्पत्ति है, कर्म ही बन्धु है, कर्म ही शरणस्थान है, जो मैं अच्छा बुरा कर्म करूँगा उसका मैं उत्तराधिकारी होऊँगा।"[2]

तृष्णा के क्षय हो जाने पर कर्म का भी क्षय हो जाता है और पुनर्जन्म का भी, लेकिन जब तक तृष्णा का क्षय नहीं होता तब तक तो प्राणी को जन्म जन्मान्तर तक जन्मों के चक्कर में रहना ही पड़ता है। बुद्ध ने जब बुद्धगया में बोधिवृक्ष के नीचे ज्ञान प्राप्त किया, उस समय उन्होंने सर्वप्रथम यही कहा—

"दुःखदायी जन्म बार बार लेना पड़ा। मैं संसार में (शरीर रूपी गृह को बनाने वाले) गृहकारक को पाने की खोज में निष्फल भटकता रहा। लेकिन गृहकारक! अब मैंने तुझे देख लिया। (अब) तू फिर गृह निर्माण न कर सकेगा। तेरी सब कड़ियाँ टूट गई। गृह-शिखर बिखर गया। चित्त निर्वाण प्राप्त हो गया, तृष्णा का क्षय हो गया।"[1]

---

[1] भिक्षु जगदीश काश्यप कृत मिलिन्द-प्रश्न का हिन्दी अनुवाद (३-२-१३ ३-२-१६)।

[2] कम्मस्सकोम्हि, कम्मदायादो, कम्मयोनि, कम्मबन्धु, कम्मपटिसरणो, यं कम्मं करिस्सामि कल्याणं वा पापकं वा तस्स दायादो भविस्सामीति अभिण्हं पच्चवेक्खितब्बं गहट्ठेन वा पब्बजितेन वा (अंगुत्तर निकाय, पंचक निपात, द्वितीय पण्णासक, प्रथम वर्ग, सातवाँ सूत्र)।

[1] धम्मपद (जरावग्ग १५३, १५४) की यह दो गाथाएँ प्रथम संबुद्ध गाथाएँ कही जाती हैं—

अनेक जाति संसारं सन्धाविस्सं अनिब्बिसं
गहकारकं गवेस्सन्तो दुक्खा जाति पुनप्पुनं,
गहकारक! दिट्ठोसि पुन गेहं न काहसि,

बुद्ध की शिक्षा के अनुसार रूप, वेदना, सज्ञा, सस्कार तथा विज्ञान इन पाँच स्कन्धो का ही यह व्यक्ति वा ससार बना है, इन पाँच स्कन्धो की धारा अच्छे बुरे कर्मानुसार बहती रहती है, बहती रही है और तब तक बहती रहेगी जब तक कोई व्यक्ति तृष्णा का सम्पूर्ण क्षय नही कर लेता।

पुनर्जन्म प्राय सभी भारतीय दर्शन सम्मत है। बुद्ध की शिक्षा की विशेषता यही है कि अनात्मवाद के साथ पुनर्जन्म को स्वीकार किया गया है। जन्म मरण के बन्धन से मुक्त होना तो आज दिन भारतीय दार्शनिको का सामान्य आदर्श है।

तिपिटक मे जिस जातक (ग्रन्थ) का समावेश है वह केवल गाथाओ का सग्रह है। जिस प्रकार धम्मपद एक चीज है और धम्मपद अट्ठकथा दूसरी, उसी प्रकार जातक एक चीज है और जातक अट्ठकथा दूसरी। अन्तर यह है कि धम्मपद का अर्थ बिना धम्मपद अट्ठकथा के समझ मे आ सकता है। जातक यद्यपि धम्मपद ही की तरह गाथाएँ मात्र है तब भी उन गाथाओ से, यदि पहले मे कथा मालूम हो तो, पाठक को वह कथा याद आ सकती है। यदि कथा मालूम न हो तो अकेली गाथाओ मे उद्देश्य पूरा नही होता। बिना जातकट्ठकथा के जातक अधूरा है।

फिर जातक मे केवल भगवान् बुद्ध के पूर्व जन्मो से सम्बन्ध रखनेवाली गाथाएँ भरी है। जातकट्ठकथा में अट्ठकथा सहित असली जातक कथाएँ आरम्भ होने से पहले निदान कथा नाम का एक लम्बा उपोद्घात है। इस निदान-कथा में सिद्धार्थ गौतम बुद्ध के जीवन चरित्र के साथ उनके पूर्व के २७ बुद्धो का भी जीवन चरित्र है। यह सारा का सारा बुद्धवंस' से लिया गया प्रतीत होता है।

सहब्बा ते फासुका भग्गा गहकूटं विसखितं,,
विसखारगत चित्तं तण्हान खयमज्झगा ॥

'बुद्धवंस के २७ बुद्ध इस प्रकार है––(१) तण्हङ्करो (२) मेधङ्करो, (३) सरणङ्करो, (४) दीपङ्करो, (५) कोण्डञ्ञो, (६) मङ्गलो, (७) सुमनो, (८) रेवतो, (९) सोभितो, (१०) अनोमदस्सी, (११) पदुमो, (१२) नारदो, (१३) पदुमुत्तरो, (१४) सुमेधो, (१५) सुजातो, (१६) पियदस्सी, (१७) अत्थदस्सी, (१८) धम्मदस्सी, (१९) सिद्धत्थ, (२०)

जातकट्ठकथा के बगला अनुवादक श्री० ईशान् चन्द्र घोष ने अपने अनुवाद में केवल जातक कथाओ वाले अश का अनुवाद दिया है। प्रस्तुत हिन्दी अनुवाद निदान-कथा सहित सारी जातकट्ठ का अविकल अनुवाद है।

जातक की अट्ठकथा तीन भागो मे विभक्त है—(१) दूरे निदान, (२) अविदूरे निदान, (३) सन्तिके निदान।

बोधिसत्त्व ने जब सुमेध तपस्वी का जन्म ग्रहण कर भगवान् दीपङ्कर के चरणो में जीवन समर्पित किया, उस समय से लेकर **वेस्सन्तर**[1] का शरीर छोड तुषित स्वर्ग लोक में उत्पन्न होने तक की कथा **दूरे-निदान** कही जाती है। तुषित लोक से च्युत होकर **महामाया** देवी के गर्भ से उत्पन्न हो .बोधगया मे **बुद्धत्व** प्राप्त करने तक की कथा **अविदूरे-निदान** कही जाती है। जहाँ जहाँ भगवान् बुद्ध ने विहार करते समय कोई जातक कही, उन स्थानो का जो उल्लेख है, वह **सन्तिके-निदान** है।

जितनी जातक कथाएँ है, वे दूरे-निदान के ही अन्तर्गत आती है। हर जातक कथा चार विभागो में विभक्त है—(१) **पच्चुपन्नवत्थु**, (२) **अतीतवत्थु**, (३) **अत्थवण्णना**, (४) **समोधान**। पच्चुपन्नवत्थु से मतलब है **वर्तमान-कथा** अर्थात् भगवान् बुद्ध के समय की कोई घटना, उदाहरण के लिए पहली अपण्णक जातक में ही अनाथपिण्डिक के साथ पाँच सौ तैर्थिको (बुद्धमत से भिन्न मतो के अनुयाइयो) के बुद्ध की शरण में आने जाने की कथा। अतीत-वत्थु का मतलब है किसी भी ऐसे अवसर पर भगवान् द्वारा कही गई पूर्व जन्म की कथा, जैसे पहली जातक में ही कान्तार मे जाने वाले बजारो की कथा। प्रत्येक कथा में एक या अनेक गाथाएँ है। अत्थवण्णना का मतलब है इन गाथाओ की व्याख्या, जिसमें गाथाओ का शब्दार्थ और विस्तृतार्थ रहता है। **समोधान** सदैव अन्त मे आता है जिसमें बुद्ध बताते है कि उन्होंने जो अतीत-वत्थु सुनाई उस अतीत-वत्थु के प्रधान पात्रो में कौन कौन था? वे स्वय उस समय किस योनि में उत्पन्न हुए थे।

तिस्स, (२१) फुस्स, (२२) विपस्सी, (२३) सिखी, (२४) वेस्सभू, (२५) ककुसन्ध, (२६) कोणागमनो, (२७) कस्सप। अन्तिम छ या सात बुद्धो के नाम भरहुत में अकित है—भरहुत शिलालेख (पृ० ४३)।

[1] देखो वेस्सन्तर जातक (५४७)।

इस अनुवाद मे हमने **पच्चुपन्नवत्थु** को वर्तमान कथा कहा है, **अतीतवत्थु** को अतीत कथा। ऐसे पाठको के लिए जिनका अधिक ध्यान कथामात्र की ओर हो प्रत्येक गाथा के नीचे अपना स्वतन्त्र अनुवाद दे दिया है। उसके आगे की अत्थवण्णना (व्याख्या) के आरम्भ और अन्त मे दो लकीरे खीच दी है।

आखिर मे जो समोधान आए है उन्हे हमने गलती से कथाओ का साराश कह दिया है। वह ठीक नही। समोधान का अर्थ केवल पूर्वपात्रो का मेल बैठाना मात्र है।

कुल जातक कितने है? अर्थात् बोधिसत्त्व ने बुद्ध होने से पूर्व ठीक ठीक कितनी बार जन्म ग्रहण किया है? कहना कठिन ही नही असम्भव है। खुद्दक निकाय के चरिया-पिटक मे ३५ चर्य्या वा चरित्र है। वे ३५ चरियाएँ जातकट्ठ कथा मे इस प्रकार है—

चरियापिटक	जातक
१ अकित्ति चरिय	१. अकित्ति जातक (४८०)
२ सङ्ख चरिय	२ सखपाल जातक (५२४)
३ कुरुधम्म चरिय	३ कुरुधम्म जातक
४. महासुदस्सन चरिय	४ महासुदस्सन जातक
५ महागोविन्द चरिय	५ (देखे महागोविन्द सूत्र दीर्घ निकाय)
६. निमि राज चरिय	६. निमि जातक (५४१)
७ चन्दकुमार चरिय	७. खण्डहाल जातक (५४२)
८. सिविराज चरिय	८. सिवि जातक (४९९)
९ वेस्सन्तर चरिय	९ वेस्सन्तर जातक (५४७)
१० ससपण्डित चरिय	१० सस जातक (३१६)
११ सीलवनाग चरिय	११. सीलवनाग जातक (७२)
१२ भूरिदत्त चरिय	१२ भूरिदत्त जातक (५४३)
१३ चम्पेय्यनाग चरिय	१३ चम्पेय्य जातक (५०६)
१४ चूलबोधि चरिय	१४ चुल्लबोधि जातक (४४३)
१५ महिंसराज चरिय	१५. महिस जातक (२७८)
१६ रुरुराज चरिय	१६ रुरु जातक (४८२)

१७. मातग चरिय	१७. मातग जातक (४९७)
१८ धम्माधम्मदेवपुत्त चरिय	१८. धम्म जातक (४५७)
१९. जयदिस्स चरिय	१९. जयदिस जातक (५१३)
२०. सखपाल चरिय	२० सखपाल जातक (५२४)
२१. युधञ्जय चरिय	२१. युवञ्जय जातक (४६०)
२२. सोमनस्स चरिय	२२ सोमनस्स जातक (५०५)
२३ अयोघर चरिय	२३ अयोघर जातक (५१०)
२४. भीस चरिय	२४ भिस जातक (४८८)
२५ सोणपण्डित चरिय	२५ सोण नन्द जातक (५३२)
२६. तेमिय चरिय	२६ तेमिय जातक (५३८)
२७ कपिराज चरिय	२७ कपि जातक (२५०)
२८ सच्चसव्हय पण्डित चरिय	२८ सच्चकिर जातक (७३)
२९ वट्टपोतक चरिय	२९ वट्ट जातक (३५)
३० मच्छराज चरिय	३०. मच्छ जातक (३४)
३१ कण्हदीपायन चरिय	३१ कण्हदीपायन जातक (४४४)
३२ सुतसोम चरिय	३२
३३ सुवण्णसाम चरिय	३३ साम जातक (५४०)
३४ एकराज चरिय	३४ एकराज जातक (३०३)
३५ महालोमहस चरिय	३५ लोमहस जातक (९४)

सस्कृत बौद्ध साहित्य मे **जातक माला** नाम का एक ग्रन्थ है, जिसके रचयिता आर्यशूर है। तारानाथ ने आर्यशूर और प्रसिद्ध महाकवि अश्वघोष को एक ही कहा है। लेकिन यह ठीक नही। आर्यशूर की जातकमाला मे कुल ३४ जातक है।

इसी प्रकार श्री० ईशानचन्द्र के अनुसार महावस्तु नामक ग्रन्थ मे लगभग ८० कथाएँ है।

थेरवादियों वा सिहल, स्याम, वर्मा, हिन्दचीन आदि देशो के बौद्धो की परम्परा है कि जातको की सख्या ५५० है। यह ५५० सख्या याद रखने की सुविधा के लिए प्रचलित हो गई प्रतीत होती है, नही तो जातकट्ठकथा मे जातको की ठीक

सख्या ५४७ है।[1] ये कथाएँ २२ निपातो या परिच्छेदो में बँटी है। पहले परिच्छेद मे १५० ऐसी कथाएँ है जिनमे एक ही एक गाथा या श्लोक पाया जाता है, दूसरे मे भी १५० ही कथाएँ है, लेकिन उनमे प्रत्येक मे दो दो गाथाएँ है। तीसरे और चौथे मे पचास पचास कथाए। गाथाओ की सख्या क्रमश तीन तीन और चार चार। पांचवे निपात से तेरम निपात तक यह क्रम मोटे रूप से जारी रहता है। इन नौ निपातो मे जातक-कथाओ की कुल सख्या केवल १३३ है। प्रत्येक निपात मे कही कही जातको की गाथाओ की सख्या उस निपात की सख्या से अधिक है, लेकिन सामान्यत ऊपर का ही क्रम है। चौदहवे निपात का नाम पकिण्णक निपात है, शायद इसलिए कि इसके जातको मे गाथाओ की सख्या वहुत ही अस्थिर है। निपात क्रम मे प्रत्येक कथा मे १४ गाथाएँ होनी चाहिए। लेकिन इस निपात के जातको मे गाथाओ की सख्या साधारणत १० के आसपास है और एक मे तो ४७ है। इसके आगे के सात निपातो के नाम (१) वीसति निपात, (२) तिस, निपात, (३) चत्तालिस निपात, (४) पण्णास निपात, (५) छट्ठी निपात, (६) सत्तति निपात, (७) असीति निपात है। इन सभी निपातो के जातको की गाथाओ मे की सख्या अधिकाश की ओर ही झुकी हुई है। अन्त के दो निपातो मे तो ९० और १०० से भी ऊपर है। वाइसवे निपात का नाम महानिपात उसके आकार को देखते ठीक ही है। उसमे केवल दस जातक कथाएँ है, लेकिन् प्रत्येक जातक मे सैकडो गाथाएँ है और अन्तिम जातक—वेस्सन्तर जातक—में तो गाथाओ की सख्या सात सौ से भी ऊपर है।

इस प्रकार स्थूल दृष्टि से देखा जाय तो जातको की सख्या ५४७ है और कम से कम थेरवादियो के लिए निश्चित है। लेकिन जातकट्ठ वण्णना की ही निदान-कथा मे ही एक महागोविन्द जातक का उल्लेख है, जो इन ५४७ जातको में कही नही है। सूत्र-पिटक मे भी महागोविन्द की जन्म-कथा है, जो इस सग्रह से वाहर ही है, इससे अनुमान होता है कि जातको की सख्या ५४७ से अधिक रही है।

मगर इन ५४७ जातको मे कई ऐसे है जिनकी स्वतन्त्र रूप से पृथक गिनती

---

[1] चूल निद्देस में एक जगह 'पञ्च जातक सतानि' अर्थात् पाँच सौ जातक आया है।

भी हुई है, लेकिन वे केवल किसी दूसरे बडे जातक के अन्तर्गत है। उदाहरण के लिए पञ्चपण्डित जातक (५०८) और दकग्क्खस जातक (५१७) दोनो महा-उम्मग जातक (५४६) मे है। एक ही जातक एक से अधिक जगह दो भिन्न भिन्न नामो मे भी गिने गये है जैसे प्रथम खण्ड का मुनिक जातक (३०) और दूसरे खण्ड का साल्क जातक (२८६) एक ही जातक दो जगह एक ही नाम से भी आए है, प्रथम खण्ड में भी मत्स्य-जातक है और द्वितीय खण्ड में भी मत्स्य-जातक है, किन्तु कथा भिन्न भिन्न है। एक ही खण्ड मे जातको की पुनरुक्ति है, कही कही सारे जातक एक है केवल बहुत ही थोडा नाम मात्र का भेद है। इससे मानना होगा कि जातको की ठीक सख्या ५४७ न होकर, काफी कम है। हम "जातको" की बात कह रहे है, साधारण कथाओ की नही। यदि "जातको" की गिनती न करके उन कथाओ तथा उपाख्यानो का हिसाब लगाया जाए तो जातकट्ठकथा के अन्तर्गत कुछ हजार कथाएँ होगी।[1]

जातक-कथा ससार के कथा-साहित्य मे प्राचीन सग्रह ही नही, सर्वापेक्षा बडा भी है।

५० जातको के अन्त मे "पटमपण्णासको" और फिर १०० के अन्त मे जो "मज्झिम पण्णासको" आया है, उससे श्री ईशानचन्द्र घोष ने अनुमान लगाया है कि जातक सग्रहकार के मन में ५०, ५० के परिच्छेदो का ध्यान रहा होगा। लेकिन त्रिपिटक के अन्य निकायो मे भी तो पचास, पचास के क्रम से ही गिनती है। इस पचास पचास के क्रम मात्र से जातको की अन्तिम सख्या के सम्बन्ध में किसी अनुमान की गुञ्जाइश नही।

मूल "जातक" में केवल गाथाएँ होने के कारण स्वभावत जातकट्ठकथा मे भी जातक-कथाओ का वर्गीकरण गाथाओ के अनुसार है। यह गाथाओ की सख्या के अनुसार न होकर उनके विषय के अनुसार होता तो कदाचित् अधिक अच्छा था। जातको में विषय-क्रम से कोई वर्गीकरण नही।

एक से तेरह-निपात तक के निपात वर्गो मे विभक्त है। इन वर्गों में किसी किसी का नाम उस वर्ग के पहले जातक के अनुसार है, जैसे अपण्णक वर्ग, किसी किसी

---

[1] श्री ईशान चन्द्र घोष का अनुमान है कि लगभग तीन हजार होगी।

का उस वर्ग मे आए जातको के विषय का ध्यान रखकर जैसे स्त्रीवर्ग, लेकिन उसी स्त्रीवर्ग में कुदाल पण्डित की कथा[1] है जिसका स्त्रीवर्ग से कोई सम्बन्ध नही।

जातको के नामकरण मे कुछ का नामकरण तो उस जातक मे आई गाथा के पहले शब्दो का ध्यान रखकर किया गया है जैसे अपण्णक जातक (१), किसी का प्रधान पात्र के अनुसार जैसे वक जातक (३८), किसी का मुख्य विषय के अनुसार जैसे वण्णुपथ जातक (२), किसी का बोधिसत्त्व ने जो जन्मग्रहण किए, जिस मछली, हाथी या बन्दर की योनि मे पैदा हुए, उनके अनुसार।

बोधिसत्त्व प्राय तपस्वी, राजा, वृक्षदेवता, ब्राह्मण आदि होकर पैदा हुए और कभी कभी सिह, हाथी, घोडा, गीदड, कुत्ता आदि भी। कम से कम तीन बार चाण्डाल योनि मे पैदा हुए। हाँ, एक बार जुआरी भी।

इस जातकट्टकथा का रचयिता, सग्रहकर्त्ता वा अनुवादक कौन है? **महावंस**[2] मे लिखा है कि आचार्य बुद्धघोष अभिधम्म पिटक के प्रथम ग्रन्थ धम्मसगणि पर अत्थसालिनि टीका लिख चुकने के बाद भारत से सिहल गए। सिहल जाने क उनका एकमात्र उद्देश्य था सिहल-भाषा मे सुरक्षित अट्ठकथाओ का पाली मे अनुवाद करना। ये अट्ठकथाएँ कहते है महेन्द्र के साथ भारत से सिंहल पहुँची, इन्ही का बुद्धघोष ने महास्थविर सघपाल की अधीनता मे महाविहार, अनुराध-पुर मे रहकर अध्ययन किया। जब वह विसुद्धिमग्ग नामक प्रसिद्ध ग्रन्थ लिखकर अपनी उन अट्ठकथाओ को पालि स्वरूप देने की अपनी योग्यता प्रमाणित कर चुके, तभी सिहल के भिक्षुसघ ने उन्हे उन सिहल अट्ठकथाओ को पालि में अनुवाद करने की आज्ञा दी। महावस का कहना है कि उसने "सारी अट्ठकथाओ" का पालि अनुवाद किया। पता नही इन "सारी अट्ठकथाओ" मे कौन कौन अट्ठ-कथाएँ सम्मिलित है। आज हमे जो अट्ठकथाएँ प्राप्य है, वे सब तो स्पष्ट रूप से आचार्य बुद्धघोष रचित नही है। खुद्दकनिकाय के कई ग्रन्थो—थेरगाथा, थेरी-गाथा, उदान, विमानवत्थु, पेतवत्थु, इतिवुत्तक, चरियापिटक—पर महास्थविर धम्म-पाल रचित अट्ठकथाएँ है, जिनका समय तो निश्चित नही, लेकिन वे बुद्धघोष के बाद ही हुए है। विनय-पिटक के ग्रन्थो तथा सुत्तपिटक के अन्तर्गत चारो निकायो

---

[1] कुदाल जातक (७०)।

[2] महावंस परिच्छेद ३८, गाथा सख्या २१५-२४६

पर अट्ठकथाएँ लिखने से भी आचार्य बुद्धघोष "सारी अट्ठकथाओं" के रचयिता वा अनुवादक माने जा सकते हैं। परम्परा तो उन्हें ही जातकट्ठकथा का भी अनुवादक मानती है, लेकिन अधिक सम्भावना यही है कि यह श्रेय किसी अन्य आचार्य को प्राप्त है।

जातकट्ठकथा के रचयिता ग्रन्थ के आरम्भ में कहते हैं कि "बुद्धधर्म की चिरस्थिति चाहने वाले अर्थदर्शी स्थविर सहवासी तथा एकान्तप्रेमी शान्तचित्त पण्डित बुद्धमित्त, और महिशासक वंश में उत्पन्न, शास्त्रज्ञ शुद्धबुद्धि भिक्षु बुद्धदेव के कहने से महापुरुषों के चरित्र के अनन्त प्रभाव को प्रकट करने वाली जातक अर्थवण्णना को महाविहार वालों के मत के अनुसार व्याख्या करूँगा।[1] ,यहाँ इस आत्म-परिचयात्मक लेख में जो महिशासक सम्प्रदाय के बुद्धदेव का नाम है, वह कुछ बहुत अनोखा है, खटकने वाला है। महिशासक सम्प्रदाय स्थविरवाद से बाहर निकला हुआ एक सम्प्रदाय था। महाविहार परम्परा शुद्ध स्थविरवाद को ही मानने वाली परम्परा रही है। आचार्य्य बुद्धघोष ने अपनी सब अट्ठकथाओं में इसी परम्परा को अपनाया है। यदि जातकट्ठकथा बुद्धघोष रचित मानी जाए, तो उसमें महिशासक सम्प्रदायी बुद्धदेव की याचना का क्या अर्थ ?

इन कारणों से आचार्य्य बुद्धघोष को जिन्हें अनेक दूसरी अट्ठकथाएँ लिखने का श्रेय प्राप्त है, इस अट्ठकथा का भी श्रेय देने की प्रवृत्ति नहीं होती।

इन कथाओं का अन्तिम संग्रह वा सम्पादन किसी के भी हाथों हुआ हो किन्तु इनकी रचना में तथा इनके जातकट्ठकथा का वर्तमान रूप धारण करने में कई शताब्दियाँ अवश्य लगी होंगी। कुछ न कुछ जातकों का उल्लेख तो स्थविरवाद तथा महायान के प्राचीनतम साहित्य में है। उनकी यथार्थ संख्या कह सकना कठिन है। सम्भव है कि इन कथाओं में से अनेक कथाएँ भगवान् बुद्ध से पूर्व की हों। बुद्ध ने अपने उपदेशों में उनका उपयोग भर किया हो।

कुछ ऐसा अबौद्ध साहित्य है जो यद्यपि भगवान् बुद्ध से पूर्व का समझा जाता है, लेकिन उसकी परम्परा भले ही पुरानी रही हो, उसका सम्पादन पीछे ही हुआ है। उस साहित्य में और बौद्ध कथा-साहित्य में जो साम्य है वह जहाँ एक दूसरे

---

[1] जातकट्ठकथा, उपोद्घात (पृ० १)।

की लेन देन हो सकता है, वहाँ यही अधिक सम्भव है कि एक ही मूलकथा ने दोनो जगह भिन्न भिन्न रूप धारण किया है।

जहाँ तक पालि वाङमय का अपना सम्बन्ध है, इन कथाओ मे से कुछ तिपिटक में स्वतन्त्र रूप से आई हैं। सारे तिपिटक का वर्तमान स्वरूप कब स्थिर हुआ, इसके बारे मे कोई निश्चित बात कह सकना बहुत कठिन है। महावस का तो मत है कि ईस्वी सन् की प्रथम शताब्दी मे सिहल मे राजा वट्टगामणी के समय अट्ठकथाओ सहित सारा तिपिटक लेख बद्ध हो गया था।[1] प्रतीत होता है कि तिपिटक तो वट्टगामणी के समय प्रथम शताब्दी मे ही अन्तिम रूप से स्थिर हो गया था, लेकिन अट्ठकथाओ ने तो बुद्धघोष के समय अर्थात पाँचवी सदी के आरम्भ मे जाकर अन्तिम रूप ग्रहण किया होगा। यदि बुद्धघोष जातकट्ठकथाओ के अनुवादक वा सम्पादक न भी रहे हो, तो भी यह कार्य्य उनके बहुत पीछे नही हुआ।

इससे बहुत पहले (ई० पू० द्वितीय शताब्दी मे) इस सग्रह की अनेक कथाओ को हम भरहुत के स्तूपो पर उनके नाम के साथ अकित पाते है।[2] यद्यपि हम सारी कथाओ के लिए कोई भी एक समय निर्धारित करने मे असमर्थ है तो भी इतना कह सकते है कि इस सग्रह की कहानियाँ ईसा पूर्व पाँचवी शताब्दी के भी पहले से लेकर ईसा के बाद की प्रथम या द्वितीय शताब्दी तक ही रची गई होगी। यह जातक-सग्रह अपने वर्तमान स्वरूप मे कम से कम लगभग दो हजार वर्ष पुराना है।

जातक कथा-सग्रह शुद्ध भारतीय साहित्य होने से अबौद्ध साहित्य की कथाओ में भी इनसे साम्य वा इनका प्रभाव दिखाई देना स्वाभाविक है। तिपिटक में न महाभारत का कही उल्लेख है, न रामायण का। बुद्ध के आसपास के किसी और साहित्य में भी नही। सिविजातक सदृश अनेक कथाओ ने महाभारत मे स्थान

---

[1] पिटकत्तय पालिं च तस्सा अट्ठकथंपि च
मुखपाठेन आनेसुं पुब्बे भिक्खू महामति;
हानिं दिस्वान सत्तान तदा भिक्खू समागता
चिरट्ठितत्थ धम्मस्स पोत्थकेसु लिखापयुं॥
महावस॥ (३३, १००-१०२)

[2] तीस से अधिक जातक दृश्यो का निश्चय हो गया है—भरहुत शिलालेख।

पाया है। रामायण मे वुद्ध का नाम आया है।[1] इतना ही नही सारा रामायण दशरथ जातक[2], देवधम्म जातक आदि कुछ जातक लेकर रचा प्रतीत होता है। यह साम्य कैसे हुआ?

सामान्य लोगो का कहना है कि महाभारत और रामायण इतने अधिक प्राचीन ग्रन्थ है कि उनमे यदि कोई परवर्ती उल्लेख पाया जाए तो उसे प्रक्षिप्त ही मानना चाहिए। दूसरे पक्ष का कहना है कि चाहे महाभारत रामायण के कुछ अश की परम्परा प्राचीन भी रही हो तो भी उनके सम्पादको ने उनका सम्पादन करते समय अनेक वार इनमे वहुत कुछ मिला दिया। इसलिए महाभारत-रामा-

---

[1] श्लोक प्रक्षिप्त माना जाता है; कहते है प्राचीन प्रतियो में अप्राप्य है—
यथा हि चोर स तथाहि वुद्धस्तथागतं नास्तिकमत्र विद्धि॥
तस्माद्धि य शङ्क्यतम' प्रजाना न नास्तिकेनाभिमुखो वुधः स्यात्॥
अयोध्याकाण्डम्॥ २।१९।३४

[2] दसरथ जातक में है—
फलानं इव पक्कानं निच्च पपतना भयं।
एवं जातान मच्चानं निच्च मरणतो भयं॥५॥
रामायण में है—
यथा फलानां पक्वाना नान्यत्र पतनाद् भय।
एवं नराणां जातान नान्यत्र मरणाद् भयं॥
दसरथ जातक में है—
एको व मच्चो अच्चेति, एकोव जायते कुले॥१०॥
रामायण में है—
यद् एको जायते जन्तुरेकेव विनश्यति।
दसरथ जातक में है—
दसवस्स सहस्सानि सट्ठि वस्स सतानि च
कम्बुग्गीवो महावाहु रामो रज्जं अकारयि॥१३॥
रामायण में है—
दश वर्ष सहस्राणि दश वर्ष शतानि च
वीत शोक भय क्रोधो रामो राज्यं अकारयत्॥

यण तथा जातको मे यदि कुछ साम्य दिखाई देता है तो वह जातक-कथाओ की ही देन है।

हमारा अनुमान है कि किसी अश मे तो अबौद्ध और बौद्ध साहित्य दोनो एक ही परम्परा के ऋणी है। प्राचीन काल का कथा साहित्य आज की तरह स्पष्ट रूप से बौद्ध और अबौद्ध विभाग मे विभक्त नही था। उस समय एक ही कथा ने बौद्धो के हाथो बौद्ध रूप और अबौद्ध कलाकारो के हाथो पडकर अबौद्ध रूप धारण किया होगा।

तो भी इतना तो कहना ही होगा कि शक काल तक महाभारत और रामायण का अपने वर्तमान रूप मे न तो अस्तित्व दिखाई देता है न प्रचार। सारे देश में महाभारत और रामायण की कथा घर घर होती रही हो और समकालीन साहित्य मे उसके बारे मे कही कुछ न हो, यह हो नही सकता। डा० भण्डारकर का कहना है कि पतञ्जलि के महाभाष्य तक मे राम का नाम नही, और न किसी प्राचीन शिला लेख मे।[1] साधारणतया रामायण महाभारत से प्राचीन समझी जाती है। लेकिन बात उल्टी है। श्री० धर्मानन्द जी कोसम्बी का कहना है कि रामायण के रामचन्द्र और उनकी अयोध्या नगरी दोनो के भारतीय होने मे शका है। रामयण को छोडकर पतञ्जलि के समय तक भी किसी प्राचीन सस्कृत-ग्रन्थ मे अयोध्या का नाम नही आता। इसलिए चाहे रामायण की कथा मे कुछ ऐतिहासिक हो चाहे न हो महाभारत और रामायण मे महाभारत ही अपेक्षाकृत प्राचीन है।

हाँ, पाँचवी शताब्दी में आचार्य्य बुद्धघोष महाभारत और रामायण से परिचित प्रतीत होते है। वे लिखते है—"आख्यान का मतलब है भारत रामायण-आदि। वह कथा जहाँ हो रही हो, वहाँ जाना योग्य नही।"[2] फिर दूसरी जगह

---

[1] There is no mention of his (Rama's) name in such a work as that of patanjali, nor is there any old inscription in which it occurs.

Vaishnavism Saivism etc by R.G Bhandarkar P.66.

[2] अक्खानं ति भारत रामायणादि। तं यस्मि ठाने कथयति, तत्थ गन्तुं न वट्टति। (दी० नि० अ० १।८४)।

भारत-युद्ध सीता-हरण आदि को निरर्थक कहा है।[1] जयद्दिस जातक (५१३) में राम के दण्डकारण्य जाने का उल्लेख है। अपने जिस अविकसित रूप मे जातक-कथा की कहानियो ने महाभारत और रामायण मे आकर विकास पाया, उसमे यही पक्ष ठीक मालूम होता है कि इन कथाओ के आरम्भिक रूप का लेखा जातक-कथाओ में विद्यमान है और पीछे के सँवरे-मँजे रूप का महाभारत और रामायण में।

घट जातक, एक प्रकार से छोटा मोटा भागवत ही है। उसमे कृष्णजन्म से लेकर कंस की हत्या करने और फिर द्वारिका जा बसने तक की सारी कथा आई है। उसमें चानूर और मुष्टिक पहलवानो की हत्या करने जैसी छोटी छोटी बाते भी है। लेकिन श्रीमद्भागवत स्पष्ट रूप मे पीछे की चीज होने से इसमे सन्देह नही कि कृष्ण-जन्म की कथा अपने प्राचीन रूप मे जातक में ही विद्यमान है।

कुछ भी हो महाभारत रामायण की कथाओ से मिलती जुलती जातक में जो कथाएँ है, उनका अपना महत्त्व है और वह कम नही।

ईसा की प्रथम शताब्दी मे आन्ध्र राजाओ के समय गुणाढ्य नाम के किसी पण्डित ने पैशाची भाषा में "वृहत्कथा" नाम का एक ग्रन्थ लिखा था। पैशाची भाषा या तो आधुनिक दरदी की पूर्वज भाषा थी या उज्जैन के पास की एक बोली[2]। यह गुणाढ्य कौन थे, कहना कठिन है। इनकी "वृहत्कथा" एकदम अप्राप्य है। अब तक किसी के देखने में नही आई। इससे नही कहा जा सकता कि वह "वृहत्कथा" कितनी वृहत् थी और उसमें क्या क्या था। बाणके हर्षचरित मे, दण्डी के काव्यादर्श मे, क्षेमेन्द्र की वृहत्कथा मञ्जरी में और सोमदेव के कथा सरितासागर मे उसका प्रमाण है। सोमदेव ने, जो कि एक बौद्ध था, अपना "कथा-सरितसागर" "वृहत्कथा" से ही सामग्री लेकर लिखा और सोमदेव के कथा सरितसागर में अनेक जातक-कथाएँ विद्यमान है। इससे अनुमान होता है कि "वृहत्कथा" का आदि श्रोत जातक-कथाएं ही रही होगी।

प्रसिद्ध पञ्चतन्त्र की अधिकांश कथाओ का मूल जातको में ही है[3]। उसका

---

[1] भारतयुद्ध सीता हरणादि निरत्थक कथा (दी० नि० अ० १।८६)

[2] भारत भूमि और उसके निवासी (पृ० २४६) जयचन्द्र विद्यालकार।

[3] बक जातक (३८)। २ वानरिन्द जातक (५८)। ३ कूट वाणिज जातक (९८)। ४ मिति चिन्ति जातक (११४) आदि।

कर्ता ब्राह्मण था। बौद्ध कथाएँ जहाँ जन-साहित्य है और उनका उद्देश्य जनसाधारण का शिक्षण रहा है, वहाँ पञ्चतन्त्र के ब्राह्मण रचयिता ने उन कथाओ का उपयोग केवल राजकुमारो को शिक्षित करने के लिए किया है।

हितोपदेश मे श्लोको की अधिकता है। वे सचमुच हितोपदेश है। उसमे पञ्चतन्त्र से सहायता ली गई है और अनेक जातक-कथाएँ विद्यमान है।

आख्यायिका-साहित्य मे वैताल पञ्चविंशति का भी स्थान है। उसमे पता नही कोई जातक-कथा है वा नही ? सिंहासन द्वात्रिंशिका शुकसप्तति आदि और भी कई ग्रन्थ है। जैन वाङमय मे भी आख्यायिका साहित्य है ही। इस सारे साहित्य मे और बौद्ध जातक कथाओ में कही न कही साम्य अवश्य है, जो अधिकाश मे जातक-कथाओ के ही प्रभाव का परिणाम है।

जातक-कथाओ में कई कथाएँ ऐसी है जो पृथ्वी के प्राय हर कोने मे पहुँच गई है। पञ्चतन्त्र ही इन कथाओ को फैलाने का मुख्य साधन बना प्रतीत होता है। छठी सदी मे पञ्चतन्त्र का एक अनुवाद पहलवी अथवा प्राचीन फारसी मे हुआ। यह अनुवाद खुसरो नौशेरवाँ के राजवैद्य की कृति था। इसी अनुवाद से पञ्चतन्त्र का एक अनुवाद सीरिया की भाषा मे हुआ, जो जर्मन अनुवाद के साथ १८७६ मे लीपजिग् से छपा। पञ्चतन्त्र ही का एक अरबी अनुवाद लगभग ७५० ई० मे अलमीकाफ के पुत्र अब्दुल्ला ने किया, जिसका नाम था कलेला-दमना।[1] यह कथा-सग्रह अरबो को बहुत प्रिय हुआ। आगे चलकर जब अरब योरप के दक्षिण देशो मे फैले तो उन्हें इन कथाओ को यूरोप मे फैलाने का श्रेय मिला।

१८१९ मे पञ्चतन्त्र के अरबी अनुवाद कलेला दमना (كليله و دمنه) का अग्रेजी अनुवाद हुआ। १४८३ में अर्बी अनुवाद से ही पञ्चतन्त्र जर्मन में अनूदित हुआ। १०८० मे इस अरबी अनुवाद का ग्रीक भाषा में एक अनुवाद हो चुका था। १८६६ मे इस ग्रीक अनुवाद से लातीनी भाषा में अनुवाद हुआ। इसी प्रकार १५ वी सदी के अन्त में पञ्चतन्त्र के अरबी अनुवाद का फारसी अनुवाद हुआ जिसका नाम है अनवार सहेली। १६४४ में उस अनवार सहेली से लिब्रे दे ल्यूमिरे (Livre des Lumieres), नाम से फ्रेंच अनुवाद हुआ। १८७२ में ग्रीक अनुवाद से इटली की भाषा में अनुवाद हुआ। १२५० मे अरबी अनुवाद

---

[1] **दोनो नाम पञ्चतन्त्र के कर्कट और दमनक के विकृत रूप हैं।**

से ही हीब्रू मे अनुवाद हुआ, और इसी सदी के अन्त मे हीब्रू से लातीनी में भी। फिर आगे चलकर १८५४ मे सीधा अरबी मे भी एक अनुवाद हुआ।

ईसप् की कथाओ के नाम मे जिन कथाओ का यूरोप मे प्रचार है और जिसके कुछ अनुवाद हमारी भारतीय भाषाओ में, यहाँ तक कि सस्कृत मे भी छप चुके हैं,[1] उनका मूल उद्गम-स्थान कहाँ है? श्री रीजडेविड्स उन कथाओ के बारे में विस्तृत अन्वेषण करने के बाद इस परिणाम पर पहुँचे है कि उनमे से किसी कथा का किसी ईसप से सम्बन्ध नही है।[2] 'ईसप-कथाओ' का प्रथम सग्रह मध्यम-युग मे हुआ। उनमे से अधिकाश का मूल-स्थान हमारी जातक-कथाएँ ही है, और बहुत सम्भव है कि लगभग सभी का मूल-स्थान भारतवर्ष है।[3]

पञ्चतन्त्र के जिस अरबी अनुवाद का हमने ऊपर उल्लेख किया है वह ८वी शताब्दी में बगदाद के खलीफा अलमसूर के दरबार मे लिखा गया था। इसी खलीफा के दरबार मे एक ईसाई पदाधिकारी था, जो बाद मे सन्यासी हो गया। उसका नाम है डमसकस का सन्त जान (St. John of Damascus)। उसने ग्रीक भाषा मे अनेक किताबे लिखी। उन्ही मे एक किताब बरलाम एण्ड जोसफ (Barlaam and Joasaph) है। इस कथा के जोसफ कौन है? स्वय बुद्ध। ऊपर कह आए है कि बुद्धत्व प्राप्ति से पूर्व अपने पिछले और अन्तिम जन्म मे बुद्ध बोधिसत्त्व कहलाए। यह बोधिसत्त्व ही बोसत और फिर जोसफ बना। सन्त जान की इस किताब में बुद्ध का आशिक चरित्र और अनेक जातक कथाएँ है।

अरबी के कलैला दमना की तरह यह ग्रन्थ लोगो को बहुत प्रिय हुआ और इसका प्रचार भी बहुत हुआ। अनेक यूरोपिय भाषाओ मे इसका अनुवाद किया गया। यह ग्रन्थ लातीनी, फ्रेंच, इटालियन, स्पैनिश, जर्मन, अग्रेजी, स्वेडिश और डच मे प्राप्य है। १२०४ मे आइसलैण्ड की भाषा मे भी इसका अनुवाद हुआ, और फिलिपाइन द्वीप मे जो स्पेन-बोली जाती है, उस तक में यह प्रकाशित हो चुका है।

---

[1] अहमद नगर के श्री० बालकृष्ण गोडबोले ने सस्कृत में अनुवाद किया था।

[2] श्री० मैकडानल के अनुसार बब्रियू ने २०० ई० में ईसप् कथाओ को लिखा। (इण्डियाज पास्ट पृष्ठ १२५)।

[3] बुद्धिस्ट बर्थ स्टोरीज पृ० ३२

कितने ही आश्चर्य्य की वात प्रतीत होने पर भी यह सत्य है कि सन्त जोसफत के रूप मे भगवान् बुद्ध आज सारे रोमन कैथालिक ईसाइयो द्वारा स्वीकृत[1] है, आदृत है और पूजे जा रहे है।

इन जातक कथाओ के प्रसार और प्रभाव की कथा अनन्त प्रतीत होती है। एक इटालियन विद्वान् ने सिद्ध किया है कि किताब उल् सिन्दबाद की अनेक कथाओ का और अलिफलैला (Arabian Nights) की अनेक कथाओ का भी मूल-स्थान जातक-कथाएँ ही है।

जिस समय हूण पूर्वी यूरोप में गए तो वे भी अपने साथ जातक कथाओमे से कुछ ले गए। वहुत सी ऐसी कथाएँ जिनका मूल जातक कथाओ मे है सलाव लोगो में मिली है।

वौद्ध देशो मे जातक कथाओका प्रचार है ही।

इस प्रकार जातक वाङ्मय चाहे उसे प्राचीनता की दृष्टि से देखे, चाहे विस्तार की, और चाहे उपदेशपरक तथा मनोरञ्जक होने की दृष्टि से, वह ससार मे अपना सानी नही रखता।

अट्ठकथानुसार इन कथाओ मे से तीन चौथाई कहानियाँ जेतवन विहार मे कही गई। शेष राजगृह तथा अन्य कोसम्वी, वैशाली आदि स्थानो मे।

जातक कथाओ में जो वर्तमान कथाएँ हैं, ऊपरी दृष्टि से देखने से, उनका ऐतिहासिक मूल्य अधिक प्रतीत होता है। वे कथाएँ उतनी ऐतिहासिक नही है जितनी काल्पनिक। वर्तमान-कथाओ की अपेक्षा अतीत-कथाओ का ऐतिहासिक मूल्य कही अधिक है?

प्राय सभी जातको के आरम्भ में "पूर्व काल में वाराणसी मे राजा ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय" आता है। पता नही यह ब्रह्मदत्त कोई राजा हुआ है वा नही? कुछ लोगो का ख्याल है कि 'जनक' की तरह यह ब्रह्मदत्त भी अनेक राजाओ की पदवी रही होगी। हमारा तो ख्याल है कि कथाओ में ब्रह्मदत्त का मूल्य कथा आरम्भ करने के लिए एक निश्चित शब्द-समूह से अधिक कुछ नही,

---

[1] देखो पोप सिक्सटस् (१५८५-९०) की २७ नवम्वर की डिक्री जिसमें भारत के वरलाम और जोसफत को कैथालिक ईसाइयो के सन्तो के रूप में स्वीकृत किया है।

जैसे उर्दू की प्राय हर कहानी 'एक दफा का जिकर है' से आरम्भ होती है, और अंग्रेजी की वन्स अपान ए टाइम (Once upon a time) से, वैसे ही हमारी अनेक जातक कथाओ के लिए 'पूर्व काल में वाराणसी मे राजा ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय' है।

जातक कथाओ के विषयो के बारे मे थोडे मे कुछ भी कह सकना कठिन है। मानवजीवन का कोई भी पहलू इन कथाओ मे अछूता बचा प्रतीत नही होता। यही वजह है कि पिछले दो सहस्र वर्ष के इतिहास मे यह जातक कथाएँ मनुष्य समाज पर अनेक रूप मे अपनी छाप छोडने मे समर्थ हुई है।

जब कभी कहा जाता है कि भारतवर्ष का सारा साहित्य परलोक चिन्तामय है, उसको इहलोक की चिन्ता ही नही, तो हम उसे अपनी और अपने वाङमय की प्रशसा समझते है। किसी भी जाति का काम केवल परलोक-परक होने से नहीं चल सकता। भगवान् बुद्ध ने इहलोक तथा परलोक चिन्ता मे समत्व स्थापित किया। यही कारण है कि जातक कथाओ को बौद्ध वाङमय में महत्वपूर्ण स्थान मिला और उसका विकास हुआ। जातक साहित्य जनसाहित्य के सच्चे अर्थों मे जनता का साहित्य है। इसमे हमारे उठने बैठने खाने पीने, ओढने बिछाने की साधारण बातो से लेकर हमारी शिल्पकला, हमारी कारीगरी, हमारे व्यापार की चर्चा के साथ हमारी अर्थनीति, राजनीति तथा हमारे समाज के सगठन का विस्तृत इतिहास भरा पडा है। उस युग के भू-वृत्त की भी पर्याप्त सामग्री है, विशेष रूप से उस युग के जल-मार्गो तक स्थल-मार्गो की।

भारतीय जीवन का कोई पहलू ऐसा नही जिसका लेखा इन कथाओ में न मिलता हो। यदि भविष्य मे हमारा इतिहास राजाओ की जन्म-मरण तिथियो का लेखा मात्र न रह कर जनता के जन्म-मरण के इतिहास के रूप में यथार्थ ढग से लिखे जाने को है, तो प्राचीन काल के वैसे इतिहास के लिए इन कथाओ का मूल्य बहुत ही अधिक है।

यदि मनोरञ्जन के साथ साथ उपदेश ग्रहण करना हो, यदि हृदय को उदार तथा शुद्ध बनाने वाली कथाओ के साथ साथ बुद्धि को प्रखर करने वाली कथाएँ पढनी हो, यदि अपने देश की प्राचीन आर्थिक, धार्मिक, राजनीतिक तथा सामाजिक अवस्था से परिचित होना हो, तो हम जातक कथाओ से बढ कर किसी दूसरे साहित्य की सिफारिश नही कर सकते।

१९३३ मे मै इगलैण्ड मे था। श्रद्धेय राहुल जी का पत्र आया कि बौद्ध ग्रन्थो को हिन्दी मे लाने की एक पञ्चवर्षीय योजना बनी है, तुम्हारे हिस्से में केवल जातक-कथाओ का हिन्दी अनुवाद आया है, इसे तुम्हे ही कर डालना होगा। १९३४ मे जब मै इगलैण्ड से सिहल लौटा और वहाँ से पीनाग आया तो उस वर्ष पीनाग-निवास के दिनो मे मेरा मुख्य कार्य्य जातक कथाओ का अनुवाद ही रहा। वहाँ मै ज्ञानोदय बौद्धसभा का अतिथि था और सौभाग्यवश मुझे आदरणीय स्थविर गुणरत्न जी का सान्निध्य प्राप्त हुआ। परिश्रम अधिक करना पडा किन्तु राहुल जी की इच्छा के अनुसार निदान-कथा और प्रथम परिच्छेद की सौ जातक कथाओ का अनुवाद उसी वर्षा-वास के अन्त मे समाप्त हो गया। भाई गुणरत्न जी ने अपनी बहुज्ञता मे अनुवाद कार्य्य मे और उसे मूल पालि से मिलाने मे बडी सहायता की।

१९३५ में मै स्याम के रास्ते भारत चला आया। ज्ञानोदय बौद्ध सभा वाले चाहते थे कि जातक कथा के प्रकाशित करने का पुण्य वे ही प्राप्त करे। किन्तु इससे पहले पञ्जाब विश्वविद्यालय के सस्कृत डिपार्टमेट के अध्यक्ष डा० लक्ष्मण स्वरूप जी इन कथाओ को छपाने के लिए राहुल जी को लिख चुके थे, और राहुल जी ने भी उन्हे लिख दिया था। इसलिए मैने पीनागवालो से कहा कि भारत की कथाएँ भारत के ही पैसे से छपे तो ही ठीक होगा।

१९३५ मे मैने जो कुछ पीनाग मे लिखा था, वह राहुल जी को लाकर दे दिया। उन्होने उसे डाक्टर लक्ष्मण स्वरूप के पास लाहौर भेज दिया। छपाई आरम्भ हुई। अनुवादक सारनाथ मे, छपाई लाहौर मे, प्रूफ के आने जाने मे देर लग जाएगी, इस ख्याल से प्रूफ लाहौर मे ही देखे जाने लगे। निदान-कथा और बारह-कथाएँ छपी। किन्तु यह प्रवन्ध सन्तोषजनक सिद्ध न हुआ। जितना अश छप चुका था, उतना ही 'प्रथम-भाग' बनकर प्रकाशित हुआ।

इस प्रकार जातक कथाओ के आरम्भिक भाग को हिन्दी मे प्रकाशित करने का प्रथम श्रेय डाक्टर साहब को है, जिनका मै कृतज्ञ हूँ।

लगभग ढाई तीन वर्ष पाण्डुलिपि मेरे पास रही। हिन्दी के कई प्रकाशको ने उसे प्रकाशित करने की इच्छा प्रकट की। किन्तु यह कार्य्य जरा बडा था। कई प्रकाशको ने चुनी हुई कहानियाँ माँगी। मेरा कहना था कि मै कहानी-लेखक नही हूँ, मै तो अनुवादक का धर्म पूरा करना चाहता हूँ।

पिछले वर्ष आदरणीय श्री पुरुषोत्तमदास जी टण्डन की प्रेरणा से जव हिन्दी साहित्य सम्मेलन की साहित्य समिति ने जातक कथाओ के हिन्दी अनुवाद को प्रकाशित करने का सकल्प किया, तो मुझे लगा कि अव यह कार्य्य सम्पन्न होकर रहेगा। उस सन्ध्या को जव श्री० टण्डन जी ने मेरा सारनाथ लौटना रोक कर श्री० उदयनारायण त्रिपाठी के साथ "आज ही और अभी प्रेस जाकर सव निश्चय कर आने के लिए" कहा तो मैने समझा कि टण्डन जी के सोचने और कार्य करने मे कितना कम अन्तर है। टण्डन जी और साहित्य सम्मेलन अविभाज्य हैं। टण्डन जी साहित्य सम्मेलन है, और साहित्य सम्मेलन टण्डन जी। तो भी मै इस अवसर पर टण्डन जी के प्रति व्यक्तिगत रूप मे अपनी कृतज्ञता प्रकट किए विना नही रह सकता।

सम्मेलन के साहित्यमन्त्री श्री० ज्योतिप्रसाद मिश्र निर्मल जी तथा सहायक मन्त्री श्री० नारायणदत्त जी पाण्डेय ने जातक की छपाई को विल्कुल अपना काम समझा।

मेरे भाग्य से जिस समय जातक लॉ जर्नल प्रेस में छप रहा था, उसी समय श्री० कोसम्वी जी वम्बई से सारनाथ आए और यही रहने लगे। उन्होने मेरे सारे अनुवाद को सुनने की कृपा की, और अनेक ऐसी भूलो का जो मेरे अज्ञान वा असावधानी के कारण रह गई थी, मार्जन कर दिया। मुझे सन्तोष है कि अव यह अनुवाद एक प्रकार से शायद निर्दोष कहा जा सकता है। यह कोसम्वी जी की ही कृपा का फल है।

पूज्य महास्थविर बोधानन्द जी का आशीर्वाद मिलता रहा है। भाई जगदीश काश्यप जी आदि सभी सारनाथ-वासी समय समय पर इस कार्य्य मे अनेक प्रकार से सहायक होते रहे। अपनो को क्या धन्यवाद दिया जाए?

प्रथम-खण्ड मे जातकट्ठकथा की निदान-कथा और एक सौ कथाएँ है। दूसरे खण्ड में (जो प्रेस मे है) दो सौ कथाएँ रहेंगी। इस प्रकार प्रथम दो खण्डो मे तीन सौ कथाओ का समावेश हो जाएगा। शेष दो सौ सैतालीस कथाएँ उत्तरोत्तर लम्बी होती जाती है। आशा है, पाठक किसी दिन सभी को हिन्दी मे अनूदित पा सकेंगे।

श्रद्धेय श्री० जयचन्द्र जी तथा कुछ मित्रो का आग्रह रहा है कि भूमिका मे जातको के आधार पर तत्कालीन अवस्था का विस्तृत दिग्दर्शन रहना चाहिए और

रहना चाहिए जातको मे उपलब्ध सामग्री का ऐतिहासिक विश्लेषण। इसके लिए जातको के जिस मन्थन की आवश्यकता है वह सभी जातको का अनुवाद छप चुकने पर ही सम्भव प्रतीत हुआ। तत्काल अनुवादक की सीमा के अन्दर रहने मे ही सन्तोष मानना पडा।

भाई अमृत पाल जी की सहायता से पुस्तक के लिए जो नकशा वनाया गया है, हो सकता है कि जातको का अनुवाद समाप्त होने पर उसमे कही कुछ परिवर्तन की आवश्यकता पडे। तब तक के लिए आशा है पाठक इसे स्वीकार करेगे।

मैंने यह अनुवाद सिंहल अक्षरो मे हेवावितारण ट्रस्ट की ओर से छपी पालि अट्ठकथा से किया है। कही कही सदिग्ध स्थल होने पर श्री० फोसबोल द्वारा रोमन अक्षरो मे सम्पादित पालि टैक्स को भी देख लेता रहा हूँ। मैं दोनो का ऋणी हूँ।

अनुवाद मे पालि जातको का सिंहल अनुवाद और विशेष रूप से पालि गाथाओ का सिंहल अनुवाद सहायक हुआ है। सन्देह होने पर कभी कभी बँगला अनुवाद तथा अग्रेजी अनुवाद को भी देख लिया है।

बँगला और अग्रेजी अनुवादो मे पालि गाथाओ का पद्य-बद्ध अनुवाद है। मै कवि न होने से वैसा नही कर सका। मुझे पालि मे मूल गाथाएँ देकर, उनके नीचे अपना हिन्दी अनुवाद दे देना ही अधिक अच्छा जँचा।

पुस्तक मे केवल दो ही तरह के टाइपो का प्रयोग है—काला और सफेद। काले टाइप में जो है वह पालि है, अथवा पालि गाथाओ का अनुवाद, और जहां कही सफेद टाइप में काला टाइप है वह पालि शब्दो के लिए हैं या पारिभाषिक तथा महत्त्वपूर्ण शब्दो के लिए।

पुस्तक की सुन्दर छपाई का श्रेय सम्मेलन मुद्रणालय को है। उसके स्टाफ ने इसकी छपाई मे हर तरह से सहयोग दिया है।

अपनी ओर से पूरी सावधानी रखने पर भी भूल हो जाना मानव स्वभाव है, मुझसे भी कुछ अवश्य हुई होगी। आशा है विज्ञजन सूचित करने की दया दिखावेंगे।

मूलगन्धकुटी विहार
सारनाथ
२३-८-४१

आनन्द कौसल्यायन

विषय-सूची

उपोद्घात

पहला परिच्छेद

विषय पृष्ठ

२. सील वर्ग

विषय पृष्ठ

नमो तस्स भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स

जातक अट्ठकथा

उपोद्घात

लाखो जन्मो में जिन महर्षि लो क ना थ ने ससार का अनन्त हित किया उनके चरणो में प्रणाम करता हूँ; ध र्म को हाथ जोडता हूँ; तथा सब से आदर-, णीय (भिक्षु-) स घ की पूजा करता हूँ। इन तीनो र त्नो[1] के नमस्कारादि (से प्राप्त) इस पुण्य के प्रताप से सब उपद्रवो का नाश हो। प्रकाश-स्वरूप महर्षि (बुद्ध) ने अ प ण्ण क[2] आदि जातको को पहले कहा, जिन्हें कि लोक के उद्धार की इच्छा से, नायक, शास्ता (बुद्ध) ने बुद्ध होने के लिए आवश्यक अनन्त सामग्री की प्राप्ति के लिए पूरा किया। उन सब पूर्व जन्म की कथाओ के संग्रह को धर्म (-ग्रन्थ) सग्रह करने वालो[3] ने जातक नाम से सगायन किया। बुद्ध-धर्म की चिर-स्थिति चाहने वाले अ र्थ द र्शी स्थविर, सहवासी तथा एकान्तप्रेमी शान्त चित्त, पण्डित बु द्धि मि त्त और म हि शा स क[4] वश में उत्पन्न, शास्त्रज्ञ, शुद्ध-बुद्धि भिक्षु बुद्ध दे व के कहने से महापुरुषो के चरित्र के अनन्त प्रभाव को प्रकट करने वाली जा त क अर्थवर्णना की म हा वि हा र[5] वालो के मत के अनुसार व्याख्या करूँगा। मेरी इस व्याख्या को सब सज्जन अच्छी तरह ग्रहण करें।

---

[1] बुद्ध, धर्म सघ——यह तीन रत्न है।

[2] अपण्णक (जातक), प्रथम जातक।

[3] बुद्ध-निर्वाण के बाद उनके उपदेशो को सग्रह करने वाले।

[4] प्राचीन अठारह बौद्ध सम्प्रदायो में से एक।

[5] पुराने बौद्ध-सम्प्रदाओ में से, प्राचीन स्थविर-सम्प्रदाय का सिहलमें एक भेद।

जातक की यह व्याख्या 'दूरेनिदान', 'अविदूरे-निदान', 'सन्तिके-निदान'—इन तीनो निदानो मे वर्णित है, और जो इसे इस तरह मे सुनते है, वे आरम्भ से भली प्रकार समझने के कारण ठीक समझते हैं। इसलिए हम इसे इन तीनो निदानो में विभक्त करके कहेंगें। पहले इन तीनो निदानो के वर्गीकरण को ही समझ लेना चाहिए। भगवान् दीपङ्कर[1] के चरणो मे जीवन अर्पण करने के समय से लेकर वेस्सन्तर का शरीर छोड तुपित-स्वर्ग लोक मे उत्पन्न होने तक की (जीवन-) कथा 'दूरेनिदान' कही जाती है। तुपित-लोक से च्युत होकर बोध गया (बोधि-मण्ड) मे बुद्ध होने तक की कथा 'अविदूरे-निदान' कही जाती है। (उपरान्त) 'सन्तिके-निदान' तो भिन्न-भिन्न स्थानो मे विचरते हुए उन-उन स्थानो पर जो जीवन-कथा मिलती है वह (ही है)।

क. दूरेनिदान

१. सुमेध (बाल्य, वैराग्य)

'दू रे नि दा न' इस प्रकार है—

चार असंख्य एक लाख कल्प पहले अमरवती नाम की एक नगरी थी। उस नगरी मे सुमेध नामक ब्राह्मण रहता था। वह माता-पिता दोनो के कुल से सुजात, शुद्ध-जन्मा, सात पीढी तक कुल दोष से रहित, सुन्दर, दर्शनीय, मनोहर, उत्तम रूप के सौन्दर्य से युक्त था। उसने और कोई काम न कर ब्राह्मणो ही की विद्या सीखी थी। बचपन मे ही उसके माता-पिता मर गये। तब खजानची (=राशि-वर्द्धक अमात्य) बही[3] खाता (=आय-पुस्तक) लेकर आया और सोना, चांदी, मोती आदि से भरी कोठरियो को खोल-खोलकर कहने लगा—'इतना मातृ-धन है। इतना पितृ-धन है। इतना दादा-परदादा का धन है'। इस प्रकार सात पीढी तक के धन को कहकर बोला, "कुमार लो इसे सँभालो।"

---

[1] सब से पहले बुद्ध।

[2] देखो वेस्सन्तर जातक (५३८)।

[3] बही-खाता रखने वाला राशि-वर्धक नामक मन्त्री।

सुमेध पण्डित ने सोचा—"इस धन को संग्रह कर मेरे पिता, पितामह आदि परलोक जाते हुए एक पैसा (=कार्षापण) भी साथ नही ले गये, लेकिन मुझे इसे साथ लेकर ही जाना चाहिए।"

उसने राजा को कह नगर मे ढिढोरा पिटवाया, और जन-समूह को दान दे तापसो के सम्प्रदाय मे साधु हो गया। इस बात को अधिक स्पष्ट करने के लिए यहाँ सुमेध की कथा का कहा जाना जरूरी है। सुमेध की कथा कुछ-न-कुछ बुद्ध-वंस[1] मे आई है, लेकिन उस कथा के पद्यमय (=गाथा-सम्बन्ध मे आई) होने से, (उसका) अर्थ ठीक स्पष्ट नही होता। इसलिए हम उस कथा को बीच-बीच मे उन गाथाओ के सम्बन्ध को स्पष्ट करते हुए कहेंगे।

चार असखेय्य एक लाख कल्प पूर्व दस प्रकार के शब्दो से युक्त **अमरवती** अथवा अमर नामके एक नगर था, जिसके बारे मे बुद्ध-वन्स में कहा है—

"चार असखेय्य एक लाख कल्प पूर्व एक मनोरम, दर्शनीय, दस शब्दो से युक्त, अन्नपान से सयुक्त 'अ म र' नामक नगर था।"

वहाँ 'दस शब्दो से युक्त' का अर्थ है—हाथी-शब्द, अश्व-शब्द, रथ-शब्द, भेरि-शब्द, मृदङ्ग-शब्द, वीणा-शब्द, गीत-शब्द, शङ्ख-शब्द, ताल-शब्द, खाने-पीने का शब्द—इन दस शब्दो से युक्त। इन दसो शब्दो को एकत्र ग्रहण करने मे :—

हस्ति-शब्द, अश्व-शब्द और भेरि, शख, रथ आदि शब्द, खाने पीने का शब्द और अन्नपान का घोष।

'बुद्ध-वंस' में इस गाथा को कहकर —

"सर्वाङ्ग सम्पूर्ण, सब भोगो से युक्त, सात रत्नो से सम्पन्न, नाना जन समाकुल, देव नगर की तरह वैभवशाली, पुण्यात्माओ के निवास, अमरवती नाम नगर में, करोड़ो का मालिक बहुत से धन धान्य वाला, वेद-पाठी (अध्यायक) मन्त्रधर, तीनो वेदो में पारङ्गत, लक्षण, इतिहास और सद्धर्म में पूर्णता-प्राप्त सुमेध नामक ब्राह्मण रहता था।"

एक दिन महल के ऊपर के सुन्दर कोठे पर आसन मार कर एकान्त मे बैठा

---

[1] सुत्तपिटक के खुद्दक-निकाय का एक ग्रन्थ।

हुआ सुमेध पण्डित सोचने लगा—'पण्डित! जन्म ग्रहण करना दुःख है। प्रत्येक जन्म में मृत्यु दुःख है। उत्पन्न होना, बूढा होना, रोगी होना (तथा) मरना, मेरे लिए अनिवार्य है। अतः मुझे चाहिए कि मैं उस अमृत महा-निर्वाण को खोजूं जो उत्पत्ति, जरा, व्याधि, दुःख तथा सुख से रहित है और शीतल तथा अमृत स्वरूप है। आवागमन से मुक्त होने का एक निर्वाण-मार्ग अवश्य होगा। इसीलिए कहा है—

"तब मैंने एकान्त में बैठ कर सोचा कि आवागमन तथा शरीर-त्याग—दोनों दुःख हैं। अतः उत्पत्ति, जरा और व्याधि से युक्त मैं, अजर, अमर (और) क्षेम (-स्वरूप) निर्वाण को खोजूं। अवश्य ही मुझे इस नाना प्रकार के गन्दगी से भरे, अपवित्र शरीर को छोड़ कर माया ममता रहित हो (चला) जाना होगा।

"जो मार्ग है, वह होगा (रहेगा) ही। वह न हो (ऐसा) नहीं हो सकता। संसार से मुक्ति के पाने के लिए मैं उसी मार्ग को खोजूंगा।"

वह आगे भी ऐसा सोचने लगा —

"जिस प्रकार लोक में दुःख का प्रतिपक्षी सुख है, उसी प्रकार आवागमन (=भव) का प्रतिपक्षी आवागमन का अभाव (=विभव) भी अवश्य होना चाहिए। जिस प्रकार गर्मी के रहने पर, उसको शान्त करने वाली ठण्डक भी रहती है, उसी प्रकार राग आदि अग्नियों का शमन करने वाला निर्वाण भी अवश्य होगा। जिस प्रकार पाप का प्रतिपक्षी पुण्य तथा निर्दोषता है, उसी प्रकार इस पापी (दुःखमय) जन्म के रहने सारे जन्मों के क्षय होने से जन्म रहित निर्वाण भी अवश्य होगा। इसीलिए कहा है —

"जैसे यदि दुःख है, तो सुख भी है, वैसे ही आवागमन है तो आवागमन का अभाव भी है। जैसे गर्मी के रहने पर, उसके विपरीत शीतलता भी है, इसी प्रकार त्रिविध अग्नि के रहने निर्वाण भी होना चाहिए। जिस प्रकार पाप के रहने पर पुण्य भी है, उसी प्रकार जन्म के रहने पर आवागमन से मुक्ति भी होनी चाहिए।"

और भी सोचने लगा —

जिस प्रकार मल के ढेर में डूबे मनुष्य को दूर से भी पांच रंगों के कमलों से आच्छादित तालाब को देख कर 'मुझे किस मार्ग से तालाब तक पहुँचना चाहिए' सोच तालाब को खोजना चाहिए। यदि वह न खोजे, तो उसमें तालाब

का दोष नही। इसी प्रकार सब मलो को धोने मे समर्थ अमृत रूपी निर्वाण के महान तालाब के रहते (यदि मनुष्य) उसे न खोजे, तो उसमे अमृत रूपी निर्वाण के महान् तालाब का दोष नही। जिस प्रकार डाकुओं से घिरा हुआ मनुष्य भागने का रास्ता रहने पर भी, यदि न भागे तो वह रास्ते का दोष नही, उस आदमी का ही दोष है। इसी प्रकार यदि मलो से लिप्त मनुष्य निर्वाण की ओर ले जाने वाले कल्याणमार्ग के रहते भी, उस मार्ग को न खोजे, तो वह मार्ग का दोष नही, उस आदमी का ही दोष है। जैसे रोग-ग्रस्त मनुष्य रोग चिकित्सक वैद्य के रहते भी, यदि उस वैद्य को ढूढ कर रोग की चिकित्सा न कराये, तो वह वैद्य का दोष नही। इसी प्रकार जो (चित्त-) मल के रोग से पीडित मनुष्य, मल के दूर करने के उपाय के जानकार आचार्य के विद्यमान् रहते भी (उन्हे) नही खोजता, तो यह उसी का दोष है, मल-निवारक आचार्य का दोष नही। इसीलिए कहा है —

"जैसे गन्दगी में फंसा हुआ मनुष्य, पानी से भरे तालाब को (दूर से) देख कर भी, यदि उसे नही खोजता; तो वह तालाब का दोष नहीं। इसी प्रकार मल धो देनेवाले अमृत-सरोवर के रहते भी, यदि मनुष्य उस सरोवर को नही खोजता, तो वह उस अमृत-सरोवर का दोष नही। जैसे शत्रुओ से घिरा हुआ (मनुष्य) यदि भागने का मार्ग रहते भी नही भागता है, तो उसमें मार्ग का दोष नहीं। इसी प्रकार मलो से घिरा हुआ (मनुष्य) यदि कल्याणकारी मार्ग के रहते भी उस मार्ग को नहीं ढूंढता है, तो वह उस मार्ग का दोष नही। जिस प्रकार रोग से पीड़ित पुरुष, यदि चिकित्सक के विद्यमान् रहते भी, उस रोग की चिकित्सा नही करता, तो वह चिकित्सक का दोष नही; इसी प्रकार मल के रोग से दुखी, पीड़ित पुरुष भी, यदि मल-निवारक आचार्य को नही खोजता, तो वह आचार्य का दोष नही।"

और भी सोचने लगा —

"जैसे शौकीन आदमी गले मे लगे हुए मैल को उतार कर सुख-पूर्वक जाता है, इसी प्रकार मुझे भी इस मलिन काय को छोड ममता रहित हो निर्वाण-नगर मे प्रवेश करना चाहिए। जिस प्रकार स्त्री-पुरुष मल-मूत्र करने के स्थान पर मल-मूत्र करके न तो उसे अपने अक (=उच्छङ्ग) मे ले कर जाते है, न उसे अपने पल्ले मे ही बाँध कर ले जाते है बल्कि उसके प्रति घृणा कर अनिच्छुक हो, उस (मल-मूत्र) को वही छोड जाते है, इसी प्रकार मुझे भी इस मलिन-काय

सो अनिच्छुक हो छोड़ अविनाशी (=अमृत) निर्वाण नगर में प्रविष्ट होना चाहिए। जैसे मल्लाह लोग पुरानी नाव को बेपरवाह हो छोड़ जाते हैं, इसी प्रकार मैं भी इस नौ छिद्रों से चूने वाले शरीर को छोड़ बे-परवाह हो निर्वाण-नगर में प्रवेश करूँगा। जैसे अनेक रत्नों को ले कर चोरों के साथ जाने वाला मनुष्य, अपने रत्नों के नाश होने के डर से, उन चोरों को छोड़ कर कल्याणकारी मार्ग ग्रहण करता है, इसी प्रकार यह जो शरीर है, सो यह भी रत्नलूटनेवाले डाकुओं की तरह है। यदि मैं इस शरीर के प्रति लोभ रक्खूँगा, तो मेरा आर्य मार्ग रूपी पुण्य (=रत्न) नष्ट हो जायगा। इसलिए मुझे इस डाकू के समान शरीर को छोड़ कर निर्वाण-नगर में प्रवेश करना चाहिए। इसीलिए कहा है —

"जिस प्रकार मनुष्य मुर्दे को गले में बाँधने से घृणा कर उसे स्वेच्छापूर्वक अपने आप खुशी से छोड़ जाये, उसी प्रकार मैं इस नाना प्रकार की गन्दगी से भरी अपवित्र काया को बे-परवाह तथा आकांक्षा (=अर्थ) रहित हो छोड़ जाऊँ। जैसे स्त्री-पुरुष मल-मूत्र करने के स्थान पर मल को विना किसी चाह अथवा आकांक्षा के छोड़ कर चले जाते हैं, इसी प्रकार मैं इस नाना प्रकार की गन्दगी से भरी काया को पाखाने (=वच्चकुटि) में मल के समान छोड़ कर चल दूँगा। जैसे मल्लाह पुरानी, टूटी फूटी, पानी भर जाने वाली नाव को बिना किसी चाह या आकांक्षा के छोड़ कर चले जाते हैं, वैसे ही मैं इस नौ छिद्रों से सदा गन्दगी बहाने वाले शरीर को, मल्लाह की नाव की तरह, छोड़ कर चल दूँगा। जैसे सामान ले कर जाता हुआ पुरुष चोरों के सामान लूट लेने के डर से (रास्ता) छोड़ कर जाता है। इसी प्रकार यह शरीर महा-चोर के समान है। इसलिए मैं इसे कुशल (=कर्म) के नाश के डर से छोड़ कर जाऊँगा।"

२. संन्यास

इस प्रकार सुमेध पण्डित नाना प्रकार के दृष्टान्तों से इस अनासक्ति के भाव का चिन्तन कर, पूर्वोक्त विधि से अपने घर पड़ी अनंत भोग की वस्तुओं को याचकों और पथिकों को प्रदान कर, महादान दे, चीजों और कामुकता के मोह को छोड़, अमर (नामक) नगर से निकल कर अकेले ही हिमालय में धम्मक नाम पर्वत के पास आश्रम, पर्ण-कुटी और टहलने का चबूतरा (=चक्रमण

भूमि)[1] बना कर पाच नीवरणो[2] से रहित 'इस प्रकार एकाग्र चित्तता' आदि क्रम से कहे गये आठ कारण-गुणो[3] से युक्त अभिज्ञा (=ज्ञान) नामक बल की प्राप्ति के लिए, उस आश्रम मे नौ दोषो वाले वस्त्रो को छोड कर, बारह गुणो से युक्त छाल (=वल्कल) को धारण कर ऋषियो के नियमानुसार साधु बन गये। इस तरह साधु बन आठ दोषो से युक्त उस पर्ण-कुटी को छोड, दस गुणो से युक्त 'वृक्ष की छाया' के नीचे जा कर, अनाज के बने सभी भोजनो को छोड, वृक्ष से गिरे फलो को ही खाने लगे। बैठे, खडे रहते तथा चलते हुए ही (=अर्थात् कभी न लेट कर) योगाभ्यास (=प्रयत्न) करते हुए सात दिनो के अन्दर ही अन्दर आठ समापत्तियो[4] और पांच अभिञ्ञाओं[5] को पा लिया। इसी प्रकार उसने इच्छित अभिञ्ञा-बल प्राप्त किया।

इसीलिए कहा गया है —

"इस प्रकार विचार कर मैं अरबो धन याचको और अनाथो को दे हि मा ल य में चला आया। हिमालय के पास ही ध म्म क नामक पर्वत है। वहाँ मैं ने आश्रम, पर्ण-कुटी तथा पांच दोषो से रहित टहलने का चबूतरा (=चक्रमण-भूमि) बनाया, और आठ गुणों से युक्त अभिञ्जा-बल प्राप्त किया। नौ दोषो से युक्त वस्त्र को छोड़ कर बारह गुणो से युक्त छाल (वल्कल) का चीवर धारण किया। आठ दोषो से युक्त पर्ण-कुटी को छोड़, दस गुणो वाली 'वृक्षो की छाया' का आश्रय लिया। बो, जोत कर तैयार किए अनाजो को बिल्कुल त्याग दिया; और अनेक गुणो से

---

[1] टहलते हुए योगाभ्यास करने की जगह।

[2] चित्त की शुद्ध वृत्तियो को ढाकने वाले—१ काम-छन्द, २ व्यापाद (=क्रोध), ३स्त्यानमृद्ध (=आलस्य), ४ औद्धत्य-कौकृत्य (=उद्धता ५ विचिकित्सा (=सन्देह)।

[3] १ समाहित (=एकाग्र-चित्त), २ परिशुद्ध, ३ परियोदा-४ अङ्गणत रहित, ५ उपक्लेश-रहित, ६ मृदु, ७ कम्मनीय, ८ स्थिरता-प्राप्त (=अभिञ्ञा प्राप्त)।

[4] चार रूप तथा चार अरूप समापत्तियाँ।

[5] ५दिव्य-चक्षु, दिव्य-श्रोत्र, पूर्व जन्म की स्मृति, ऋद्धि-बल, पर-चित्त का ज्ञान।

पुनः 'वृक्षों से गिरे फलों' को ग्रहण किया। वहाँ बैठे, खड़े और टहलते हुए ही योग का अभ्यास कर, सप्ताह के अन्दर अभिज्ञा-बल प्राप्त किया।"

इस पाली[1] में सुमेध पण्डित ने, आश्रम और टहलने के चबूतरे, अपने हाथ से बनाये—ऐसा कहा है। लेकिन इसका (वास्तविक) अर्थ यह है—महापुरुष ने सोचा कि आज मैं हिमालय में जा, धम्मक पर्वत में प्रवेश करूँगा? इस विचार से उन्होंने गृह-त्याग किया।

३ आश्रम

देवताओं के राजा शक्र (=इन्द्र) ने सुमेध के गृह-त्याग को देख विश्वकर्मा देव-पुत्र को सम्बोधित किया—"तात! इस सुमेध पण्डित ने साधु होने के विचार से घर छोड़ा है, जा इसके लिए निवास स्थान का निर्माण कर।"

विश्वकर्मा ने उसके वचन को स्वीकार कर, रमणीय आश्रम, सुरक्षित पर्ण-कुटी और मनोरम टहलने के चबूतरे का निर्माण किया। भगवान् ने अपने प्रभाव से उस आश्रम के बारे में कहा था—"सारिपुत्र! उस धम्मक पर्वत में 'मेरे लिए आश्रम किया' और 'पर्णशाला बनाई गई' तथा पाँच दोषों से रहित चंक्रमण-भूमि बनाई गई।" सो वहाँ "मेरे लिए किया" का अर्थ है मेरे द्वारा की गई, और 'पर्णशाला बनाई गई' का अर्थ है "पत्तों से ढकी हुई शाला भी मेरे लिए बनी हुई थी।" "पाँच दोषों से रहित", चबूतरे के ये पाँच दोष हैं—कड़ा होना, समतल न होना, बीच में वृक्षों का होना, घनी छाया होना, बहुत संकीर्ण होना तथा लम्बा-चौड़ा होना।

कड़ी तथा ऊबड़ खाबड़ भूमि में टहलते हुए टहलने वाले के पैर दुखने लग जाते हैं, छाले पड़ जाते हैं, चित्त एकाग्र नहीं होता, योग-क्रिया (=कर्म-स्थान)[2] सिद्ध नहीं होती। कोमल और समतल पर टहलने से योग-क्रिया सिद्ध होती है। इसलिए भूमि की कठोरता और ऊबड़-खाबड़-पन को एक दोष समझना चाहिए। चबूतरे के किनारे पर बीच में अथवा सिरे पर वृक्ष रहने से बे-परवाही के कारण (कभी-कभी) उनमें माथा या सिर टकरा जाता है, इसलिए

---

[1] पाली, तुलसीदास जी की पाति की तरह, बुद्ध-वचन का पर्य्यायवाची।
[2] योगाभ्यास का साधन, योग-युक्ति।

'बीच बीच मे वृक्षो का होना।' दूसरा दोष है। तृण-लता आदि से आच्छादित घनी छाया वाले स्थान मे टहलते हुए अन्धकार के समय या तो साँप आदि जीवो को (अपने पैर से) कुचल कर मार देता है, अथवा उनके द्वारा डसे जाने से (स्वय) दुःख को प्राप्त होता है। इसलिए 'घनी छाया वाला होना' तीसरा दोष है। चौडाई मे केवल हाथ (रत्न)[1] वा आधे हाथ भर चौडे, बहुत ही तंग चबूतरे पर टहलने से टहलने वाले (पुरुष) के अगल-बगल मे फिसल जाने के कारण नाखून और उँगलियाँ तक टूट जाती है। इसलिए 'बहुत तङ्ग होना' चौथा दोष है। बहुत चौडे स्थान मे टहलने से (आदमी) का चित्त (इधर-उधर) भागता है, एकाग्र नही होता इसलिए 'बहुत लम्बा-चौडा होना' पाँचवाँ दोष है। चौडाई डेढ हाथ, दोनो तरफ एक-एक हाथ चौडी बगली (=अनुचक्रमण), लम्बाई साठ हाथ और उस पर समतल बालू बिखरा हुआ—चबूतरा ऐसा होना चाहिए। (सिंहल-) द्वीपको श्रद्धावान् बनाने वाले महेन्द्र स्थविर का चबूतरा चेतिय गिरि[2] (विहार) मे वैसा ही था। इसीलिए कहा है 'पाँच दोषो से रहित चबूतरा बनाया। 'आठ गुणो से युक्त' का मतलब है "साधुओ के आठ सुखो से युक्त।" साधुओ के आठ सुख यह है—धन-धान्य के संग्रह (की चिन्ता) का न होना, निर्दोष भिक्षा की प्राप्ति का प्रयत्न करना, तैयार भिक्षा का भोजन करना, राज्य अधिकारियो के देश को सता कर धन दौलत या सीस-कहापण[3] आदि ग्रहण करते हुए (स्वय) देश को पीडित न करना, वस्तुओ मे वैराग्य, चोरो द्वारा (धन आदि) लूटे जाने से निर्भयता, राजाओ और राज्यामात्यो से बहुत लगाव न होना और चारो दिशाओ मे बेरोक-टोक पहुँच। चूकि इस आश्रम मे रहते हुए, इन आठ सुखो का आनन्द लिया जा सकता था, इसलिए कहा गया है कि "आठ गुणो से युक्त उस आश्रम को बनाया।" "अभिज्ञा-बल को प्राप्त किया" का मतलब है कि आगे चल कर उस आश्रम मे रहते हुए कृत्स्न (=कसिण)[4] परिकर्म का आरम्भ करके अभिज्ञाओ

---

[1] रत्न=एक हाथ भर।

[2] लंका में जिस मिश्रक-पर्वत (=मिहिन्तले) पर महामहेन्द्र उतरे थे, उसी पर्वत पर निर्मित विहार।

[3] तत्कालीन सिक्को का व्यक्तिगत कर।

[4] योगाभ्यास के चालीसो साधनो में से किसी भी एक को साधारणतया

तथा समापत्तियो की प्राप्ति के लिए, अनित्यता और दु:ख के भाव की **विदर्शना**[1] का अभ्यास कर प्रयत्न से प्राप्य विदर्शना-बल को प्राप्त किया। चूंकि 'इस आश्रम में रहते हुए इस बल को प्राप्त किया जा सकता है' यह विचार था, इसलिए उस आश्रम को, अभिज्ञा की प्राप्ति के लिए विदर्शना बल (की प्राप्ति) के अनुकूल बनाया'—यह अर्थ है।

"नौ दोषो से युक्त वस्त्र को छोड देने" के सम्बन्ध की यह क्रमानुकूल कथा है। उस समय कुटी, गुफा, टहलने के चबूतरे आदि से युक्त, फल-फूल वाले वृक्षो से आच्छादित, रमणीय, मधुर जलाशयो सहित, बाघ आदि हिंसक पशु तथा भयानक पक्षियो से शून्य, शान्त आश्रम बना कर, सुन्दर चबूतरे के दोनो ओर सहारे के लिए बाही लगाकर, और चबूतरे के बीच में बैठने के लिए मूगे के रङ्ग की समतल शिला बना कर, पर्ण-कुटी के अन्दर जटा-मण्डल, वल्कल-चीर, त्रिदण्ड, कुण्डी आदि तापसो के सामान, मण्डप में पानी का बरतन, पानी (-भरा) शङ्ख, पानी (पीने के) कसोरे, अग्निशाला में अँगीठी तथा जलावन इत्यादि—इस प्रकार साधुओ की जो-जो आवश्यकताएँ है, उन का प्रबन्ध करके, पर्ण-कुटी की दीवार पर 'जो कोई साधु होना चाहें, इन चीजो को ले कर प्रव्रजित हों'—इन अक्षरो को खोद कर विश्वकर्मा देव-पुत्र के देव-लोक चले जाने पर सुमेध पण्डित ने **हिमालय** की तराई में गिरि-कन्दराओ के साथ-साथ, अपने लिए सुख से रहने योग्य स्थान को ढूढते हुए नदी के मोड पर **विश्वकर्मा** द्वारा निर्मित, इन्द्र का दिया हुआ, रमणीक आश्रम देखा। टहलने के चबूतरे के छोर पर जा और वहाँ पद-चिह्न को न देख, सोचा—अवश्य साधु लोग समीप के गाँव में भिक्षा माँग आ कर थके हुए लौट कर, पर्ण-कुटी में प्रवेश कर, अन्दर बैठे होगे। कुछ देर प्रतीक्षा कर वह सोचने लगा—'वे बहुत देर कर रहे हैं' जरा देखूं। (फिर) पर्ण-कुटी के द्वार को खोल अन्दर प्रवेश कर, इधर-उधर देखते हुए बडी दीवार पर (लिखे) अक्षरो को बाँचकर (सोचा)—यह वस्तुएँ मेरे योग्य है, इन्हे ग्रहण कर साधु बनूगा। यह सोच अपने पहने धोती चादर को छोड दिया। इसलिए कहा है—'वहाँ वस्त्र को

'कर्म-स्थान' कहते है। उनमें से प्रथम दस में से किसी को भी कसिन (=कृत्स्न) कहते है।

[1] विपश्यना (=प्रज्ञा)।

छोड दिया।' सारिपुत्र! इस प्रकार प्रविष्ट हो, मैंने इस पर्ण-कुटी धोती को छोडा।" "नौ दोपो से युक्त" कह कर दिखाया गया है कि नौ दोपो को देख कर छोडा।

तापस साधुओ के तापस साधु बनने पर (उनके) पहनने के वस्त्र में नौ दोष होते है—'अति मूल्यवान् होना' एक दोप हे। 'दूसरे पर निर्भर रह कर मिलना' एक दोप? 'पहनने पर जल्दी से मलिन होना' एक दोष। 'मलिन'होनेपर वस्त्र को धोना तथा रङ्गना होता है। 'पहनने से फट जाना' एक। 'फटने से सीना' या पेवन्द लगाना होता है। 'फिर ढूढने पर कठिनाई से मिलना' एक। 'साधु जीवन मे मेल न खाना' एक। 'चोरो के लिए चोरी करने योग्य होना' एक। जैसे उसे चोर न चुरावे, वैसे छिपाना होता है। 'उपयोग करने से सजावट का कारण होना' एक। 'ले कर चलते समय कन्धे के लिए भार और लोभ होना' एक। वल्कल चीर को धारण किया" का अर्थ है, "सारि-पुत्र! तव मैंने इन नौ दोषो को देख, वस्त्र को छोड छाल (=वल्कल) का वस्त्र धारण किया—अर्थात् मून्ज-तृण को चीर, गाँठ बाँध-बाँध कर वनाये वल्कल चीवर को धारण करने और पहनने के लिए ग्रहण किया।"

'बारह गुणो मे युक्त' का अर्थ है कि बारह कल्याणकारी बातो से सयुक्त। वल्कल चीवर में बारह गुण है—सस्ता, सुन्दर तथा विहित होना यह पहला गुण हे। अपने हाथ से वनाया जा सकता है, यह दूसरा। जल्दी मैला नही होता है और धोने मे भी कठिनाई नही, यह तीसरा। उपयोग करते-करते फटने पर सीने की आवश्यकता न रहना, यह चौथा। नया ढूढने पर आसानी से मिल सकना, यह पाँचवाँ। तापस साधुओ के अनुकूल होना, यह छठा। चोरो के काम का न होना, यह सातवाँ। पहनने वाले के लिए शौक का कारण नही होना, यह आठवाँ। पहनने में हलका रहता है, यह नौवाँ। चीवर रूपी सामान (=प्रत्यय) के विपय मे सन्तोप, यह दसवाँ। छाल (=वल्कल) से उत्पन्न होने के कारण धर्म की दृष्टि से निर्दोप होना, ग्यारहवाँ। छाल के चीवर के नष्ट होने पर, उसके लिए परवाह न होना, यह बारहवाँ गुण है।

"आठ दोपो से युक्त पर्ण-शाला को छोडा", सो उसे कैसे छोडा? (अपनी) उस सुन्दर धोती चादर को छोड कर चीवर रखने के बाँस पर टँगे हुए अनोज-फूल की माला जैसे लाल रङ्ग के छाल के चीवर को ले पहना। उसके ऊपर दूसरा

सुनहरी रङ्ग का छाल का चीवर पहना। फिर पुन्नाग-फूल की शैया के समान और खुर सहित मृग-चर्म को एक कन्धे पर बाँधा। जटाओ को खोल, जूडा बाँध, (उनके) स्थिर करने के लिए (बालो मे) सलाई डाली। मोतियो के जाल के सदृश छीके में मूगे के रङ्ग की कुण्डी को रक्खा। तीन स्थानो (=दोनो सिरो और बीच में) मे झुकी बँहगी को ले कर, बँहगी के एक सिरे पर कुण्डी और दूसरे सिरे पर अकुश की पिटारी तथा त्रिदण्ड आदि लटका कर, खरिया के भार को कन्धे पर रख, दक्षिण हाथ में वैशाखी (=टेक कर चलने की लकडी) ले, पर्ण-कुटी से निकले, और साठ हाथ लम्बे टहलने के चबूतरे (=महाचक्रमण-भूमि) पर एक सिरे से दूसरे सिरे तक टहलते हुए अपने वेष को देख कर सोचने लगे—"मेरा विचार सफल हुआ। प्रव्रज्या मुझे शोभती है। बुद्ध आदि सभी वीर पुरुषो ने इस प्रव्रज्या की प्रशसा की है। मेरा गृह-बन्धन छूट गया। मैं अनासक्ति (=नैष्क्रम्य) के लिए निकल पडा। मुझे उत्तम प्रव्रज्या मिल गई। मै सन्यास (=श्रमण-धर्म) के अनुसार आचरण कर मार्ग-फल[1] के सुख को प्राप्त करूँगा।"

(यह सोच) उत्साह से बँहगी को उतार चबूतरे के बीच में मूगे के रग के शिला-पट्ट पर सोने की मूर्ति की तरह बैठे। (फिर) दिन बीत जाने पर, सन्ध्या के समय पर्णशाला के भीतर जा, बाँस की चारपाई के पास के लकडी के फट्टो पर लेट विश्राम किया।

(दूसरे दिन) बहुत प्रातःकाल उठ, अपने आने (के उद्देश्य) पर विचार किया—"मै गृहस्थ जीवनके दोषो को देख, अपार भोग राशि तथा अनन्त यश को छोड जगल में आ अनासक्ति की चाह से साधु हुआ। इस लिए अब आगे से मुझे आलस्य नही करना चाहिए। एकान्त (चिन्तन) को छोड, बेकार घूमने वाले (पुरुष) को झूठे वितर्क रूपी मक्खियाँ खा जाती हैं। इस लिए अब मुझे एकान्त चिन्तन की वृद्धि करनी चाहिए। मै गृहस्थ जीवन को सताप समझ (घर छोड बाहर) निकला हूँ। यह (मेरी) मनोहर कुटिया—(जिसकी कि) पक्के बेल के रग जैसी लिपि भूमि है, चाँदी सी सफेद दीवारे है, कबूतर के पैर के रग सी पत्तो की छत है, चित्र-विचित्र कालीन के रग का सा बाँस का पँलग है—सुख-दायक निवास स्थान है, मेरे घर की सम्पत्ति और इसमे कोई विशेष अन्तर

---

[1] अर्हत्व-प्राप्ति का मार्ग तथा अर्हत्व-प्राप्ति।

दिखाई नही देता। यह (सोच) पर्ण-कुटी के दोषो पर विचार करते हुए (उसमे) आठ दोषो को देखा।

कुटिया के सेवन मे आठ दोष है—(१) बडे प्रयत्न से आवश्यक चीजो को जुटा, उनको खोजना-बनाना, (२) (उसके) पत्ते, तृण और मिट्टी के गिर पडने पर, उन्हे फिर फिर लगाने के कारण निरन्तर मरम्मत करना, (३) आसन-वासन (=शयनासन) पर बडे बूढो का अधिकार है, सोच उन के आने पर बे वक्त उठने पर चित्त एकाग्र नही होता। इसके लिए वैसी चिन्ता, (४) सरदी गर्मी से सरीर का सुकुमार हो जाना, (५) छिप कर घर मे सभी पाप-कर्म करके पाप छिपाने की गुञ्जाइश होना, (६) 'यह मेरी है' ऐसी ममता होना, (७) घर होने का मतलब ही है 'अकेला न होना' इसके लिए 'साथी चाहना', (८) जू, पिस्सू छिपकली आदि का आम तौर से बहुत बढ जाना आठवॉ दोष है। इन आठ प्रकार के दोषो को देख कर महात्मा ने कुटिया त्याग दी। इस लिए कहा है—"आठ दोषो से युक्त पर्ण-शाला को छोडा।"

"दस गुणो से युक्त वृक्ष के नीचे आ गया" कहने का अभिप्राय यह है कि कुटिया को छोड, दस गुणो से युक्त वृक्ष की छाया के नीचे आ गया हूँ। वे दस गुण यह है—(१) चीजो के जुटाने की चिन्ता न होना पहला गुण, क्योकि वहाँ (वृक्ष) तक केवल जाने भर का ही (परिश्रम) होता है। (२) ठीक-ठाक करने का बहुत परिश्रम न होना दूसरा, (क्योकि) चाहे झाडू लगाये या न लगाये—दोनो अवस्थाओ मे उसे सेवन किया जा सकता है, (३) 'उठने (की चिन्ता) न होना' तीसरा, (४) वह पाप कर्म को छिपा नही सकता। वहा पाप-कर्म करते लज्जा आती है, इसके लिए पाप-कर्म को न छिपा सकना चौथा, (५) खुले आकाश के नीचे रहने से शरीर जैसा रूखा हो जाता है, वृक्ष की छाया मे वैसा नही होता, इस लिए शरीर का रुखाई से बचना पाचवा, (६) जोडने बटोरने की गुञ्जाइश न होना छठा (७) घर के प्रति होने वाली आसक्ति का अभाव सातवाँ, (८) सार्वजनिक शालाओ मे से जैसे सफाई या मरम्मत के लिए निकल जाना होता है, वैसे यहाँ से ना निकल पडना आठवाँ, (९) प्रसन्नता के साथ रहना नौवॉ, (१०) वृक्ष के नीचे सभी जगह आसन-वासन आसानी से मिल जाने के कारण उसके लिए 'चाह न होना' दसवाँ। इन दस गुणो को देख मैं वृक्ष के नीचे आया हूँ—यह भावार्थ (=कथन) है।

इन (नव) बातो का ख्याल कर अगले दिन महात्मा ने भिक्षा के लिए (गाँव मे) प्रवेश किया। गाँव मे लोगो ने बडे उत्साह-पूर्वक भिक्षा दी। भोजन समाप्त कर, आश्रम को लौटे और बैठ कर सोचने लगे —"मै समझता था कि आहार नही मिलेगा, यही सोच मै प्रव्रजित हुआ। यह चिकना-चुपडा आहार अभिमान और पौरुष के मदो को बढाने वाला है। (इस प्रकार के) आहार से उत्पन्न दु ख का अन्त नही है। इस लिये मै बोये जोते अनाज से बने भोजन को त्याग, सिर्फ (वृक्षो से) गिरे फल को खाऊँगा।" तब से उसने उसी तरह का भोजन ग्रहण कर, योगाभ्यास मे लगे रह, एक सप्ताह के अन्दर ही आठ समापत्तियो और पाँच अभिज्ञाओ को प्राप्त किया। इसी लिए कहा है —

"बोये जोते अनाजो को बिल्कुल त्याग दिया। और अनेक गुणो से युक्त 'वृक्षो से गिरे फल' को ग्रहण किया। वहाँ बैठे, खडे और टहलते योगाभ्यास मे लगे रह सप्ताह के अन्दर अभिज्ञा-बल को प्राप्त किया।"

४. दीपंकर का दर्शन

इस प्रकार अभिज्ञ-बल को प्राप्त कर तपस्वी सुमेध के दिन समाधि सुख मे बीत रहे थे। उसी समय दीपकर नामक बुद्ध ससार में उत्पन्न हुए। उनके गर्भ-प्रवेश (= पटिसन्धि-ग्रहण), जन्म, बुद्धत्व प्राप्ति तथा धर्म-चक्र-प्रवर्तन के समय सारे दस हजार ब्रह्माण्ड (= दस सहस्र लोक-धातु) कम्पित, प्रकम्पित हुए, और महानाद हुआ। बत्तीस पूर्व-निमित्त[1] दिखाई पडे। लेकिन समाधि के सुख में दिन बिताते तपस्वी सुमेध ने न तो उन शब्दो (= महानाद) को सुना न उन शकुनो (= निमित्तो) को देखा। इसी लिए कहा है —

"इस प्रकार मेरे सिद्धि -प्राप्त तथा धर्म में रत रहते समय, ससार के नेता दीपङ्कर नामक बुद्ध (जिन) उत्पन्न हुए। समाधि में होने से मैंने उनको गर्भ-प्रवेश, उत्पत्ति, बुद्धत्व-प्राप्ति तथा धर्मोपदेश के समय हुए चारो शकुनों (=निमित्तो) को नहीं देखा।"

उस समय चार लाख अर्हतो के साथ दसबलो[2] वाले दीपंकर क्रमश चारिका

---

[1] देखो जातक (पृ० ११८)

[2] देखिए, अंगुत्तर-निकाय, दसमो निपातो।

करते, रम्मक नामक नगर मे पहुँच (वहाँ के) सुदर्शन महाविहार मे रहते थे। रम्मक नगर-वासियो ने सुना कि साधु-सम्राट दीपकर बुद्धत्व के उत्तम पद को प्राप्त कर क्रमश चारिका करते (हमारे) रम्मक नगर मे आ, सुदर्शन महाविहार मे रहते है। यह सुन मक्खन, घी आदि भैपज और वस्त्र-बिछौने लिवा कर, गन्ध-माला हाथ मे ले बुद्ध, धर्म तथा सघ के प्रति श्रद्धा से नम्र हो बुद्ध (= शास्ता) के पास गये। और गन्ध आदि से उनकी पूजा कर हाथ जोड एक ओर बैठे बुद्ध का धर्म-उपदेश सुन दूसरे दिन के (भोजन के) लिए निमन्त्रण दे, आसन से उठकर चले गये। अगले दिन भोजन (= महादान) तैयार कराया। दीपकर बुद्ध के आगमन (के उपलक्ष्य) मे (सारा) नगर सजाया गया। पानी बहने से टूटे-फूटे स्थानो मे रेत डाली गई, भूमि को समतल बनाया गया। चाँदी की पत्री जैसे सफेद बालू को फैलाया गया। खीलो और फूलो की वर्षा की गई। नाना रग के वस्त्रो की ध्वजा पताकाये उड रही थी। केलो और जल से भरे घटो की पक्तियाँ लगी हुई थी। उस समय तपस्वी सुमेध ने अपने आश्रम से ऊपर उठ (कर) लोगो के सिर पर मे आकाश मार्ग से जाते हुए उन सन्तुष्ट मनुष्यो को देख सोचा "इसका क्या कारण है?" फिर आकाश से उतर कर एक ओर खडे हो, उनसे पूछा — "ओ! तुम इस मार्ग को किसके लिए अलकृत कर रहे हो?" इसी लिए कहा गया है —

सीमान्त (=प्रत्यन्त) प्रदेश में बुद्ध को निमन्त्रित कर, सन्तुष्ट चित्त हो लोग, उनके आगमन-मार्ग को ठीक कर रहे थे। मै उस समय अपने आश्रम से निकल (अपने) कंपित वल्कल वस्त्र के साथ आकाश-मार्ग से जा रहा था। लोगो को प्रमुदित, प्रसन्न-चित्त, सन्तुष्ट देख, उसी समय आकाश से उतर लोगो से पूछा :—"यह जन-समूह प्रमुदित, प्रसन्न, सन्तुष्ट हो किस के आने के लिए मार्ग ठीककर रहा है?"

लोगो नें कहा —"भन्ते! सुमेध! क्या तुम नही जानते? दीपकर दस-(दिव्य) बल-वाले बुद्ध हो, (अपने) श्रेष्ठ धर्म का प्रचार आरम्भ कर, विचरते हुए हमारे नगर मे पहुँच सुदर्शन महाविहार मे वास करते है। हमने उन भगवान् को निमन्त्रित किया है। (इस लिए) उन भगवान् बुद्ध के आने के मार्ग को अल-कृत कर रहे है।"

तपस्वी सुमेध सोचने लगा —"बुद्ध" शब्द का सुनना भी लोक मे दुर्लभ है,

बुद्ध के जन्म लेने की तो बात ही क्या ? मुझे भी इन मनुष्यों के साथ (मिलकर) बुद्ध (=दशबल) का मार्ग अलंकृत करना चाहिए।" (यह सोच) उसने उन मनुष्यों को कहा—भो ! यदि तुम इस मार्ग को बुद्ध के लिए अलंकृत कर रहे हो, तो मुझे भी (इसका) एक भाग दो। मैं भी तुम्हारे साथ (मिलकर) मार्ग को अलंकृत करूँगा। उन्होंने 'अच्छा' कह कर स्वीकार कर, 'तपस्वी सुमेध दिव्य शक्तिधारी है—यह जान आप इस स्थान को अलंकृत करें' कह पानी से ऊबड़-खाबड़ हुआ एक स्थान दिया।

सुमेध ने बुद्ध के ध्यान से उत्पन्न आनन्द से संतुष्ट हो सोचा—'मैं इस स्थान को अपने योगबल से अलंकृत कर सकता हूँ। लेकिन इस प्रकार अलंकृत करने से मेरा मन सन्तुष्ट न होगा। इसलिए आज मुझे देह से परिश्रम करना चाहिए।" वह बालू रेत ला कर उस स्थान पर फैलाने लगा। अभी वह उस स्थान को पूरा अलंकृत न कर पाया था कि दीपंकर-बुद्ध छ अभिज्ञाओं[1] से युक्त, चार लाख महा प्रतापी अर्हतों (=क्षीणास्रवों) के साथ उसी अलंकृत मार्ग से आ निकले। उस समय देवता लोग दिव्य माला गन्ध आदि से उनकी पूजा कर रहे थे। देवता दिव्य संगीत गा रहे थे और मनुष्य गन्धों तथा मालाओं से पूजा कर रहे थे। (उस समय) वह अनन्त बुद्ध की लीलाओं के साथ मन: शिला पर अँगड़ाई लेते सिंह की तरह उस अलंकृत मार्ग पर चल रहे थे। तपस्वी सुमेध ने आँखों से देखा—अलंकृत मार्ग से आते हुए बत्तीस महापुरुष लक्षणों[2] तथा अस्सी अनुव्यञ्जनों[3] से युक्त बुद्ध उसी अलंकृत मार्ग से आ रहे हैं। उनका मुख-मण्डल (फैलाये हुए) दोनों हाथ (=व्यामभर) के प्रभा-मण्डल से घिरा था, जिससे मणियों के रंग की प्रभा निकल रही, आकाश तल में नाना प्रकार के विद्युत् प्रकाशों की भाँति इकट्ठी हो दो दो की जोड़ी बन के छ रंग[4] की घनी बुद्ध किरणें प्रस्तारित कर रही थीं। उनके अत्युत्तम सुन्दर शरीर को देख कर (सुमेध ने) सोचा—"आज मुझे बुद्ध के लिये

---

[1] दिव्य-चक्षु, दिव्य-श्रोत्र, पूर्व जन्म की स्मृति, ऋद्धि-बल, परचित्त का ज्ञान तथा आस्रवक्षय-ज्ञान।

[2] देखो, लक्खण-सुत्त (दीर्घ-निकाय)।

[3] महापुरिस-लक्खण (विनय १. ६५)।

[4] नीला, पीला, सफेद, मजीठा, लाल तथा प्रभास्वर।

जीवन अर्पण करना चाहिए। भगवान् को कीचड में नही चलने देना चाहिए। यदि चार लाख अर्हतो (=क्षीणाश्रवो) के साथ (भगवान्) मणि फलको से निर्मित पुल पर चलने के समान मेरी पीठ को मर्दित करते चले, (तो) वह दीर्घ काल तक मेरे हित और सुख के लिए होगा।" वह केशो को खोल मृगछाला (=अजिन चर्म) जटा और छाल (=वल्कल) के वस्त्रो को काले रग की कीच पर फैला, नागो की पट्टी (=मणि फलक) के वन पुल की तरह (उस) कीचड मे लेट गया। इसी लिये कहा है :—

"उन्होने मेरे पूछने पर बताया कि अनुपम लोकनायक दीपकर नामक बुद्ध (=शास्ता) लोक में उत्पन्न हुए हैं। यह मार्ग उनके लिए साफ किया जा रहा है। 'बुद्ध'—यह सुनते ही उस समय मेरे मन में आनन्द (=प्रीति) उत्पन्न हुआ। 'बुद्ध' 'बुद्ध' कहते हुए मैं गद्‌गद् (=सौमनस्य को प्राप्त) हो गया। जोश और सन्तोष से मेरा दिल भर गया; और वहाँ खडे खड़े मैंने सोचा—"मैं यहाँ (पुण्य का) बीज रोपूगा। यह क्षण (कही हाथ से) चला न जाय" और लोगो से कहा—"यदि यह मार्ग बुद्ध के लिए साफ कर रहे हो, तो (इसका) एक हिस्सा मुझे भी दो, मै भी (उसे) साफ करूँगा।" उन्होने साफ करने के लिए मुझे मार्ग दे दिया। तब मै 'बुद्ध' 'बुद्ध'—(यह) चिन्तन करते उसे साफ करने लगा। मेरे हिस्से के तैयार हो जाने के पहले ही छ. अ भि ञ्ञा ओ[1] से युक्त स्थित-प्रज्ञ, निर्मल (-चित्त) चार लाख अर्हतो (=क्षीणाश्रवो) के साथ महामुनि दी प क र उस मार्ग पर चले आये। अगवानी के लिए बहुत सी भेरियाँ बज रही थीं। आनन्दित हो देवता और मनुष्य 'साधु' 'साधु'[2] कह रहे थे। उस समय देवता मनुष्यो को देखते थे और मनुष्य देवताओको। (वे) दोनो हाथ जोडे बुद्ध (=तथागत) के पीछे चल रहे थे। देवता दिव्य वाद्य (=तुर्य) को और मनुष्य मानुषिक वाद्य को बजाते तथागत का अनुगमन करते थे। आकाश-मण्डल में अवस्थित देवता मन्दार, पद्म, पारिजात (आदि के) दिव्य पुष्पो को चारो ओर (=दिशा

---

[1] दिव्य-चक्षु, दिव्य-श्रोत्र, पूर्व जन्मो का ज्ञान, ऋद्धि-बल, पर-चित्त का जानना, आश्रवो के क्षय होने का ज्ञान।

[2] 'हुर्रा' 'Hurrah' सदृश प्रसन्नता-सूचक नाद।

विदिशा में) बरसा रहे थे। भूमितल पर अवस्थित मनुष्य चम्पक, सलल, नीप, नाग, पुन्नाग, केतक (के पुष्पो) को चारो ओर विखेर रहे थे। मै यहां वहा अपने केशो को खोल, वल्कल वस्त्र और (आसन-वाले) चर्म खण्ड को कीचड पर फैला, मुह के वल लेट गया, जिसमें कि शिष्यो सहित बुद्ध विना कीचड लगे मेरे ऊपर से चले जायें। वह मेरे हित के लिए होगा।"

५. बुद्ध बनने का संकल्प

उसने कीचड में ही पडे पडे फिर आखे खोल दीपकर बुद्ध (=दशवल) की बुद्ध-श्री को देखते हुए सोचा—यदि मेरी इच्छा हो, तो मै सब चित्त-मलो (=क्लेशो) का नाश कर भिक्षु वन रम्य नगर (= निर्वाण) में प्रवेश कर सकता हूँ। लेकिन अप्रसिद्ध वेषभूषा के साथ चित्त-मलो का नाश कर, निर्वाण-प्राप्ति करना मेरा ध्येय (=कृत्य) नही। मेरे लिए (तो) यही उचित (=योग्य) है कि मै (भी) दशवल दीपकर बुद्ध की तरह उत्तम बुद्ध-पद को प्राप्त कर मानव-समूह (=महाजन) को, धर्म रूपी नाव पर चढा ससार-सागर से पार उतार लेने के वाद निर्वाण को प्राप्त होऊँ। (इस लिए) आठ धर्मो पर विचार करते हुए बुद्ध-पद के लिए कामना (=प्रार्थना) करता लेटा रहा।

इसी लिए कहा है —

"पृथ्वी पर लेटे हुए मुझे ख्याल आया कि यदि मेरी इच्छा हो, तो मै आज अपने क्लेशो का नाश कर सकता हूँ; लेकिन (इस) अप्रसिद्ध वेष से धर्म के साक्षात् करने मे क्या? मै बुद्धपद (=सर्वज्ञता) प्राप्त कर देवताओ सहित (सारे) लोक का बुद्ध होऊँगा। प्रयत्न-शील (=वीर्य-दर्शी) हो मेरे अकेले (संसार सागर से) पार होने मे क्या? बुद्ध-पद (=सर्वज्ञता) प्राप्त कर मै देवताओ सहित (सारे) लोक को पार उतार सकूगा। नर-श्रेष्ठ (=दीपकर) के लिए की गई इस (पूजा के) प्रताप (=अधिकार) से, मै बुद्ध-पद (=सर्वज्ञता) प्राप्त कर बहुत जनता को पार उतार सकूगा। मै (अब) आवागमन की धारा (=ससार-स्रोत) को छेद तीनो भवो[1] का नाश कर, देवताओ सहित (सारे) लोक को धर्म रूपी नाव पर चढा कर पार उतारूँगा।"

---

[1] काम-भव, रूप-भव तथा अरूप-भव।

लेकिन बुद्ध-पद की चाह रखने वाला यदि मनुष्य-योनि, लिग-प्राप्ति, हेतु[1] (=पूर्वकृत कर्म), बुद्ध (=शास्ता) का दर्शन, संन्यास (= प्रव्रज्या) और उसके गुण की प्राप्ति, योग्यता (=अधिकार), कामना (=छन्द)—(इन) आठ धर्मों से युक्त हो, तभी (उसकी) वह प्रबल-इच्छा (=अभिनीहार) पूरी होती है।

मनुष्य योनि मे ही बुद्ध-पद की कामना करने वाले की इच्छा पूरी होती है। नाग, गरुड या देवता की योनियो मे वह पूरी नही हो सकती। मनुष्य योनि में भी पुरुप-लिग मे स्थित होने ही पर इच्छा पूरी होती है। स्त्री, पण्ड (=नपुसक) अथवा (स्त्री-पुरुप) दोनो लिगो वाले होने पर पूरी नही हो सकती। पुरुष होने पर भी यदि उसी जन्म मे अर्हत पद की प्राप्ति का हेतु[1] हो तो इच्छा पूरी होती है नही तो नही। हेतु होने पर भी बुद्ध के जीते जी उनके पास प्रबल इच्छा (=प्रार्थना) रखने वाले की ही इच्छा पूरी होती है, बुद्ध के निर्वाण प्राप्त हो जाने पर (उनके) चैत्य (=मृस्तूप) अथवा बोधिवृक्ष के पास प्रार्थना करके इच्छा पूरी नही होती। बुद्धो के पास से (अर्हत पद की प्राप्ति) के लिए इच्छा करते हुए भी भिक्षु-आश्रमी की ही इच्छा पूरी होती है, गृहस्थ-आश्रमी की नही। भिक्षु आश्रमियो मे भी जो पाँच **अभिञ्ञाओ** और आठ **समापत्तियो** को प्राप्त कर चुका हो, उसी की पूरी होती है। जिसे यह गुण (=गुण-सम्पत्ति) प्राप्त नही, उसकी नही। गुण के होने पर भी, जिसने अपना जीवन बुद्धो के लिए अर्पण कर दिया, इस (त्याग) -अधिकार से अधिकारी होने पर उसी की पूरी होती है, दूसरे की नही। अधिकारी होने पर बुद्धपद की प्राप्ति मे सहायक धर्मों के प्रति जिसकी महती इच्छा, महान् उत्साह और प्रयत्न तथा खोज का भाव (पर्येपण) होता है, उसी की पूरी होती है, दूसरे की नही।

इच्छा-बल (=छन्द) के विषय मे एक उपमा है—जो कोई सारे ब्रह्माण्डो (=चक्रवालो) के (गलकर) जलमय हुए (समुद्र के) गर्भ को, अपने बाहुबल से तैर कर, पार जा सके, वही (पुरुष) बुद्ध-पद प्राप्त कर सकता है, अथवा जो कोई सारे ब्रह्माण्डो (=चक्रवालो) के बाँसो की झाडी से ढके हुए गर्भ को हटा कर मर्दन कर, पाँव से चलकर, पार कर सके, वह बुद्धपद को प्राप्त कर सकता।

---

[1] पूर्व कर्म का पुण्य-फल।

है, अथवा जो कोई छुरियाँ गडे हुए सारे ब्रह्माण्ड पर नगे पाव से चलकर उसे पार कर सके, वह बुद्ध-पद को प्राप्त कर सकता है, अथवा जो कोई अगारो से भरे हुए सारे ब्रह्माण्ड के गर्भ को पाँव से मर्दन करता हुआ, उस पार जा सके वह बुद्ध-पद को प्राप्त कर सकता है। जो इनमे से किसी एक बात को भी अपने लिए दुष्कर न समझे, 'मै इसे भी तैर कर, वा चल कर पार करूँगा,' जिसकी कि इस प्रकार की महान् इच्छा, उत्साह, प्रयत्न तथा पर्येषण हो, उसी की प्रार्थना पूरी होती है, दूसरे की नही।

तपस्वी सुमेध इन आठ बातो (=धर्मो) का ख्याल कर बुद्ध-पद (की प्राप्ति) के लिए बलवती इच्छा (=अभिनीहार) कर लेट गया।

६. दीपंकर की भविष्यद्वाणी

भगवान् दीपकर आ, तपस्वी सुमेध के सिर की ओर खडे हुए। मणि (-निर्मित) खिडकी को खोलते हुए की तरह, पाँच प्रकार के रगीन चक्षु-प्रसाद से युक्त आँखो को खोलकर कीचड पर पडे तपस्वी सुमेध को देखा। फिर—यह तपस्वी 'बुद्धपद' के लिए दृढ सकल्प (= अभिनीहार) कर के पडा है, इसकी इच्छा पूरी होगी अथवा नही?—इस प्रकार भविष्य सोचते हुए जाना कि अब से चार असखेय्य एक लाख कल्प बीतने पर गौतम नाम के बुद्ध होगे। (तब) मण्डली के बीच में खडे हो कहा—"देखते हो न तुम कीचड में पडे उग्र तपस्या करने वाले इस तपस्वी को?"

"भन्ते! हा!"

"यह तपस्वी बुद्ध-पद के लिए दृढ-सकल्प कर के पडा है। इसकी कामना पूरी होगी अब से चार असखेय्य एक लाख कल्पके बीतने पर यह गौतम नामक बुद्ध होगा। इस जन्म में इसका निवास कपिलवस्तु[1] नामक नगर होगा, माया नामक देवी इसकी माता होगी, शुद्धोदन नामक राजा पिता होगा। उपतिष्य[2] नामक स्थविर प्रधान-शिष्य (=अग्र-श्रावक) होगा। कोलित[2] नामक (स्थविर) द्वितीय शिष्य (=श्रावक) होगा। आनन्द (स्थविर) परिचारक(=उपस्थायक)

---

[1] तिलौराकोट, तौलिहवा (नेपाल-तराई) से दो मील उत्तर।
[2] सारिपुत्र तथा मौद्गल्यायन।

होगा। खेमा नामक स्थविरा प्रधान शिष्या (=अग्रश्राविका) होगी, उत्पलवर्णा नामक स्थविरा द्वितीय शिष्या (=श्राविका) होगी। ज्ञान के परिपक्व हो जाने पर वह गृहत्याग (महाभिनिष्क्रमण) करेगा, और महान् तपस्या करने के बाद न्यग्रोध (-वृक्ष) के नीचे खीर ग्रहण कर, नेरञ्जरा[1] नदी के किनारे वह भोजन कर बोधि मण्ड पर चढ अश्वत्थ[2] वृक्ष के नीचे बुद्ध-पद प्राप्त करेगा।

इसी लिए कहा है —

"सत्कार (=आहुति)-भाजन, लोक के ज्ञाता, दी प क र मेरे शिर के पास खडे हो कर यह बोले--"इस उग्र तपस्या करने वाले जटिल तपस्वी को देखते हो? अब से चार असंखेय्य एक लाख कल्प के बीतने पर यह बुद्ध होगा। तथागत क पि ल (वस्तु) नामक रम्य नगर से निकल कर, महान् उद्योग और दुष्कर तपस्या करेंगे। फिर अ ज पा ल वृक्ष के नीचे बैठ खीर ग्रहण कर, ने र ञ्ज रा नदी के तटपर जायेंगे। वहाँ ने र ञ्ज रा नदी के किनारे उस खीर को खा सुसज्जित मार्ग से बोधि-वृक्ष के नीचे जायेंगे। वह अनुपम महा यशस्वी (पुरुष) बोधिमण्ड की प्रद-क्षिणा कर, अ श्व त्थ पीपल-वृक्ष के नीचे बुद्ध (पद को प्राप्त) होगा। इसकी जननी, माता मा या (देवी) होगी; पिता शु द्धो द न और यह गौ त म होगा। इस जिन (=शास्ता) के को लि त और उ प ति ष्य नाम के वीतरागी, शान्त-चित्त, समाधि-प्राप्त (दो) अर्हत अग्र-श्रावक होंगे; और आ न न्द नामक परिचारक (=उपस्थायक) परिचर्या (=उपस्थान) करेंगे। क्षे मा तथा उ त्प ल वर्णा आश्रव-रहित, वीतराग, शान्त-चित्त, समाधि-प्राप्त (दो) अर्हत प्रधान शिष्यायें (=अग्र-श्राविकायें) होंगी और उन भगवान् के बुद्ध (-पद) प्राप्ति करने का वृक्ष) =बोधि) पीपल (=अ श्व त्थ-बो धि) कहलाएगा।"

तपस्वी सुमेध 'मेरी' कामना सम्पूर्ण होगी' सोच सतुष्ट हुआ। जनता (=महाजन) ने बुद्ध (=दशबल) दीपकर के वचन को सुना, और 'यह तपस्वी सुमेध बुद्ध-बीज है, बुद्ध-अकुर है'—सोच कामना की—"जैसे सामने के घाट (=तीर्थ) से नदी को पार न कर सकने पर मनुष्य नीचे के घाट से नदी पार करता है। इसी

---

[1] नीलाजन नदी (जिला गया)।

[2] बोध गया का प्रसिद्ध पीपल-वृक्ष।

प्रकार हम बुद्ध दीपकर के शासन-काल मे यदि मार्ग-फल को न पा सके, तो जब तू बुद्ध होगा, तब तेरे सन्मुख मार्ग-फल प्राप्त करने मे समर्थ हो।"

दीपकर बुद्ध भी बोधिसत्व (सुमेध) की प्रशसा कर, आठ मुट्ठी फूल से पूज प्रदक्षिणा कर चल दिये और वे चार लाख अर्हत भी गन्ध तथा माला से बोधिसत्व की पूजा कर, प्रदक्षिणा कर आगे बढे। देवता और मनुष्य भी उसी प्रकार पूजा तथा वन्दना कर चल दिये। सब के चले जाने पर बोधिसत्व उठ कर **पारमिताओ** पर चिन्तन करने की इच्छा से, पुष्पो के ढेर पर पालथी मार बैठ गये। बोधिसत्व के इस प्रकार बैठने पर, सारे दस हजार ब्रह्माण्डो (=चक्रवालो) के देवताओ ने एकत्र हो, साधुकार दे—"(साधु!) आर्य! तपस्वी सुमेध! (साधु)! पुराने बोधिसत्त्वो की (भाति) आसन मार पारमिताओ पर चिन्तन करने की इच्छा से बैठने के समय जो जो शकुन (=पूर्व निमित्त) पहले प्रकट होते रहे, वह सब आज भी प्रकट हो रहे है, इसलिए हम यह जानते हैं कि तू निस्सन्देह बुद्ध होगा। जिनके लिए यह चिन्ह प्रकट होते है, वह निश्चय बुद्ध होता है। इस लिए तू अपने उद्योग को दृढ करके प्रयत्न कर।" (इस प्रकार देवताओ ने) नाना प्रकार की स्तुतियो से बोधिसत्त्व की प्रशसा की। इस लिए कहा है —

"अनुपम महर्षि (दीपंकर) के इस वचन को सुन कर, कि यह (तपस्वी सुमेध) बुद्ध-अकुर हैं देवता और मनुष्य प्रसन्न हुए। (उस समय) देवताओ सहित सारे दस हजार ब्रह्माण्ड घोषणा करते, ताली बजाते, हँसते तथा हाथ जोड कर प्रणाम करते थे और (लोग सोच रहे थे) कि यदि इस (दीपकर) बुद्ध (=लोक नाथ) के काल में हम चूक गये, तो भविष्य में इस (तपस्वी सुमेध के बुद्ध होने) के समय (कृतकार्य) होगे। जिस प्रकार नदी पार करने वाले पुरुष सामने के घाट के छूट जाने पर, नीचे के घाट से महा नदी को पार करते हैं, इसी प्रकार यदि हम सब से यह बुद्ध छूट जायेंगे, तो हम भविष्य काल में इन बुद्ध के समकालीन (उत्पन्न) होगे।"

७. सुमेध का दृढ़ सकल्प

"पूजा के भाजन, लोक के जानकार, दीपकर ने मेरे कार्य की प्रशसा कर के दक्षिण पैर उठाया। वहाँ जितने बुद्ध के शिष्य (= जिन-पुत्र) थे, उन सब ने मेरी परिक्रमा की। नर, नाग, (तथा) गन्धर्व, सभी अभिवादन कर के गये। जब सघ-

सहित बुद्ध (=लोक नायक) आँखो से ओझल हो गये, तब मैं प्रसन्न चित्त हो उठ बैठा। सुख से सुखित, प्रमोद से प्रमुदित, आनन्द (=प्रीति) से शान्त हो, मैंने आसन लगाया। आसन लगा मैं सोचने लगा--मैं ध्यान-प्राप्त हूँ। अभिञ्ञाएँ मुझे मिल चुकी हैं। सहस्रो लोको में भी मेरे समान (दूसरा) ऋषि नहीं। मैं अद्वितीय (=असदृश्य) हूँ। मैंने दिव्य-शक्ति (=ऋद्धि-धर्मों) में ऐसा सुख प्राप्त किया है।

"मेरे पालथी मार बैठने पर, इन सहस्र ब्रह्माण्डो के निवासियो ने महानाद किया--"तू निश्चय से बुद्ध होगा।"

"पूर्व (काल) में बोधिसत्त्वो के आसन लगा कर बैठने पर, जो शकुन दिखाई देते रहते हैं, वे आज (भी) दिखाई देते हैं। शीत का चला जाना, उष्णता का शान्त हो जाना--ये शकुन आज भी दिखाई देते हैं। (इसलिए) तू निश्चय से बुद्ध होगा।"

"दस सहस्र ब्रह्माण्डो का निश्शब्द और निर्द्वन्द्व होना--ये शकुन आज भी दिखाई देते हैं। तू निश्चय से बुद्ध होगा।"

"न आँधी (=महा-वायु), न नदियाँ (प्रचण्डता से) बहती हैं। ये शकुन आज भी दिखाई देते हैं। तू निश्चय से बुद्ध होगा।"

"उस समय जल तथा स्थल (दोनो) पर फूलने वाले सभी फूल फूल जाते हैं। सो सभी आज भी फूले हुए हैं। तू निश्चय से बुद्ध होगा।"

"उस समय सभी लताएँ तथा वृक्ष फलो से लदे होते हैं। वे सभी आज फलो से लदे हैं। तू निश्चय से बुद्ध होगा।"

"उस समय आकाश और पृथ्वी (दोनो) में विद्यमान रत्न चमकने लगते हैं। वे सभी रत्न आज चमक रहे हैं। तू निश्चय से बुद्ध होगा।"

"उस समय दिव्य और मानुष (सभी) बाजे (तूर्ण) बजते हैं, वे दोनो भी आज बज रहे हैं। तू निश्चय से बुद्ध होगा।"

"उस समय आकाश से चित्र विचित्र फूलो की वर्षा होती है। वह वर्षा आज भी हो रही है। तू निश्चय से बुद्ध होगा।"

"(उस समय) महासमुद्र संकुचित होता है, और दस सहस्र ब्रह्माण्ड काँपने लगते हैं। वे भी दोनो आज कंपन का शब्द कर रहे हैं। तू निश्चय से बुद्ध होगा।"

"उस समय दस सहस्र ब्रह्माण्डो के नरको की भी अग्नियाँ बुझ जाती हैं, वे अग्नियाँ भी आज बुझ गई हैं। तू निश्चय से बुद्ध होगा।"

"उस समय सूर्य्य निर्मल होता है, सभी तारे दिखाई देने लगते हैं, वे भी आज दिखाई दे रहे हैं। तू निश्चय से बुद्ध होगा।"

"उस समय बिना वर्षा के ही पृथ्वी से पानी निकलता है, वह भी आज पृथ्वी से निकल रहा है। तू निश्चय से बुद्ध होगा।"

"उस समय आकाश मण्डल में तारे और नक्षत्र चमकने लगते हैं। चन्द्रमा विशाखा नक्षत्र में होता है।...'तू निश्चय से बुद्ध होगा।"

"(उस समय) बिलों में तथा पर्वतों पर रहने वाले सब (प्राणी) अपने अपने घरों से निकल आते हैं। वे भी आज (अपने अपने) बसेरों से बाहर आ गये हैं। तू निश्चय से बुद्ध होगा।"

"उस समय प्राणियों को असन्तोष नहीं होता, सभी जीव सतुष्ट होते हैं। वे भी सब आज सतुष्ट हैं। तू निश्चय से बुद्ध होगा।"

"(उस समय) रोग शान्त हो जाते हैं, भूख नष्ट हो जाती है। वे (लक्षण) भी आज दिखाई देते हैं। तू निश्चय से बुद्ध होगा।"

"उस समय राग कम हो जाता है, द्वेष और मोह भी नष्ट हो जाते हैं। वे भी आज सब नष्ट हो गये हैं। तू निश्चय से बुद्ध होगा।"

"उस समय (किसी को) भय नहीं होता। आज भी ऐसा ही दिखाई देता है। इस चिन्ह से हम जानते हैं, कि तू निश्चय से बुद्ध होगा।"

"(उस समय) धूलि ऊपर को उड़ती है, आज भी वह दिखाई देती है। इस चिन्ह से हम जानते हैं, तू निश्चय से बुद्ध होगा।"

"(उस समय हवा में) बुरी गन्ध हट जाती है, दिव्य गन्ध बहती है। वह गन्ध भी आज बह रही है, तू निश्चय से बुद्ध होगा।"

"आकार रहित (=अरूपी) देवताओं के अतिरिक्त बाकी सब देवता दिखाई देने लगते हैं। वे भी आज सब दिखाई दे रहे हैं। तू निश्चय से बुद्ध होगा।"

"उस समय जितने नरक (होते) हैं, वे सब दिखाई देते हैं। वे भी सब आज दिखाई दे रहे हैं। तू निश्चय से बुद्ध होगा।"

"उस समय दीवार, दरवाजे तथा पर्वत ढाँकने की शक्ति खोये हुए (=निरावरण) होते हैं। वे भी आज आकाश से हो गये हैं। तू निश्चय से बुद्ध होगा।"

"उस क्षण में जन्म और मृत्यु का होना बन्द हो जाता है। वह लक्षण भी आज दिखाई देते हैं। तू निश्चय से बुद्ध होगा।"

"उद्योग को दृढ़ कर। रुक मत, आगे बढ। हम यह जानते है, तू निश्चय से बुद्ध होगा।"

दीपकर बुद्ध तथा उन सहस्त्र ब्रह्माण्डो के देवताओ के वचन को सुन कर, (और भी) अधिक आनन्द (=सौमनस्य) से उत्साहित हो बोधिसत्वने सोचा— "बुद्धो का वचन झूठा नही होता ? बुद्धो का कथन उलट नही सकता। जैसे आकाश मे फेके ढेले का गिरना, जन्मने वाले का मरना, उषा (=अरुण के उद्‌गमन) के बाद सूर्योदय, गुफा से निकलते समय सिह का गर्जन, भारी गर्भवती स्त्री का जनन— (यह सब) अनिवार्य (=ध्रुव) और अवश्यम्भावी है, इसी प्रकार बुद्धो का वचन निष्फल नही जाता मै निश्चय से बुद्ध होऊँगा।" इसी लिए कहा है —

"तब बुद्ध तथा दस हजार ब्रह्माण्डो के देवताओ के वचन को सुन कर सन्तुष्ट, प्रसन्न हो मैने सोचा—"बुद्ध एक बात कहने वाले होते है। उनका वचन निष्फल नहीं जाता। बुद्धो का कथन असत्य नही होता। मै जरूर बुद्ध होऊँगा। जिस प्रकार आकाश में फेंका हुआ ढेला पृथ्वी पर अवश्य गिरता है, उसी प्रकार श्रेष्ठ बुद्धो का वचन अनिवार्य (=ध्रुव=शाश्वत) है। जिस प्रकार सब प्राणियो का मरना अनिवार्य है, उसी प्रकार श्रेष्ठ बुद्धो का वचन अनिवार्य है। जिस प्रकार रात्रि के बीतने पर सूर्योदय निश्चित है, इसी प्रकार श्रेष्ठ-बुद्धो के वचन (की पूर्ति) निश्चित है। जिस प्रकार बसेरे से निकलते सिह का गर्जन करना निश्चित है, उसी प्रकार श्रेष्ठ-बुद्धो के वचन (की पूर्ति) निश्चित है। जिस प्रकार गर्भ में आये प्राणियो का प्रसव निश्चित है, उसी प्रकार श्रेष्ठ-बुद्धो के वचन (की पूर्ति) निश्चित है।"

८. दस पारमिताएँ और दृढ़ संकल्प की पूजा

(१) दान परिमिता

"मै बुद्ध अवश्य होऊँगा", (इस प्रकार का) निश्चय कर, बुद्ध बनाने वाले धर्मो का निश्चय करने के लिये सोचा—बुद्ध बनाने वाले धर्म कहाँ हैं ? ऊपर है, नीचे है, (वा) दस दिशाओ मे है ? इस प्रकार क्रम से सभी धर्मों (=धर्म धातुओ) पर विचार करने लगा। फिर प्राचीन काल के बोधिसत्त्वो द्वारा सेवित प्रथम-पारमिता **दान-पारमिता**[1] को देख, उसने अपने को समझाया—'पण्डित

---

[1] दान की पराकाष्ठा।

सुमेध ! अब मे तुझे पहले दान-पारमिता पूरी करनी होगी। जिस प्रकार पानी का घटा उलटने पर अपने को बिलकुल खाली कर, पानी गिरा देता है, और फिर वापिस ग्रहण नहीं करता, इसी प्रकार धन, यश, पुत्र, दारा अथवा (शरीर का) अङ्ग प्रत्यङ्ग (किसी) का (भी कुछ) ख्याल न कर, जो कोई भी याचक आवे, उनकी सभी इच्छित (वस्तुओं) को ठीक से प्रदान करते हुए, बोधिवृक्ष के नीचे बैठकर तू बुद्ध-पद को प्राप्त होगा। इसलिए पहले तू दान पारमिता (की पूर्ति) के लिए दृढ सकल्प (—अधिष्ठान) कर। इसलिए कहा है —

'अहो ! बुद्ध बनाने वाले धर्मो को यहाँ, वहाँ, ऊपर, नीचे दसो दिशाओ में, जितनी भी धर्म-धातुएँ हैं, (उन सब में) ढूढते हुए, मैंने पूर्व-महर्षियो द्वारा सेवित महान् मार्ग (=महापथ, महायान) दान-पारमिता को देखो। (और समझाया) पहले तू दृढता पूर्वक इस दान-पारमिता को ग्रहण कर। यदि बुद्ध-पद के पाने की इच्छा है, तो दान की परम सीमा तक चला जा। जिस प्रकार पानी का भरा घडा उलटा करने पर अपने सारे पानी को गिरा देता है, कुछ भी बचा नहीं रखता, उसी प्रकार तू उत्तम, मध्यम, अधम (सभी तरह के) याचको को पा, औंधे घडे की तरह अपने सरवस्व का दान कर।'

(२) शील पारमिता

'बुद्ध बनानेवाले धर्म इतने ही नही हो सकते' (विचार) और भी सोचते हुए उसने द्वितीय (पारमिता) शील-पारमिता को देख कर सोचा—'पण्डित सुमेध' अब से तुझे शील-पारमिता भी पूरी करनी होगी। जिस प्रकार चमरी (—चमरी-मृग) अपने जीवन की परवाह न कर, अपनी पूछ की रक्षा करता है, इसी प्रकार तू भी अब से जीवन की भी परवाह न कर शील रक्षा करते हुए बुद्ध-पद को प्राप्त होगा। "(इसलिए) तू द्वितीय शील-पारमिता (की पूर्त्ति) का दृढ सकल्प कर।" इसी से कहा है —

"यह बुद्ध बनाने वाले धर्म इतने ही नहीं होंगे। और भी जो जो धर्म बुद्ध-पद की प्राप्ति में सहायक हैं; उन्हें भी ढूंढना चाहिए, यह सोचते हुए उसने पूर्व महर्षियो से सेवित द्वितीय पारमिता शील-पारमिता को देखा। (और) अपने मन को समझाया—तू इस दूसरी शील-पारमिता को दृढता पूर्वक ग्रहण कर। यदि बुद्ध-पद की इच्छा है, तो शील की (चरम) सीमा तक पहुँच जा। जिस

प्रकार चमरी चाहे मर जावे; लेकिन किसी चीज में फँसी अपनी पूंछ को हानि पहुँचने नहीं देती। उसी प्रकार चा रो भू मि यो[1] में शील की पूर्ति करते हुए चमरी की पूंछ की भांति (अपने) शील की रक्षा कर।

(३) नैष्क्रम्य पारमिता

फिर विचार हुआ—'वुद्ध वनाने वाले धर्म इतने ही नही हो सकते' और भी सोचते हुए तृतीय नैष्क्रम्य पारमिता को देख विचारा—"पण्डित सुमेध! अब से तुझे नैष्क्रम्य पारमिता भी पूरी करनी होगी। जिस प्रकार जेल (=बन्धनागार) मे चिरकाल तक रहने वाला मनुष्य भी जेल के प्रति स्नेह नही रखता, वहाँ न रहने के लिए ही उत्कण्ठित रहता है, इसी प्रकार तू सव योनियो (=भवो) को जेल सदृश) ही समझ, सव योनियो से ऊव कर उन्हे छोडने की इच्छा कर, नैष्क्रम्य की ओर झुक। इस प्रकार तू वुद्ध पद को प्राप्त होगा। (इस लिए) तू तृतीय नैष्क्रम्य-पारमिता (की पूर्त्ति) का दृढ सकल्प (=अधिष्ठान) कर। इसीलिए कहा है—

'वुद्ध बनाने वाले धर्म इतने ही नही होगे। जो जो भी बुद्ध-पद की प्राप्ति में सहायक धर्म हैं, उन्हें भी ढूंढना चाहिए। यह सोचते हुए पूर्व ऋषियों से सेवित तृतीय नैष्क्रम्य पारमिता को देखा। तू इस तीसरी नैष्क्रम्य पारमिता को दृढता पूर्वक ग्रहण कर। यदि बुद्ध-पद की प्राप्ति की इच्छा है, तो नैष्क्रम्यता की भी सीमा को पार कर जा। जिस प्रकार चिरकाल तक जेल में रह (उसके) दु:खो को झेले मनुष्य को उस जेल के प्रति राग उत्पन्न नहीं होता (बल्कि उससे) छूटना ही चाहता है; इसी प्रकार तु सब योनियो को जेल की तरह समझ, और उन (योनियो) से छूटने के लिए नैष्क्रम्य की ओर चल।

(४) प्रज्ञा पारमिता

तव 'इतने ही वुद्ध बनाने वाले धर्म नही हो सकते, और भी (होगे)' सोचते हुए चौथी प्रज्ञा पारमिता को देखा और मन में सोचा—"पण्डित सुमेध! अव

---

[1] प्रातिमोक्ष संवर-शील (=यम नियमो की पूर्ति), इंद्रिय संवर-शील (=इन्द्रिय संयम), आजीव परिशुद्धि (=जीविका की शुद्धि), प्रत्यय परि-येषण (=शारीरिक आवश्यकताओ की खोज)।

से तुझे प्रज्ञा-पारमिता भी पूरी करनी होगी। उत्तम, मध्यम, अधम किसी को भी बिना छोड़े सभी पण्डितों के पास जाकर प्रश्न पूछने होंगे। जिस प्रकार भिक्षा माँगने वाला भिक्षु (उत्तम-मध्यम) हीन (सभी) कुलों में किसी को भी न छोड़ कर एक ओर से भिक्षाटन करते हुए शीघ्र ही (आवश्यक) भोजन (=यापन) प्राप्त कर लेता है, इसी प्रकार तू भी सभी पण्डितों के पास जाकर प्रश्न पूछते पूछते बुद्ध-पद को प्राप्त कर लेगा।" इसलिए तू चतुर्थ प्रज्ञा-पारमिता (की पूर्ति) का दृढ़ संकल्प कर। इसी से कहा है—

"बुद्ध बनाने वाले धर्म इतने ही नहीं होंगे। और भी जो बुद्ध-पद की प्राप्ति में सहायक धर्म हैं उन्हें भी खोजना चाहिए। यह ढूढ़ने की इच्छा से ऋषियों से सेवित चौथी प्रज्ञा-पारमिता को देखा।" चौथे तू इस प्रज्ञा-पारमिता को दृढ़ता पूर्वक ग्रहण कर। यदि बुद्धत्व-प्राप्ति की इच्छा है, तो प्रज्ञा की सीमा के पार जा। जिस प्रकार भिक्षु उत्तम, मध्यम (तथा) अधम कुलों में से (किसी एक कुल को भी) बिना छोड़े, भिक्षा माँगते हुए अपना निर्वाह (=यापन करता है, उसी प्रकार तू पण्डित जनों से सर्वदा (प्रश्न) पूछता हुआ, प्रज्ञा की सीमा के अंत पर जा कर बुद्ध-पद को प्राप्त करेगा।"

(५) वीर्य पारमिता

'बुद्ध बनाने वाले धर्म इतने ही नहीं हो सकते, और भी 'सोचते हुए पाँचवीं वीर्य-पारमिता को देख यह (विचार) हुआ। "पण्डित सुमेध! अब से तुझे वीर्य-पारमिता भी पूरी करनी होगी। जिस प्रकार (मृग-) राज सिंह सब अवस्थाओं (=ईर्यापथों) में दृढ़ उद्योगी है, उसी प्रकार तू भी सब योनियों में, सब अवस्थाओं में दृढ़ उद्योगी, निरालस्य, और यत्नवान हो बुद्ध-पद को प्राप्त होगा। (इसलिए) तू पाँचवी वीर्य-पारमिता (की पूर्ति) का दृढ़ संकल्प कर। इसी से कहा है—

बुद्ध बनाने वाले धर्म इतने ही नहीं होंगे। और भी जो जो बुद्ध-पद की प्राप्ति में सहायक धर्म हैं, उन्हें भी खोजना चाहिए। यह सोचते हुए पूर्व-ऋषियों से सेवित पाँचवीं वीर्य-पारमिता को देखा। पाँचवें तू इस वीर्य-पारमिता को दृढ़ता-पूर्वक ग्रहण कर। यदि बुद्धत्व प्राप्ति की इच्छा है तो वीर्य की सीमा के पार जा। जिस प्रकार मृग-राज सिंह बैठने, खड़े होने, चलते (सदैव) निरालस, उद्योगी

तथा दृढ़-मनस्क होता है, उसी प्रकार तू भी सब योनियों में दृढ़ उद्योग को ग्रहण कर। वीर्य की सीमा के अंत पर जा कर बुद्ध-पद को प्राप्त करेगा।

(६) क्षान्ति पारमिता

तब 'बुद्ध बनाने वाले धर्म इतने ही नही हो सकते, और भी' सोचते हुए, छठी क्षान्ति पारमिता को देखा। (उसके मन मे) यह विचार हुआ। 'पण्डित सुमेध! अब से तुझे क्षान्ति पारमिता भी पूरी करनी होगी। सम्मान और अपमान, दोनो को सहना होगा। जिस प्रकार पृथ्वी पर (लोग) शुद्ध चीज भी फेकते है, अशुद्ध चीज भी फेकते है। पृथ्वी सहन करती है। न तो (अच्छी चीज फेकने से) खुश होती है, न (बुरी चीज फेकने से) नाराज। इसी प्रकार तू भी सम्मान तथा अपमान, दोनो को सहने वाली होकर ही बुद्ध-पद को प्राप्त होगा। (इसलिए) तू छठी क्षान्ति-पारमिता (की पूर्त्ति) का दृढ सकल्प कर। इसी से कहा है—

बुद्ध बनाने वाले धर्म इतने ही नहीं होंगे और भी जो बुद्ध-पद की प्राप्ति में सहायक धर्म हैं उन्हें भी ढूढना चाहिए। यह सोचते हुए, पूर्व-ऋषियों से सेवित छठी क्षान्ति-पारमिता को देखा और (मन में) विचार हुआ—छठे तू इस क्षान्ति-पारमिता को दृढता-पूर्वक ग्रहण कर। इसमें स्थिर-चित्त हो लगने पर तू बुद्ध-पद को प्राप्त करेगा। जिस प्रकार पृथ्वी (अपने पर) शुद्ध, अशुद्ध सब ही (चीजो) के फेंकने को सहन करती है, न क्रोध ही करती है, न खुश ही होती है। उसी प्रकार तू भी सब (प्रकार) के मान, अपमान सहता क्षान्ति की सीमा के अंत पर जा बुद्ध-पद को प्राप्त करेगा।

(७) सत्य पारमिता

बुद्ध बनाने वाले धर्म इतने ही नही हो सकते, और भी सोचते हुए, सातवी सत्य पारमिता को देखा और मन मे यह विचार हुआ। 'पण्डित सुमेध! अब से तुम्हें सत्य पारमिता भी पूरी करनी होगी। चाहे सिर पर बिजली गिरे, धन आदि का अत्यधिक लोभ हो तो भी जान बूझ कर झूठ न बोलना चाहिए। जिस प्रकार शुक्र का तारा (औषधि) चाहे कोई ऋतु हो अपने गमन-मार्ग को छोड कर, दूसरे मार्ग से नही जाता, अपने ही मार्ग से जाता है। इसी प्रकार तू भी

सिवाय सत्य को छोड, मृषावाद न करके ही बुद्धत्व को प्राप्त होगा। (इसलिए) तू सातवीं सत्य-पारमिता (की पूर्त्ति) का दृढ अधिष्ठान कर। इसी से कहा है—

बुद्ध बनाने वाले धर्म इतने ही नहीं होंगे और भी जो जो बुद्ध-पदवी-प्राप्ति में सहायक धर्म हैं उन्हें भी ढूढना चाहिए। यह सोचते हुए, पूर्व ऋषियो से सेवित सातवीं सत्य-पारमिता को देखा। (और) मन में कहा—सातवें तू इस सत्य-पारमिता को दृढता पूर्वक ग्रहण कर। एक बात बोलने वाला होने पर तू बुद्धपद को प्राप्त करेगा। जिस प्रकार शुक्र (तारा) सदैव (लोक) में एक समान हो, वर्षा-ऋतु अथवा (दूसरे) समय में अपने मार्ग का अतिक्रमण नहीं करता। उसी प्रकार तू भी सत्य (के विषय) में अपने मार्ग का अतिक्रमण न करने वाला बन। सत्य की सीमा के अंत पर जा, तू बुद्धपद को प्राप्त करेगा।

(८) अधिष्ठान-पारमिता

बुद्ध बनाने वाले धर्म इतने ही नहीं हो सकते, और भी सोचते हुए आठवीं अधिष्ठान (=दृढ संकल्प) (-पारमिता) को देखा, और (उसके मन में) विचार हुआ। 'पण्डित सुमेध ! अब से तुझे अधिष्ठान पारमिता भी पूरी करनी होगी। जो अधिष्ठान (=दृढ निश्चय) करना होगा, उस अधिष्ठान पर निश्चल रहना होगा। जिस प्रकार पर्वत सब दिशाओं में (प्रचण्ड) हवा के झोंके के लगने पर भी, न कांपता है न हिलता है, और अपने स्थान पर स्थिर रहता है, इसी प्रकार तू भी अपने अधिष्ठान में निश्चल रहते हुए ही बुद्ध-पद को प्राप्त होगा। (इसलिए) तू आठवीं अधिष्ठान पारमिता (की पूर्ति) का दृढ संकल्प कर। इसीसे कहा है —

'बुद्ध बनाने वाले धर्म इतने ही नहीं होंगे। और भी जो जो बुद्धपद की प्राप्त में सहायक धर्म हैं, उन्हें भी ढूढना चाहिए, यह सोचते हुए, पूर्व ऋषियो से सेवित आठवीं अधिष्ठान-पारमिता को देखा। (और मन में कहा—)आठवें तू अधिष्ठान-पारमिता को दृढता पूर्वक ग्रहण कर इसमें अचल होने से तू बुद्ध-पद को प्राप्त कर। जिस प्रकार अचल, सुप्रतिष्ठित, शैल-पर्वत तेज वायु से (भी) नहीं कांपता अपने स्थान पर ही स्थिर रहता है, इसी प्रकार तू भी अपने अधिष्ठान में सदैव निश्चल हो। अधिष्ठान की सीमा के अंत पर जाने से तू बुद्ध-पद को प्राप्त करेगा।

(९) मैत्री-पारमिता

तब वुद्ध बनाने वाले धर्म इतने ही नही हो सकते', और भी सोचते हुए नौवी मैत्री पारमिता को देखा। और (उसके) मन मे यह विचार हुआ। 'पण्डित सुमेध! अब मे तुझे मैत्री-पारमिता भी पूरी करनी होगी। हित, अनहित सब के प्रति समानभाव रखना होगा। जिस प्रकार पानी, पापी और पुण्यात्मा दोनो के लिए एक जैसी शीतलता रखता है, उसी प्रकार तू भी सब प्राणियो के प्रति एक जैसी मैत्री रखते हुए बुद्ध-पद को प्राप्त होगा। (इसलिए) तू मैत्री-पारमिता (की पूर्ति) का दृढ निश्चय कर। इसीसे कहा है —

'बुद्ध बनाने वाले धर्म इतने ही नही होगे, और भी जो बुद्ध-पद की प्राप्ति में सहायक धर्म हो उन्हें भी ढूंढना चाहिए। यह सोचते हुए, पूर्व ऋषियो से सेवित नौवी मैत्री-पारमिता को देखा। (मन से कहा--) तू इस मैत्री-पारमिता को दृढता-पूर्वक ग्रहण कर। यदि बुद्ध-पद की प्राप्ति की इच्छा है तो मैत्री-भावना में बेजोड़ बन। जिस प्रकार पानी, पापी और पुण्यात्मा दोनो को ही समान रूप से शीतलता पहुँचाता है और (दोनो के) मैल को धो देता है। उसी प्रकार तू भी हित, अनहित दोनो के प्रति समान भाव से मैत्री-भावना कर। मैत्री-भावना की सीमा के अत पर जाने से बुद्ध-पद को प्राप्त होगा।

(१०) उपेक्षा पारमिता

'बुद्ध बनाने वाले धर्म इतने ही नही हो सकते', और भी सोचते हुए दसवी उपेक्षा-पारमिता को देखा। (मन मे) यह विचार हुआ—"पण्डित सुमेध! अब से तुझे उपेक्षा-पारमिता भी पूरी करनी होगी। सुख और दुःख मे मध्यस्थ ही रहना होगा। जिस प्रकार पृथ्वी शुचि और अशुचि दोनो को (उसपर) फेकने पर भी मध्यस्थ ही रहती है, इस प्रकार तू भी सुख, दुःख दोनो मे मध्यस्थ रहते हुए बुद्ध-पद को प्राप्त होगा। (इसलिए) तू दसवी उपेक्षा-पारमिता (की पूर्ति) का दृढ निश्चय कर। इसीसे कहा है —

'बुद्ध बनाने वाले धर्म इतने ही नहीं होगे', और भी जो जो बोधि-सहायक धर्म है, उन्हें भी ढूढना चाहिए। यह सोचते हुए पूर्व ऋषियो से सेवित दसवी उपेक्षा-पारमिता को देखा। (मन से कहा--) दसवें तू इस उपेक्षा-पारमिता को दृढ करके ग्रहण कर। दृढ़ता-पूर्वक तुला (सदृश) बन, बुद्ध-पद को प्राप्त

करेगा। जिस प्रकार पृथ्वी खुशी और नाराजी छोड़ (अपने ऊपर) शुचि और अशुचि, दोनों के फेंकने की उपेक्षा करती है, इसी प्रकार तू भी सदैव सुख दु:ख के प्रति तुल्य हो। उपेक्षा की (चरम-) सीमा के अंत पर जाने से बुद्ध-पद को प्राप्त होगा।

इसके बाद सोचा—इस लोक में बोधिसत्वों द्वारा पूरे किये जाने वाले, परम ज्ञान (=बोधि) परिपक्व करने वाले, तथा बुद्ध बनाने वाले धर्म इतने ही हैं, (इन) दस पारमिताओं को छोड़ कर अन्य नहीं। यह दस पारमिताएँ भी न तो ऊपर आकाश में है न पूर्व आदि दिशाओं में है, किन्तु मेरे हृदय के भीतर ही प्रतिष्ठित है। इस प्रकार उनके हृदय ही में प्रतिष्ठित होने (की बात) जान, सबके लिए दृढ़ निश्चय कर, फिर फिर उनपर सीधे-उल्टे (=अनुलोम प्रतिलोम) क्रमसे विचार करने लगा। अन्त से शुरु करके आदि तक पहुँचाता, आदि से शुरु करके अन्त तक पहुँचाता, बीच में ग्रहण करके दोनों ओर खतम करता, (तथा) दोनों सिरो से आरम्भ करके बीच में खतम करता। (अपने) अंग का परित्याग 'पारमिताएँ' बाहरी वस्तुओं का त्याग 'उपपारमिताएं' और प्राणों का परित्याग 'परमार्थ-पारमिताएँ,' (कहलाती) हैं। दस पारमिताएँ, दस उपपारमिताएँ और दस परमार्थ-पारमिताएँ—(इन तीनों पर) दो तेलों को मिलाने की तरह, तथा सुमेरु पर्वत को मथनी बना चक्रवाल महा समुद्र को मथने की तरह विचारने लगा।

उन दस पारमिताओं पर विचार करते समय धर्म-तेज से चार नियुत दो लाख योजन घनी यह पृथ्वी भारी शब्द कर वैसे ही काँप उठी जैसे हाथी द्वारा आक्रान्त नरकट, अथवा पेरा जाता ऊख-यंत्र, और कुम्हार के चक्र (तथा) तेली के कोल्हू की तरह घूमी। इसीलिये कहा है —

'लोक में परमज्ञान (की प्राप्ति में) सहायक धर्म इतने ही है। इनसे अधिक अन्य नहीं हैं। उनमें दृढ़ता पूर्वक स्थित हो, स्वभाव, रस तथा लक्षणों सहित इन धर्मों पर विचार करने लगा। उस समय धर्म-तेज के प्रवाह से दस सहस्र ब्रह्माण्डों वाली पृथ्वी काँप उठी। पेरते ऊख के कोल्हू की तरह और तेल के कोल्हू के चक्र की तरह पृथ्वी हिली और नाद किया।'

रम्य-नगर वासी, काँपती हुई महा-पृथ्वी पर नहीं खड़े रह सके, और प्रलय वात से प्रताड़ित महान् शाल वृक्षों की तरह, मूर्छित हो गिर पड़े। कुम्हार के पकते हुए घड़े आदि बर्तन एक दूसरे से भिड़ कर चूर्ण विचूर्ण हो गये। भयभीत

त्रसित जनता ने वुद्ध के पास जाकर पूछा —"भगवान् ! क्या यह नागो का विप्लव (=आवर्त्त) है, अथवा भूत, यक्ष, देवताओ के विप्लवो मे से (कोई) एक है? हम इसे नही जानते। सारी जनता भयभीत है। क्या इससे लोक का कुछ अनिष्ट होगा अथवा भला? हमे यह बात बतलाइए।"

शास्ता ने उनका कथन सुनकर कहा —मत डरो, चिन्ता मत करो, यह भय का कारण नही। आज जो मैंने पण्डित-सुमेध के भविष्य मे गौतम नामक बुद्ध होने की भविष्यत् वाणी (=व्याकरण) की, सो वह (पण्डित-सुमेध) अब पारमिताओ पर विचार कर रहा है। उसके पारमिताओ पर विचार करते, तथा उन्हे मन्थन करते समय, धर्म-तेज से सारे दस सहस्त्र ब्रह्माण्ड एक झटके मे काप उठे और नाद करने लगे। इसीमे कहा है —

"बुद्ध के भोजन-स्थान पर जितनी भी मण्डली थी, वह वहाँ कम्पित और मूर्छित हो पृथ्वी पर लेट गई। हजारो घड़े, सैकडो मटके एक दूसरे से भिड़ कर चूर्ण हो गये। विह्वल, त्रसित, भयभीत, शकित, और उत्पीड़ित मनवाला जन समूह इकट्ठा हो, दीपङ्कर के पास आया (और बोला) :—हे आँखो वाले! इस दुनिया का क्या (कुछ) भला होने वाला है या बुरा? सारी दुनिया भय से मरी जाती है। इस (के कष्ट) को दूर करो।"

तब महामुनि दीपङ्कर ने उन (लोगो) को कहा—"धैर्य रक्खो। इस भूमि कम्पन से मत डरो। जिसके लिए आज मैंने लोक में बुद्ध होने की भविष्यत्वाणी की, वह पुराने बुद्धो के सेवन के धर्म का विचार कर रहा है। उसके बुद्ध विषयक (बुद्ध-भूमि) धर्मो का पूर्णरूप से विचार करने से, यह देवताओ सहित दस हजार (लोको वाली) पृथ्वी काँपी है।"

(११) दृढ़ संकल्प की पूजा

तथागत के वचन को सुन कर लोगो को सतोष हुआ, और वह माला-गध-लेप ले, रम्य नगर से निकल वोधिसत्त्व के पास गये। माला आदि से पूजन वन्दना तथा प्रदक्षिणा कर, रम्यनगर मे लौट आये। बोधिसत्व भी दस पारमिताओ पर विचार कर उत्साह पूर्वक दृढ सकल्प कर आसन से उठे। इसीसे कहा है —

"बुद्ध वचन को सुनने के समय ही (लोगो का) मन शान्त हो गया। सब ने

मेरे समीप आकर प्रणाम किया। तब मैं बुद्ध के गुणो का ध्यान कर (तथा) चित्त को दृढ बना, दीपङ्कर को नमस्कार कर, आसन से उठा।"

तब सारे दस हजार ब्रह्माण्डो के देवताओ ने इकट्ठे हो, आसन से उठते हुए बोधिसत्त्व की दिव्यमाला-गधो मे पूजा कर इस प्रकार स्तुति-मगल (पाठ) किया—"आर्य ! तपस्वी सुमेध ! तू ने आज बुद्ध दीपकर के चरणो मे बडी प्रार्थना की। वह तेरी (प्रार्थना) निर्विघ्न पूरी हो। तुझे भय-रोमाञ्च न हो। (तेरे) शरीर को कुछ भी रोग न हो। (तू) शीघ्र ही पारमिताओ को पूरा कर उत्तम बुद्धपद को प्राप्त करे। जिस प्रकार फल फूल वाले वृक्ष समय आने पर फलते फूलते है, इसी प्रकार तू भी समय का अतिक्रमण किये बिना शीघ्र ही बुद्धपद पर पहुँचे।" (स्तुति) पाठ के बाद (देवता) अपने अपने लोक को गये। देवताओ से प्रशसित बोधिसत्त्व भी, "मैं दस पारमिताओ को पूरा कर, चार लाख असखेय्य एक लाख कल्प बीतने पर बुद्ध पद को प्राप्त होऊँगा" बडे उत्साह के साथ दृढ सकल्प कर, आकाश-मार्ग से हिमालय को चला गया। इसीसे कहा है।—

"आसन से उठते वक्त (तपस्वी सुमेध) पर देवता और मनुष्य दिव्य तथा मानुषिक—दोनो प्रकार के फूलो की वर्षा कर रहे थे। देवता तथा मनुष्य दोनो (तपस्वी सुमेध के लिए) मंगल कामना प्रकट कर रहे थे—"तेरी कामना महान् है। तेरी इच्छा पूरी हो। सब भय दूर हो; रोग शोक का विनाश हो। तुझे कोई विघ्न न हो। तू शीघ्र ही श्रेष्ठ बुद्ध-पद पर पहुँच जा।"

"जिस प्रकार फल वाला वृक्ष समय आने पर फलता है। उसी प्रकार महावीर ! तेरे में बुद्ध-ज्ञान फले। जिस प्रकार दूसरे सभी बुद्धो ने दस पारमिताओ को पूरा किया, उसी प्रकार महावीर! तू दस पारमिताओ को पूरा कर। जिस प्रकार दूसरे बुद्ध बोधि-मण्ड में बुद्ध-पद को प्राप्त हुए, उसी प्रकार महावीर ! तू बुद्ध के परम ज्ञान का जानने वाला हो। जिस प्रकार दूसरे बुद्धो ने धर्म-चक्र चलाया, उसी प्रकार महावीर ! तू धर्म का चक्र चला। जिस प्रकार पूर्णिमा के दिन निर्मल चन्द्र चमकता है, उसी प्रकार तू भी पूर्ण-मन हो दस हजार ब्रह्माण्डों में प्रकाशित हो। जिस प्रकार राहु से मुक्त हुआ सूर्य्य (अपने) तेज से अत्यन्त प्रकाशित होता है, उसी प्रकार तू भी लोक से मुक्त हो (अपनी) श्री से प्रकाशित हो। जिस प्रकार सभी नदियाँ समुद्र की ओर जाती है; उसी प्रकार देवताओ सहित (सारा) लोक तेरे पास आवे।"

इस तरह उन (देवताओ) ने सुमेघ की स्तुति-प्रशसा की। तब वह उन दस धर्मों को ग्रहण कर, उनका पालन करते हुए वन में प्रविष्ट हुआ।

सुमेघ कथा समाप्त

९. पहले के बुद्ध

(१) दीपंकर बुद्ध

रम्य नगर निवासियो ने भी नगर मे प्रविष्ट हो बुद्ध प्रमुख भिक्षु सघ को भोजन (=महादान) दिया। भगवान् (=शास्ता) उनको धर्मोपदेश दे, जन समूह को (त्रि०) शरण आदि मे स्थापित कर, रम्य नगर से निकले। तब से आगे भी, आयु भर सभी बुद्धो के कर्त्तव्य करते हुए क्रमानुसार उपाधि-रहित **परिनिर्वाण**[1] को प्राप्त हुए। उस विषय में और सब बात, बुद्ध-वंस मे कहे अनुसार ही समझनी चाहिए। वहा कहा है —

"तव वे सघ सहित बुद्ध (=लोक-नायक) को भोजन करा दीपकर बुद्ध (=शास्ता) की शरण गये। तथागत ने कुछ को **शरणागमन**[2] मे, कुछ को **पच शीलो**[3] तथा दूसरो को **दस शीलो**[4] की दीक्षा दी। किसी को **चार उत्तम-फलों**[5] को प्राप्त साधु बनाया। किसी को **असमान-धर्मों**[6] का पटिसम्भिदा (-ज्ञान)

---

[1] परिनिर्वाण दो प्रकार का है:—(१) उपाधि-शेष परिनिर्वाण (=पाँच स्कंधो के शेष रहते निर्वाण; जैसे जीवन्मुक्त) (२) अनुपाधि-शेष परिनिर्वाण।

[2] बुद्ध, धर्म तथा सघ की शरण में।

[3] अहिंसा, चोरी न करना, काम-भोग में मिथ्याचार न करना (=पर स्त्री-गमन से दूर रहना), झूठ न बोलना तथा मद्य-पान न करना।

[4] ऊपर के पाँच शील (तीसरे शील में सम्पूर्ण-ब्रह्मचर्य), ६ असमय (=विकाल) भोजन न करना, ७ नृत्य-गीत आदि का त्यागना, ८ माला गन्ध आदि का न धारण करना, ९ ऊँचे तथा महार्घ पलगो का सेवन न करना। १० चाँदी-सोने का ग्रहण न करना।

[5] श्रोतापत्ति, सकृदागामी, अनागामी तथा अर्हत्।

[6] अर्थ, धर्म, निरुक्ति तथा प्रतिभान।

दिया। उस नर-श्रेष्ठ ने किसी को आठ समापत्तियाँ दी। किसी को तीन विद्याएँ[1] किसी को छ अभिज्ञाएँ दी। वह महामुनि इस प्रकार से जन-समूह को उपदेश करते थे, इसी से उन (=लोकनाथ) का धर्म (=शासन) फैला। बडी ठुड्डी (=महाहनु), ऊचे कन्धे वाले दीपकर नामक (बुद्ध) ने बहुत से जनो को (ससार सागर से) पार उतार दुर्गति से मुक्त किया। महामुनि यदि एक लाख योजन पर भी ज्ञान के पात्र (=समझदार मनुष्य) को देखते, तो एक क्षण मे वहाँ पहुँच, उसे बोध कराते थे।

प्रथम सम्मेलन (=अभिसमय) में बुद्ध ने एक अरब को बोध कराया। दूसरे सम्मेलन में नाथ ने दस अरब को बोध कराया। तृतीय-सम्मेलन के वक्त जब बुद्ध ने देव-लोक में धर्मोपदेश दिया, उस समय नौ खरब को बोध हुआ। दीपकर बुद्ध (=शास्ता) के तीन सम्मेलन (=सन्निपात) हुए थे। पहला सम्मेलन दस खरब का हुआ था। फिर शास्ता ने नारद-कूट (पर्वत) मे एकान्तवास करते वक्त एक अरब पुरुष मल-हीन शान्त अर्हत-पद को प्राप्त हुए। जिस समय महावीर (=बुद्ध) सुदर्शन (नामक) ऊँचे पर्वत पर रहते थे, उस समय मुनि की नौ खरब की सभा थी। उस समय मैं जटाधारी घोर तपस्वी था। आकाश मे विचरण करता था, और पाच अभिज्ञायें मुझे प्राप्त थी। (एक एक बार) दस-बीस हजारो को धर्म का साक्षात्कार हुआ। एक दो (करके) धर्म साक्षात्कार करने वालो की तो गणना असख्य है।

तब भगवान दीपकर का अत्यन्त शुद्ध धर्म (=शासन), बहुत प्रसिद्ध, विस्तार, उन्नति और वैभव को प्राप्त हुआ। चार लाख छ अभिज्ञाओ वाले बडे बडे योग बलो से युक्त चार लाख अनुयायी, लोक-वेत्ता दीपकर को सदैव घेरे रहते थे। उस समय यदि कोई (पुरुष) मानुषिक भव को छोड 'अप्राप्त-मन' शैक्ष रहते मनुष्य शरीर को छोडता, तो वह निन्दा का भाजन होता। भगवान् दीपकर का प्रवचन देव-लोक सहित इस लोक में स्थिर-चित्त, क्षीणाश्रव, स्थित-प्रज्ञ, विमल अर्हतो से सुशोभित था।

दीपकर बुद्ध (की जन्म भूमि) श्रीरम्मवती नाम की नगरी। पिता था सुदेव नाम का क्षत्रिय। माता का नाम सुमेधा था। दीपकर बुद्ध के सुमगल

---

[1] दिव्य-चक्षु, पूर्व-जन्म-स्मृति तथा आश्रव-क्षय ज्ञान।

तिप्य नाम के दो प्रधान शिष्य (=अग्रश्रावक) तथा सागत नाम का हजूरी (=उपस्थायक) था। उन भगवान् की नन्दा तथा सुनन्दा नाम की दो प्रधान शिष्याये (=अग्रश्राविकाएँ) थी, और उनका वोधि-वृक्ष पीपल का वृक्ष था। महामुनि दीपकर का शरीर, दीप-वृक्ष की तरह अस्सी हाथ ऊँचा था (और) प्रथित् महान् शाल-वृक्ष की तरह शोभा देता था। उस महर्षि की आयु एक लाख वर्ष की थी) उतने समय जीवित रह (=ठहर) कर उन्होंने वहुत से जनो को (ससार सागर से पार) उतारा। सद्धर्म को प्रकाशित कर, तथा जन-समूह को पार उतार वह अपने शिष्यो सहित, अग्नि-राशि की तरह प्रज्वलित हो निर्वाण को प्राप्त हुए। वहऋद्धि, वह यग, और चरणो मे वह चक्र-रत्न—वे सव अन्तर्धान हो गये। सच है सभी वनी चीजे (—सस्कार) खाली (=शून्य) है।

(२) कौण्डिन्य वुद्ध

भगवान् दीपकर के वाद, एक असखेय्य (कल्प) वीतने पर, कौण्डिन्य नामक वुद्ध (=शास्ता) उत्पन्न हुए। उनके भी तीन सम्मेलन (=सन्निपात) हुए। पहले सम्मेलन मे दस खरव, दूसरे मे दस अरव, तीसरे मे नव्वे करोड। उस समय वोधिसत्त्व, विजितावी नामक चक्रवर्ती (के रूप मे) पैदा हुए थे। उन्होने वुद्ध प्रमुख दस खरव भिक्षुओ के सघ को भोजन दान (=महादान) दिया। भगवान् (शास्ता) ने 'वुद्ध होगा', प्रकाशित कर धर्मोपदेश दिया। (विजितावी राजा) वुद्ध की धर्म-कथा सुन राज्य त्याग कर साधु हो गया। उसने **तीनो पटिक**[1] पढे, आठो समापत्तियाँ तथा पाँचो अभिज्ञाएँ प्राप्त की, और (मरकर) विना ध्यान नष्ट हुए ही ब्रह्म-लोक मे उत्पन्न हुआ।

कौण्डिन्य वुद्ध की (जन्म-भूमि) **रम्मवती** नाम नगर था। **सुनन्द** नामक क्षत्रिय पिता, **सुजाता** नामक देवी माता, **भद्र** तथा **सुभद्र** दो प्रधान-शिष्य, **अनुरुद्ध** नामक उपस्थायक, **तिष्या** तथा **उपतिष्या** दो प्रधान शिष्याएँ शाल का मङ्गलमय वोधि (वृक्ष), अठासी हाथ ऊँचा शरीर, तथा लाख वर्ष की आयु थी।

दीपङ्कर के वाद, अनन्ततेज, अमितयश और अप्रमेय तथा अनाक्रमणीय कोण्डञ्ञ नामक शास्ता हुए।

---

[1] सुत्त-पिटक, विनय-पिटक तथा अभिधम्म-पिटक।

(३) मंगल बुद्ध

उसके बाद एक असखेय्य (कल्प) बीत जाने पर, एक ही कल्प में चार बुद्ध उत्पन्न हुए। **मङ्गल, सुमन, रेवत, सोभित।** भगवान् मङ्गल के तीन शिष्य सम्मेलन (=श्रावक-सन्निपात) हुए। उनमें से पहले सम्मेलन मे दस खरब भिक्षु हुए, दूसरे में दस अरब, तीसरे में नव्वे करोड। इनका आनन्दकुमार नामक सौतेला भाई, नव्वे करोड की मण्डली के साथ धर्म सुनने के लिए बुद्ध (=शास्ता) के पास गया। बुद्ध ने उनको क्रमश (धर्म-) कथा कही। वह मण्डली के साथ पटिसम्भिदा-ज्ञान (सहित) अर्हत पद को प्राप्त हो गया। शास्ता उन कुल पुत्रो का पूर्व-चरित्र तथा योग-बल से मिलने वाले पात्र-चीवरो को जानते थे। उन्होने दाहिना हाथ पसार कर, "आओ भिक्षुओ" कहा। वे सभी उसी क्षण योग-बल से प्राप्त पात्रचीवर धारण किये साठ वर्ष के वृद्ध साधुओ (=स्थविरो) की तरह के हो गये, और बुद्ध को प्रणाम कर उन्हे चारो ओर से घेर लिया। यह इनका तीसरा शिष्य-सम्मेलन हुआ।

जिस प्रकार दूसरे बुद्धो का शरीर-प्रकाश चारो ओर अस्सी अस्सी हाथ भर का था, इस प्रकार उन (मङ्गल) का नही था। उन भगवान् का शरीर-प्रकाश सदैव दस हजार ब्रह्माण्ड मे व्याप्त रहता था। (उनके शरीर-प्रकाश से) वृक्ष, पृथ्वी पर्वत, समुद्र आदि ही नही ऊखल इत्यादि तक भी सुवर्ण-वस्त्र से आच्छादित से जान पडते थे। इनकी आयु नव्वे हजार वर्ष की हुई। इतने काल तक चाँद सूर्य्य आदि (ससार को) अपने प्रकाश से प्रकाशित न करते थे। रात दिन का भेद (=परिच्छेद) मालूम नही होता था। (आज कल) जैसे सूर्य प्रकाश से पूर्ण दिन में प्राणी विचरते है, वैसे ही (उस समय) वह सदा बुद्ध प्रकाश में विचरते थे। (उस समय) लोग सायकाल के फूलने वाले कुसुमो तथा प्रात काल के बोलने वाले पक्षी आदि से दिन रात का भेद समझते थे। (सवाल होगा—) क्या दूसरे बुद्धो में ऐसा प्रताप नहीं था? नही था (ऐसा) नही, वे भी यदि चाहते तो दस हजार ब्रह्माण्ड अथवा उससे भी अधिक को, (अपने) प्रकाश से व्याप्त कर सकते। लेकिन पूर्व-प्रार्थना अनुसार, भगवान् मङ्गल की शरीर-प्रभा दूसरे (बुद्धो) की व्याप्त-प्रभा की तरह सदैव दस सहस्र लोक धातु को स्पर्श करती थी।

वह (भगवान् मङ्गल) वोधिसत्त्व (अवस्था) के समय, वेसस्तर' जैसे जन्म मे उत्पन्न हो, पुत्र तथा स्त्री सहित वक पर्वत जैसे पर्वत में रहते थे। तव खरदाठिक नाम का एक यक्ष, महापुरुप का दान (देने) का विचार सुन, व्राह्मण वेप मे निकट आया, और उसने महात्मा से दोनो वच्चे माँगे। महासत्त्व ने 'व्राह्मण को दोनो वच्चे देने का सकल्प किया, और सन्तुप्ट चित्त हो जल-थल सहित सारी पृथ्वी को कम्पित कर दोनो वच्चे प्रदान किये। यक्ष ने टहने की भूमि के छोर पर (लगी) वाँही के तख्ते के सहारे खडे हो, महात्मा की आखो ही के सामने, दोनो वच्चो को मूली के ढेर की तरह खा लिया। यक्ष के मुह खोलने पर अग्नि-ज्वाला की तरह (उसके) मुह से रक्तधारा निकलते देख कर भी, महापुरुप का चित्त राई भर (=केशाग्रमात्र) खिन्न नही हुआ। वल्कि 'मेरा दान सुदान है' सोच, उसके शरीर मे महान् आनन्द पैदा हुआ। उसने भविष्य काल मे इसके फल स्वरूप इसी प्रभाव (=नीहार) से किरणे निकलें' ऐसी कामना की। उसकी इस कामना के कारण ही वुद्ध होने पर उसके शरीर से किरणे निकल कर इतनी दूर तक पहुँची।

इनके और भी पूर्व चरित्र है। वोधिसत्त्व रहने की अवस्था मे, एक वुद्ध के चैत्य को देख कर, 'इस वुद्ध के लिए मुझे जीवन दान करना चाहिए' सोचा, और मशाल (दण्डदीपक) लपेटने की तरह सारे शरीर को लिपटवाया, और लाख मूल्य की, रत्न-जडित सोने की थाली मे घी भरवा, उसमें हजारो वत्तियाँ जलवा, उसे सिर पर ले, सारे शरीर मे आग लगवा, चैत्य की प्रदक्षिणा करते सारी रात विता दी। इस प्रकार सूर्योदय तक प्रयत्न करते हुए, उनका लोमछिद्र मात्र भी गर्म न हो, पद्म-गर्भ मे प्रविष्ट जैसा रहा। धर्म अपनी रक्षा करने वालो की रक्षा करता है। इसीसे भगवान ने कहा है—

धर्मानुकूल आचरण करने वाले की, धर्म निश्चय से रक्षा करता है। ठीक से आचरण किया हुआ धर्म सुख की ओर ले जाता है। धर्म के ठीक आचरण करने का यह फल है कि धर्मचारी दुर्गति को प्राप्त नहीं होता।

---

[1] भवान् गौतमवुद्ध का मनुष्य-लोक में सिद्धार्थ से पहले का जन्म (देखो वेस्सन्तर जातक)।

इस कर्म के फलस्वरूप भी, उन भगवान् (मङ्गल) के शरीर की किरण दस हजार ब्रह्माण्डों तक पहुँचा करती थी।

उस समय हमारे बोधिसत्त्व सुरुचि नामक ब्राह्मण थे। बुद्ध को निमन्त्रित करने की इच्छा से उन्होंने समीप जा, मधुर-धर्म कथा सुन, प्रार्थना की—

"भन्ते! कल मेरी भिक्षा ग्रहण करें।"

"ब्राह्मण! तुझे कितने भिक्षु चाहिएँ।"

"भन्ते! (आपके) अनुयायी भिक्षु कितने हैं?"

उस समय शास्ता का केवल प्रथम-सम्मेलन ही हुआ था, इस लिए "दस अरब" कहा।

"भन्ते! सभी को साथ ले, मेरे घर पर भिक्षा ग्रहण करें।"

बुद्ध (=शास्ता) ने स्वीकार किया। दूसरे दिन के लिए निमन्त्रित कर, घर लौटते हुए ब्राह्मण सोचने लगा—मैं इतने भिक्षुओं को खिचडी, भात, वस्त्र आदि तो दे सकता हूँ, लेकिन (इतनों के लिए) बैठने का स्थान कैसे होगा?"

उसकी चिन्ता से, चौरासी हजार योजन की दूरी पर (स्वर्ग की) पण्डुकम्बल शिला पर बैठे देव-राज (इन्द्र) का आसन गर्म हो गया। शक्र (-देव) ने सोचा—कौन है जो मुझे इस स्थान से गिराना चाहता है? (तब) दिव्य चक्षु से देखते हुए, महापुरुष को देखा, और 'सुरुचि-ब्राह्मण बुद्ध-सहित भिक्षु संघ को निमन्त्रित कर, (उन्हें) बिठाने के स्थान की फिक्र में है, मुझे भी वहाँ पहुँच कर पुण्य में सहभागी होना चाहिए' (सोच) बढई का भेष बना, बसूली-कुल्हाडा हाथ में ले, महात्मा के सम्मुख प्रकट हुआ। और पूछा "कि क्या किसी को मजदूरी से काम है?"

महापुरुष ने देख कर पूछा, "क्या काम कर सकोगे?"

"ऐसा कोई हुनर नही जो मुझे मालूम न हो। घर हो, अथवा मण्डप, जो कुछ कोई बनवाना चाहे, उसके लिए मैं वही बना देना जानता हूँ।"

"तो, मेरे पास काम है।"

"आर्य! क्या काम है?"

"मैंने कल के लिए दस अरब भिक्षुओं को निमन्त्रित किया है। उनके बैठने के लिए मण्डप बनाओगे?"

"मैं बना दूँगा, यदि मुझे मेरी मजदूरी दे सकोगे।" "तात! दे सकूँगा।"

"अच्छा! तो बनाऊँगा।"

(यह कह उसने) जा कर एक स्थान को देखा। **कसिण-मण्डल**[1] की तरह समतल, बारह तेरह योजन का एक प्रदेश था। उसने 'इतने स्थान में सप्त रत्न-मय मण्डप बने' ऐसा दृढ सकल्प कर देखा, तो उसी समय (एक) मण्डप पृथ्वी भेद कर उठ आया। उसके सोने के खम्भो पर चाँदी के, रूपे खम्भो पर सोने के, मणिस्तम्भो पर मणिमय, सप्त-रत्न-मय, स्तम्भो पर सप्त-रत्न-मय घटक थे। तव (सोचा—) मण्डप मे वीच वीच मे घटियो की झालर लटक जावे। उसके देखते ही देखते एक ऐसी झालर लटक गई, जिससे मन्द वायु से हिलने पर पाँचो प्रकार वाजो (—तूरिय-नाद) का मधुर शब्द निकलता था, और दिव्य सङ्गीत वजने का सा समा होता था। सोचा—'बीच वीच मे सुगन्धित माला दाम आदि लटके। मालाएँ लटक गई। 'पृथ्वी भेद कर दस खरव भिक्षुओ के लिए आसन और (सामने पात्र रखने के लिए) आधार वन जावे।' उसी समय बन गये। 'एक एक कोने मे एक एक पानी की चाटी निकल आये।' पानी की चाटियाँ निकल आई। इतना हो जाने पर ब्राह्मण के पास जा कर कहा—'आर्य! आवे, अपना मण्डप देख कर मुझे मजदूरी दे।' महापुरुष ने जा कर मण्डप देखा। देखने के साथ ही उसका सारा शरीर पाँच प्रकार के आनन्द (=प्रीति)[2] से भर गया।

तव मण्डप को देख कर उसे यह (विचार) हुआ। 'यह मण्डप मनुष्य का वनाया हुआ नही है। मेरे विचार और मेरे गुण के कारण निस्सन्देह इन्द्र-लोक गर्म हुआ होगा। उसके वाद देव-राज शक्र ने यह मण्डप बनवाया होगा। मेरे लिए यह उचित नही है कि ऐसे मण्डप मे, केवल एक ही दिन दान दू। मै एक सप्ताह तक (दान) दूगा।'

कितना भी वाहरी दान हो, उससे वोधिसत्त्वो का सन्तोष नही होता। अलङ्कृत शिर को काट कर, अञ्जित आँखो को निकाल कर, अथवा हृदय-मास को नोच कर (दे० सिवि-जातक) देने से ही वोधिसत्त्वो को त्याग के सम्बन्ध मे सन्तोष होता है। सिवि जातक[3] मे हमारे वोधिसत्त्व को भी प्रतिदिन पाँच अम्मण[4] कार्षापण

---

[1] योगाभ्यास के लिए मिट्टी आदि का बना हुआ समतल पहिये सदृश चक्र।

[2] क्षुद्र, क्षणिक, ऊर्ध्वगामी, तरंग-सदृश तथा प्रसरणशील। (दे० विशुद्धिमार्ग)

[3] सिवि जातक (१५. ३)

[4] ११ द्रोण = १ अम्मण।

दे, नगर में चारो द्वारो के बीच में दान करते हुए, उस दान से त्याग विषयक सन्तोष नही हो सका। लेकिन जब देव-राज इन्द्र ने ब्राह्मण वेष धर, आ, आँखें माँगी, तब, उखाड कर देते हुए उन्हे प्रसन्नता हुई। (ऐसा करते हुए) चित्त में बाल की नोक के बराबर भी विकार नही हुआ। इस प्रकार (बाहरी) दान से बोधि-सत्त्वो की तृप्ति नही होती।

इसलिए उस महापुरुष ने भी, 'मुझे दस खरब भिक्षुओ को सप्ताह भर (भोजन) दान देना चाहिए', सोच, उन्हें मण्डप मे बिठा सप्ताह भर 'गोपान' (=गवपान) का दान दिया। बडे बडे कडाहो को दूध से भर, चूल्हे पर चढा, दूध के गाढे हो जाने पर, उसमें थोडा से चावल डाल कर, मधुर शक्कर और घी से पकाये हुए भोजन को गोपान (=गवपान) कहते है। अकेले मनुष्य उसे नही परोस सकते थे। देवताओ ने भी इकट्ठे हो कर परोसा। बारह तेरह योजन का लम्बा-चौडा स्थान भी भिक्षुओ को (बैठ कर) खाने के लिए काफी न था, लेकिन वह अपने अपने योगबल के प्रभाव से बैठ गये। अन्तिम दिन सब भिक्षुओ के पात्र धुलवा कर, (उन्हें), घी, मक्खन, मधु, खाँड (=फाणित) आदि भैषज्य से भर कर, तीन तीन चीवरो के साथ दिया। नये साधु बने भिक्षुओ को मिले चीवर के कपडे (=शाटक) ही लाख के मूल्य के थे। बुद्ध ने (पुण्य का) अनुमोदन करते हुए 'इस पुरुष ने इस प्रकार का महादान दिया है, भविष्य मे यह क्या होगा ?' सोच, 'लक्षाधिक दो असखेय्य कल्पो के बीत जाने पर, यह गौतम नामक बुद्ध होगा', देख, महापुरुष को सम्बोधित कर, कहा—'तू इतना समय बीत जाने पर गौतम नामक बुद्ध होगा।" महापुरुष इस कथन (=व्याकरण) को सुन, "मै बुद्ध होऊँगा, मुझे घर-बार से क्या मतलब ? मै साधु होता हूँ" सोच, उतनी सम्पत्ति को थूक के समान त्याग, बुद्ध (=शास्ता) के पास प्रव्रजित हो, बुद्ध-वचन सीख, अभिञ्ञा तथा समापत्तियाँ प्राप्त कर, आयु के बीत जाने पर ब्रह्मलोक में उत्पन्न हुआ।

भगवान् मङ्गल के नगर का नाम **उत्तर** था। उनका पिता भी **उत्तर** नामक क्षत्रिय था। माता का नाम भी **उत्तरा** था। **सुदेव** तथा **धर्मसेन** दो उनके प्रधान शिष्य थे। **पालित** नामक परिचारक (=उपस्थायक) था। **सीवली** और **असोका**—दो प्रधान शिष्यायें थी। **नाग-वृक्ष** बोधि था। अठासी हाथ ऊँचा उनका शरीर था। नव्वे हजार वर्ष जीवित रह कर, जब वह निर्वाण को प्राप्त हुए तो

दस हजार ब्रह्माण्डो मे एक दम अन्धकार छा गया। सभी ब्रह्माण्डो में लोग रोने पीटने लगे।

१ कौडिन्य (=कोण्डञ्ञ) के वाद मङ्गल नामक नायक ने लोक के अन्धार का नाश कर धर्म रूपी मशाल (=उल्का) को धारण किया।'

(४) सुमन बुद्ध

इस प्रकार दस हजार ब्रह्माण्डो को अन्धाकार-मय वना जब भगवान् (मङ्गल) निर्वाण को प्राप्त हुए तो सुमन नामक बुद्ध (=शास्ता) उत्पन्न हुए। उनके भी तीन शिष्य-सम्मेलन (=श्रावक-सन्निपात) हुए। प्रथम सम्मेलन मे दस खरव भिक्षु (जमा) हुए। दूसरे (सम्मेलन) में कञ्चन पर्वत पर नौ खरव, तीसरे मे आठ खरव।

उस समय (हमारे) बोधिसत्त्व अतुल नाम के वडे ऋद्धि वाले महानुभाव सम्पन्न नाग-राज थे। बुद्ध की उत्पत्ति को सुन, अपने जाति-भाईयो के साथ, नाग लोक से निकल कर, दस खरव भिक्षुओ से घिरे उन भगवान् का दिव्य वाद्य (=तुरीय-नाद) से सत्कार किया, और भोजन पर प्रत्येक (-भिक्षु) को दुगाले का जोडा दे तीनो (रत्नो) की शरण ग्रहण की। सुमन बुद्ध ने भी भविष्यद्वाणी की—'तू भविष्य मे बुद्ध होगा।' भगवान सुमन के नगर का नाम **खेम** था। **सुदत्त** नामक राजा उनका पिता था। **सिरिमा** नामक माता थी। **शरण** और **भावितात्मा**, दो प्रधान शिष्य थे। **उदेस** नामक परिचारक था। **सोणा** और **उपसोणा** दो प्रधान शिष्याये थी। **नाग-वृक्ष** वोधि था। नव्वे हाथ ऊँचा शरीर, और नव्वे हजार वर्ष ही आयु का प्रमाण था।

"(भगवान्) मङ्गल के बाद सव बातो (=धर्म) में अनुपम तथा सब प्राणियो में श्रेष्ठ सुमन नामक बुद्ध (=नायक) हुए।"

(५) रेवत बुद्ध

उनके बाद **रेवत** नामक बुद्ध (=शास्ता) उत्पन्न हुए। उनके भी तीन शिष्य-सम्मेलन हुए। प्रथम सम्मेलन की तो गणना नही। दूसरे मे दस खरव भिक्षु (जमा) हुए। तीसरे में भी उतने ही। उस समय (हमारे) बोधिसत्त्व अतिदेव, नामक ब्राह्मण थे। उन्होने बुद्ध (=शास्ता) का वह धर्मोपदेश सुन, तीनो रत्नो की शरण ले, सिर पर हाथ की अञ्जली जोडी, और चित्त-मल के नाश के वारे में

उन वुद्ध की स्तुति कर, वस्त्र को एक कन्धे पर रख पूजा की। उनने भी कहा—तू वुद्ध होगा।"

(रेवत वुद्ध) के नगर का नाम **धान्यवती** (धञ्ञवती) था। पिता **विपुल** नामक क्षत्रिय थे। माता का नाम **विपुल** था। **वरुण** और **ब्रह्मदेव** (दो) प्रधान शिष्य थे। **सम्भव** नामक परिचारक था। **भद्रा** और **सुभद्रा** प्रधान शिष्यायें थी। **नाग-वृक्ष** ही वोधि था। शरीर अस्सी हाथ ऊँचा और आयु साठ हजार वर्ष की थी।

(भगवान्) सुमन के वाद रेवत नामक वुद्ध (=नायक) हुए। (वह) अनुपम, अद्वितीय अतुल, उत्तम वुद्ध (=जिन) थे।

(६) सोभित वुद्ध

उनके वाद **सोभित** नामक (=शास्ता) उत्पन्न हुए। उनके भी तीन शिष्य सम्मेलन हुए। पहले सम्मेलन मे एक अरव भिक्षु थे। दूसरे में नव्वे करोड। तीसरे मे अस्सी करोड। उस समय (हमारे) वोधिसत्त्व **अजित** नामक ब्राह्मण थे। उन्होने वुद्ध का धर्मोपदेश सुन, (तीन रत्नो की) शरण ग्रहण की, और वुद्ध सहित भिक्षु सघ को भोजन दिया। उनने भी कहा— "तू वुद्ध होगा।" उन भगवान् का नगर **सुधर्म्म** नामक था। पिता **सुधर्म** नामक राजा था। माता का भी नाम **सुधर्मा** था। **असम** और **सुनेत्र** (दो) प्रधान शिष्य थे। **अनोम** नामक परिचारक था। **नकुला** और **सुजाता** प्रधान शिष्यायें थी। **नाग-वृक्ष** (की) ही वोधि थी। अट्ठावन हाथ ऊँचा शरीर और नव्वे हजार वर्ष की आयु थी।

"(भगवान्) रेवत के वाद सोभित नामक वुद्ध (=नायक) (हुए)। (वह) एकाग्र-चित्त, शान्त-चित्त, असम=अद्वितीय पुरुष थे।"

(७) अनोमदर्शी वुद्ध

उसके वाद, एक असखेय्य (कल्प) वीत जाने पर एक कल्प मे **अनोमदर्शी**, **पद्म**, तथा **नारद**, तीन वुद्ध हुए। भगवान् अनोमदर्शी के तीन शिष्य सम्मेलन हुए। पहले मे आठ लाख भिक्षु, दूसरे में सात लाख, तीसरे में छ लाख (एकत्रित हुए)। उस समय (हमारे) वोधिसत्त्व, वडे ऋद्धि वाले, महाप्रतापी, अनेक लाख-करोड यक्षो के स्वामी, एक यक्ष-सेनापति थे। उन्होने वुद्ध के उत्पन्न होने की वात सुन, आ कर वुद्ध सहित भिक्षु सघ को भोजन (=महादान) दिया। वुद्ध ने भी कहा—"तू भविष्य मे वुद्ध होगा।" भगवान् अनोमदर्शी के नगर का

नाम **चन्द्रावती** था। पिता **यशवान्** नामक राजा था। माता का नाम **यशोधरा** था। **निसभ** और **अनोम** दो प्रधान शिष्य थे। **वरुण** नामक परिचारक था। **सुन्दरी** तथा **सुमना** दो प्रधान शिष्याएँ थी। **अर्जुन-वृक्ष** (की) वोधि थी। अट्ठावन हाथ ऊँचा शरीर और लाख वर्ष की उनकी आयु थी।

(भगवान्) सोभित के बाद नर-श्रेष्ठ, अमितयश, तेजस्वी, दुरतिक्रम अनोम-दर्शी बुद्ध हुए।

(८) पद्म बुद्ध

उनके वाद पद्म नामक वुद्ध उत्पन्न हुए। उनके भी तीन शिष्य सम्मेलन हुए। पहले सम्मेलन मे दस खरव भिक्षु थे। दूसरे मे तीन लाख। ग्राम से दूर जगल मे होने वाले तीसरे सम्मेलन मे महावन-खण्ड-निवासी दो लाख भिक्षु थे। तव तथागत के उस वन-खण्ड मे रहते समय (हमारे) वोधिसत्त्व सिह के रूप मे जन्मे थे। सिह ने वुद्ध को निरोध-समाधि लगाए देख, प्रसन्न चित्त हो वन्दना तथा प्रदक्षिणा की, और (अन्यत्र) प्रीति तथा हर्ष से युक्त हो, तीन वार सिह-नाद किया। सप्ताह भर तक उन्होने वुद्ध की ओर ध्यान करने मे उत्पन्न उस प्रीति को न छोडा, और उस प्रीति-सुख मे निमग्न हो, शिकार के लिए न जा अपना जीवन-मोह त्याग उपासना की। वुद्ध (शास्ता) ने सप्ताह के वीतने पर निरोध समाधि से उठ, सिह को देख, सोचा—"यह सिह भिक्षु-सघ के प्रति चित्त मे भक्ति कर, संघ को भी प्रणाम करेगा, और सकल्प किया कि भिक्षु-सघ आवे।" उस समय भिक्षु आ गये। सिह के चित्त में सघ के प्रति श्रद्धा उत्पन्न हुई। वुद्ध ने उसका मन देख कर कहा—"तू भविष्य में वुद्ध होगा।" भगवान **पद्म** का **चम्पक** नामक नगर था। **असम** नामक राजा पिता था। माता भी **असमा** नामक थी। **साल** और **उपसाल** (दो) प्रधान शिष्य थे। **वरुण** नामक परिचारक था। **रामा** तथा **सुरामा** प्रधान शिष्याएँ थी। **सोण-वृक्ष** की वोधि थी। अट्ठावन हाथ ऊँचा शरीर और लाख वर्ष की आयु थी।

अनोमदर्शी के वाद नर-श्रेष्ठ, असम = अद्वितीय-पुरुष पद्म नामक वुद्ध हुए।

(९) नारद बुद्ध

उनके वाद **नारद** नामक वुद्ध उत्पन्न हुए। उनके भी तीन शिष्य सम्मेलन हुए। पहले मे दस खरव। दूसरे मे नौ खरव। तीसरे मे आठ खरव भिक्षु (जमा)

हुए। उस समय बोधिसत्त्व ने ऋषियों के नियमानुसार साधु बन पाँच अभिज्ञायें (=दिव्य-शक्तियाँ) और आठ समापत्तियाँ प्राप्त कर, बुद्ध सहित भिक्षु-संघ को भोजन दान दे, चन्दन से पूजा की। उन्होंने भी कहा—"तू भविष्य मे बुद्ध होगा।" उन भगवान् का धान्यवती नामक नगर था। सुदेव नामक क्षत्रिय पिता था। अनोमा नामक माता थी। भद्रशाल तथा जितमित्र (दो) प्रधान शिष्य थे। वशिष्ठ नामक परिचारक (=उपस्थायक) था। उत्तरा तथा फाल्गुणी, (दो) प्रधान शिष्याएँ थी। महासोण-वृक्ष (की) बोधि थी। अट्ठासी हाथ ऊँचा शरीर, और नब्बे हजार वर्ष की आयु थी।

(भगवान्) पद्म के बाद नर-श्रेष्ठ, असम=अद्वितीय नारद नामक बुद्ध हुए।

(१०) पद्मोत्तर बुद्ध

नारद बुद्ध के बाद, एक लाख कल्प बीत जाने पर, एक कल्प मे एक पद्मोत्तर नामक बुद्ध ही उत्पन्न हुए। उनके भी तीन शिष्य सम्मेलन हुए। प्रथम सम्मेलन में दस खरब भिक्षु (जमा) हुए। वेभार पर्वत[1] के दूसरे सम्मेलन में नौ खरब। तीसरे में आठ खरब। उस समय (हमारे) बोधिसत्त्व जटिल नामक महानागरिक (=महाराष्ट्रीय) थे। उन्होंने बुद्ध सहित भिक्षु संघ को तीनों भिक्षु-वस्त्र (=चीवर) दान दिये। उन बुद्ध ने भी कहा—"तू भविष्य में बुद्ध होगा।" भगवान् पद्मोत्तर के समय (दूसरे) पन्थाई (=तीर्थिक) नही थे। सब देवता और मनुष्य उन (बुद्ध) की शरण गये। उनका (जन्म) हंसवती नाम के नगर (मे हुआ)। आनन्द नाम का क्षत्रिय पिता था। सुजाता नामक देवी माता थी। देवल तथा सुजात दो प्रधान शिष्य थे। सुमन नामक परिचारक था। अमिता तथा असमा दो प्रधान शिष्याएँ थी। शाल-वृक्ष की बोधि थी। शरीर अट्ठासी हाथ ऊँचा था, और शरीर की प्रभा चारो ओर बारह योजन तक फैलती थी। (उनकी) आयु लाख वर्ष (की) थी।

(भगवान्) नारद के बाद नर-श्रेष्ठ, सागर की तरह से निश्चल पद्मोत्तर नामक जिन बुद्ध हुए।

---

[1] वैभार-गिरि (राजगृह में, जिसके पास काल-शिला है)।

(११) सुमेध बुद्ध

उसके बाद तीस लाख कल्प बीत जाने पर, एक कल्प मे सुमेध और सुजात दो बुद्ध पैदा हुए। सुमेध के भी तीन शिष्य सम्मेलन हुए। सुदर्शन नगर मे प्रथम सम्मेलन मे एक अरब अर्हत् जमा थे। दूसरे मे नव्वे करोड, तीसरे मे अस्सी करोड। (उस समय) बोधिसत्त्व उत्तर नामक ब्राह्मणयुवक (माणवक) थे। (उन्होने) पृथ्वी मे गाड कर रखे हुए अस्सी करोड धन को त्याग, बुद्ध सहित भिक्षु-सघ को महादान दे, धर्म को सुन, तीनो (रत्नो) की शरण ग्रहण की, और (घर से) निकल कर साधु हो गये। उन (बुद्ध) ने भी कहा—"तू भविष्य मे बुद्ध होगा।"

भगवान् सुमेध का सुदर्शन नाम का नगर था। सुदत्त नाम का राजा पिता था। माता भी सुदत्ता नाम की थी। सरण और सर्वकाम दो प्रधान शिष्य थे। सागर नामक परिचारक था। रामा और सुरामा दो प्रधान शिष्याये थी। महा-कदम्ब-वृक्ष (की) बोधि थी। अट्ठासी हाथ ऊँचा शरीर था। नव्वे हजार वर्ष की आयु थी।

(भगवान्) पद्मोत्तर के बाद सुमेध नामक नायक हुए। वह दुराक्रमणीय उग्रतेज, लोक-श्रेष्ठ मुनि थे।

(१२) सुजात बुद्ध

उनके बाद सुजात नामक बुद्ध (—शास्ता) उत्पन्न हुए। उनके भी तीन शिष्य सम्मेलन हुए। पहले सम्मेलन मे साठ हजार भिक्षु थे। दूसरे मे पचास हजार। तीसरे में चालीस हजार। उस समय (हमारे) बोधिसत्त्व चक्रवर्ती राजा थे। वे 'बुद्ध उत्पन्न होने की बात' सुन, पास जा, धर्म सुन, बुद्ध सहित भिक्षु-सघ को सप्त रत्नो के साथ चारो महाद्वीपो का राज्य दान दे, बुद्ध के पास साधु हुए। सभी देश-वासी (उस समय) देश की उपज ले, विहार (=आराम) के काम को पूरा करते हुए, बुद्ध सहित सघ को महादान देते थे। उनने भी उसे 'बुद्ध' (होगा) कहा। उन भगवान् का नगर सुमङ्गल था। उग्गत नाम राजा पिता था। प्रभावती नाम की माता थी। सुदर्शन और देव (दो) प्रधान शिष्य थे। नारद नामक परिचारक (=उपस्थायक) था। नागा और नागसमाला (दो) प्रधान शिष्याये थी। महावेणु (की) बोधि थी। कम छिद्र घनी शाखा वाले (बोधि) की ऊपर वाली शाखाएँ मोरपुच्छ-समूह की तरह चमकती थी।

उन भगवान् का शरीर पचास हाथ ऊँचा था। आयु नव्वे हजार वर्ष की (हुई)।

"वहाँ उस मण्ड-कल्प में, सिंह की सी ठोढी (=हनु) वाले, वृषभ-स्कन्ध अप्रमेय, दुराक्रमणीय सुजात नामक बुद्ध (=नायक) हुए।"

(१३) प्रियदर्शी बुद्ध

उसके बाद अठारह सौ कल्प बीत जाने पर, एक ही कल्प मे **प्रिय-दर्शी, अर्थ-दर्शी, धर्म-दर्शी**—तीन बुद्ध उत्पन्न हुए। प्रिय-दर्शी के भी तीन शिष्य सम्मेलन हुए थे। पहले सम्मेलन मे दस खरब भिक्षु, दूसरे मे नौ खरब, तीसरे में आठ खरब थे। उस समय बोधिसत्त्व **काश्यप** नामक ब्राह्मण (के कुल मे पैदा हुए) थे। उन्होने जवानी मे तीनो वेदो मे पारङ्गत हो, बुद्ध के उपदेश को सुन दस खरब धन के व्यय मे विहार (=सघाराम) बनवा कर, (त्रि-) शरण तथा (पच-) शील को ग्रहण किया। तब बुद्ध ने कहा—"अठारह सौ कल्पो के बीत जाने पर तू बुद्ध होगा।"

उन भगवान् का **अनोम** नाम का नगर था। **सुदिन्न** नामक राजा पिता था। **चन्दा** नामक माता थी। **पालित** तथा **सर्वदर्शी** (दो) प्रधान शिष्य थे। **सोभित** नामक उपस्थायक था। **सुजाता** तथा **धम्मदिन्ना** (दो) प्रधान शिष्यायें थी। **पियगु** (-वृक्ष) की बोधि थी। अस्सी हाथ ऊँचा शरीर और नव्वे हजार वर्ष की आयु थी।

"(भगवान्) सुजात के बाद, दुराक्रमणीय, असदृश, महा-यशस्वी, स्वयम्भू (नायक) लोक-नायक हुए।"

(१४) अर्थ-दर्शी बुद्ध

उनके बाद **अर्थ-दर्शी** नामक बुद्ध उत्पन्न हुए। उनके भी तीन शिष्य-सम्मेलन हुए। पहले मे अट्ठानवे लाख भिक्षु (एकत्रित) हुए। दूसरे में अट्ठासी लाख, (और) तीसरे में भी उतने ही। उस समय (हमारे) बोधिसत्त्व **सुसीम** नामक महा ऋद्धिवान् तापस के रूप में पैदा हुए थे, उन्होने देव-लोक मे मन्दार पुष्प का छत्र ला बुद्ध की पूजा की। उन्होने भी कहा—"तू बुद्ध होगा।"

उन भगवान् का **सोभित** नाम का नगर था। **सागर** नामक राजा पिता था। **सुदर्शना** नाम की माता थी। **शान्त** तथा **उपशान्त** (दो) प्रधान शिष्य थे। **अभय**

नामक परिचारक (=उपस्थायक) था। **धम्मा** और **सुधम्मा** प्रधान शिष्यायें थी। **चम्पक-वृक्ष** (की) बोधि थी। उनका शरीर अस्सी हाथ ऊँचा था। शरीर की प्रभा सदैव, चारो ओर एक योजन तक फैली रहती थी। उनकी आयु लाख वर्ष की (हुई)।

"वही उस मण्ड-कल्प में नर-श्रेष्ठ (=नरऋषभ) अर्थदर्शी ने महान् अन्धकार को नाश कर उत्तम बुद्ध-पद को प्राप्त किया।"

(१५) धर्मदर्शी बुद्ध

उनके बाद **धर्मदर्शी** नामक बुद्ध उत्पन्न हुए। उनके भी तीन शिष्य सम्मेलन हुए। पहले—सम्मेलन मे एक अरब भिक्षु थे। दूसरे मे सत्तर करोड, तीसरे मे अस्सी करोड। उस समय (हमारे) बोधिसत्त्व देवराज शक्र के रूप मे पैदा हुए थे। उन्होंने दिव्य गन्ध-पुष्प तथा दिव्य-वाद्य से (बुद्ध की) पूजा की। बुद्ध ने भी कहा —"(तू बुद्ध होगा)।"

उन भगवान् का **सरण** नाम का नगर था। **सरण** नाम का राजा पिता था। **सुनन्दा** नाम की माता थी। **पदुम** तथा **फुस्सदेव** (दो) प्रधान शिष्य थे। **सुनेत्र** नामक परिचारक (=उपस्थायक) था। **क्षेमा** तथा **सर्वनामा** दो प्रधान शिष्याएँ थीं। **रक्त-कुरबक** (नामक) वृक्ष की बोधि थी। यह (वृक्ष) विम्बिजाल भी कहा जाता है। अस्सी हाथ ऊँचा (उसका) शरीर था और आयु भी लाख वर्ष की।

उसी मण्ड-कल्प में महा यशस्वी धम्मदर्शी (बुद्ध) उस अन्धकार का नाश कर देवताओ सहित (सारे) लोक में प्रकाशित हुए।

(१६) सिद्धार्थ बुद्ध

इस कल्प से चौरानवे कल्प पहले एक कल्प मे **सिद्धार्थ** नाम के एक ही बुद्ध उत्पन्न हुए। उनके भी तीन शिष्य-सम्मेलन (हुए) थे। पहले सम्मेलन मे दस खरब, दूसरे मे नौ खरब, तीसरे मे आठ खरब भिक्षु थे। वह (हमारे) बोधिसत्त्व उग्र-तेजा, सिद्धि (=अभिञ्ञा)-प्राप्त, मङ्गल नामक तापस के रूप मे पैदा हुए थे। उन्होने महा जम्बु (=जामुन) वृक्ष के फल को ला कर तथागत को प्रदान किया। बुद्ध (=शास्ता) ने उस फल को सेवन कर बोधिसत्त्व से कहा—"चौरानवे कल्प बीत जाने पर तू बुद्ध होगा।"

उस भगवान् (सिद्धार्थ) के नगर का नाम **वेभार** था। **जयसेन** नामक राजा

पिता था। सुफस्सा नाम की माता थी। सम्बहुल तथा सुमित्र दो प्रधान शिष्य थे। रेवत नामक उपस्थायक था। सीवली और सुरामा प्रधान शिष्याएँ थी। कर्णिकार-वृक्ष (की) बोधि थी। साठ हाथ ऊँचा (उनका) शरीर था और आयु लाख वर्ष की।

(भगवान्) धर्म-दर्शी के बाद सिद्धार्थ नामक नायक का, सारे अन्धकार को नाश कर, सूर्य्य की भाँति उदय हुआ।

(१७) तिष्य बुद्ध

इस कल्प से ब्यानवे कल्प पहले एक कल्प में तिस्स तथा फुस्स—दो बुद्ध उत्पन्न हुए। भगवान् तिष्य के तीन शिष्य-सम्मेलन हुए। पहले सम्मेलन में एक अरब, दूसरे में नब्बे करोड, तीसरे में अस्सी करोड भिक्षु थे। उस समय (हमारे) बोधि-सत्त्व महाऐश्वर्य-शाली, महायशस्वी सुजात क्षत्रिय के रूप में, पैदा हुए थे। उन्होंने ऋषियों के नियम के अनुसार प्रव्रज्या ग्रहण की, और ऋद्धि को प्राप्त हो, बुद्ध के उत्पन्न होने की बात सुन, दिव्य मन्दार-पद्म तथा पारिजात पुष्प ले, चारों प्रकार की परिषद् के बीच चलते हुए तथागत की पूजा की, (और) आकाश में फूलों का चँदवा लगवा दिया। उन शास्ता ने भी कहा—"ब्यानवें कल्प बीत जाने पर तू बुद्ध होगा।"

उन भगवान् का क्षेम नामक नगर था। जन-सन्ध नामक क्षत्रिय पिता था। पद्मा (=पद्मा) नामक माता थी। ब्रह्मदेव और उदय दो प्रधान शिष्य थे। सम्भव नाम का परिचारक (=उपस्थायक) था। फुस्सा तथा सुदत्ता दो प्रधान शिष्याएँ थी। असन-वृक्ष (की) बोधि थी। साठ हाथ ऊँचा उनका शरीर था। लाख वर्ष की आयु थी।

(भगवान्) सिद्धार्थ के बाद, अनुपम, अद्वितीय, अनन्त शीलो से युक्त तथा अनन्त यशों के भागी तिष्य (नामक) लोक के श्रेष्ठ नायक (=बुद्ध) हुए।

(१८) पुष्य बुद्ध

उनके बाद फुस्स नामक बुद्ध (=शास्ता) उत्पन्न हुए। उनके भी तीन शिष्य-सम्मेलन हुए। प्रथम सम्मेलन में साठ लाख भिक्षु (जमा) हुए। दूसरे में पचास (लाख), तीसरे में बत्तीस (लाख)। उस समय (हमारे) बोधिसत्त्व विजितावी

नामक क्षत्रिय थे। वह (अपने) महान् राज्य को छोड, बुद्ध (=शास्ता) के पास संन्यासी हो, तीनो पिटक पढ, जन-समूह को धर्मउपदेश करते सदाचार तथा (=शील-पारमिता) को पूरा करते थे। (फुस्स) बुद्ध ने भी उसके बारे में वैसी ही भविष्यद्वाणी की। उन भगवान् का **काशी** नामक नगर था। **जयसेन** नामक राजा पिता था। **सिरिमा** नामक माता थी। **सुरक्खित** और **धम्मसेन** (दो) प्रधान शिष्य थे। **सभिय** नामक उपस्थायक था। **चाला** और **उपचाला** (दो) प्रधान शिष्याएँ थी। **आँवले के** वृक्ष (की) बोधि थी। अट्ठावन हाथ ऊँचा शरीर था, और नव्बे हजार वर्ष की आयु थी।

"उस मण्ड-कल्प में अनुत्तर=अनुपम=असदृश, लोक में सर्वश्रेष्ठ फुस्स नामक बुद्ध हुए।"

(१९) विपश्यी बुद्ध

इस कल्प से इकानवे कल्प पहले भगवान् विपस्सी उत्पन्न हुए। उनके भी तीन शिष्य-सम्मेलन थे। पहले सम्मेलन मे अडसठ लाख, दूसरे मे एक लाख, तीसरे मे अस्सी हज़ार। उस समय बोधिसत्त्व बडे ऋद्धिमान्, महा प्रतापी, अतुल नामक नाग राजा थे। (अतुल ने) सप्त रत्न जडित, सोने का सिहासन भगवान् (विपश्यी) को प्रदान किया। उन (भगवान्) ने भी भविष्यद्वाणी की—"अब से इकानवे कल्प बीत जाने पर तू बुद्ध होगा।"

उन (भगवान्) का **बन्धुमती** नाम का नगर था। **बन्धुमान्** नाम का राजा पिता था। **बन्धुमती** नाम की माता थी। **खण्ड** और **तिष्य** प्रधान शिष्य थे। **अशोक** नामक परिचारक था। **चन्द्रा** और **चन्द्रमित्रा** प्रधान शिष्याएँ थी। **पाटलि-वृक्ष** (की) बोधि थी। शरीर अस्सी हाथ ऊँचा था और शरीर की प्रभा सदैव सदैव सात योजन तक फैली रहती थी। उनकी आयु अस्सी हजार वर्ष की थी।

"(भगवान्) फुस्स के बाद विपस्सी नामक नर-श्रेष्ठ, द्रष्टा, बुद्ध लोक में उत्पन्न हुए।"

(२०) शिखी बुद्ध

इस कल्प से इकत्तीस कल्प पहले **सिखी** (शिखी) और **वेस्सभू** (विश्वभू) दो बुद्ध उत्पन्न हुए। सिखी के भी तीन शिष्य-सम्मेलन हुए। पहले सम्मेलन मे एक लाख भिक्षु थे। दूसरे में अस्सी हज़ार, तीसरे मे सत्तर (हज़ार)। उस समय

(हमारे) बोधिसत्त्व अरिन्दम नामक राजा थे। उन्होंने बुद्ध सहित भिक्षु-संघ को चीवर भोजन और (महादान) दे, सप्त रत्नों में सजा गज-रत्न दे, फिर (गज-रत्न के बदले में), उसके समान मूल्य की विहित (=कप्पिय)' वस्तुएँ दीं। उनने भी कहा—'अब से इकत्तीस कल्प बीत जाने पर, तू बुद्ध होगा।"

उन भगवान् का अरुणवती नाम का नगर था। अरुण नाम का क्षत्रिय पिता था। प्रभावती नाम की माता थी। अभिभू और सम्भव प्रधान शिष्य थे। क्षेमङ्कर नामक परिचारक था। सखिला और पदुमा प्रधान शिष्याएँ थीं। पुण्डरीक वृक्ष (की) बोधि थी। सैंतीस हाथ ऊँचा शरीर था और शरीर की प्रभा तीन योजन तक फैली होती थी। सैंतीस हज़ार वर्ष की उनकी आयु थी।

(भगवान्) विपस्सी के बाद, अतुलनीय, अद्वितीय, नर-श्रेष्ठ सिखि नामक जिन बुद्ध हुए।

(२१) विश्वभू बुद्ध

उनके बाद वेस्सभू नामक शास्ता उत्पन्न हुए। उनके भी तीन शिष्य सम्मेलन हुए। पहले सम्मेलन में अस्सी लाख भिक्षु थे, दूसरे में सत्तर(-लाख) तीसरे में साठ लाख। उस समय (हमारे) बोधिसत्त्व सुदर्शन नामक राजा थे। वे बुद्ध सहित भिक्षु-संघ को चीवर और भोजन दे, उनके पास प्रव्रजित हुए। वह सद् (-आचार) तथा (सद्-) गुणों से युक्त थे। बुद्ध रत्न में उनकी अपार श्रद्धा थी। उन भगवान ने भी कहा—"अब के इकत्तीस कल्प बीत जाने पर तू बुद्ध होगा।"

उन भगवान् का अनूपम नाम का नगर था। सुप्पतीत (सुप्रतीत) नाम का राजा पिता था। यशोवती नामक माता थी। सोण और उत्तर प्रधान शिष्य थे। उपशान्त नामक परिचारक था। दामा और सुमाला प्रधान शिष्याएँ थीं। शाल-वृक्ष (की) बोधि थी। साठ हाथ ऊँचा शरीर था। साठ हज़ार वर्ष की उनकी आयु थी।

उसी मण्ड-कल्प में अतुलनीय, अद्वितीय, वेस्सभू नाम के बुद्ध लोकमें उत्पन्न हुए।

' ऐसी चीजें, जिनका ग्रहण, भिक्षु के लिए अनुचित न हो।

(२२) ककुसन्ध बुद्ध

उसके बाद इस कल्प मे ककुसन्ध, कोणागमन, काश्यप और हमारे भगवान्—यह चार बुद्ध उत्पन्न हुए। भगवान् ककुसन्ध का एक ही सम्मेलन हुआ। उसमे चालीस हजार भिक्षु एकत्र हुए। उस समय (हमारे) बोधिसत्त्व खेम नामक राजा थे। उन्होने बुद्ध सहित भिक्षु-सघ को पात्र-चीवरो सहित भोजन तथा अजन आदि दवाइयाँ प्रदान की और बुद्ध का धर्मोपदेश सुन प्रव्रज्या ग्रहण की। उनने भी कहा—"तू बुद्ध होगा।"

भगवान् ककुसन्ध का खेम नाम का नगर था। अग्निदत्त नामक ब्राह्मण पिता था। विशाखा नामक ब्राह्मणी माता थी। विधुर तथा सञ्जीव प्रधान शिष्य थे। बुद्धिज नामक परिचारक था। सामा तथा चम्पका प्रधान शिष्याएँ थी। महान् शिरीष-वृक्ष (की) बोधि थी। चवालीस हाथ ऊँचा शरीर था। आयु उनकी चालीस हजार वर्ष की थी।

भगवान् (वेस्सभू) के बाद नर-श्रेष्ठ, अप्रमेय, दुराक्रमणीय ककुसन्ध नाम के बुद्ध हुए।

(२३) कोणागमन बुद्ध

उनके बाद कोणागमन बुद्ध उत्पन्न हुए। उनका भी एक ही शिष्य-सम्मेलन हुआ। उसमे तीस हजार भिक्षु (एकत्र) हुए। उस समय हमारे बोधिसत्त्व पर्वत नामक राजा थे। उन्होने अमात्यो के साथ, बुद्ध के पास जा धर्मोपदेश सुना, और बुद्ध सहित भिक्षु-सघ को निमन्त्रित कर, प्रतूर्ण, चीनवस्त्र, रेशम (कोसेय्य) कम्बल, दुकूल और स्वर्ण-वस्त्र के साथ भोजन प्रदान कर शास्ता के पास प्रव्रज्या ग्रहण की। उनने भी कहा—"तू बुद्ध होगा।"

उन भगवान् का **सोभवती** नाम का नगर था। **यज्ञदत्त** नामक ब्राह्मण पिता था। **उत्तरा** नामक ब्राह्मणी माता थी। **भीयस** और उत्तर (दो) प्रधान शिष्य थे। **स्वस्तिज** नाम का परिचारक था। **सुभद्रा** और **उत्तरा** प्रधान शिष्याएँ थी। **उदुम्बर** (गूलर) वृक्ष (की) बोधि थी। तीस हाथ ऊँचा शरीर था। तीस सहस्त्र वर्ष की उनकी आयु थी।

"(भगवान्) ककुसन्ध के बाद नर-श्रेष्ठ, नर-पुङ्गव, लोक-ज्येष्ठ, कोणागमन नामक जिन सम्बुद्ध हुए।"

(२४) काश्यप बुद्ध

उनके बाद लोक में काश्यप नाम के बुद्ध शास्ता उत्पन्न हुए। उनका भी एक ही शिष्य-सम्मेलन हुआ। उसमें बीस हज़ार भिक्षु (एकत्र) हुए। उस समय (हमारे) बोधिसत्त्व तीनो वेदो मे पारगत ज्योति-पाल नामक ब्राह्मण-युवक थे। भूमि-आकाश (सर्वत्र) प्रसिद्ध, घटिकार नाम का कुम्हार उनका मित्र था। वह अपने (मित्र) के साथ शास्ता के पास गये और उपदेश सुन, भिक्षु बन गये। प्रयत्न-शील बन तीनों पिटकों[1] को सीखा और अपने शारीरिक कर्त्तव्यों[2] की पूर्ति से बुद्ध धर्म के लिए भूषण बने। काश्यप बुद्ध ने भी कहा—"तू बुद्ध होगा।"

उन भगवान् का जन्म-नगर बनारस (=वाराणसी) था। ब्रह्मदत्त नामक ब्राह्मण पिता था। धनवती नामक ब्राह्मणी माता थी। तिस्स और भारद्वाज—दो प्रधान शिष्य थे। सर्व-मित्र नाम का परिचारक था। अनुला तथा उरुवेला प्रधान शिष्याएं थी। न्यग्रोध-वृक्ष (की) बोधि थी। बीस हाथ ऊँचा शरीर था। बीस हज़ार वर्ष की उनकी आयु थी।

"(भगवान्) कोणागमन के बाद नर-श्रेष्ठ, धर्म-राज, प्रभकर काश्यप नामक जिन बुद्ध हुए।"

जिस कल्प में दीपकर बुद्ध उत्पन्न हुए, उस कल्प मे अन्य भी तीन बुद्ध हुए। लेकिन उनके पास (हमारे) बोधिसत्त्व के बुद्ध होने की भविष्यद्वाणी (=व्याकारण) नही हुई, इस लिए वे (तीन बुद्ध) यहा नही दिखाये गये। लेकिन अर्थ-कथा[3] में उस कल्प से आरम्भ करके सभी बुद्धों को दिखाने (=वर्णित करने) के लिए यह कहा गया है —

'त ण्हं ङ्क र, मे ध ङ्क र, फिर श र ण ङ्क र, दी प ङ्क र बुद्ध, न र-श्रेष्ठ को ण्ड ञ्ज, म ङ्ग ल, सु म न, रे व त, सो भि त मु नि, अ नो म द र्शी, प दु म, ना र द, प दु मु त्त र, सु मे ध, सु जा त, म हा य श स्वी प्रि य द र्शी, अ र्थ द र्शी, ध र्म द र्शी, सि द्धा र्थ लोकनायक, ति स्स, फु स्स बु द्ध, वि प स्सी, सि खि, वे स्स भू,

---

[1] सूत्र-पिटक, विनय-पिटक तथा अभिधर्म-पिटक।

[2] विहार में झाड़ू देना आदि।

[3] बुद्धवंश की अट्ठकथा।

क कु स न्ध, को णा ग म न, नायक का श्य प—यह सब वीतराग, सयमी, बुद्ध महा अन्धकार को नाश करते हुए, सौररश्मियो की तरह उत्पन्न हुए, और अग्नि-पुंज की तरह जलकर, शिष्यों-सहित निर्वाण को प्राप्त हुए।'

धर्मों का आचरण

इस प्रकार हमारे बोधिसत्त्व, दीपकर आदि चौवीस बुद्धो के पास से अधिकार प्राप्त करते हुए, लक्षाधिक चार असखेय्य-कल्पो (तक) आये। इस (भद्र कल्प-युग मे) भगवान् काश्यप-बुद्ध के बाद इन सम्यक् सम्बुद्ध के अतिरिक्त दूसरे कोई बुद्ध नहीं (हुए)। इस प्रकार दीपकर आदि चौवीस बुद्धो ने जिनके लिए भविष्यद्वाणी की, उन बोधिसत्त्व के बारे मे (कहा है) —

"मनुष्यत्त्व जाति, (पुरुष-) लिङ्ग, (उत्तम-) हेतु (=भाग्य पूर्व-कर्म का फल) बुद्ध से भेंट, प्रव्रज्या, गुणो की प्राप्ति, अधिकार, सदिच्छा; इन आठ बातो से युक्त होने पर, सकल्प (=अभिनीहार) पूरा होता है।"

इन आठ बातो पर भली भाँति विचार कर, (हमारे बोधिसत्त्व ने दीपकर (बुद्ध) के चरणो मे अभिनीहार किया—"हन्त! मैं जहाँ तहाँ से बुद्धत्व प्राप्ति के सहायक गुणो की खोज करूँगा।" फिर उत्साह पूर्वक खोजते हुए पहले पहल दान-पारमिता को देखा। (इन प्रकार) दान पारमिता आदि बुद्ध बनाने वाली बातो की ओर ख्याल गया। उन (बुद्ध-कारक) बातो को पूरा करते हुए, वह वेस्सन्तर के जन्म तक आये। ऐसे (सावनो में लग्न हो) चले आते (बोधिसत्व की) तथा दूसरे बोधिसत्त्वो की सुफलता को (इस प्रकार) वर्णित किया गया है—

"इस प्रकार जो सर्वाङ्ग-पूर्ण पुरुष है, जिसका बुद्ध होना निश्चित है, वह एक अरब कल्प तक के लम्बे काल में आवागमन करते हुए भी, अ वी चि,[1] तथा लो का न्त री[2] में उत्पन्न नही होते, और न ही वह नि ज्झा म तृष्ण[3] क्षुधापिपासा,

---

[1] आठ महान् नरको में से सबसे नीचे का नरक।

[2] तीन चक्रवाल के बीच के अत्यन्त शीत-नरक।

[3] प्रेत की योनि।

क ल क ञ्ज[1] जैसी योनियो में जाते हैं। दु र्ग ति[2] में जाने पर भी वह छोटे छोटे जीव के रूप में पैदा नहीं होते। मनुष्य-योनि में पैदा होने पर, वह जन्मान्ध पैदा नहीं होते। वह वहरे नहीं होते, और न ही गुंगे होते हैं। वह स्त्री-योनि में नहीं जाते, न ही दोनो लिङ्गो वाले तथा नपुसक (होते हैं)। ऐसे पुरुष, जिनका वुद्ध होना निश्चित है, वह (च्यत योनियो की ओर) नहीं लौटते। वह सर्वत्र शुद्ध और आ न न्त र्य[3] कर्मों से मुक्त होते हैं। वह क र्म क्रि या-दर्शी[4] पुरुष झूठी धारणा नहीं ग्रहण करते। यदि वह स्वर्ग में पैदा होते हैं भी, तो अ स ञ्ञी[5] (योनि) में उत्पन्न नहीं होते। शु द्धा वा स[6] देव-लोक में (उनके लिए उत्पन्न होने का) कारण नहीं होता। नैष्कम्य के झुके हुए, भवाभव वियुक्त सत्पुरुष सब पारमिताओं को पूरा करते, लोकोपकार के लिए विचरण करते हैं।

१० जातकों में पारमिताओं का अभ्यास

(१) दान पारमिता

इन महात्म्यों को प्राप्त करते हुए ही (बोधिसत्त्व अन्तिम जन्म तक)पहुँचे। उन्होंने पारमिताओं को पूर्ण करते हुए, अकीर्ति ब्राह्मण, सत्र ब्राह्मण धनञ्जय राजा, महासुदर्शन, महागोविन्द, निमि महाराज, चन्द्रकुमार, विसय्ह श्रेष्ठी, सिवि राजा तथा वेस्सन्तर के जन्मो मे, दान-पारमिता पूरा करने मे पराकाष्ठा कर दी। लेकिन शश-पण्डित जातक मे तो निश्चयरूप से (समझो)—

---

[1] असुर-योनि।

[2] तिरश्चीन-योनि।

[3] मातृ-हत्या, पितृ-हत्या, अर्हत की हत्या, वुद्ध के शरीर में जख्म करके उनका रक्त बहाना, सघ-भेद (=सघ में नाइत्तफाकी पैदा करना)। यह पाँच अनन्तर-कर्म हैं। इन कर्मों का फल तुरन्त और अवश्य भोगना पडता है।

[4] कर्म और उनका फल मानने वाले।

[5] रूप-लोक की योनियो में से एक।

[6] अनागामी-फल प्राप्त (व्यक्ति) फिर इस लोक में उत्पन्न नहीं होते। वे शुद्धावास लोक में उत्पन्न हो, वहीं आवागमन से मुक्त हो जाते हैं।

याचक को देख कर, मैंने अपने शरीर तक को दे दिया। दान देने में मेरे समान (कोई) नहीं; यह मेरी दान-पारमिता है।

इस प्रकार शरीर प्रदान करते हुए उनकी दान-पारमिता परमार्थ-पारमिता हुई।

(२) शील-पारमिता

इसी प्रकार शीलव नाग-राज, चम्पेय्य नाग-राज, भूरिदत्त नाग-राज, छद्दन्त नाग-राज, जय-द्दिश राजा के पुत्र अलीन शत्रु कुमार के जन्मो मे शील-पारमिता की पूर्ति की चरम सीमा नही, लेकिन शखपाल के जन्म मे तो निश्चय-रूप से (मोचा)—

शूल से छेदने और शक्ति (-आयुध) से प्रहार करने पर भी सपेरे के प्रति मुझे क्रोध नहीं होता। यह मेरी शील-पारमिता है।

इस प्रकार आत्म-त्याग करते हुए (उन) की शील-पारमिता परमार्थ-पारमिता हुई।

(३) नैष्क्रम्य पारमिता

उसी प्रकार सौमनस्य कुमार, हस्तिपाल कुमार तथा अयोधर पण्डित के जन्मो में महान् राज्य को छोड नैष्क्रम्य पारमिता की पूर्ति की सीमा नही। चूल-सूतसोम जातक मे तो निश्चय रूप से—

मैंने अपने हाथ के महान् राज्य को थूक की तरह त्याग दिया। और उसको छोडते हुए आसक्ति (का अनुभव) नही हुआ। यह मेरी नैष्क्रम्य पारमिता है।

इस प्रकार निर्लिप्त हो राज्य छोड कर कामना रहित होने से (उन) की नैष्क्रम्य पारमिता परमार्थ-पारमिता हुई।

(४) प्रज्ञा पारमिता

इसी प्रकार विधुर पण्डित, महागोविन्द पण्डित, कुदाल पण्डित, अरक पण्डित, बोधि परिव्राजक, महौषध पण्डित के जन्मो मे, प्रज्ञा पारमिता की पूर्ति की सीमा नही। लेकिन सेनक पण्डित के समय सत्तुभस्त जातक मे तो निश्चय रूप से—

प्रज्ञा की खोज में, मैंने ब्राह्मण को दुख से मुक्त किया। प्रज्ञा में (कोई) मेरे समान नहीं है। यह मेरी प्रज्ञा पारमिता है।

थैली के भीतर वाले साँप को दिखाने में (उन) की प्रज्ञा पारमिता परमार्थ पारमिता हुई।

(५) वीर्य पारमिता

इसी प्रकार वीर्य पारमिता आदि (दूसरी) पारमिताओं की पूर्ति की भी (दूसरे जन्मो में चरम) सीमा नही।

हाँ, महाजनक जातक मे तो निश्चय रूप से—

जल में किनारा न देख सकने वाले सभी मनुष्य मर गए, (किन्तु मेरे) चित्त में विकार नहीं उत्पन्न हुआ। यह मेरी वीर्य पारमिता है।

इस प्रकार महा समुद्र को पार करते हुए (उन) की वीर्य पारमिता परमार्थ पारमिता हुई।

(६) क्षान्ति पारमिता

क्षान्तिवाद जातक में—

"तेज फरसे से जड़ वस्तु की तरह मुझे काट रहे थे, इस पर भी, काशीराज के प्रति मुझे क्रोध नहीं आया। यह मेरी क्षान्ति (क्षमा) पारमिता है।"

इस प्रकार जड वस्तु की भाँति भयकर पीडा को सहते हुए वह क्षान्ति पारमिता परमार्थ पारमिता हुई।

(७) सत्य पारमिता

महासुतसोम जातक में—

"सत्यवादिता की रक्षा करते हुए, अपने जीवन का परित्याग कर, मैंने एक सौ क्षत्रियो को मुक्त किया। (यह मेरी) परमार्थ सत्य-पारमिता है।"

इस प्रकार जीवन परित्याग कर सत्य की रक्षा कर वह सत्य-पारमिता परमार्थ पारमिता हुई।

(८) अधिष्ठान पारमिता

मूग-पक्ख (=मूक पक्ष) जातक है—

न तो मेरा माता-पिता से द्वेष है, न महाशय से ही द्वेष है। मुझे बुद्धपद (=सर्वज्ञता) प्रिय है। इसलिए मैंने इस व्रत का अधिष्ठान किया है।

इस प्रकार जीवन परित्याग करके भी (अपने) व्रत का अधिष्ठान (=दृढता से पालन) करना (यह उन) की अधिष्ठान पारमिता परमार्थ-पारमिता हुई।

(९) मैत्री पारमिता

एकराज जातक में—

न मुझे कोई डराता है, न मै किसी से डरता हूँ। मै मैत्री-बल पर निर्भर हो सदैव वन में विचरता हूँ।

इस प्रकार जीवन तक की परवाह न करके मैत्री करना (यह उन) की मैत्री-पारमिता परमार्थ-पारमिता हुई।

(१०) उपेक्षा पारमिता

लोमहंस जातक में—

मुर्दो तथा हड्डियों का तकिया बनाकर श्मशान में सोता हूँ। ग्वाले मेरे पास आकर अनेक प्रकार के रूप दिखाते है।

इस प्रकार ग्रामीण बालको के थूक फेंकने आदि से पीडा देने तथा, माला गन्ध उपहार आदि द्वारा सुख देने से भी समभाव (उपेक्षा) का उल्लघन नही किया। इस प्रकार की (उनकी) उपेक्षा पारमिता परमार्थ-पारमिता हुई।

यहाँ यह सक्षेप से कहा गया है, विस्तार के लिए चरियापिटक[1] को देखना चाहिए।

इस प्रकार पारमिताओ को पूरा कर वह वेस्सन्तर के जन्म (आत्म भाव) मे आये।

यह पृथिवी अचेतन है। सुख दुख से प्रभावित नहीं होती है; किन्तु वह भी मेरे दान के बल से सात बार काँपी।

इस प्रकार महापृथ्वी को कँपाने वाले महापुण्य कर्मा, (हमारे बोधिसत्त्व) आयु को बिता कर, तुषित-देवलोक में उत्पन्न हुए।

भगवान् 'दीपकर के चरणो' से आरम्भ करके तुषित-लोक मे जन्म लेने तक के इस भाग को 'दूरेनिदान' जानना चाहिए।

---

[1] खुद्दक निकाय का एक ग्रन्थ।

ख. अविदूरेनिदान

१. गौतम का (बाल्य) चरित

(१) देव-लोक से मनुष्य-लोककी ओर

बोधिसत्त्व के तुषित लोक में रहते समय ही बुद्ध-कोलाहल (घोप) पैदा हुआ। लोक में कल्प-कोलाहल, बुद्ध-कोलाहल तथा चक्रवर्ती-कोलाहल—तीन प्रकार के कोलाहल उत्पन्न होते हैं। (आज से) लाख वर्ष के बीत जाने पर कल्प उत्थान होगा (सोच) काम-धातु के लोक-व्यूह नामक देवता, खुले सिर, बिखरे केश, रोनी-शकल बना, हाथो से आँसू पोछते हुए, लाल वस्त्र पहने अत्यन्त कुरूप वेश धारण किये मनुष्य-लोक में घूमते हुए इस प्रकार चिल्लाते है—"मित्रो! लाख वर्ष व्यतीत होने पर कल्प-उत्थान होगा—यह लोक नष्ट हो जायगा। महा-समुद्र सूख जायगा। यह महापृथ्वी और पर्वत-राज सुमेरु उड जायेंगे, नष्ट हो जायेंगे। ब्रह्म-लोक तक (समस्त) ब्रह्माण्ड का नाश हो जायगा। मित्रो! मैत्री-भावना की भावना करो। करुणा, मुदिता, उपेक्षा (भावना) की भावना करो। माता-पिता की सेवा करो। कुल में जो ज्येष्ठ हो उनकी सेवा करो।" यह कल्प-कोलाहल हुआ।

सहस्र वर्ष बीतने पर, लोक मे सर्वज्ञ बुद्ध उत्पन्न होगे (सोच) लोक-पाल देवता "मित्रो! अब से सहस्र वर्ष बीतने पर लोक मे बुद्ध उत्पन्न होगे" उद्घोपित करते हुए घूमते है। यह बुद्ध-कोलाहल हुआ।

सौ वर्ष के बीतने पर चक्रवर्ती राजा उत्पन्न होगा, (सोच) देवता "मित्रो! अब मे सौ वर्ष बीतने पर, लोक में चक्रवर्ती राजा उत्पन्न होगा" उद्घोपित करते हुए घूमते है। यह चक्रवर्ती-कोलाहल हुआ।

यह तीनो कोलाहल महान्-कोलाहल होते है।

बुद्ध-कोलाहल के शब्द को सुन कर, सारे दस सहस्र चक्रवालो के देवता एक स्थान पर एकत्रित हो, 'अमुक व्यक्ति बुद्ध होगा' जान पूर्व लक्षणो को देख उसके पास जा प्रार्थना (याचना) करते है।

जब वह पूर्ण-लक्षण उदय हो गये, तो (इस) चक्रवाल के सभी देवताओं—चतुर्महाराजिक, शक्र, सुयाम, सतुपित, परनिर्मित-वशवर्ती—ने महाब्रह्माओं

के साथ एक चक्रवाल में इकट्ठे हो (सलाह) की, (और फिर) तुषित-लोक में वोधिसत्त्व के पास जा कर, उन्होने प्रार्थना की —"मित्र ! तुमने जो दस पारमिताओ की पूर्ति की, वह न तो इन्द्रासन पाने के लिए, न मार, ब्रह्मा अथवा चक्रवर्ती के पद की प्राप्ति के लिए। लोक-निस्तार के लिए बुद्धत्व की इच्छा से ही उन्हे तुमने पूरा किया। सो मित्र ! अब यह बुद्ध होने का काल है। मित्र ! यह बुद्ध होने का समय है।"

(२) बोधिसत्व का जन्म कुल देश आदि

उस समय वोधिसत्त्व ने देवताओ को वचन दिए विना ही (अपने जन्म सम्बन्धी) समय, द्वीप, देश, कुल, माता तथा आयु-परिमाण—इन पाच 'महाविलोकनो' पर विचार किया। (सर्व) प्रथम, 'समय उचित है या नही' (पर) समय का विचार किया। लाख वर्ष से ऊपर की आयु का समय (बुद्धो के जन्म के लिए) उचित समय नही होता। सो क्यो ? उस समय प्राणियो को जन्म, जरा, मरण का भान नही होता। बुद्धो का धर्मोपदेश तीन लक्षणो से रहित[1] नही होता। उस समय 'अनित्य-दु ख तथा अनात्म' सम्बन्धी उपदेश करने पर लोग "यह क्या कहते है ?" (कह कर) उसे ध्यान से नही सुनते, न उसपर श्रद्धा करते है। इसीलिए उन्हे (धर्मका) बोध नही हो सकता। उसके न होने पर बुद्ध-धर्म (उनके लिए) सहायक (=नैर्याणिक) नही होता। इसीलिए वह समय अनुकूल नही है ? सौ वर्ष से कम आयु का समय अनुकूल समय नही होता। क्यो ? सौ वर्ष से कम की आयु वाले प्राणियो मे राग-द्वेष वहुत होते है। अधिक राग-द्वेष वाले प्राणियो को दिया गया उपदेश भी प्रभावोत्पादक नही होता। पानी पर लकडी से खीची हुई लकीर की तरह वह शीघ्र ही नष्ट हो जाता है। इसीलिए यह भी समय अनुकूल समय नही है।

महासत्त्व ने देखा कि लाख वर्ष से नीचे और सौ वर्ष से ऊपर का समय अनुकूल समय है और कि वह सौ वर्ष की आयुवाला समय है, इसलिए बुद्धो के उत्पन्न होने का समय है।

तव द्वीप का विचार करते हुए,उपद्वीपो सहित चारो द्वीपो को (देख) विचार

---

[1] अनित्य, दुक्ख तथा अनात्म-भाव।

किया—दूसरे तीनो द्वीपों[1] मे बुद्ध उत्पन्न नही हुआ करते, जम्बू-द्वीप मे ही वह जन्म लेते है, और (जम्बू-द्वीप मे जन्मने का) निश्चय किया। फिर 'जम्बू-द्वीप तो दस हजार योजन बड़ा है' कौन से प्रदेश में बुद्ध जन्म लेते हैं ? इस तरह प्रदेश पर विचार करते हुए मध्य-प्रदेश को देखा। "मध्य देश की पूर्व दिशा में कजगल[2] नामक कस्बा है, उसके बाद बड़े शाल (के वन) हैं, और फिर आगे सीमान्त (प्रत्यन्त) देश। पूर्व-दक्षिण मे सललवती[3] नामक नदी है, उसके आगे सीमान्त देश। दक्षिण दिशा में सेतकण्णिक[4] नामक कस्बा है, उसके बाद सीमान्त देश। पश्चिम दिशा मे थून[5] नामक ब्राह्मण-ग्राम है, उसके बाद सीमान्त देश। उत्तर दिशा मे उशीर-ध्वज[6] नामक पर्वत है, उसके बाद सीमान्त देश।'—इस प्रकार विनय (-पिटक) मे (मध्य-) देश का वर्णन है।

यह (मध्य-देश) लम्बाई मे तीन सौ योजन, चौडाई में ढाई सौ योजन, और घेरे में नौ सौ योजन है। इसी प्रदेश मे बुद्ध, प्रत्येक-बुद्ध, प्रधान अग्र-श्रावक (= प्रधान शिष्य) महाश्रावक, अस्सी महा-श्रावक, चक्रवर्ती राजा, तथा दूसरे महाप्रतापी, ऐश्वर्यशाली, क्षत्रिय, ब्राह्मण, वैश्य पैदा होते है। और वही यह कपिलवस्तु[7] नामक नगर है, वही मुझे जन्म लेना है'—यह निश्चय किया।

तब कुल का विचार करते हुए—"बुद्ध वैश्य या शूद्र कुल मे उत्पन्न नही होते, लोकमान्य क्षत्रिय या ब्राह्मण, इन्ही दो कुलो मे जन्म लेते है। आज कल क्षत्रिय कुल लोकमान्य है। (इसलिए) उसी (कुल) में जन्म लूगा। शुद्धोदन नामक राजा मेरा पिता होगा (सोच) कुल का निश्चय किया।

फिर माता का विचार करते हुए—"बुद्धो की माता चञ्चल और शराबी तो होती नही। लाग कल्प से (दान आदि) पारमिताएँ पूरी करने वाली, और

---

[1] अपर-गोयान, पूर्व-विदेह तथा उत्तर-कुरु में।

[2] वर्तमान कंकजोल, जिला सथाल पर्गना (बिहार)।

[3] वर्तमान सिलाई नदी (हजारी बाग और मेदनीपुर जिला)।

[4] हजारी बाग जिले में कोई स्थान।

[5] थानेश्वर, जिला कर्नाल।

[6] हिमालय का कोई पर्वत-भाग।

[7] देखो तिलौराकोट (नेपाल की तराई)।

जन्म से ही अखण्ड पञ्च शील (सदाचार) रखने वाली होती है। यह महा-माया नामक देवी ऐसी (ही) है, यह मेरी माता होगी। लेकिन इसकी (बाकी) आयु कितनी होगी' (विचारते हुए) दस महीने सात दिन की आयु देखी।

(३) मायादेवी के गर्भ में

इस प्रकार इन पाँच-'विलोकनो' को विलोकन कर, हाँ मित्रो! मेरे बुद्ध होने का समय है'—इस प्रकार वचन दे देवताओ को सन्तुष्ट किया, और "आप लोग जाइए" (कह) देवताओ को विदा कर, तुषित देवताओ के साथ, तुषित लोक के नन्दन वन में प्रवेश किया। सभी देवलोको मे नन्दन वन होते हैं। वहाँ (साथी) देवता (लोग),—'यहाँ से च्युत होकर (अमुक) सुगति को प्राप्त होते हैं—इस प्रकार बोधिसत्त्व को पूर्व के किये पुण्य कर्मो (के बल) से मिलने वाले स्थानो का स्मरण दिलाते हुए घूम रहे थे। इस प्रकार पुण्य कर्मों की स्मृति कराते देवताओ के साथ वे वहाँ रहे। फिर वहाँ से च्युत हो कर, महामाया देवी की कुक्षि मे प्रवेश किया।

उस (गर्भ) प्रवेश को स्पष्ट करने के लिए क्रमानुसार कथा इस प्रकार है—उस समय कपिल वस्तु नगर मे आषाढ का उत्सव उद्घोपित हुआ था। जनता उत्सव मना रही थी। पूर्णिमा के सात दिन पहले महामाया देवी विना मद्य-पान के मालागन्ध से सुशोभित हो, उत्सव मना रही थी। सातवें दिन प्रात ही उठ, उसने सुगन्धित जल से स्नान कर, चार लाख का महादान दिया, और सब अलकारो से विभूषित हो, सुन्दर भोजन ग्रहण कर, उपोसथ (–व्रत) के नियमो (अङ्गो) को धारण किया। फिर सु-अलकृत शयनागार में प्रविष्ट हो, सुन्दर शय्या पर लेटे, निद्रित अवस्था में यह स्वप्न देखा—

'उसे चार-महाराज (दिक्पाल) शय्या सहित उठाकर, हिमवन्त (-प्रदेश) मे ले जा कर, साठ योजन के मन-शिला (नामक शिला) के ऊपर, सात योजन (छाया) वाले महान् शाल-वृक्ष के नीचे रख कर खडे हो गये।

तव उन (दिक्पालो) की देवियो ने आकर, (महामाया) देवी को अनोतप्त-दह में लेजाकर, मनुष्य-मल दूर करने के लिए स्नान कराया, दिव्य-वस्त्र पहनाया, गन्धो से लेप किया, दिव्य फूलो से सजाया। वहाँ से समीप ही रजत पर्वत है, जिसके अन्दर सुवर्ण-विमान है। वही पूर्व की ओर सिर करके दिव्य-

शयन बिछवा कर उन्होने उसे लिटाया। बोधिसत्त्व श्वेत सुन्दर हाथी बन समीप-वर्ती सुवर्ण-पर्वत पर विचर कर, वहाँ से उत्तर रजत-पर्वत पर चढे। फिर उत्तर दिशा से आ कर (उक्त स्थान पर पहुँचे)। उनकी रुपहली माला जैसी सूण्ड में श्वेत पद्म था। उन्होने मधुर नाद कर, स्वर्ण-विमान में प्रवेश कर फिर तीन बार माता की शय्या की प्रदक्षिणा की। फिर दाहिनी बगल को चीर, कुक्षि में प्रविष्ट हुए से जान पडे। इस प्रकार (बोधिसत्व ने) उत्तराषाढ नक्षत्र में गर्भ में प्रवेश किया।

दूसरे दिन जाग कर देवी ने इस स्वप्न को राजा से कहा। राजा ने चौंसठ प्रधान ब्राह्मणो को बुलवाया। गोबर-लीपी, खीलो (लाजा) आदि से मङ्गलाचरण की गई भूमि पर महार्घ आसन बिछवाये। उन पर ब्राह्मणो को बैठा घी, मधु, शक्कर से प्रस्तुत की गई खीर से सोने-चाँदी की थालियाँ भर कर, उन्हे सोने-चाँदी की ही थालियो से ढक कर परोसा। और नवीन वस्त्र तथा कपिला गौ आदि के दान से भी उन्हे सतर्पित किया। उनकी सब इच्छाएँ पूरी कर उन्होने ब्राह्मणो को स्वप्न की बात कह "स्वप्न का (फल) क्या होगा?" पूछा।

ब्राह्मणो ने कहा—"महाराज! चिन्ता न करे। आपकी देवी की कुक्षि में गर्भ प्रतिष्ठित हुआ है। वह स्त्री-गर्भ नही, पुरुष-गर्भ है। आपके पुत्र होगा। वह यदि घर (=गृहस्थ) में रहेगा, तो चक्रवर्त्ती राजा होगा, यदि घर से निकल कर, प्रव्रजित होगा, तो लोक में कपाट खुला (ज्ञानी) बुद्ध होगा।"

बोधिसत्व के गर्भ में आने के समय, समस्त दस-सहस्त्र ब्रह्माण्ड एक प्रहार से काँपने की तरह काँपे। बत्तीस पूर्व-शकुन (लक्षण) प्रकट हुए। दस सहस्त्र चक्रवालो में अनन्त प्रकाश हो उठा। मानो (प्रकाश) की उस कान्ति (श्री) को देखने के लिए ही, अन्धो को आँखें मिल गईं। बहरे शब्द सुनने लगे। गूंगे बोलने लगे। कुबडे सीधे हो गये। लँगडे पाव से चलने लगे। बन्धनो में पडे हुए सभी प्राणी बेडी हथकडी से मुक्त हो गए। सारे नरको की आग बुझ गई। प्रेतो की क्षुधा-पिपासा शान्त हो गई। पशुओ (तिरश्चीनो) का भय जाता रहा तमाम प्राणियो के रोग शान्त हो गये। सभी प्राणी प्रिय-भाषी हो गये। घोडे मधुर स्वर से हिनहिनाने लगे। हाथी चिंघाडने लगे। सारे वाद्य (=तुरिय) स्वय बजने लगे। मनुष्यो के हाथो के आभरण, बिना आपस में टकराये ही, शब्द करने लगे। सब दिशाएँ शान्त हो गईं। प्राणियो को सुखी करती, मृदुल शीतल

हवा चलने लगी। बे-मौसम के वर्षा वरसने लगी। पृथ्वी से भी पानी निकल कर वहने लगा। पक्षियो ने आकाश मे उडना छोड दिया—नदियो ने बहना छोड दिया महासमुद्र का पानी मीठा हो गया। सभी जगहे पाच रग के कमलो से ढक गई। जल थल मे उत्पन्न होने वाले सब प्रकार के पुष्प खिल उठे। वृक्षो के स्कन्धो मे, स्कन्ध-कमल, शाखाओ मे शाखा-कमल, लताओ मे लता-कमल पुष्पित हुए। स्थल पर शिलातलो को फाड कर, ऊपर ऊपर से, सात सात हो, दण्ड-कमल निकले। आकाश मे लटकने वाले कमल उत्पन्न हुए। चारो ओर से पुष्पो की वर्षा हुई। आकाश मे दिव्य वाद्य (=तूर्य) वजे। चारो ओर सारी दस-सहस्त्री लोक-धातु (=ब्रह्माण्ड) माला गुच्छ की तरह, दावकर वधे माला-समूह की तरह, सजे सजाये माला-आसन की तरह, एक माला-पंक्ति की तार, अथवा धूप गन्ध मे सुवासित खिली हुई चँवर की तरह परम शोभा को प्राप्त हुई।

वोधिसत्त्व के गर्भ मे आने के समय से ही वोधिसत्त्व और उनकी माता के संकट के निवारण करने के लिए चारो देव-पुत्रो (महाराज) हाथ मे खड्ग लिये हुए पहरा देते थे। (उसके वाद) वोधिसत्त्व की माता को पुरुष मे राग नही हुआ। वह वडे लाभ और यश को प्राप्त हो सुखी तथा अक्लान्त-शरीर रही। वह कुक्षिस्थ वोधिसत्त्व को सुन्दर मणि-रत्न मे पिरोए हुए पीले धागे की तरह देख सकती थी। क्योकि जिस कोख मे वोधिसत्त्व वास करते है, वह चैत्य के गर्भ के समान (फिर) दूसरे प्राणी के रहने या उपभोग करने योग्य नही रहती, इसलिए (वोधिसत्त्व की माता) वोधिसत्त्व के जन्म के (एक) सप्ताह वाद ही मर कर, तुषित देल-लोक मे जन्म ग्रहण करती है। जिस प्रकार दूसरी स्त्रियाँ दस मास से कम (या) अधिक में भी वैठी या लेटी भी, प्रसव करती है, ऐसा वोधिसत्त्व-माता नही करती। वह (वोधिसत्त्व को) दस मास कुक्षि मे रख कर, खडी ही प्रसव करती है। यह वोधि-सत्त्व-माता की धर्मता (विशेषता) है।

(४) सिद्धार्थ का जन्म

महामाया देवी भी पात्र मे तेल की भाँति, वोधिसत्त्व को दस मास कोख मे धारण कर, गर्भ के परिपूर्ण होने पर, नैहर (पीहर) जाने की इच्छा से शुद्धोदन महाराज से वोली—'देव, (अपने पिता के) कुल के देव-दह नगर को जाना चाहती हूँ। राजा ने 'अच्छा' कह, कपिलवस्तु से देवदह नगर तक के मार्ग को सम-तल

करा और केला, पूर्ण-घट, ध्वजा, पताका आदि से अलकृत करवा, देवी को सोने की पालकी मे विठा एक हजार अफसर तथा बहुत भारी सेवक-मण्डली के साथ भेज दिया।

दोनो नगरो के वीच में, दोनो ही नगर वालो का लुम्बिनी' वन नामक एक मङ्गल शाल वन था। उस समय (वह वन) मूल से लेकर शिखर की शाखाओं तक एक दम फूला हुआ था। शाखाओ तथा पुष्पो के वीच में पाच रङ्गो के भ्रमर गण, और नाना प्रकार के पक्षि-सघ मधुर,स्वर से कूजन करते विचर रहे थे। सारा लुम्बिनी-वन विचित्र लता-वन—जैसा प्रतापी राजा के सुसज्जित वाजार जैसा (जान पडता) था। उसे देख देवी के मन मे शाल वन मे क्रीडा करने की इच्छा उत्पन्न हुई। आमात्य, देवी को ले शाल-वन मे गये। देवी ने सुन्दर शाल के नीचे जा, शाल की डाली पकडनी चाही। शाल-शाखा अच्छी तरह सिद्ध किये वेंत की छडी की नोक की भाँति लटक कर देवी के हाथ के पास आ गई। उसने हाथ पसार कर शाखा पकड़ ली। उसी समय मे प्रसववेदना (कमर्ज-वायु) हुई। लोग (इर्द गिर्द) कनात घेर, स्वय अलग हो गये। शाल-शाखा पकडे, खडे ही खडे,उसे गर्भ-उत्थान हो गया। उस समय चारो शुद्ध-चित्त महाब्रह्मा ने सोने का जाल ले, पहुँच कर उस जाल में वोधिसत्त्व को ग्रहण किया, और माता के सम्मुख रख कर वोले— 'देवी सन्तुष्ट होओ। तुम्हें महाप्रतापी पुत्र उत्पन्न हुआ है।'

जिस प्रकार अन्य प्राणी माता की कोख से निकलते समय, गन्दे, मल-विलिप्त निकलते है, वैसे वोधिसत्त्व नही निकलते। वोधिसत्त्व धर्मासन (व्यास-गद्दी) से उतरे धर्म-कथिक (—धर्मोपदेशक) के समान, सीढी से उतरे पुरुष की तरह, दोनो हाथ और दोनो पैर पसारे खडे हुए (मनुष्य) के समान, माता की कोख के मल से विलकुल अलिप्त, शुद्ध, विशुद्ध, काशी-देश के वस्त्र में रक्खे मणि-रत्न के समान, चमकते हुए माताकी कोख से निकले। ऐसा होने पर भी वोधिसत्त्व और वोधिसत्त्व की माता के सत्कारार्थ, आकाश से दो जल की धाराओ ने निकल, वोधि-सत्त्व और उनकी माता के शरीर को ठडा किया।

तव चारो महराजाओ ने सोने के जाल में लेकर खडे ब्रह्माओ के हाथ से,

---

' रुम्मिन् देइ, नौतनवा स्टेशन (पूर्वोत्तर रेलवे) से प्रायः ८ मील पश्चिम, नैपाल की तराई में।

(बोधिसत्व) को माङ्गलिक समझे जाने वाले, कोमल मृग-चर्म मे ग्रहण किया। उनके हाथ से मनुष्यो ने दुकूल की तह (चुम्बट) मे ग्रहण किया। मनुष्यो के हाथ से निकल कर (बोधिसत्त्व) ने पृथ्वी पर खडे हो, पूर्व दिशा की ओर देखा। अनेक सहस्र चक्रवाल एक आँगन से हो गये। मनुष्य गन्ध माला आदि से पूजा करते हुए बोले—"महापुरुष! यहाँ आप जैसा भी कोई नही है, बढकर तो कहाँ होगा।" बोधिसत्त्व ने चारो दिशाएँ, चारो अनुदिशाएँ, नीचे ऊपर—दशो ही दिशाओ का अवलोकन कर, अपने जैसा किसी को न देख, उत्तर दिशा की ओर (करके) क्रम से सात पग गमन किया। (उस समय) महाब्रह्मा श्वेत-छत्र सुयाम (देवता) ताल-व्यजन (—पखा), और अन्य देवता शेष राजकीय ककुध-भाण्ड' हाथ मे लिये अनुगमन कर रहे थे। सातवे पग पर ठहर "मै ससार मे सर्व-श्रेष्ठ हूँ" नर-पुङ्गवो की इस प्रथम निर्भीक वाणी का उच्चारण करते हुए सिहनाद किया।

बोधिसत्त्व ने इस प्रकार माता की कोख से निकलते ही तीन जन्मो में, वाणी का उच्चारण किया—महोसध-जन्म मे, वेस्सन्तर-जन्म मे और इस जन्म मे। महोसध-जन्म मे तो बोधिसत्त्व के कोख से निकलते ही, देवेन्द्र शक्र आया और चन्दन-सार हाथ मे रख कर चला गया। बोधिसत्व उसे हाथ में लिये ही निकला। तब उनकी माता ने पूछा—"तात! क्या लेकर आया है?" "अम्मा! औषध?" औषध लेकर आया होने के कारण उसका नाम औषध-दारक ही कर दिया गया। उस औषध को लेकर बरतन (चाटी) मे डाल दिया। वह औषध अन्धे, बहरे इत्यादि सभी प्रकार के आने वाले रोगियो के रोग-उपशमन की दवाई हुई। तब "यह महौषध है, यह महौषध है," इस प्रकार की ख्याति उत्पन्न होने के कारण, (बोधिसत्त्व) का नाम भी महोषध ही पड गया। वेस्सन्तर के जन्म मे तो बोधिसत्त्व माता की कोख से निकलते ही 'मा! घर मे कुछ है? दान दूगा" पूछते हुए निकला। उसकी माता ने "तात, तू धनवान् कुल मे पैदा हुआ है" (कह) पुत्र की हथेली को अपनी हथेली पर रख, हजार की थैली रखवाई। इस जन्म मे तो केवल यह सिह-नाद ही किया। इस प्रकार बोधिसत्त्वो ने तीन जन्मो मे माता की कोख से निकलते ही, शब्द उचारण किया।

गर्भ धारण के समय की भाँति ही जन्म के समय भी बत्तीस शकुन, प्रकट हुए।

' खड्ग, छत्र, पगडी, पादुका तथा व्यजन (पखा)।

जिस समय लुम्बिनी वन में हमारे बोधिसत्त्व उत्पन्न हुए, उसी समय राहुल-माता देवी, आमात्य छन्न (=छन्दक) आमात्य कालउदायी, हस्तिराज आजानीय,[1] अश्वराज कन्थक, महाबोधि-वृक्ष, और खजानों से भरे चार घड़े भी उत्पन्न हुए। उनमें (क्रम से) एक गव्यूति (= ¼योजन = २ मील) भर, एक आधे योजन भर, एक तीन गव्यूति भर और एक योजन भर था। यह सात एक ही समय पैदा हुए। दोनों नगरों के निवासी कपिलवस्तु नगर को ही बोधिसत्त्व को लेकर लौटे।

'कपिलवस्तु नगर में शुद्धोदन महाराज को पुत्र हुआ है, यह कुमार बोधि-वृक्ष के नीचे बैठ कर बुद्ध होगा' (सोच) उसी दिन त्रयस्त्रिंश (तैंतीस) भवन के सन्तुष्ट-चित्त देव-गण वस्त्रों को उछाल-उछाल कर क्रीडा करने लगे।

(५) काल देवल की भविष्यद्वाणी

उस समय शुद्धोदन महाराज के कुलमान्य आठ समाधि (=समापत्ति) वाले काल-देवल नामक तपस्वी, भोजन करके, दिन में मनोविनोद के लिए त्रयस्त्रिंश देवलोक में गये। वहाँ दिन के विश्राम के लिए बैठे हुए, उन्होंने, उन देवताओं को देख कर पूछा—"किस कारण से तुम इस प्रकार सन्तुष्ट-चित्त हो क्रीडा कर रहे हो? मुझे भी वह बात बताओ।" देवताओं ने उत्तर दिया "मित्र! शुद्धोदन राजा को पुत्र उत्पन्न हुआ है। वह बोधि-वृक्ष के नीचे बैठ, बुद्ध हो, धर्मचक्र प्रवर्तित करेगा। हमें उसकी अनन्त बुद्ध-लीला देखनी, तथा (उसका) धर्म सुनने को मिलेगा—इस कारण से हम प्रसन्न-चित्त हैं।"

उनकी बात सुन, तपस्वी ने शीघ्र ही देवलोक से उतर, राज-महल में प्रवेश कर, बिछे आसन पर बैठ, पूछा—"महाराज! आपको पुत्र हुआ है, मैं उसे देखना चाहता हूँ।" राजा सु-अलङ्कृत कुमार को मँगा, तापस की वन्दना कराने को ले गया। बोधिसत्त्व के चरण उठ कर तापस की जटा में जा लगे। बोधिसत्त्व के जन्म में, बोधिसत्त्व के लिए दूसरा कोई वन्दनीय नहीं। यदि अजान में बोधि-सत्त्व का सिर तापस के चरण पर रखा जाता, तो तापस का सिर सात टुकड़े हो जाता। तापस ने—'मुझे अपने आपको नाश करना योग्य नहीं है' (सोच)

---

[1] उत्तम जाति का।

आसन से उठ हाथ जोड कर (प्रणाम किया)। राजा ने, इस आश्चर्य को देख, अपने पुत्र की वन्दना की। तपस्वी को अतीत के चालीस और भविष्य के चालीस—अस्सी कल्पो की (बात) याद आ सकती थी। उस ने वोधिसत्त्व के (शरीर के) लक्षणो को देख, "यह बुद्ध होगा या नही' इस बात का विचार कर मालूम किया, कि 'यह अवश्य बुद्ध होगा। यह अद्भुत पुरुष है' जान मुस्कराया। फिर सोचने लगा "इनके बुद्ध होने पर, मैं इसे देख सकूगा वा नही ?" सोचने से (मालूम हुआ) 'नही देख पाऊँगा, (इसके बुद्ध होने से) पहले ही मर कर अरूप-लोक मे—जहाँ सौ अथवा हजार बुद्धो के जाने पर भी ज्ञान-प्राप्ति (अववोध) नही हो सकती—उत्पन्न होऊँगा। तब 'ऐसे अद्भुत पुरुष को बुद्ध होने पर नही देख पाऊँगा, मेरा दुर्भाग्य है' सोच रो उठा। लोगो ने जब देखा—कि 'हमारे आर्य (=अय्य=बावा) अभी हँसे और फिर रोने लग गये' तो उन्होने पूछा—"क्यो भन्ते! क्या हमारे आर्य-पुत्र को कोई सकट होगा ?"

"इनको सकट नही है, यह निस्सशय बुद्ध होगे।"

"तो (आप) किस लिए रोते है ?"

"इस प्रकार के पुरुष को बुद्ध हुए नही देख सकूगा, मेरा बडा दुर्भाग्य (हानि) है—यही सोच अपने लिए रो रहा हूँ।"

फिर 'मेरे सम्बन्धियो मे से कोई इसे बुद्ध-हुआ देखेगा, या नही'—विचार, अपने भाजे नाळक को इस योग्य जान, अपनी वहिन के घर जाकर पूछा।

'तेरा पुत्र नाळक कहाँ है ?'

'घर मे है, आर्य।"

"उसे बुला।"

(भाजे के) पास आने पर बोला—"तात! महाराज शुद्धोदन के घर में पुत्र उत्पन्न हुआ है, वह बुद्ध-अकुर है। पैंतीस वर्ष बाद वह बुद्ध होगा, और तू उसे देख पायेगा। तू आज ही प्रव्रजित हो जा।"

वह—'मैं सत्तासी करोड धनवाले कुल मे उत्पन्न बालक हूँ, (तो भी) मामा मुझे अनर्थ मे नही लगा रहा है—सोच, उसी समय बाजार से काषाय (वस्त्र) तथा मट्टी का पात्र मँगवा, शिर-दाढी मुडा, काषाय वस्त्र पहिन, 'लोक मे जो उत्तम पुरुष है, उसीके नाम पर मेरी यह प्रव्रज्या है', यह (कहते) बोधिसत्त्व की ओर

अञ्जलि जोड, पाँचो अगो मे वन्दना की, फिर पात्र को झोली मे रख, उसे कधे पर लटका, हिमालय में प्रवेश कर, श्रमण-धर्म का पालन करने लगा।

फिर तथागत के बुद्ध हो जाने पर, (उनके) पास आ, उनसे नाळक-'ज्ञान' सुन, हिमालय में चले गये, वहा अर्हत पद को प्राप्त कर, सर्व-श्रेष्ठ मार्ग (=उत्कृष्ट प्रतिपदा) पर आरूढ सात मास तक ही जीवित रह, एक सुवर्ण पर्वत के पास निवास करते, खडे ही खडे उपाधि-रहित निर्वाण को प्राप्त हुए।

(६) ज्योतिषी की भविष्यद्वाणी

पाँचवें दिन बोधिसत्त्व को शिर से नहलाया गया, नामकरण सस्कार किया गया। राजभवन को चारो प्रकार के गन्धो से लिपवाया गया। खीलो सहित चार प्रकार के पुष्प बखेरे गये। निर्जल खीर पकाई गई। राजा ने तीनो वेदो के पारगत एक सौ आठ ब्राह्मणो को निमन्त्रित किया। उन्हें राजभवन में बैठा, सुभोजन करा, सत्कार पूर्वक (बोधिसत्त्व) के लक्षण के बारे मे पूछा—"भविष्य क्या है?" उनमें —

उस समय रा म, ध्व ज, ल क्ष्म ण, म न्त्री, को ड ञ् ञ, भो ज, सु या म और सु द त्त—यह आठ षट्-अग जानने वाले ब्राह्मण थे, जिन्होने मन्त्रो की व्याख्या की।

यह आठ ही लक्षण जानने वाले (दैवज्ञ) ब्राह्मण थे। गर्भ धारण के दिन 'स्वप्न' का भी विचार इन्होने ही किया था। उनमे से सात जनो ने दो उँगलियाँ उठा कर, दो प्रकार से भविष्य कहा—'ऐसे लक्षणो वाला यदि गृहस्थ रहे, तो चक्रवर्ती राजा होता है, और यदि प्रव्रजित हो, तो बुद्ध।" और फिर चक्रवर्ती राजा की श्री सम्पत्ति का वर्णन किया। उनमें सब से कम उमर और कौण्डिन्य गोत्री तरुण ब्राह्मण ने बोधिसत्त्व के सुन्दर लक्षणो को देख एक ही उँगली उठा कर, एक ही प्रकार का भविष्य कहा—"इसके घर मे रहने की सम्भावना (कारण) नही है, यह महाज्ञानी (=विवृत-कपाट) बुद्ध होगा। उस अधिकारी, अन्तिम-जन्मधारी, प्रज्ञा में अन्य जनो से बढे हुए, इन लक्षणो वाले पुरुष के घर में ठहरने की सम्भावना नही, यह निश्चय बुद्ध होगा—इस एक ही अवस्था (गति) को देखा। इसीलिए एक ही उँगली उठा कर भविष्य कहा।

उन ब्राह्मणो ने अपने अपने घर जाकर, पुत्रो से कहा—"तात! हम बूढे

हो गये है। महाराज शुद्धोदन के पुत्र के बुद्ध होने तक (हम) रहेंगे वा नही, (लेकिन) उस कुमार के बुद्धपद प्राप्त करने पर तुम उसके धर्म मे प्रव्रजित होना।"

वे सातो आयु पूर्ण होने पर, अपने कर्मानुसार (परलोक) सिधारे। अकेला कौण्डिन्य माणवक ही जीवित रहा। वह महासत्त्व (बोधिसत्त्व)की ओर ध्यानरख गृह को त्याग, क्रमश **उरूवेला**[1] जा, 'यह भूमि-भाग बडा रमणीय है, योगार्थी कुल-पुत्र के योगाभ्यास के लिए उपयुक्त स्थान है' सोच, वही रहने लगा। फिर "महापुरुष प्रव्रजित हो गये" सुन, (सात) ब्राह्मणो के पुत्रो के पास जाकर कहा—
—"सिद्धार्थ-कुमार प्रव्रजित हो गये, वह नि सशय बुद्ध होगे। यदि तुम्हारे पिता जीवित होते, तो वह आज घर छोड प्रव्रजित हुए होते। यदि तुम चाहते हो, तो (मेरे साथ) आओ हम उस पुरुष के पीछे प्रव्रजित होगे।"

वे सव (लडके) एक मत न हो सके। तीन प्रव्रजित नही हुए। शेष चारो कौण्डिन्य ब्राह्मण को मुखिया वना कर प्रव्रजित हुए। (आगे चल कर) वह पाँचो जने पचवर्गीय स्थविरो के नाम से प्रसिद्ध हुए।

तव "राजा ने पूछा—"क्या देख कर, मेरा पुत्र प्रव्रजित होगा?" (उत्तर मिला) "चार पूर्व लक्षण।" "कौन कौन से चार लक्षण (निमित्त)?" "वृद्ध, रोगी, मृत और प्रव्रजित।"

राजा ने (आज्ञा की)—"अव से इस प्रकार के किसी लक्षण (=वृद्ध आदि) को मेरे पुत्र के पास मत आने दो। मुझे, उसके बुद्ध बनने से मतलब नही। मै उसे दो सहस्र द्वीपो से घिरे चारो महाद्वीपो का आधिपत्य करते हुए, छत्तीस योजन घेरे की परिपद् के वीच, आकाश के नीचे विचरते देखने की इच्छा रखता हूँ।" यह कह, राजा ने इन चार प्रकार के पुरुषो को कुमार के दृष्टि-गोचर होने से बचाने के लिए चारो दिशाओ मे तीन तीन कोस की दूरी पर पहरा बैठा दिया। उसी दिन उस माङ्गलिक स्थान पर एकत्र हुए,अस्सी हजार ज्ञाति-सम्बन्धियो ने अपने एक एक पुत्र (को देने) की प्रतिज्ञा की। यह (कुमार) चाहे बुद्ध हो, अथवा राजा, हम (इसे) अपना एक एक पुत्र दे देंगे। यदि यह बुद्ध होगा तो क्षत्रिय साधुओ से पुरस्कृत तथा परिवारित हो विचरेगा। यदि राजा होगा तो क्षत्रिय-कुमारो से पुरस्कृत तथा परिवारित हो विचरेगा।

---

[1] बोधगया, जि० गया (बिहार)।

(७) शैशव का एक चमत्कार

राजा ने वोधिसत्त्व के लिए उत्तम रूप वाली, सव दोपो से रहित धाइयाँ नियुक्त की। वोधिसत्त्व अनन्त परिवार, तथा महती शोभा और श्री के साथ बढने लगे। एक दिन राजा के यहाँ (खेत) वोने का उत्सव था। उस (उत्सव के) दिन लोग सारे नगर को देवताओ के विमान की भाँति अलकृत करते थे। सभी दास (गुलाम) और नौकर आदि नये वस्त्र पहिन, गध माला आदि से विभूपित हो, राज-महल में इकट्ठे होते थे। राजा को एक हजार हलो की खेती थी। लेकिन उस दिन वैलो की रस्सी की जोत के साथ एक कम आठ सौ सभी रुपहले हल थे। राजा का हल रत्न-सुवर्ण-जटित था। वैलो के सीग, और रस्सी-कोडे भी सुवर्ण-खचित ही थे। राजा वडे दल-वल के साथ, पुत्र को भी ले, वहाँ पहुँचा। खेती के स्थान पर ही, वहुत पत्रो तथा घनी छाया वाला एक जामुन का वृक्ष था। उसके नीचे कुमार की शय्या विछाई गई। ऊपर सुवर्ण-तार-खचित चँदवा तनवाया गया उसे कनात से घिरवा, पहरा लगवा दिया गया। फिर सव अलकारो से अलकृत हो, अमात्य गण सहित राजा, हल जोतने के स्थान पर गया। वहाँ उसने सुनहले हल को पकडा, अमात्यो ने (अन्य) एक-कम-आठ सौ रुपहले हलो को और कृपको ने शेप दूसरे हलो को। हलो को पकड कर, वे इधर उधर जोतने लगे। राजा इस पार से उस पार, और उस पार से इस पार आता था। वहाँ वडी भीड थी, वडा तमाशा था। वोधिसत्त्व को घेर कर वैठी धाइयाँ, राजकीय-तमाशा देखने के लिए कनात के भीतर से वाहर चली आई। वोधिसत्त्व इधर उधर किसी को न देख, जल्दी से उठ, श्वास-प्रश्वास पर ध्यान दे, प्रथम-ध्यान प्राप्त हो गये। धाइयो ने खाद्य-भोज्य मे (लगे रह कर) कुछ देर कर दी। सभी वृक्षो की छाया घूम गई, लेकिन (वोधिसत्त्व वाले) वृक्ष की छाया गोल ही खडी रही। धाइयो ने 'आर्य-पुत्र अकेले' हैं', ख्याल कर जल्दी से कनात उठा, अन्दर घुस कर, वोधिसत्त्व को विछौने पर आसन मारे वैठे देखा। उस चमत्कार को देख उन्होने जाकर राजा से कहा—देव! कुमार इस तरह वैठा है। अन्य सभी वृक्षो की छाया लम्वी हो गई है, लेकिन जामुन के वृक्ष की छाया गोलाकार ही खडी है।" राजा ने वेग से आ, उस चमत्कार को देखा, "तात' यह दूसरी वार तेरी वन्दना है" (कह) पुत्र की वन्दना की।

२. गौतम का चरित

(१) यौवन प्रवेश

क्रमशः बोधिसत्त्व सोलह वर्ष के हुए। राजा ने बोधिसत्त्व के लिए, तीनो ऋतुओं के लायक तीन महल बनवा दिये। उनमे एक नौ तला, दूसरा सात तला, तीसरा पाँच तला था। चालीस हजार नाटक-करने वाली स्त्रियो को नियुक्त किया। बोधिसत्त्व अप्सराओं के समुदाय से घिरे देवताओ की भाँति, अलकृत नटियो से परिवृत, स्त्रियो द्वारा बजाये गये वाद्यो से सेवित, महा-सम्पत्ति को उपभोग करते हुए, ऋतुओं के क्रम से, उन उन (ऋतुओ के अनुकूल) प्रसादो में विहरते थे। राहुल-माता देवी उनकी अग्रमहिषी (= पटरानी) थी।

वह इस प्रकार महा-सम्पत्ति का उपभोग करते रहते थे। उसी समय एक दिन बोधिसत्त्व की ज्ञाति-बिरादरी मे ऐसी बात चली—"सिद्धार्थ-क्रीडा मे ही रत रहता है। किसी कला को नही सीखता, युद्ध आने पर क्या करेगा?" राजा ने बोधिसत्त्व को बुला कर कहा—"तात! तेरे सगे सम्बन्धी कहते हैं कि सिद्धार्थ किसी कला को न सीख कर सिर्फ खेलो मे ही लिप्त रहता है। तुम इस विषय मे क्या उचित समझते हो?'

"देव! मुझे शिल्प सीखने को नही है। नगर मे मेरा शिल्प देखने के लिए ढिंढोरा पिटवा दें कि आज से सातवे दिन (मैं) ज्ञाति वालो को (अपना) शिल्प (करतब) दिखाऊँगा।"

राजा ने वैसा ही किया। बोधिसत्त्व ने अक्षण वेध, वाल-वेध जानने वाले धनुर्धारियो को एकत्रित कर, लोगो के मध्य मे अन्य धनुर्धारियो से (भी) विशेष बारह प्रकार के शिल्प (कला) ज्ञाति-बिरादरी वालो को दिखलाये। इस (के विस्तार) को सरभग-जातक[1] मे आये (वर्णन) के अनुसार जानना चाहिए। तब बोधिसत्त्व के सगे सम्बन्धियो की शका दूर हुई।

(२) जरा, व्याधि, मृत्यु और संन्यास-दर्शन

एक दिन बोधिसत्त्व ने बगीचा देखने की इच्छा से सारथी को बुला कर

---

[1] सरभग जातक (१७. २)

रथ जोतने को कहा। उसने 'अच्छा' कह महार्घ उत्तम रथ को सब अलकारो मे अलकृत कर, कमल-पत्र-सदृश चार मङ्गल सिन्धु-देशीय (घोडो) को जोत, बोधिसत्त्व को सूचना दी। बोधिसत्त्व देव-विमान-सदृश रथ पर चढ कर बगीचे की ओर चले। देवताओ ने (सोचा), सिद्धार्थ-कुमार के बुद्धत्व प्राप्त करने का समय समीप है, (हम) इसे पूर्व-लक्षण दिखायें। (सो उन्होने) एक देव-पुत्र को जरा से जर्जरित, टूटे दाँत, पक्के केश, टेढे-झुके शरीर, हाथ में लकडी लिये, काँपता हुआ (करके) दिखलाया। उसे (केवल) बोधिसत्त्व और सारथी ही देखते थे। तब बोधिसत्त्व ने महापदानसूत्र[1] में आये (वर्णन) अनुसार सारथी से पूछा—"सौम्य! यह कौन पुरुष है! इसके केश भी औरो के समान नही हैं।" (और) सारथी का उत्तर पा, (वे) अहो! धिक्कार है जन्म को, जहाँ जन्म-लेने-वाले को (ऐसा) बुढापा हो, (सोचते हुए) उदास हो, वहाँ से लौट कर महल में चले गये। राजा ने पूछा—"मेरा पुत्र जल्दी क्यो लौट आया?" "देव! बूढे आदमी को देख कर।" (भविष्यद्वक्ताओ ने) बूढे आदमी को देख कर प्रव्रजित होगा कहा था (सोच) राजा ने 'इसलिए, मेरा नाश मत करो। पुत्र के लिए शीघ्र ही नृत्य तैयार करो। भोग भोगते हुए प्रव्रज्या का ख्याल न आयेगा' कह, पहरा और भी बढा कर चारो दिशाओ में आधे योजन तक का करवा दिया।

फिर एक दिन बोधिसत्त्व उसी प्रकार बगीचे जाते हुए, देवताओ द्वारा निर्मित रोगी पुरुष को देख, पहले की भाँति पूछ, शोकाकुल हृदय से महल में लौट आये। राजा ने भी पूछ कर, पहले की भाँति खिन्न चित्त हो, पहरे को फिर बढा कर चारो ओर पौन योजन तक का कर दिया।

फिर एक दिन बोधिसत्त्व उसी प्रकार उद्यान जाते हुए, देवताओ द्वारा निर्मित मृत-पुरुष को देख, पहले की भाँति पूछ, उदास हो, फिर महल में लौट आये। राजा ने भी पूछ कर पहले की भाँति खिन्न चित्त हो, पहरे को फिर बढा कर चारो ओर एक योजन तक का कर दिया।

फिर एक दिन उद्यान जाते हुए, बोधिसत्त्व ने देवताओ द्वारा निर्मित भली प्रकार (वस्त्र) पहिने, (चीवर से) भले प्रकार ढँके एक प्रव्रजित (सन्यासी) को देख कर, सारथी से पूछा—'सौम्य! यह कौन है?' अभी बुद्ध प्रकट नही

---

[1] देखो दीर्घ-निकाय।

हुए थे, इसीलिए सारथी को प्रव्रजित (वा) प्रव्रज्या के गुणो के बारे मे कुछ मालूम न था। लेकिन देवताओ की प्रेरणा से सारथी ने—'देव! यह प्रव्रजित है' कह प्रव्रजितो के गुण वर्णन किये। बोधिसत्त्व 'प्रव्रज्या' मे रुचि उत्पन्न कर, उस दिन उद्यान को गये। यहाँ पर दीर्घ भाणको[1] का मत है कि 'बोधिसत्त्व ने चारो पूर्व-लक्षणो (—निमित्तो) को एक ही दिन देखा।'

(३) पुत्र जन्म

बोधिसत्त्व ने उद्यान मे दिन भर विनोद कर, सुन्दर पुष्पकरिणी मे स्नान किया। सूर्यास्त के समय सुन्दर शिला-पट्ट पर, अपने को आभूषित कराने की इच्छा से बैठे। उस समय इनके परिचारक नाना रङ्ग के दुशाले, नाना भाँति के आभूषण, माला, सुगन्धित, उबटन लेकर चारो ओर से घेर कर खडे थे। उसी समय इन्द्र का आसन गर्म हुआ। उसने, "कौन मुझे इस सिहासन से उतारना चाहता है" सोचते हुए बोधिसत्त्व के अलकृत होने का काल देख, विश्वकर्मा को बुला कर कहा—"सौम्य विश्वकर्मा! आज आधी रात के समय सिद्धार्थ-कुमार महाभिनिष्क्रमण (गृह त्याग) करेंगे। यह (आज का शृङ्गार) उनका अन्तिम शृङ्गार है। उद्यान में जाकर महापुरुष को दिव्य अलकारो से अलकृत करो।" उसने 'अच्छा' कह, देव-बल से उसी क्षण आकर, बोधिसत्त्व के जामासाज के सदृश ही रूप धारण कर, जामा-साज़ के हाथ से दुशाला ले, बोधिसत्त्व के सिर पर बाँधा।

उसके हाथ के स्पर्श से ही बोधिसत्त्व जान गये कि यह मनुष्य नही, कोई देव-पुत्र है। पगडी से सिर को वेष्टित करते ही सिर में, मुकुट के रत्नों की भाँति एक सहस्र, दुशाले उत्पन्न हो गये। फिर बाँधने पर दस सहस्र, इस प्रकार दस बार बाँधने पर दस-सहस्र दुशाले उत्पन्न हुए। सिर छोटा और दुशाले बहुत, इसकी शका न होनी चाहिए (क्योकि) उनमे सब से बडे दुशाले (का वजन ही) श्यामा-लता के फूल के बराबर था, (और) दूसरे तो कुतुम्बुक पुष्प के ही बराबर थे। बोधिसत्त्व का सिर किंजल्क-युक्त कुय्यक फूल के समान था। उनके सब आभूषणो

---

[1] 'दीर्घ-निकाय' कण्ठ करने वाले पुराने आचार्यो को दीर्घ-भाणक कहा जाता है।

मे आभूपित हो, सव (गीत = ?) तालज्ञ व्राह्मणो के अपनी अपनी प्रतिभा का प्रदर्शन कर लेने पर, 'जय हो' आदि वचनो से, तथा सूतमागवो के नाना प्रकार के मङ्गल वचनो तथा स्तुति-घोपो से सत्कृत हो, (वोधिसत्त्व) सर्वालकार-विभूपित उत्तम रथ पर आरूढ हुए।

उसी समय 'राहुल-माता ने पुत्र प्रसव किया' सुन महाराज शुद्धोदन ने आज्ञा की कि मेरे पुत्र को यह शुभ-समाचार सुनाओ। वोधिसत्त्व ने उसे सुन कहा "राहु पैदा हुआ, वन्धन पैदा हुआ।" राजा ने 'मेरे पुत्र ने क्या कहा', पूछ, उसे सुन, कहा—"अव से मेरे पोते का नाम राहुल-कुमार हो।"

वोधिसत्त्व भी श्रेष्ठ रथ पर चढ, वडे भारी यश, अति मनोरम शोभा तथा सौभाग्य के साथ नगर में प्रविष्ट हुए। उस समय, प्रासाद के ऊपर वैठी, कृशा-गौतमी नामक क्षत्रिय-कन्या ने नगर की परिक्रमा करते हुए वोधिसत्त्व की रूप शोभा को देख कर, वहुत ही प्रसन्न तथा हर्प से यह 'उदान'[1] कहा —

परम शान्त है वह माता, परम शान्त है वह पिता, और परम शान्त है वह नारी, जिसका इस प्रकार का पति हो।

वोधिसत्त्व ने यह सुना तो सोचा—यह कह रही है, कि इस प्रकार के रूप के देखने वाली माता का हृदय परम शान्त होता है, पिता का हृदय परम शान्त होता है, पत्नी का हृदय परम शान्त होता है। किस के शान्त होने पर हृदय परम शान्त होता है? तव रागादि क्लेशो (मलो) से विरक्त होते हुए, (वोधिसत्त्व) को यह (विचार) हुआ कि राग-अग्नि के शान्त होने पर परम—शान्ति होती है। द्वेप-अग्नि तथा मोह-अग्नि के शान्त होने पर परम-शान्ति होती है। अभिमान-मिथ्या विचार (= दृष्टि) आदि सभी सलो के उपशमन होने पर परम-शान्ति होती है। यह मुझे प्रिय-वचन सुना रही है। मै निर्वाण को ढूँढ रहा हूँ। आज ही मुझे गृह-वास छोड, निकल कर, प्रव्रजित हो, निर्वाण की खोज में लगना चाहिए। 'यह इसकी गुरु-दक्षिणा हो'—कह इन्होने अपने गले से एक लाख का मोती का हार उतार कृशा गौतमी के पास भेज दिया। "सिद्धार्थ-कुमार ने मेरे प्रेम मे फँस कर भेंट भेजी है" सोच वह वडी प्रसन्न हुई।

---

[1] आनन्दोल्लास में निकली वाक्यावली।

(४) गृह-त्याग

वोधिसत्त्व भी वडे श्री-सौभाग्य के साथ अपने महल में जा, सुन्दर शय्या पर लेट रहे। उसी समय सभी अलकारो से विभूपित, नृत्य गीत आदि में दक्ष देव-कन्या समान परम मुन्दरी स्त्रियो ने अनेक प्रकार के वाद्यो को लेकर, (कुमार को) घेर कर, खुश करने के लिए नृत्य, गीत और वाद्य आरम्भ किया। वोधिसत्त्व (रागादि) मलो से विरक्त-चित्त होने के कारण, नृत्य आदि में रत न हो, थोडी ही देर मे सो गये। उन स्त्रियो ने भी सोचा—"जिसके लिए हम नृत्य आदि करती है, वह ही सो गया। अव (हम) काहे को तकलीफ करे।" इसलिए वह भी अपने अपने वाजो को साथ लिये ही सो गई। उस समय सुगन्धित-तेल-पूर्ण प्रदीप जल रहे थे। वोधिसत्त्व जाग कर, पलग पर आसन मार वैठ गये। उन्होने वाद्य-भाण्डो को साथ ही लिये सोई उन स्त्रियो को देखा। (उनमें) किन्ही के मुँह से कफ और लार वह कर, उनका शरीर भीग गया था, कोई दाँत कटकटा रही थी, कोई खाँस रही थी, कोई वर्रा रही थी, किन्ही के मुँह खुले हुए थे, किन्ही के वस्त्र हटे होने से अति घृणोत्पादक गुह्य स्थान दिखलाई दे रहे थे। उन (स्त्रियो) के इन विकारो को देख कर (वे) और भी अधिक दृढता-पूर्वक काम-भोगो से विरक्त हो गये। उन्हे वह सु-अलकृत इन्द्र-भवन सदृश महाभवन सडती हुई नाना प्रकार की लाशो से पूर्ण कच्चे श्मशान की भाँति मालूम हुआ। तीनो ही भव (ससार) जलते हुए घर की तरह दिखलाई पडे। हा! कष्ट!! हा! शोक!! ऐसी आह निकल पडी। उस समय उनका चित्त प्रव्रज्या के लिए, अत्यन्त आतुर हो गया। 'आज ही मुझे महाभिनिष्क्रमण (गृह-त्याग) करना चाहिए' (इस प्रकार निश्चय कर) पलग पर से उतर, द्वार के पास जा पूछा—"कौन है ?"

ड्योढी मे सिर रख कर सोये हुए छन्न ने कहा—'आर्य पुत्र! मै छन्दक हूँ।'

"मै आज महाभिनिष्क्रमण करना चाहता हूँ, मेरे लिए एक घोडा तैयार करो।'

'अच्छा देव!' कह, उसने घोडे का साज-समान ले, घोडसार में जा, सुगन्धि तेल के जलते प्रदीपो (के प्रकाश) मे, वेल-वूटे वाले चँदवे के नीचे, सुन्दर स्थान पर खडे, अश्व-राज कन्थक को देखकर, 'आज मुझे इसे ही तैयार करना चाहिए' सोच

कन्थक को ही तैयार किया। साज सजाये जाते समय (कन्थक) ने सोचा—'(आज की) तैयारी बहुत कसी हुई है। अन्य दिनो में उद्यान-क्रीडा आदि की तैयारी जैसी तैयारी नही है। आज मेरे आर्य-पुत्र महाभिनिष्क्रमण के इच्छुक होगे।' इसलिए प्रसन्न-चित्त हो, ज़ोर से हिनहिनाया। वह शब्द सारे नगर में फैल जाता, लेकिन देवताओ ने उस शब्द को रोक कर, किसी को न सुनने दिया।

बोधिसत्त्व छन्दक को (तो उधर) भेज, पुत्र को देखने की इच्छा से, अपने आसन को छोड राहुल-माता के वास-स्थान की ओर गये। । वहाँ शयनागार का द्वार खोला। उस समय घर के भीतर सुगन्धित तेल-प्रदीप जल रहा था। राहुल-माता बेला, चमेली आदि के अम्मन[1] भर फूलो से सजी शय्या पर, पुत्र के मस्तक पर हाथ रखे सो रही थी। बोधिसत्त्व ने देहली में पैर रख खडे खडे देख कर सोचा—'यदि मै देवी के हाथ को हटा कर अपने पुत्र को ग्रहण करूँगा, तो देवी जाग उठेगी, इस प्रकार मेरे गमन में विघ्न होगा। बुद्ध होने के पश्चात ही आकर पुत्र को देखूगा। तब महल से उतर आये। जातकट्ठकथा[2] में जो 'उस समय राहुल-कुमार एक सप्ताह के थे' कहा है, वह दूसरी अट्ठकथाओ मे नही है। इसलिए यहाँ यही समझना चाहिए।

इस प्रकार बोधिसत्त्व ने महल से उतर कर, घोडे के पास जाकर कहा—तात! कन्थक! आज तू मुझे एक रात तार दे, मै तेरी सहायता मे बुद्ध होकर, देवताओ सहित सारे लोक को तारूँगा। फिर कूद कर कन्थक की पीठ पर सवार हुए। कन्थक गर्दन से लेकर (पूछ तक) अठारह हाथ लम्बा (और) वैसे ही महाकाय बल-वेग-सम्पन्न धुले शङ्ख-सदृश सर्व-श्वेत वर्ण का था। यदि वह हिनहिनाता वा पैर खटखटाता तो (वह) शब्द सारे नगर मे फैल जाता। इसलिए देवताओ ने अपने प्रताप से, ऐसा किया, जिससे कोई उस शब्द को न सुने। उन्होने हिनहिनाने के शब्द को रोक लिया (और) जहाँ जहाँ (घोडा) पैर रखता था, वहाँ वहाँ हथेलियाँ रखी। बोधिसत्त्व श्रेष्ठ अश्व की पीठ पर सवार हो छन्दक को उसकी पूछ पकडवा, आधी रात के समय महा-द्वार के समीप पहुँचे। उस समय राजा ने यह सोच, कि कही बोधिसत्त्व जिस किसी समय नगर द्वार को खोल कर, (बाहिर)

---

[1] ११ द्रोण = अम्मन।

[2] यह पुरानी सिंहल भाषा वाली जातक-कथा होगी।

न निकल जाये, दर्वाजे के दोनो कपाटो मे से प्रत्येक को एक हजार मनुष्यो द्वारा खुलने लायक वनवाया था। वोधिसत्त्व महावल - सम्पन्न हाथी की गिनती से दस अरव हाथी के वल को धारण करते थे, और पुरुष के हिसाब से एक खरव पुरुषो का वल । उन्होने सोचा—"यदि द्वार न खुला तो आज मैं कन्थक की पीठ पर वैठे, उसकी पूछ पकड कर लटके छन्दक के साथ ही, घोडे को जाँघ से दवा कर अठारह हाथ ऊँचे प्राकार को कूद कर पार करूगा।" छन्दक ने भी सोचा, "यदि द्वार न खुला, तो मै आर्यपुत्र को कन्धे पर वैठा कन्थक को दाहिने हाथ से वगल में दवा प्राकार फॉद जाऊँगा।" कन्थक ने भी सोचा—"यदि द्वार नही खुला, तो मै अपने स्वामी के पीठ पर वैसे ही वैठे, पूछ पकड कर लटकते छन्दक के साथ ही, प्राकार को लाँघ जाऊँगा।" यदि द्वार न खुलता, तो तीनो मे से प्रत्येक ऊपर सोचे अनुसार करता। लेकिन द्वार मे रहने वाले देवता ने द्वार खोल दिया।

उस समय वोधिसत्त्व को (वापिस) लौटाने की इच्छा से, आकर, आकाश मे खडे हो मार[1] ने कहा—"मार्ष (मित्र)! मत निकलो। आज से सातवे दिन तुम्हारे लिए चक्र-रत्न प्रकट होगा। दो हजार छोटे द्वीपो सहित चारो महाद्वीपो पर राज्य करोगे। लौटो, मार्ष!"

"तुम कौन हो?"

"मै वश—वर्ती हूँ।"

"मार! मैं भी जानता हूँ कि मेरे लिए चक्र-रत्न प्रकट होगा। लेकिन मुझे राज्य से काम नही। मै तो साहस्रिक लोक-धातुओ को निनादित कर वुद्ध वनूँगा।

"आज से जव कभी तुम्हारे मन में कामना सम्वन्धी वितर्क, द्रोह सम्वन्धी वितर्क, या हिसा-सम्वन्धी वितर्क उत्पन्न होगा, तव मै तुम्हे समझूगा।" कह, मार मौका ताकते हुए, छाया की भाँति जरा भी अलग न होते हुए, पीछा करने लगा।

वोधिसत्त्व हाथ मे आये चक्रवर्ती-राज्य (के प्रति) अपेक्षा रहित हो, उसे थूक की भाँति छोड कर, आषाढ की पूर्णिमा को उत्तराषाढ नक्षत्र मे नगर से निकले। (लेकिन) नगर से निकल कर, (उन्हे) फिर नगर देखने की इच्छा उत्पन्न हुई। चित्त में ऐसा विचार होते ही महापृथ्वी कुम्हार के चक्के की भाँति काँपी, मानो

---

[1] कामदेव या शैतान।

कह रही थी कि 'महापुरुष ! तूने लौट कर देखने का काम (कभी) नही किया।' बोधिसत्त्व जहाँ से मुह फेर कर नगर को देखा था, उस भू-प्रदेश मे "कन्थक-निवर्तन-चैत्य" का चिन्ह बना वह गन्तव्य-मार्ग की ओर कन्थक का मुंह फेर, अत्यन्त सत्कार और महान् श्री-सौभाग्य के साथ चले। उस समय देवताओ ने उनके सम्मुख साठ हजार, पीछे साठ हजार, दाहिनी तरफ साठ हजार और बाई तरफ भी साठ हजार मशाल धारण किये। अन्य देवताओ ने चक्रवालो के द्वार-समूह पर अपरिमित मशालो को धारण किया। और (भी) दूसरे देवताओ तथा नाग, सुपर्ण (गरुड) आदि (के) दिव्य गन्ध, माला, चूर्ण, धूप से पूजा करते हुए, पारिजात-पुष्प, मन्दार-पुष्प, (की वृष्टि मे) घने मेघो की वृष्टि के समय (बरसती) धाराओ की भाँति, आकाश आच्छादित हो गया। उस समय दिव्य सगीत हो रहे थे। चारो ओर आठ प्रकार के, साठ प्रकार के अडसठ लाख बाजे बज रहे थे। समुद्र के उदर मे मेघ-गर्जन काल की भाँति, युगन्धर की कुक्षि में सागर-निर्घोष काल की भाँति (शब्द) हो रहा था। इस श्री और सौभाग्य के साथ जाते हुए, बोधिसत्त्व एक ही रात मे तीन राज्यो[1] को पार कर, तीस योजन की दूरी पर अनोमा[2] नामक नदी के तट पर पहुँचे।

क्या अश्व तीस योजन से अधिक न जा सका? नही, न जा सका! वह (अश्व) एक चक्रवाल के अन्दर के घेरे को, पृथ्वी पर पडे चक्के के घेरे की तरह, मर्दित करते हुए, कोने कोने पर घूम कर, प्रात काल के भोजन के समय से पूर्व लौट कर अपने लिए तैयार किये गये भोजन को खा सकता था। लेकिन, उस समय मार्ग आकाश में स्थित देव नाग तथा गरुड आदि द्वारा बरसाये गये गन्धमाला आदि मे जाँघ तक ढका हुआ था। शरीर निकालते निकालते, गन्ध माला के जाल को हटाते हटाते बहुत देर हो गई। इसलिए केवल तीस योजन ही पहुँच सका।

३. गौतम का संन्यास

(१) भिक्षु-वेश में

तब बोधिसत्त्व ने नदी के किनारे खडे हो छन्दक से पूछा—

---

[1] शाक्य, कोलिय और राम-ग्राम।

[2] औमी नदी? जिला गोरखपुर।

"इस नदी का क्या नाम है ?"

"देव ! अनोमा है।"

"हमारी भी प्रव्रज्या अनोमा[1] होगी", (सोच) एडी से रगड कर घोडे को इशारा किया। घोडा छलाँग मार कर, आठ ऋषभ[2] चौडी नदी के दूसरे तट पर जा खडा हुआ। बोधिसत्त्व ने घोडे की पीठ से उतर, रुपहले रेशम जैसे (नर्म) वालुका-तट पर खडे हो, छन्दक को कहा—"सौम्य ! छन्दक ! तू मेरे आभूषणो तथा कन्थक को लेकर जा, मैं प्रव्रजित होऊँगा।"

"देव ! मै भी प्रव्रजित होऊँगा।"

"तुझे प्रव्रज्या नही मिल सकती, लौट जा" तीन बार कह कर, बोधिसत्त्व उसे आभरण और कन्थक सौप सोचने लगे —

"यह मेरे केश श्रमण-भाव (सन्यासीपन) के योग्य नही है, और बोधि-सत्त्व के केश काटने लायक दूसरा कोई नही है, इसलिए अपने ही आप खड्ग से इन्हे काटू।"

(यह सोच) दाहिने हाथ में तलवार ले, बाये हाथ से मौर सहित जूडे को काट डाला। केश सिर्फ दो अगुल के होकर, दाहिनी ओर से घूम, सिर मे चिपट गये। फिर जिन्दगी भर, उनका वही परिमाण रहा। मूछ (-दाढी) भी उनके अनुसार ही हो गई। फिर सिर-दाढी मुडाने की जरूरत नही रही। बोधिसत्त्व ने मौर-सहित जूडे को ले, आकाश मे फेक दिया और (सोचा) यदि मै बुद्ध होऊँ, तो यह आकाश मे ठहरे, नही तो भूमि पर गिर पडे।" वह चूडा-मणि वेष्टन योजन भर (ऊपर) जाकर, आकाश मे ठहरा। शक्र देवराज ने दिव्यदृष्टि से देख, (उसे) उपयुक्त रत्नमय करण्ड मे ग्रहण कर त्रयस्त्रिंश (स्वर्ग) लोक मे चूडामणि चैत्य की स्थापना की।

बोधिसत्व (अग्र-पुद्गल) ने सुगन्धयुक्त मौर को काट कर, आकाश में फेंक दिया। देवेन्द्र (=सहस्राक्ष) ने, उसे सुवर्ण-करण्ड में ग्रहण कर शिरोधार्य किया।

फिर बोधिसत्व ने सोचा—यह काशी के बने वस्त्र भिक्षु के योग्य नही है।

---

[1] अनोमा=अन्+अवम्=छोटी नहीं।

[2] १४० हाथ=१ ऋषभ।

तब कश्यप बुद्ध के समय के इनके पुराने मित्र घटिकार महाब्रह्मा ने एक बुद्धन्तर[1] बीतने पर भी जरा को अप्राप्त मित्र-भाव के कारण सोचा—आज मेरे मित्र ने महाभिनिष्क्रमण किया है। मैं उसके लिए भिक्षु की आवश्यकताएँ (=श्रमण परिष्कार) ले चलूँगा।

"योग में युक्त भिक्षु के लिए, तीन चीवर, पात्र, उस्तरा, सुई, काय-बंधन-और पानी छानने का वस्त्र—यह आठ (चीजें) होती है।"

(उसने) इन आठ परिष्कारों को लाकर बोधिसत्त्व को दिया। बोधिसत्त्व ने अर्हत्-ध्वजा को धारण कर (अर्थात्) श्रेष्ठ प्रव्रज्या-वेष को ग्रहण कर छन्दक को प्रेरित किया।

'छन्दक! मेरी बात से माता पिता को आरोग्य कहना।' छन्दक बोधि-सत्व की वन्दना तथा प्रदक्षिणा कर चल दिया। लेकिन कन्थक ने बोधिसत्त्व की छन्दक के साथ हुई बात को सुना। "अब मुझे, फिर स्वामी का दर्शन नहीं होगा" सोच, आँख से ओझल होने के शोक को न सह सकने के कारण, वह कलेजा फट कर मर गया, और त्रयस्त्रिंश-भवन में कन्थक नामक देवपुत्र हो उत्पन्न हुआ। छन्दक को पहले एक ही शोक था, लेकिन कन्थक की मृत्यु से (अब) दूसरे शोक से (भी) पीडित हो (वह) रोता नगर को चला।

(२) राजगृह में भिक्षाटन

बोधिसत्त्व भी प्रव्रजित हो उसी प्रदेश में, **अनूपिया** नामक कस्बे के आमों के बाग में, एक सप्ताह प्रव्रज्या सुख में बिता, एक ही दिन में तीस योजन मार्ग पैदल चल कर, राजगृह में प्रविष्ट हुए। वहाँ प्रविष्ट हो भिक्षा माँगने के लिए निकले। जैसे धनपाल राजगृह में प्रविष्ट हुआ हो, जैसे असुरेन्द्र देव नगर में प्रविष्ट हुआ हो, वैसे ही बोधिसत्त्व के रूप को देखकर सारा नगर सक्षुब्ध हो गया। राज-पुरुषों ने जाकर राजा से कहा—"देव! इस रूप का एक पुरुष नगर में मधूकरी माँग रहा है। वह देव है या मनुष्य, नाग है या गरुड, कौन है हम नहीं जानते?" राजा ने महल के ऊपर खड़े हो महापुरुष को देख आश्चर्या-न्वित हो, (अपने) आदमियों को आज्ञा दी—'जाओ! देखो! यदि अमनुष्य

---

[1] दो बुद्धों के बीच का समय।

होगा, तो नगर से निकल कर अन्तर्धान हो जायगा। यदि देवता होगा, तो आकाश से चला जायगा, यदि नाग होगा तो पृथ्वी मे डुबकी लगा कर चला जायगा। यदि मनुष्य होगा, तो जो भिक्षा मिली है, उसे खायेगा।" महापुरुष ने मिश्रित भोजन को सग्रह कर, "इतना मेरे लिए पर्याप्त होगा' जान, प्रविष्ट हुए द्वार से ही (बाहर) निकल, पाण्डव-पर्वत[1] की छाया मे पूरब-मुँह बैठ, भोजन करना आरम्भ किया। उस समय उनके आँत उलट कर मुँह से निकलते जैसे मालूम हुए। तब इस जन्म मे, इससे पूर्व ऐसा भोजन आँख से भी न देखा होने से, उस प्रतिकूल भोजन से दुःखित हुए अपने आपको, अपने आप ही यो समझाया—

"सिद्धार्थ! तू अन्न-पान सुलभ कुल मे तीन वर्ष के (पुराने) सुगन्धित चावल का भोजन किये जाने वाले स्थान मे पैदा होकर भी, गुदरीधारी (भिक्षु) को देख कर (सोचता था)—कि मै भी कब इसी तरह (भिक्षु) बन कर भिक्षा माँग भोजन करूँगा? क्या वह भी समय होगा?—और यही सोच घर से निकला था। अब यह क्या कर रहा है?" इस प्रकार अपने ही अपने आपको समझा कर निर्विकार हो भोजन किया। राज-पुरुषो ने उस वृत्तान्त को देख, जाकर राजा से कहा। राजा ने दूत की बात सुन, नगर से शीघ्र निकल, बोधिसत्त्व के पास जा, उनकी चर्या से ही प्रसन्न हो बोधिसत्त्व को (अपने) सभी ऐश्वर्य अर्पण किये। बोधिसत्त्व ने कहा—"महाराज! मुझे न वस्तु-कामना है, न भोग-कामना। मैने महान् बुद्ध-ज्ञान (=अभिसबोधित) की प्राप्ति के लिए गृह-त्याग (=अभि-निष्क्रमण) किया है।" राजा के बहुत तरह से प्रार्थना करने पर भी, उसका चित्त आकृष्ट न कर सकने पर, कहा—"अच्छा! तुम निश्चय से बुद्ध होगे। बुद्ध होने पर पहले पहल हमारे राज्य मे आना।" यह यहाँ सक्षेप मे है। विस्तार "प्रव्रज्या का वर्णन करता हूँ, जिस प्रकार चक्षुमान् प्रव्रजित हुए" (इस प्रकार आरम्भ होने वाले) प्रव्रज्या-सूत्र[2] को अट्ठकथा के साथ प्रव्रज्या सूत्र मे देख कर जानना चाहिए।

(३) तपस्या

बोधिसत्त्व ने भी राजा को वचन दे, क्रमश विचरण करते हुए, आलार कालाम

---

[1] वर्तमान रत्नगिरि या रत्नकूट।

[2] सुत्त-निपात, मार-वग्ग।

तथा उद्दक राम-पुत्र के पास पहुँच समाधि (=समापत्ति) सीखी। फिर यह (समाधि) ज्ञान (=बोध) का रास्ता नहीं है, (सोच) उस समाधि भावना को अपर्याप्त समझ, देवताओं सहित सभी लोगों को अपना बल वीर्य दिखाने के लिए महान् प्रयत्न में लगने की इच्छा से, उरुवेला में पहुँच—"यह भूमि-भाग (=प्रदेश) रमणीय है,, सोच, वहा रह महा-प्रयत्न करने लगे।

कौण्डिन्य आदि पाँच परिव्राजक भी, गाँव, शहर, राजधानी में भिक्षाचरण करते, बोधिसत्त्व के पास वहाँ पहुचे। 'अब बुद्ध होंगे, अब बुद्ध होंगे' इस आशा से, वह उनके छ वर्ष तक महा-प्रयत्न करने के समय, आश्रम की झाड़ू-बर्दारी आदि सेवाओं को करते, बोधिसत्त्व के पास रहे।

बोधिसत्त्व भी 'अन्तिम दर्जे की दुष्कर क्रिया करूँगा' सोच (एक) तिल तण्डुलादि से भी काल-क्षेप करने लगे। (आगे चल कर) आहार ग्रहण करना सर्वथा छोड दिया। देवताओं ने रोम कूपों द्वारा (उनके शरीर मे) ओज डाला। (तो भी) आहार के बिना बहुत दुबले होकर, उनका कनक-वर्ण शरीर काला पड गया। (शरीर मे विद्यमान) महापुरुषों के बत्तीस लक्षण छिप गये। एक बार श्वास-रहित ध्यान करते समय, काय क्लेश मे बहुत ही पीडित (एव) बेहोश हो टहलने के चबूतरे (=चक्रमण-भूमि) पर गिर पडे। तब कुछ देवताओं ने कहा, 'श्रमण गौतम मर गये।" कुछ ने कहा 'अर्हत व्यक्ति का विहरण (=चर्या) ऐसा ही होता है।" तब जिन (देवताओं) का विचार था कि (श्रमण गौतम) मर गये, उन्होंने जाकर राजा शुद्धोदन से कहा—"तुम्हारा पुत्र मर गया।"

मेरे पुत्र ने 'बुद्ध' होने के पश्चात शरीर छोडा अथवा 'बुद्ध' होने मे पूर्व ही शरीर छोड दिया।?"

"'बुद्ध' न हो सका। प्रयत्न-भूमि में, (प्रयत्न करते हुए ही) गिर कर मर गया।"

यह सुन कर राजा ने (इस बात का) विरोध किया—"मै इसमे विश्वास नही करता। 'बुद्ध' हुए बिना मेरे पुत्र की मृत्यु होने वाली नही।"

राजा ने किस लिए विश्वास नही किया? तपस्वी काल देवल के वन्दना करने के दिन तथा जम्बू-वृक्ष के नीचे अलौकिक घटनाए देखे रहने के कारण। होश में आकर, बोधिसत्त्व के उठ बैठने पर, उन देवताओं ने फिर महाराज शुद्धोदन

को जाकर कहा—"महाराज! तुम्हारा पुत्र सकुशल है।" राजा ने कहा—"हाँ! मैं अपने पुत्र के जीवित रहने की बात जानता हूँ।" महासत्त्व की छ वर्ष की दुष्कर तपस्या आकाश में गाँठ बाँधने के समान (निष्फल) हुई। तब उन्होंने सोचा—"यह दुष्कर तपस्या बुद्धत्त्व-प्राप्ति का मार्ग नही है।" (इसलिए) स्थूल आहार ग्रहण करने के लिए ग्रामो तथा नगरो मे भिक्षाटन कर, भोजन करना आरम्भ कर दिया। (शरीर के) बत्तीस महापुरुष-लक्षण (फिर) स्वाभाविक अवस्था मे आगये। शरीर फिर सुवर्ण-वर्ण हो गया। पच वर्गीय भिक्षुओ ने सोचा—छ' वर्ष तक दुष्कर तपस्या करके भी यह सर्वज्ञता को प्राप्त नही कर सका, अब ग्रामादि मे भिक्षा माँग कर स्थूल आहार ग्रहण करता हुआ तो यह क्या ही कर सकेगा? यह लालची है। तपस्या के मार्ग से भ्रष्ट है। जैसे सिर से नहाने की इच्छा रखने वाले के लिए ओस-बूँद की ओर ताकना (निष्फल) है, वैसे ही हमारा उसकी ओर ताकना (=आशा रखना) है। इससे हमारा क्या मतलब (निकेगा)? ऐसा सोच महापुरुष को छोड, अपने अपने पात्र चीवर ले, अठारह योजन चल कर ऋषिपत्तन[1] पहुचे।

(४) सुजाता की खीर

उस समय उरुवेला (प्रदेश) के सेनानी नामक कस्बे मे, सेनानी कुटुम्बी के घर मे उत्पन्न सुजाता नाम की कन्या ने तरुणी (वयस्-प्राप्त) होने पर, एक बरगद के वृक्ष से मिन्नत मान रक्खी थी (=प्रार्थना की थी)—"यदि समान जाति के कुल-घर में जा, पहले ही गर्भ मे पुत्र लाभ करूँगी, तो प्रति वर्ष एक लाख के खर्च मे तेरी पूजा (=बलि कर्म) करूँगी" उसकी वह प्रार्थना पूरी हुई। महासत्व (=महापुरुष) की दुष्कर तपश्चर्या का छठा वर्ष पूरा होने पर वैशाख पूर्णिमा के दिन बलि-कर्म करने की इच्छा से,उसने पहले हजार गायो को यष्टि-मधु (जेठी-मधु) के वन में चरवा कर, उनका दूध दूसरी पाँच सौ गायो को पिलवाया। (फिर) उनका दूध ढाई सौ गायो को, इस तरह (एक का दूध दूसरे को पिलाते) १६ गायो का दूध आठ गायो को पिलवाया। इस प्रकार दूध का गाढापन, मधुरता, और ओज (बढाने के लिए) उसने क्षीर-परिवर्तन किया। उसने वैशाख-पूर्णिमा

---

[1] सारनाथ (पूर्वोत्तर रलवे), जिला बनारस।

के प्रात ही बलि-कर्म करने की इच्छा से भिन्नसार को उठकर, उन आठ गायो को दुहवाया। बछडो ने गौवो के थनो को मुह नही लगाया। थनो के पास नवीन बरतन के लाते ही, क्षीर-धारा अपने आप ही निकलने लगी। उस आश्चर्य को देख सुजाता ने, अपने ही हाथ से दूध को लेकर, नवीन बरतन मे डाल, अपने ही हाथ से आग जला (खीर) पकाना आरम्भ किया। उस खीर के पकते समय, (उसमें) बड़े बड़े बुलबुले उठ कर दक्षिण की ओर (हो) सचार करते थे। एक बुलबुला भी बाहर नही गिरता था। चूल्हे से ज़रा सा भी धुआ नही उठता था। उस समय चारो लोकपालो ने आकर चूल्हे पर पहरा देना शुरु किया। महाब्रह्मा ने छत्र धारण किया। शक्र (=इन्द्र) ने ईंधन ला ला आग जलाई। देवताओ ने दो सहस्र द्वीप परिवारो और चारो महाद्वीपो के देवताओ और मनुष्यो के योग्य ओज, अपने देवप्रताप से, डण्डे पर लगे हुए मधु-छत्ते को निचोड कर मधु ग्रहण करने की तरह एकत्र कर उसमें डाला। और समय देवता ओज को कौल, कौल (=कवल में डालते है। लेकिन सम्बुद्धत्व-प्राप्ति के दिन और परिनिर्वाण के दिन ऊरवसी (—देगची) मे ही उँडेल देते है।

एक ही दिन मे अनेक आश्चर्यो को प्रकट हुआ देख, सुजाता ने (अपनी) पूर्णा (नाम की) दासी को कहा—"अम्मा पूर्णे! आज हमारे देवता बहुत ही प्रसन्न है। मैंने इससे पहले, इतने समय तक (कभी) इस प्रकार का आश्चर्य नही देखा। जल्दी से जाकर देवस्थान को साफ करो" "आर्य्ये! अच्छा" कह उसके वचन को ग्रहण कर, वह जल्दी जल्दी वृक्ष के नीचे पहुँची। बोधिसत्व भी, उस रात को पाँच महास्वप्न देख, "आज मैं निःसशय बुद्ध होऊँगा" निश्चय कर उस रात के बीतने पर, शौच आदि से निवृत्त हो, भिक्षा-काल की प्रतीक्षा करते हुए, प्रातःकाल ही आकर, अपनी प्रभा से सारे वृक्ष को प्रकाशित करते हुए, उस वृक्ष के नीचे बैठे। पूर्णा ने आकर देखा कि बोधिसत्त्व वृक्ष के नीचे बैठे है और पूर्व की ओर ताक रहे है। उनके शरीर से निकलने वाली प्रभा के कारण सारा वृक्ष प्रकाशित है। (यह) देख कर उसने सोचा—"आज हमारे देवता वृक्ष से उतर कर अपने ही हाथ से बलि ग्रहण करने को बैठे है" (इसलिए) उद्विग्न हो, उसने बहुत जल्दी से यह (बात) जाकर सुजाता से कही।

सुजाता ने उसकी बात को सुन कर प्रसन्न हो, "आज से तू मेरी ज्येष्ठ-पुत्री बन कर रह" कह, (अपनी) लडकी के योग्य सब आभरण आदि उसको दिये।"

'बुद्धत्व प्राप्ति के दिन लाख के मूल्य का सुवर्ण-थाल मिलना चाहिए' इसलिए (सुजाता ने खीर) को सोने की थाल मे डालने का विचार कर, लाख के मूल्य का सोने का थाल मगवा कर, उसमे खीर डालने की इच्छा से पके बरतन पर ध्यान दिया। पद्म-पुष्प से रुकने पानी की तरह, सारी खीर उलट कर, थाल मे आ पडी। और वह (खीर) ठीक एक थाल भर ही हुई। वह उस सुवर्णथाल को दूसरे सुवर्ण थाल से ढक, कपडे से बाध अपने को सब अलकारो से अलकृत कर, थाल को अपने सिर पर रख, बडे वैभव के साथ न्यग्रोध-वृक्ष के नीचे गई और बोधिसत्त्व को देख बहुत ही सन्तुष्ट हो, (उन्हे) वृक्ष का देवता समझ, (प्रथम) दिखाई पडने की जगह से ही (गौरवार्थ) झुक झुक कर जा, सिर से थाल को उतार कर खोला। फिर सोने की झारी से सुगन्धित पुष्पो से सुवासित जल ले, बोधिसत्त्व के पास जा खडी हुई। घटिकार महाब्रह्मा द्वारा दिया गया मिट्टी का पात्र(=भिक्षा पात्र) इतने समय तक बराबर बोधिसत्त्व के पास रहा, लेकिन इस समय वह अदृश्य हो गया। बोधिसत्त्व ने पात्र को न देख कर, दाहिने हाथ को फैला जल ग्रहण किया। सुजाता ने पात्र सहित खीर को महापुरुष के हाथ मे अर्पण किया। महापुरुष ने सुजाता की ओर देखा। उसने सकेत से जानकर—"आर्य! मैंने तुम्हे यह प्रदान किया, इसे ग्रहण कर यथारुचि पधारिये" कह वन्दना कर (फिर) "जैसा मेरा मनोरथ पूर्ण हुआ, वैसे ही तुम्हारा भी पूरा हो" कह, लाख (मुद्रा) के मूल्य के उस सुवर्ण थाल को लिये पुरानी पत्तल की भाँति जरा भी ख्याल न कर चल दी।

बोधिसत्त्व न्यग्रोध के नीचे बैठे हुए स्थान से उठ, वृक्ष की प्रदक्षिणा कर, थाल को ले, नेरञ्जरा के तीर पर गये। वहाँ लाखो बोधिसत्त्वो के बुद्धत्वप्राप्ति के दिन, उतर कर नहाने योग्य, सुप्रतिष्ठित तीर्थ है, वहाँ किनारे पर थाल को रख कर, उतर नहा कर अनेक लाख बुद्धो का पहरावा अर्हत्-ध्वजा (=चीवर) पहन कर, पूर्व दिशाकी ओर मुह कर बैठ, एक (ही) बीज वाले पके ताल-फल के प्रमाण के, उनचास कवल (पिण्ड) करके, उस समस्त निर्जल मधुर-खीर का भोजन किया। यही आहार बुद्धत्व-प्राप्ति होने पर, बोधिमण्ड मे सात-सप्ताह तक बैठे रहने के समय उनचास दिन का आहार हुआ। इतने समय तक न दूसरा आहार किया, न नहाया न मुँह धोया, न (अन्य) शारीरिक कृत्य किए। (इन सप्ताहो को) ध्यान-सुख मार्ग (लाभ) सुख तथा फल (=दुख-क्ष)य सुख में ही बिताया। हाँ, उस खीर को खा, सोने के थाल को ले, "यदि मै बुद्ध हो सकू, तो यह थाल पानी के स्रोत की

तरफ चले, यदि न हो सकू तो नीचे की ओर जाये" कह कर (नदी में) फेक दिया। वह थाल धार चीर कर नदी के बीच जा, बीचो बीच ही वेगवान घोडे की तरह, अस्सी हाथ (की दूरी) तक स्रोत से उलटा चला और एक गढे मे डूब कर, काल नाग राज के भवन में जा, तीनो बुद्धो के उपयोग किये थालो से टकरा कर छन-छन (किल-किल) शब्द करता हुआ, उन सब थालो के नीचे जाकर बैठ गया। काल नाग-राजा उस शब्द को सुन कर, "कल (भी) एक बुद्ध उत्पन्न हुआ था, आज फिर एक बुद्ध उत्पन्न हुआ है" (सोच) अनेक सौ श्लोको से प्रशसा करता रहा। उस (नाग-राज) को पृथ्वी का एक योजन तीन गव्यूति मोटा (?) हो जाने का समय 'आज' या 'कल' की तरह ही था।

बोधिसत्त्व भी नदी के तीर सुपुष्पित शाल वन मे दिन बिता कर, शाम को डठल से फूलो के गिरने के समय, देवताओ द्वारा अलकृत, आठ ऋषभ चौडे मार्ग, से, सिंह-गति से बोधि-वृक्ष के पास गये। नाग - यक्ष, गरुड आदि ने दिव्य गन्ध तथा पुष्पो से पूजा की। दिव्य सगीत का गायन किया। दस सहस्र लोक सर्वत्र सुगन्धित किये। एक समान माला (अलकृत) एक समान 'साधु साधु' के शब्द मे गुजित हुई। उस समय, सामने से घास लिये आते हुए सोत्थिय नामक घास काटने वाले ने, महापुरुष के आकार को देख कर, उन्हें आठ मुट्ठी तृण दिया। बोधि-सत्त्व तृण ले, बोधिमण्ड पर चढ दक्षिण-दिशा में उत्तर की ओर मुँह करके खडे हुए। उस समय दक्षिण चक्रवाल दब कर, मानो अवीचि (नरक) तक नीचे चला गया, उत्तर-चक्रवाल ऊपर उठ कर मानो भवाग्र तक ऊपर चला गया। "मालूम होता है, यहाँ सम्बुद्धत्व नही प्राप्त होगा" सोच, बोधिसत्व प्रदक्षिणा करते हुए, पश्चिम दिशा की ओर जा पूर्व की ओर मुँह करके खडे हुए। तब पश्चिम चक्रवाल दब कर, मानो अवीचि (नरक) तक नीचे चला गया। पूर्व-चक्रवाल ऊपर उठ कर, मानो भवाग्र तक ऊपर चला गया। वह जहाँ जहाँ जाकर ठहरे, वहाँ वहाँ नेमियो को लम्बे करके, नाभी के सहारे लिटाये हुए शकट के पहिए के सदृश महापृथ्वी ऊँची नीची हो उठी। "मालूम होता है, यहाँ भी बोधि (=ज्ञान) की प्राप्ति नही होगी" सोच, बोधिसत्त्व प्रदक्षिणा करते उत्तर दिशा की ओर जा दक्षिण की ओर मुँह कर खडे हुए। तब उत्तर का चक्रवाल दब कर, मानो अवीचि (नरक) तक नीचे चला गया, दक्षिण चक्रवाल ऊपर उठ कर मानो, भवाग्र (लोक) तक उपर उठ गया। मालूम होता है, यह भी बुद्धत्व-प्राप्ति का स्थान न होगा" सोच, बोधि-

सत्त्व प्रदक्षिणा करते पूर्व दिशा की ओर जा, पश्चिम की ओर मुँह करके खडे हुए। पूर्व-दिशा, सभी बुद्धो के बैठने का स्थान है इसलिए न हिलती है, न काँपती है। "यह सभी बुद्धो से अपरित्यक्त स्थान है, (यही) दु ख-पञ्जर के विध्वसन का स्थान है"—जान, (बोधिसत्त्व ने) उन कुशो के छोरो को पकड कर हिलाया। उसी समय चौदह हाथ का आसन बन गया, और वह तृण ऐसे (सुन्दर) रूप से बैठ गये, जैसे (सुन्दर) रूप से कोई चतुर चित्रकार अथवा शिल्प (पोत्थ)-कार चित्रित नही कर सकता। बोधिसत्त्व ने बोधिवृक्ष को भी पीठ की ओर करके, दृढ-चित्त हो निश्चय किया—"**चाहे मेरा चमडा, नसें, हड्डी ही क्यो न बाकी रह जाँय; (और) शरीर-मास, रक्त सूख जाये, तो भी यथार्थ ज्ञान को प्राप्त किये बिना इस आसन को नही छोड़ूंगा**" और सौ बिजलियो के गिरने से भी न टूटने वाला अपराजित आसन लगा बैठ गये।

(५) मार पराजय

उस समय **मार देव-पुत्र** ने सोचा—"सिद्धार्थ-कुमार मेरे अधिकार से बाहिर निकलना चाहता है, इसे नही जाने दूँगा"—और अपनी सेना के पास जा, यह बात कह, घोषणा करवा कर, अपनी सेना से निकल पडा। मार के आगे की ओर वह सेना बारह योजन तक, दाईं और बाईं ओर भी बारह बारह योजन तक, (लेकिन) पीछे की ओर चक्रवाल के अन्त तक फैली हुई थी। आसमान की ओर नौ योजन तक ऊँची थी। जय-घोष करने पर (उसका) जय-घोष एक हजार योजन दूर से भी पृथ्वी के फटने के शब्द की भाँति सुनाई देता था। तब मार देव-पुत्र ने डेढ सौ योजन के गिरिमेखल नामक हाथी पर चढ कर, सहस्रबाहु से नाना प्रकार के आयुधो को ग्रहण किया। मार-सेना के बाकी लोगो मे से भी, किसी दो ने एक प्रकार के हथियार नही लिये। वे सब नाना प्रकार के रग तथा मुख वाले बन कर बोधिसत्त्व को डराते हुए आये उस समय दस सहस्र चक्रवालो के देवता महासत्त्व की स्तुति करते रहे। देवेन्द्र शक्र अपने विजयोत्तर-शख को फूकता रहा। वह शख एक सौ बीस हाथ का था। एक बार फूक देने से चार महीने तक बज कर नि शब्द होता था। महाकाल नाग-राजा शेष सौ श्लोको से गुणगान कर रहा था। महा-ब्रह्मा श्वेत छत्र लिये खडा था। (लेकिन) मार-सेना के बोधि-मण्ड तक पहुँचते पहुँचते (देव-सेना) मे (से) एक भी खडा न रह सका, (सभी) सामने आते ही भाग गये।

काल-नाग-राज पृथ्वी मे अन्तर्धान हो कर, पाँच सौ योजन वाले अपने मञ्जेरिक नाग-भवन में जा, दोनो हाथो से मुँह को ढँक, लेट रहा। शक्र विजयोत्तर-शङ्ख को पीठ पर रख कर चक्रवाल के प्रधान द्वार पर जा खडा हुआ। महाब्रह्मा श्वेत छत्र को चक्रवाल के सिरे पर रख (अपने आप) ब्रह्म-लोक को भाग गया। एक भी देवता न ठहर सका। महा-पुरुष अकेले ही बैठे रहे। मार ने भी अपने अनुचरो मे कहा—"तात! शुद्धोदन-पुत्र सिद्धार्थ के समान दूसरा (कोई) वीर नही है। हम सामने मे इससे युद्ध नही कर सकेंगे (इसलिए) पीछे से चल कर करे।" महापुरुष ने भी सब देवताओ के भाग जाने के कारण तीनो दिशाओ को खाली देखा। फिर उत्तर-दिशा की ओर से मार-सेना को आगे बढते देख—"यह इतने लोग मेरे अकेले के विरुद्ध इतने प्रयत्नशील है। आज यहाँ माता, पिता, भाई या दूसरा कोई सम्बन्धी नही है। मेरी दस पारमिताएँ ही चिरकाल से परिशोपित मेरे परि-जन के समान है। इसलिए इन पारमिताओ को ही ढाल बना कर, (इस) पारमिता शस्त्र को ही चला कर, मुझे यह सेना-समूह विध्वस करना होगा।" (यह सोच) दस पारमिताओ का स्मरण करते हुए बैठे रहे।

तब मार देव-पुत्र ने सिद्धार्थ को भगाने की इच्छा से आंधी उत्पन्न की। तत्काल (उसी क्षण) पूर्व, पश्चिम से झझावत उठ कर अर्ध-योजन, (योजन), दो योजन और तीन योजन तक के पर्वत-शिखरो को उखाडती वृक्षो को उन्मूलन करती, चारो ओर ग्राम-नगरो को चूर्ण विचूर्ण करती आगे बढी। किंतु महापुरुष के पुण्य-तेज से उसकी प्रचडता बोधिसत्व के पास पहुँचते पहुँचते (इतनी निर्बल हो गई कि) उनके चीवर का कोना भी न हिला सकी। तब पानी में डुबाने की इच्छा से उसने भयकर महा-वर्षा शुरु की। उसके दिव्य बल से ऊपर सौ (फिर) हजार तहो वाले बादल बरसने लगे। वर्षा की धाराओ के जोर से पृथ्वी मे छेद पड गये। वन-वृक्षो की ऊपरी चोटियो तक बाढ आ गई, तो भी, (वह) महासत्त्व के चीवरो को ओस की बूँदो के समान भी न भिगो सका। उसके बाद पत्थरो की वर्षा की। बडे-बडे धुआ-धार जलते दहकते पर्वत-शिखर आकाश मार्ग से आये, लेकिन बोधि-सत्त्व के पास पहुच कर दिव्य-पुष्पो के गुच्छे बन गये। उसके बाद आयुध-वर्षा आरम्भ की। एक धार, द्विधार, असि (=तलवार), शक्ति, तीर आदि प्रज्वलित आयुध आकाश मार्ग से आने लगे, (लेकिन) बोधिसत्त्व के पास पहुँचकर (वह भी) दिव्यपुष्प बन गये। उसके बाद अङ्गारो की वर्षा की। लाल लाल रग के अङ्गार

आकाश से वरसने लगे, (लेकिन) वोधिसत्त्व के पैरो पर वह दिव्य-फूल वन कर विखर गये। उसके वाद राख की वर्षा की। अत्यन्त उष्ण अग्निचूर्ण आकाश से वरसने लगा, (लेकिन) वोधिसत्त्व के चरणो पर वह चन्दन-चूर्ण बन कर गिर पडा। तव रेत की वर्षा की। धुधवाती, प्रज्वलित, अति सूक्ष्म वालुका आकाश से वरसने लगी, (लेकिन) वोधिसत्त्व के चरणो पर वह दिव्यपुष्प बन गिर पडी। तव कीचड की वर्षा की। धुधवाता प्रज्वलित कीचड़ आकाश से वरसने लगा, (लेकिन) वोधिसत्त्व के पैरो पर वह दिव्य-लेप बन गिर पडा। तव मार देव-पुत्र ने कुमार को भगाने की इच्छा से अन्धकार कर दिया। वह अन्धकार चारो तरह से घनघोर अन्धकार था, तो (भी) वोधिसत्त्व के पास पहुँच, सूर्य प्रभा से विनष्ट अँधेरे की भाँति अन्तर्धान हो गया।

इस प्रकार मार जब वायु, वर्षा, पाषाण, हथियार, धधकती राख, वालू, कीचड अन्धकार की वर्षा से (भी) वोधिसत्त्व को न भगा सका तो (अपनी परिषद् से बोला) —"भणे! क्या खडे हो। इस कुमार को पकडो, मारो, भगाओ" और इस प्रकार परिषद् को आज्ञा देकर, अपने आप गिरिमेखल हाथी के कन्धे पर बैठ, (अपने) चक्र को ले, वोधिसत्त्व के पास पहुँच कर वोला—"सिद्धार्थ! इस आसन से उठ, यह '(आसन) तेरे लिए नही, मेरे लिए है।" महासत्त्व ने उसके वचन को सुन कर कहा—"मार! तू ने न दस पारमिताएँ पूरी की, न उपपारमिताएँ, न पर-मार्थ-पारमिताएँ ही, न तूने पाच महात्याग ही किये, न जातिहित न लोक-हित काम किये, न ज्ञान का आचरण किया। यह आसन तेरे लिए नही, मेरे लिए ही है।"

मार अपने क्रोध के वेग को न रोक सका, और उसने महापुरुष पर चक्र चलाया। महापुरुष ने (अपनी) दस पारमिताओ का स्मरण किया, और उनके ऊपर, वे आयुध फूलो का चँदवा बन कर ठहर गये। यह वही तेज़ चक्र था, जिसे यदि और दिनो मार क्रुद्ध होकर फेंकता तो एक ठोस पाषाण-स्तम्भ को बाँसो के कडीर की तरह खंड खड कर देता। जब वह बोधिसत्त्व के लिए मालाओ का चँदवा बन गया, तब बाकी मार-परिषद् ने आसन से भगाने के लिए बडी बडी पत्थर की शिलाएँ फेंकी। वह पत्थर की शिलाएँ भी, दस पारमिताओ का स्मरण करते ही महापुरुष के पास आकर, पुष्प मालाएँ बन कर, पृथ्वी पर गिर पडी।

चक्रवाल के किनारे पर खडे देवता-गण गर्दन पसार पसार सिर उठा उठा

कर देख रहे थे। "भो ! सिद्धार्थ-कुमार का सुन्दर स्वरूप नष्ट हो गया। अब वह क्या करेगा?" 'पारमिताओं को पूरा करने वाले बोधिसत्त्वो के बुद्धत्व-प्राप्ति के दिन (जो) आसन प्राप्त होता है, वह मेरे लिए ही है' कहने वाले मार से महा-पुरुष ने पूछा, "मार ! तेरे दान का कौन साक्षी है?" मार ने मार-सेना की ओर हाथ पसार कर कहा—"यह इतने जने साक्षी हैं।" उस समय "मै साक्षी हूँ" "मै साक्षी हूं" कह कर मार-परिषद् ने जो शब्द किया, वह पृथ्वी के फटने के शब्द के समान था। तब मार ने महापुरुष से पूछा—'सिद्धार्थ ! तूने दान दिया है, इसका कौन साक्षी है?' महापुरुष ने कहा, "तेरे दान देने के साक्षी तो जीवित-प्राणी (—सचेतन) है लेकिन इस स्थान पर मेरे दान (दिये) का कोई जीवित साक्षी नही। दूसरे जन्मो में दिये दान (की बात) रहने दे। वेस्सन्तर-जन्म के समय मेरे द्वारा सात सप्ताह दिये गये दान की यह अचेतन ठोस महापृथ्वी भी साक्षिणी है, (और फिर) चीवर के भीतर से दाहने हाथ को निकाल, "वेस्सन्तर-जन्म के समय मेरे द्वारा सात सप्ताह तक दिये गये दान की तू साक्षिणी है वा नही?" कह, महापृथ्वी की ओर हाथ लटकाया। महापृथ्वी ने "मै तेरी तब की साक्षिणी हूँ", (इस प्रकार), सौ वाणी से, सहस्र वाणी से, लाख वाणी से, मार-बल को तितर-वितर करते हुए महा-नाद किया।

तब मार ने 'सिद्धार्थ ! तूने महादान दिया, उत्तम दान दिया है' कहा। वेस्सन्तर के दान पर विचार करते करते डेढ सौ योजन के शरीर वाले गिरिमेखल हाथी ने (दोनो) घुटने टेक दिये। मार-सेना दिशाओ विदिशाओ की ओर भाग निकली। एक मार्ग से दो जनो का जाना नही हुआ। वे सिर के आभरण तथा पहने वस्त्रो को छोड, जिधर मुह समाया, उधर ही भाग निकले।

देव-गण ने भागती हुई मार-सेना को देख सोचा—'मार की पराजय हुई, सिद्धार्थ-कुमार विजयी हुए। (आओ हम चलकर) विजयी की पूजा करें।' फिर नागो ने नागो को, गरुडो ने गरुडो को, देवताओ ने देवताओ को, ब्रह्माओ ने ब्रह्माओ को (सन्देश) भेजा और हाथ में गन्ध माला ले, महापुरुष के पास, बोधि आसन के पास पहुँचे। इस प्रकार उनके वहाँ पहुँचने पर—

उस समय प्रमुदित हो नाग-गण ने, "यह श्रीमान् बुद्ध की जय (हुई) और पापी मार पराजित हुआ" (कह) बोधिमण्ड में महर्षि की विजय उद्घोषित की।

उस समय प्रसन्न हो गरुड ने, "यह श्रीमान् बुद्ध की जय (हुई) और पापी मार पराजित हुआ" (कह) बोधिमण्ड में महर्षि की विजय उद्घोषित की।

उस समय आनन्दित हो देव-गण ने, "यह श्रीमान् बुद्ध की जय (हुई) और पापी मार पराजित हुआ" (कह) बोधिमण्ड में महर्षि की विजय उद्घोषित की।

उस समय आनन्दित हो ब्रह्माओ ने, "यह श्रीमान् बुद्ध की जय (हुई) और पापी मार पराजित हुआ"(कह) बोधिमण्ड में स्थिर चित (बुद्ध) की विजय उद्घोषित की।

शेष दस हजार चक्रवालो के देवता, माला-गन्ध-विलेपन से पूजा कर, नाना प्रकार की स्तुतियाँ करने लगे।

(६) बुद्ध-पद का लाभ

इस प्रकार महापुरुष ने सूर्य के रहते रहते मार-सेना को परास्त किया। चीवर के ऊपर, गिरते हुए बोधिवृक्ष के अकुर गिर रहे थे, जान पडता था, लाल मूगो की (वर्षा से उनकी) पूजा हो रही है।

प्रथम याम मे उन्हे पूर्व-जन्मो का ज्ञान हुआ, दूसरे याम मे दिव्य-चक्षु विशुद्ध हुआ, और अन्तिम याम मे उन्होने **प्रतीत्य-समुत्पाद**[1] का साक्षात्कार किया।

सो उनके बारह-पदो के प्रत्यय-स्वरूप (प्रतीत्य-समुत्पाद[1]) को आवर्त-विवर्त की दृष्टि से, सीधे (=अनुलोम) उलटे (=प्रतिलोम), विचार करते हुए, दस सहस्र लोक-धातु (=ब्रह्माण्ड), पानी की सतह तक, बारह बार कापी।

महापुरुष ने दस सहस्र लोक-धातुओ को उन्नादित कर, दिन की लाली फटते समय बुद्धत्व (=सर्वज्ञता) का साक्षात्कार किया। उस समय, सारे दस सहस्र लोक-धातु सु-अलकृत थे। पूर्व चक्रवाल के छोर पर ध्वजाएँ फहरा रही थी। इन पताकाओ की प्रभाये पश्चिम चक्रवाल के छोर तक पहुँच रही थी। इसी प्रकार पश्चिम चक्र-वाल के छोर पर फहराती (ध्वजाओ की प्रभाओ से) पूर्व चक्रवाल के छोर (प्रभासित हो रहे थे)। उत्तर चक्रवाल के छोर पर फहराती उत्तेजित ध्वजाये दक्षिण चक्रवाल के छोर को प्रभासित कर रही थी। दक्षिण-चक्रवाल के छोर पर उडाई (पताकाओ की प्रभा) उत्तर चक्रवाल के छोर तक पहुँच रही थी। पृथ्वी तल पर उठाई गई ध्वजा पताकायें, ब्रह्म-लोक को छू रही थी,

---

[1] देखो, महा-निदान-सुत्त (दीर्घ-निकाय)।

और ब्रह्मलोक में उठाई पताकायें पृथ्वी तल पर पहुँच रही थीं। दस सहस्र चक्र-वाल में फूलदार वृक्षों पर फूल खिल गये, फलदार वृक्ष फलों के भार से लद गये। (वृक्षों के) स्कन्ध में स्कन्ध-कमल खिल गये। शाखाओं में शाखा-कमल, लताओं में लता-कमल, आकाश में लटकने वाले कमल और शिला-तल को फोड़ कर ऊपर ऊपर सात सात होकर (खिलने वाले) दण्डकपुष्प भी (खिल) उठे।

दस सहस्र लोक धातु घुमा कर रक्खी हुई माला के सदृश या सुप्रसारित पुष्प-शय्या के सदृश हो गये थे। चक्रवालों के बीच के आठ सहस्र 'लोकान्तर' (जो) पहले सात सूर्यों के प्रकाश से भी प्रकाशित नहीं होते थे, (अब) चारों ओर प्रकाश से प्रकाशित (=एकोभासा) हो रहे थे। चौरासी हज़ार योजन गहरा महासमुद्र मीठे जल वाला हो गया था। नदियों का बहना रुक गया। जन्मान्ध को रूप दिखाई देने लगा था। जन्म के बहरे शब्द सुनने लगे थे। जन्म के पंगु पाँव से (चलने) लग गये थे। (बंदियों की) हथकड़ी, बेड़ी आदि बन्धन टूट कर गिर पड़े। इस प्रकार अनन्त प्रभा-शोभा से पूजित (हो) अनेक प्रकार की आश्चर्यकर घटनाएँ घटित हो रही थीं।

तब बुद्ध ने बुद्धत्व-ज्ञान का साक्षात् कर, सभी बुद्धों द्वारा कहे गये उदान (प्रीति-वाक्य) को कहा है —

"दुःखदायी जन्म बार-बार लेना पड़ा। मैं संसार में (शरीर रूपी गृह को बनाने वाले) गृह-कारक को पाने की खोज में निष्फल भटकता रहा। लेकिन गृह-कारक ! अब मैंने तुझे देख लिया। (अब) तू फिर गृह-निर्माण न कर सकेगा। तेरी सब कड़ियाँ टूट गईं, गृह-शिखर बिखर गया। चित्त निर्वाण प्राप्त हो गया, तृष्णा का क्षय देख लिया।"

यह तुषित देवलोक से आरम्भ करके यहाँ बोधिमण्ड में बुद्धत्व (= सर्वज्ञता) प्राप्ति तक की बात 'अविदूरे निदान' कही जाती है।

ग. सन्तिके निदान

(१) बोधि-वृक्ष के आसपास

लेकिन 'सन्तिके निदान' (क्या है)? "भगवान् श्रावस्ती[1] में अनाथ पिण्डिक

---

[1] बलरामपुर से १० मील पर वर्तमान सहेट महेट (जिला गोण्डा, उत्तर प्रदेश।)

के आराम **जेतवन** मे विहार करते थे।" **वैशाली**[1] मे महावन की कूटागार शाला मे विहार करते थे।" इस प्रकार उन उन स्थानो पर विहार करते समय का वृत्तान्त उन उन स्थानो पर मिलता ही है। जो कुछ इस विषय मे कहा गया है, उसे भी आरम्भ से इस प्रकार समझना चाहिए —

उस उदान (=प्रीति वाक्य) को कह कर (वहाँ) वैठे भगवान् के मन मे हुआ—"मै इस (वुद्ध) आसन के लिए चार असखेय्य एक लाख कल्प दौडता रहा, इसी आसन के लिए मैंने इतने समय तक, अपने अलकृत सीस को गर्दन मे काट कर दिया, सुअञ्जित आँखो और हृदय-मास को निकाल कर प्रदान करता रहा, जालिय कुमार सदृश पुत्र, कृष्णाजिना कुमारी सदृश पुत्री माद्रीदेवी सदृश भार्या को दूसरो के दास वनने के लिए दिया। मेरा यह आसन जय-आसन है, श्रेष्ठासन है। यहाँ (इस आसन) पर वैठे मेरे सकल्प पूरे हुए है। अभी मै यहाँ से नही उठूगा" (यह सोच) दसो खरव समापत्तियो (=ध्यानो) मे रत, सप्ताह भर तक वही वैठे रहे। इसी के वारे मे कहा है—**"भगवान् सप्ताह-भर तक एक ही आसन से विमुक्ति सुख का आनन्द लेते हुए वैठे रहे।"**[2]

तव कुछ देवताओ के मन मे ऐसा सन्देह उत्पन्न हुआ, 'सिद्धार्थ कुमार को अभी भी (कुछ योग) करना वाकी है। इसीमे वह आसन के मोह को नही छोडता है।' शास्ता ने देवताओ के सदेह को जान, उसे हटाने के लिए, आकाश मे जाकर **यमक-प्रातिहार्य**[3] दिखाई। महावोधि-मण्ड मे की गई यह प्रातिहार्य, (देह-) सम्वन्धियो के समागम के समय पर की गई प्रातिहार्य, और पाटिकपुत्र (परिव्राजक) के समागम पर की गई प्रातिहार्य—ये सव प्रातिहार्य, गण्डम वृक्ष के नीचे की गई यमक-प्रातिहार्य जैसी ही हुई थी। इस प्रकार इस प्रातिहार्य मे देवताओ के सदेह को दूर कर, शास्ता ने (वज्र—) आसन से जरा थोडा पूर्व की ओर 'उत्तर-दिशा-भाग' मे खडे हो सोचा—'इस स्थान पर मैंने सर्वज्ञताज्ञान प्राप्त किया।' फिर चार असखेय्य एक लाख कल्प तक पूरी की गई पारमिताओ की फल प्राप्ति के स्थान

---

[1] वसाढ (जिला मुजफ्फरपुर) के प्राय २ मील उत्तर वर्तमान कोल्हुआ, जहाँ आज अशोक-स्तम्भ खड़ा है।

[2] विनयपिटक, महावग्ग।

[3] दिव्य-चमत्कार।

को निर्निमेष दृष्टि से देखते सप्ताह बिता दिया। इसीलिए स्थान का नाम 'अनि-मिस-चेतिय' (=अनिमेष चैत्य) हो गया।

तब (वज्र—) आसन और खड़े होने के स्थान के बीच की भूमि को चक्रमण-भूमि बना पूर्व से पश्चिम को रतन भर चौड़े, रत्न-चक्रमण पर चक्रमण करते हुए सप्ताह बिताया। उस स्थान का नाम 'रत्न-चक्रमण चेतिय' पड़ा।

चौथे सप्ताह में, देवताओं ने बोधि से पश्चिमोत्तर दिशा मे रत्न-घर बनाया। वही (शास्ता ने) आसन पर बैठ, अभिधर्म-पिटक को—विशेष रूप से अनन्त क्रम वाले **समन्त पट्ठान**' को विचरते हुए सप्ताह बिताया। इस विषय में आभि-धर्मिको का कथन है—"रत्नघर रत्नमय-गृह का नाम नही है, बल्कि (अभिधर्म के) सात प्रकरणो का सग्रह-स्थान ही रत्न-घर है।" चूकि यहाँ **दोनो** ही अर्थ ठीक लग जाते है, इसलिए दोनो ही अर्थ ग्रहण करने चाहिए।' उसके बाद उस स्थान का नाम 'रत्नघर-चेतिय' पड़ा।

(२) अजपाल बरगद के नीचे

इस प्रकार बोधि-वृक्ष के ही समीप चार सप्ताह बिता कर, पाँचवे सप्ताह (भगवान्) बोधि-वृक्ष से (चलकर) जहाँ **अजपाल बरगद** (=न्यग्रोध) है, वहाँ चले गये। वहाँ भी धर्म पर विचार करते तथा विमुक्ति सुख का आनन्द लेते ही बैठे रहे। उस समय देवपुत्र मार ने इतने समय तक (शास्ता का) पीछा करके, मौका ढूढते हुए भी, इनमे कोई दोष न देख, सोचा—'अब यह मेरे अधिकार से बाहिर हो गये।' और खिन्न हो, महामार्ग पर बैठे बैठे सोलह बातो का ख्याल कर, पृथ्वी पर सोलह रेखाएँ खैंची। "मैने इसकी तरह दान पारमिता पूरी नही की, इसीलिए मै इसके जैसा नही हुआ" यह (सोच) एक रेखा खीची। वैसे ही "मैने इसकी तरह शील-पारमिता, नैष्क्रम्य-पारमिता, प्रज्ञा-पारमिता, वीर्य-पारमिता, शान्ति पारमिता, सत्य-पारमिता, अधिष्ठान-पारमिता, मैत्री पारमिता, उपेक्षा-पारमिता पूरी नही की, इसीलिए मैं इस जैसा नही हुआ" (सोच) दसवी रेखा खीची। "मैने इसकी तरह (श्रद्धा इन्द्रिय आदि) इन्द्रियो की उन्नत अनुन्नत अवस्था सम्बन्धी असाधारण ज्ञान की प्राप्ति के आश्रय भूत दस पारमिताओ की

' अभिधर्म-पिटक का एक ग्रन्थ।

पूर्ति नही की, इसलिए मै इन जैसा नही हुआ" (सोच) ग्यारहवी रेखा खैची। वैसे ही 'मैने इसकी तरह असाधारण आशय, अनुशय ज्ञान पा, महाकरुणा समापत्ति (=ध्यान) ज्ञान, यमक-प्रातिहार्य ज्ञान, अनावरण-ज्ञान तथा सर्वज्ञता ज्ञान की प्राप्ति के आश्रय दस पारमिताओ की पूर्ति नही की। इसीलिए मै इस जैसा नही हुआ" (सोच) सोलहवी रेखा खीची। इस प्रकार, इन कारणो से (देवपुत्र मार) महामार्ग पर सोलह लकीरे खैचते वैठा रहा।

उस समय, तृष्णा, अरति तथा रगा (=राग) नामक मार की (तीनो) कन्याओ ने "हमारा पिता दिखाई नही दे रहा है, वह इस समय कहाँ है" (सोच) ढूढते हुए उसे खिन्न-चित्त भूमि कुरेदते (=लिखते) देखा। उन्होने पिता के समीप जा पूछा—"तात! आप किस लिए दु खी तथा खिन्न-चित्त है?"

"अम्मा! यह महा-श्रमण मेरे अधिकार से वाहिर हो गया। इतने समय तक देखते रहते भी इसके छिद्र नही देख सका। इसीसे मै दुखी तथा खिन्नचित्त हूँ" "यदि ऐसा है, तो सोच मत करो। हम इसे अपने वश मे करके ले आयेंगी।"

"अम्मा! इसे कोई वश मे नही कर सकता। यह पुरुष अचल श्रद्धा मे प्रतिष्ठित है।"

"तात! हम स्त्रियाँ है। हम उसे अभी राग आदि के पाश मे बाध कर ले आयेंगी। आप चिता न करें" (यह) कह भगवान् के पास जा उन्होने पूछा! "श्रमण! हमे अपने चरणो की सेवा करने दो।"

भगवान् ने न उनके कथन को सुना, न आँख खोलकर (उनकी ओर) देखा। वह अनुपम, उपाधिक्षीण (=निर्वाण) मे रत हो, विमुक्तिचित्त, विवेक (=एकान्त) सुख का अनुभव करते वैठे रहे। तव मारकन्याओ ने सोचा—"पुरुषो की रुचि भिन्न भिन्न होती है। किसी को कन्याये प्रिय लगती है, किसी को नव तरुणियाँ और किसी को वीच की आयु की मध्यवस्यस्काये और किसी को प्रौढाये। (आओ) हम इसे भिन्न भिन्न प्रकार से प्रलोभन दे।" तब उन्होने सौ सौ रूप धारण किये। कुमारी वनी, अप्रसूता हुई, एक वार प्रसूता, दो वार प्रसूता, मध्यवयस्का तथा प्रौढा स्त्रियें वन वन कर छ बार भगवान् के पास आ कर पूछा—"श्रमण! हमें अपने चरणो की सेवा करने दो!" भगवान् ने उस (कथन) को भी मन मे नही किया। वह उस अनुपम, उपाधिक्षीण (=निर्वाण) में रत, विमुक्ति-चित्त ही रहे।

(इस विषय में) कोई कोई आचार्य कहते हैं—" उन्हे बूढी स्त्रियो के स्वरूप में देख, भगवान् ने अधिष्ठान किया, कि यह खण्डित दन्त और श्वेत केशा हो जाये" किन्तु यह (कथन) ग्रहण करने योग्य नही है, क्योकि बुद्ध इस प्रकार का अधिष्ठान नही करते। हॉ, भगवान् ने "तुम जाओ। काहे यह सब प्रयत्न करती हो? जो विरागी नही है उन लोगो के सन्मुख यह सब करना चाहिए। तथागत का राग नष्ट हो गया, द्वेष (=क्रोध) नष्ट हो गया, मोह नष्ट हो गया" कह अपनी चित्तशुद्धि के विषय मे कहा —

"जिसके जय को पराजय में बदला नही जा सकता, जिसके जीते (राग, द्वेष, मोह फिर) नहीं लौट सकते; उस बे-निशान (अपद=स्थान-रहित), अनन्त-दर्शी बुद्ध को किस रास्ते पा सकोगे? जाल रचने वाली जिसकी विषय रूपी तृष्णा कहीं भी ले जाने लायक नहीं रह गई; उस अपद, अनन्तदर्शी बुद्ध को किस रास्ते से पा सकोगे?

इन धर्म-पद के बुद्ध-वग्ग (१४) मे आई दो गाथाओ को कह धर्मोपदेश किया।' तब वे मार-कन्यायें हमारे पिता ने सत्य ही कहा था, "अरहत् सुगत को राग (के बन्धन) में लाना आसान नही।" (सोच) पिता के पास चली गई। भगवान् भी सप्ताह बिता कर वहाँ से मुचलिन्द वृक्ष के नीचे चले गये।

(३) मुचलिन्द वृक्ष के नीचे

उस समय सप्ताह भर की बदली उत्पन्न हो गई। सर्दी आदि से बचने के लिए नाग राज मुचलिन्द ने फन तान सात गेडुरी बनाई। उसमे गन्धकुटी में बाधारहित विचरने की तरह, विमुक्ति सुख का आनन्द लेते हुए, (भगवान् ने) सप्ताह बिताया फिर राजायतन (—वृक्ष) के पास पहुँच, वहाँ भी विमुक्ति सुख का आनन्द लेते हुए बैठे रहे। इस प्रकार यह सात सप्ताह पूरे हुए। इन सात सप्ताहो में (भगवान्) ने न मुख धोया, न शरीर-शुद्धि की, न भोजन ही किया। (सब समय) (सारे समय को) ध्यान-सुख, मार्ग सुख और फल (—प्राप्ति) के सुख में ही व्यतीत किया।

तब सात सप्ताहो के बीतने पर, उनचासवे दिन शास्ता को मुह धोने की इच्छा हुई। देवेन्द्र शक्र ने हर्रे लाकर दी। शास्ता ने उसे खाया। उससे उन्हें शौच (=शरीर शुद्धि) हुआ। तब शक्र ने ही नागलता की दातुन (दन्तकाष्ठ) और

मुख धोने के लिए पानी ला दिया। बुद्ध उस दातुन को कर, अनोतत्त-दह (= सरोवर) पर पानी से मुह धो, फिर राजायतन के नीचे बैठे।

(४) धर्म-प्रचार

उस समय **तपस्सु** और **भल्लिक** नामक दो व्यापारी, पॉच सौ गाडियो के साथ **उत्कल**[१] देश से पश्चिम-देश (= मध्य देश) को जा रहे थे। उनके ज्ञाति-सम्बन्धी, देवताओ ने गाडिया रोक बुद्ध के लिए आहार तैयार करने के लिए उन्हे उत्साहित किया। उन्होने जाकर, सत्तू और पूए (= मधुपिण्ड) ले, शास्ता के पास जा, खडे होकर प्रार्थना की, "भन्ते ! भगवान्। कृपाकर इस आहार को ग्रहण करें।"

(सुजाता के) खीर के ग्रहण करने के दिन ही भगवान् के पात्र अन्तर्धान हो गये थे। इसलिए भगवान् ने सोचा—'तथागत हाथ मे तो आहार ग्रहण नही करते, मैं किस (बरतन) में आहार ग्रहण करूँ?" तब उनके विचार को जान कर चारो दिशाओ के चारो महाराजा इन्द्र नील मणि के बने पात्र को ले आये। भगवान् ने उन्हें अस्वीकार कर दिया। फिर मूगे वर्ण के पाषाण के चार पात्र ले आये। चारो देवपुत्रो पर अनुकम्पा करने के लिए भगवान् ने चारो पात्रो को ले, एक दूसरे के ऊपर रख अधिष्ठान किया कि वह एक हो जाये। चारो पात्र मुख द्वार पर प्रकट (चार) रेखाओ वाले हो, बिचले (पात्र) के परिमाण के एक पात्र बन गये। भगवान् ने उस मूल्यवान् पत्थर के पात्र मे आहार ग्रहण किया। भोजन करके (दान) अनुमोदन किया। दोनो भाई बुद्ध तथा धर्म की शरण जाने से दो वचन के **उपासक**[२] हुए। तब उनमे से एक के 'भन्ते ! (पूजा) के लिए कुछ दे' कहने पर, भगवान् ने सिर पर दाहने हाथ को फेर कर (अपने कुछ) बालो (= केश) को दिया। उन्होने अपने नगर में पहुँच उस केश को भीतर रख, (ऊपर से) चैत्य बनवाया।

सम्यक सम्बुद्ध भी वहाँ से उठ, अजपाल न्यग्रोध के पास जा, वहाँ न्यग्रोध (वृक्ष) के नीचे बैठे। तब वहाँ बैठते ही उनके मन मे अपने अनुभूत धर्म की गम्भीरता का विचार उत्पन्न हुआ। "(सब) बुद्धो के अभ्यस्त इस धर्म का मैंने अनुभव

---

[१] **उड़ीसा।**

[२] **सघ के न होने से वह बुद्ध और धर्म दो की ही शरण गए।**

किया है ' (इस प्रकार) दूसरों को धर्मोपदेश देने की अनिच्छा का विचार (=वितर्क) उत्पन्न हुआ। तब सहम्पति ब्रह्मा ने "अरे! लोक नाश हो जायगा, अरे! लोक विनाश हो जायगा" कहते, दस सहस्र चक्रवालों से शक्र-सुयाम—सन्तुपित-सुनिर्मित-वशवर्ती-महाब्रह्माओं को ले कर, शास्ता के पास जा, "भन्ते! भगवान्! धर्मोपदेश करें। सुगत! धर्मोपदेश करें" इत्यादि क्रम से धर्मोपदेश करने की प्रार्थना की।

(५) बनारस सारनाथ

शास्ता उसे प्रतिज्ञा दे सोचने लगे, "मैं पहले किसे धर्मोपदेश करूँ?" "इस धर्म को आलार-कालाम शीघ्र ही जान लेगा" सोच कर देखा, तो पता लगा कि उसे मरे एक सप्ताह हो गया। तब उद्दक के बारे में ख्याल आया। मालूम हुआ, वह भी (उसी) रात को मर गया। (तब) सोचा—"पञ्चवर्गीय भिक्षुओं ने मेरा बहुत उपकार किया है।" पञ्चवर्गीय भिक्षुओं के बारे में प्रश्न हुआ, 'वह इस समय कहाँ है?" सोचते हुए, **वाराणसी (बनारस) के मृगदाव**[1] में (विहरते हैं) जान, वहाँ जाकर धर्मचक्र प्रवर्तित करने का विचार किया।

कुछ दिन तक बोधिमण्ड के आस पास ही भिक्षाचार कर विहार करते रहे। आषाढ पूर्णिमा के दिन बनारस पहुँचने के विचार से, चतुर्दशी को प्रात काल तड़के ही (=समय) पात्र चीवर ले, अठारह योजन के मार्ग पर चल पड़े। रास्ते में उपक नामक **आजीवक**[2] को देख कर, उसे अपने 'बुद्ध' होने की बात कह, उसी दिन शाम के समय ऋषिपतन पहुँचे।

पञ्चवर्गीय-भिक्षुओं ने तथागत को दूर से आते देख निश्चय किया—"आयुष्मानो! यह श्रमण गौतम वस्तुओं के अधिक लाभ के लिए मार्ग-भ्रष्ट हो परिपूर्ण शरीर, मोटी इन्द्रियों वाला, सुवर्ण-वर्ण हो कर आ रहा है। हम उसे अभिवादन आदि न करेंगे। लेकिन महाकुल-प्रसूत होने से यह आसन का अधिकारी है, अत हम इसके लिए खाली आसन बिछा देंगे।"

भगवान् ने देवो सहित (सारे) लोक के चित्त की बात जान सकने वाले

---

[1] **वर्तमान सारनाथ, बनारस।**

[2] **उस समय के नग्न साधुओं का एक सम्प्रदाय।**

ज्ञान से सोच कर उन (पचवर्गीयो) के विचार को जान लिया। तब उन्होने समान रूप से सब देव मनुष्यो तक पहुँचने वाले मैत्री-पूर्णचित्त को, विशेप रूप से पचवर्गीयो की ओर फेरा। भगवान् के मैत्री-चित्त से स्पृष्ट हो, तथागत के समीप आते आते वह अपने निश्चय पर दृढ न रह सके और उन्होने अभिवादन प्रत्युत्थान आदि सब कृत्यो को किया। लेकिन 'सम्बुद्धत्व' प्राप्ति' का उन्हे ज्ञान न था, इसलिए वह (तथागत को) केवल नाम लेकर अथवा 'आवुसो' (= आयुष्मान्) कह कर सम्बोधन करते थे।

(६) प्रथम-उपदेश · धर्मचक्र प्रवर्तन

तब भगवान् ने उन्हे "भिक्षुओ! तथागत को नाम से अथवा 'आवुस' कह कर मत पुकारो। भिक्षुओ! तथागत अर्हत् है, सम्यक् सम्बुद्ध है" कह, अपने बुद्ध होने को प्रगट किया। बिछे श्रेष्ठ बुद्धासन पर बैठ, उत्तराषाढ नक्षत्र (आषाढी पूर्णिमा के दिन) अठारह करोड ब्रह्माओ से घिरे हुए पञ्चवर्गीय स्थविरो को सम्बोधित कर **धर्म चक्र प्रवर्तन सूत्र**[1] का उपदेश किया। उनमें से स्थविर अञ्ञा-कौडिन्य उपदेशानुसार ज्ञान का विकास करते हुए, सूत्र की समाप्ति पर अठारह करोड ब्रह्माओ सहित स्रोतआपत्ति फल मे स्थित हुए। तब बुद्ध वर्षा-काल के लिए वही ठहर गये। अगले दिन वप्प स्थविर को उपदेश करते विहार मे ही बैठे रहे। शेप चार जने भिक्षा माँगने गये। वप्प स्थविर पूर्वाह्न मे ही स्रोतआपत्ति फल को प्राप्त हुए। इसी क्रम से अगले दिन भद्दिय स्थविर, फिर अगले दिन महा-नाम स्थविर, फिर अगले दिन अश्वजित् महा स्थविर—सब को स्रोतआपत्ति फल मे स्थित कर, पक्ष के पाँचवे दिन, पाँचो जनो को एकत्र कर अनन्त-लक्षण सूत्र का उपदेश किया। देशना की समाप्ति पर पाँचो स्थविर अर्हत्-फल मे स्थित हुए।

तब शास्ता ने यश कुल-पुत्र की योग्यता (= उपनिस्सय) देख, उसी रात विरक्त हुए, घर छोड कर निकले (यश) को, "यश! आ।" कह बुलाया। उसी रात को उसे स्रोतआपत्ति-फल, (और) अगले दिन अर्हत्-फल में प्रतिष्ठित कर, उसके और भी चौवन (५४) मित्रो को "भिक्षुओ! आओ"—वचन द्वारा प्रब्रज्या देकर 'अर्हत्व' प्राप्त कराया।

---

[1] **संयुक्त नि० ५५ · २ : १ विनय महावग्ग (महाक्खन्धक)।**

(७) उरुवेला की ओर

इस प्रकार लोक में इकसठ अर्हत हो गये। वर्षा-वास की समाप्ति पर शास्ता ने 'प्रवारणा'[१] कर, "भिक्षुओ! चारिका करो "[२] (कह) भिक्षुओं को साठ दिशाओं में भेज, स्वय उरुवेल को जाते हुए, मार्ग मे कप्पासिय वनसड में तीस भद्रवर्गीय कुमारो को दीक्षित (= विनीत) किया। उन (कुमारो) मे जो सवसे पिछला था, वह स्रोतापन्न जो सर्वश्रेष्ठ था वह अनागामी हुआ। उन सव को भी "भिक्षुओ! आओ।" वचन से ही प्रव्रजित कर, (भिन्न भिन्न) दिशाओं में भेज, स्वय उरुवेल पहुँच (वहाँ) तीन सहस्र पाँच सौ प्रातिहार्य (= चमत्कार) दिखा, सहस्रो जटिलो सहित उरुवेल काश्यप आदि तीन जटिल भाइयो को विनीत कर 'भिक्षुओ! आओ'—वचन से ही (उन्हें भी) प्रव्रजित कर गया-शीर्ष[३] पर वैठ, आदिप्त-पर्याय (—सूत्र)[४] के उपदेश से (उन्हे) अर्हत्-भाव मे प्रतिष्ठित कराया। फिर उन सहस्र अर्हतो के साथ (राजा) विम्विसार को दी हुई प्रतिज्ञा को पूरा करने के लिए राजगृह नगर[५] के समीप स्थित लट्ठिवन-उद्यान मे पहुँचे

(८) राजा विम्विसार का वौद्ध होना

राजा अपने माली के मुह मे वुद्ध के आने की वात सुन, वारह नहुत[६] (= नियुत) ब्राह्मण-गृहपतियो के साथ, वुद्ध के पास पहुँचे। उनके चक्र से अकित तल वाले, सुनहले वस्त्र के चँदवे के समान प्रभा-पुज प्रसारित करने वाले, चरणों में सिर से प्रणाम कर, परिषद् सहित एक ओर वैठ गया। तव उन ब्राह्मण-गृहपतियो के मन मे यह (शका) हुई—'क्या उरुवेल-काश्यप महाश्रमण (गौतम) का शिष्य है अथवा महाश्रमण उरुवेल काश्यप का (शिष्य)? भगवान् ने अपने चित्त से उनके चित्त के वितर्क को जान (उरुवेल काश्यप) स्थविर को 'गाथा' मे कहा—

"उरुवेल-वासी! तप कृशो के उपदेशक! क्या देख कर (तुमने) आग छोड़ी? काश्यप! तुमसे यह वात पूछता हूँ, तुम्हारा अग्नि-होत्र कैसे छूटा?"

---

[१] वर्षा-समाप्ति पर विदायगी। [२] महावग्ग (महाखन्धक)।
[३] गया सीस, गया का ब्रह्मयोनि पर्वत है। [४] संयुक्त नि० ४३.३ ६।
[५] मगध की राजधानी। [६] नहुत=दस हजार।

स्थविर ने भगवान् का अभिप्राय समझ कर कहा —"रूप; शब्द, रस, काम-भोग, तथा स्त्रियाँ ये सब यज्ञ से (मिलती है), ऐसा कहते है। लेकिन (उक्त) उपाधियाँ मल है, यह जान कर, विरक्त चित्त हो, मैने यज्ञ करना तथा हवन करना छोड़ दिया।"

इस गाथा को कह अपने शिष्य-भाव के प्रकाशनार्थ, तथागत के चरणो मे सिर रख, "भन्ते! भगवान्! आप मेरे गुरु (=शास्ता) है, मै आपका शिष्य हूँ" कह, आकाश मे एक-ताल, दो-ताल-तीन-ताल सात-ताल ऊँचे तक, सात बार चढ उतर कर, तथागत को प्रणाम कर, एक ओर बैठ गया। इस प्रकार के चमत्कार को देख, लोग कहने लगे "अहो बुद्ध! महाप्रतापी है, जिन तथागत ने इस प्रकार के दुराग्रही, अपने को अर्हत् समझने वाले उरुवेल काश्यप को भी उसके मत रूपी जाल को काट कर, दीक्षित किया! भगवान् ने "न केवल अभी मैने उरुवेल-काश्यप का दमन किया है, अतीत-काल मे भी किया है।" कह, तथा इस अर्थ को स्पष्ट करने के लिए **महानारद काश्यप जातक**[1] कह, चार आर्य्य सत्यो का प्रकाश किया। ग्यारह नहुत (ब्राह्मण-गृहपतियो) सहित मगध-नरेश (बिम्बिसार) स्रोतआपत्तिफल मे प्रतिष्ठित हुए। एक नहुत उपासक हुए।

बुद्ध के पास बैठे ही बैठे राजा (बालक-पन मे अपने मन मे उठी) **पाँच इच्छाओ**[2] को कह, त्रिशरण ग्रहण कर, अगले दिन के लिए निमन्त्रण दे, आसन से उठ, भगवान् की प्रदक्षिणा कर चला गया। अगले दिन, जिन्होने तथागत को देखा था, वे भी, और जिन्होने नही देखा था, वे भी—सभी अठारह करोड राजगृह-निवासी तथागत को देखने की इच्छा से प्रात काल ही राजगृह से **यष्टि-वन**[3] को गये। तीन गव्यूति मार्ग (भी) पर्य्याप्त नही था। सारा यष्टिवन उद्यान हमेशा भरा रहता था। जन समूह भगवान् के सुन्दर स्वरूप को देखते तृप्त नही होते थे। यह रूप का प्रकरण (=वर्ण-भूमि) है। ऐसे स्थान पर लक्षण-अनुव्यञ्जनादि के विस्तार के साथ तथागत के शरीर के सारे सौन्दर्य का वर्णन करना चाहिए।

---

[1] जातक (५४४)।

[2] 'क्या ही अच्छा होता, यदि मै राज्यभिषिक्त होता' आदि पाँच इच्छाएँ (महावग्ग)।

[3] राजगृह नगर के समीपवर्ती जठियाँव (लठ्ठिवन उद्यान)।

इस प्रकार बुद्ध (दस बल) के सुन्दर शरीर के दर्शन के लिए आने वाले जन-समूह से उद्यान के और मार्ग के निरन्तर भरे रहने से एक भिक्षु को भी बाहिर निकलने का अवकाश नही रहा। उस दिन भगवान् को निराहार रह जाने को सम्भावना थीं। ऐसा न होने देने के लिए, शक्र का आसन गर्म हुआ। देवेन्द्र ने विचार करके, (आसन गर्म होने के) कारण को जाना, और ब्राह्मण तरुण (= माणवक) का रूप धारण कर, बुद्ध-धर्म-सघ की स्तुति करते हुए, बुद्ध (दस-बल धारी) के सामने उतर देव-बल से अपने लिए जगह कर गाथा बना कहा —

अनासक्त (= विप्रमुक्त) संयमयुक्त पुराने जटाधारियो (= जटिलो) के साथ (= सिंगी-निकश) तप्त सुवर्ण (सुवर्ण सदृश) संयमी (= दमित) भगवान् राजगृह में प्रवेश कर रहे है।

मुक्त, विप्रमुक्त, पुराने जटिलो के साथ तप्त सुवर्ण से रूपवान् मुक्त भगवान् राजगृह में प्रवेश कर रहे हैं।

उत्तीर्ण (= पार-प्राप्त) विप्रमुक्त, पुराने जटिलो से युक्त, तप्त सुवर्ण जैसे रूपवान् उत्तीर्ण भगवान् राजगृह में प्रवेश कर रहे हैं।

दस-वास (वाले), दस-बल (-धारी), दस धर्मों के ज्ञाता, दस गुणो से युक्त, सहस्र अर्हतो के साथ भगवान् राजगृह में प्रवेश कर रहे हैं।

उक्त गाथाओ से बुद्ध का गुणानुवर्णन करते हुए (देवेन्द्र) आगे आगे चल रहे थे। लोगो ने ब्राह्मण तरुण (माणवक) के रूप की सुन्दरता देख 'यह माणवक अत्यन्त सुन्दर है, हमने इसे पहले नही देखा' सोच, पूछा —"यह माणवक कहाँ से (आया) है? किस का है?" इसे सुन माणवक ने यह गाथा कही —

लोक में जो धीर है, सर्वत्र सयत है, अर्हत् है, सुगत है; अद्वितीय बुद्ध है— मैं उनका सेवक (परिचारक) हूँ।

एक सहस्र भिक्षुओ के साथ बुद्ध (= शास्ता) ने, शक्र द्वारा बनाये गये मार्ग से राजगृह मे प्रवेश किया। राजा ने बुद्ध-प्रमुख भिक्षु-सघ को भोजन (= महादान) दे (प्रार्थना की)—"भन्ते! मैं बुद्ध-धर्म—सघ (= त्रिरत्न) के विना न रह सकूगा। समय वे समय, भगवान् के पास आऊँगा। यष्ठि (= लट्ठ) वन उद्यान बहुत दूर है। लेकिन हमारा वेणुवन उद्यान अधिक दूर नही है। वहाँ आना जाना

महज है। वुद्ध के योग्य निवासस्थान है। भगवान्! आप उसे स्वीकार करे।" (कह) सोने के झारी मे, पुष्प गन्ध से सुवासित, मणि के रग जल को ले कर वेणुवन उद्यान का दान करते हुए, वुद्ध (= दशवल) के हाथ मे जल डाला। उसी आराम की स्वीकृति से वुद्ध धर्म (=शासन) ने (लोक मे) जड पकडी—(इसीलिए) पृथ्वी काँपी। जम्वूद्वीप मे वेणुवन को छोड और किसी निवास (=शयनासन) के ग्रहण करने के समय पृथ्वी नही काँपी। सिहल (ताम्रपर्णी) मे भी महाविहार[1] के अतिरिक्त और किसी शयनासन के ग्रहण करते वक्त पृथ्वी नही काँपी। (भगवान्) वेणुवन को ग्रहण कर, राजा (के दान) का अनुमोदन कर, आसन से उठ, भिक्षुसघ सहित वेणुवन को चले गये।

(९) सारि-पुत्र और मौद्गल्यायन की प्रव्रज्या

उस समय अमृत की खोज मे लगे हुए सारिपुत्र मौद्गल्यायन—दो परिव्राजक राजगृह के समीप रहते थे। उनमे से (एक) सारिपुत्र ने अश्वजित् स्थविर को भिक्षा-चार करते देखा। वह प्रसन्न-चित्त हो, उनका सत्सङ्ग कर उनसे 'जो हेतुओ मे उत्पन्न धर्म है (= ये धम्मा हेतुप्पभवा)[2] गाथा को सुन स्रोतआपत्ति फल मे प्रतिष्ठित हुए। उन्होने अपने मित्र मौद्गल्यायन परिव्राजक को भी वह गाथा कही। वह भी स्रोतआपत्ति-फल में प्रतिष्ठित हुए। वह दोनो ही (अपने पूर्व आचार्य) सञ्जय से भेंट कर, अपनी मडली के साथ शास्ता के पास जा प्रव्रजित हुए। उनमे से महामौद्गल्यायन (एक) सप्ताह मे ही अर्हत्व को प्राप्त हुए। सारिपुत्र पन्द्रह दिन में। शास्ता ने उन दोनो को प्रधान शिष्य (= अग्र-श्रावक) वनाया। सारिपुत्र स्थविर ने जिस दिन अर्हत् पद प्राप्त किया, उसी दिन (वुद्ध) शिष्यो का सम्मेलन किया गया।

(१०) शुद्धोदन का संदेश

तथागत के उसी वेणुवन उद्यान मे विहार करते समय, शुद्धोदन महाराज ने सुना—"मेरे पुत्र ने छ वर्ष तक दुष्कर तपस्या कर, वुद्ध के उत्तम पद को प्राप्त

---

[1] सिहल द्वीप में महास्थविर महेन्द्र को प्रदत्त प्रथम विहार

[2] ये धम्मा हेतुप्पभवा तेस हेतु तथागतो आह ! तेसं च यो निरोधो, एवं वादी महासमणो ।

किया है। वह धर्म-उपदेश का प्रारम्भ (धर्मचक्रप्रवर्तन) कर, राजगृह के समीप वेणुवन में विहार करता है"। फिर एक मत्री (= अमात्य) को बुला कर कहा —"अरे! आओ, तुम एक हजार आदमियो को साथ ले, राजगृह जाकर मेरे वचन से, मेरे पुत्र को कहो—'आपके पिता महाराज शुद्धोदन (आपका) दर्शन करना चाहते हैं', कह और मेरे पुत्र को (बुलाकर) ले कर आओ।"

"अच्छा देव!" कह उसने राजा के वचन को शिरोधार्य किया। फिर वह एक हजार आदमियो को साथ ले, शीघ्र ही साठ योजन रास्ते को पार कर (राजगृह) पहुँचा। बुद्ध (उस समय) (भिक्षु, भिक्षुणी, उपासक, उपासिका) चार प्रकार की परिषद् के बीच बैठ, धर्म उपदेश कर रहे थे। उसी समय वह विहार में प्रविष्ठ हुआ। उसने 'राजा का भेजा सन्देशा अभी पडा रहे' सोच परिषद् के अन्त मे खडे खडे शास्ता का धर्म उपदेश सुना, और खडे ही खडे हजार आदमियो सहित अर्हत् पद प्राप्त कर उसने प्रव्रज्या माँगी। भगवान् ने 'भिक्षुओ! आओ' कह हाथ पसारा। उसी समय वे सब योगबल से पात्र-चीवर-धारी हो गये। सौ वर्ष के स्थविर (= वृद्धभिक्षु) जैसे हो गये।

'अर्हत् पद प्राप्त होने पर आर्य-लोग मध्यस्थ भाव को प्राप्त हो जाते हैं', इसलिए उसने राजा के भेजे सन्देश को नही कहा। राजा ने 'न गया हुआ (अमात्य) ही लौटता है, न कोई समाचार ही सुनाई देता है' सोच, 'अरे! आ, तू जा' कह, उसी प्रकार से दूसरा अमात्य भेजा। वह भी जा कर, पूर्व प्रकार से परिषद् सहित अर्हत्-पद को प्राप्त हो चुप रह गया। राजा ने इसी प्रकार हजार हजार मनुष्यो के साथ नौ अमात्य भेजे। सब अपना अपना (आत्मोन्नति का) काम समाप्त कर, चुप्पी साध, वहीं विहरने लगे। कोई लौट कर समाचार भी कहने वाला न मिलने से, राजा सोचने लगा—"इतने आदमियो ने मेरे प्रति स्नेह का भाव रखते हुए भी कोई समाचार तक नही दिया, तो अब कौन मेरे वचन को करेगा?" (इस प्रकार सोचते हुए) सारी राजकीय परिषद् पर विचार करते हुए, उसने काल उदायी को देखा। वह राजा का सर्वार्थसाधक, (प्राइवेट सेक्रेटरी) आन्तरिक, अतिविश्वासी अमात्य था। वह बोधिसत्त्व के साथ एक ही दिन पैदा हुआ था (और) साथ का धूली-खेला मित्र था। राजा ने उसे बुलाया तात, ! काल-उदायी ! मैं अपने पुत्र को देखना चाहता हूँ, नौ हजार आदमियो को भेजा। एक आदमी भी आ कर समाचार (= शासन) भी कहने वाला नही है। शरीर

का कोई ठिकाना नहीं। मैं जीते जी पुत्र को देख लेना चाहता हूँ। क्या मेरे पुत्र को मुझे दिखा सकोगे ?"

"देव ! दिखा सकूंगा, यदि साधु बनने (=प्रव्रज्या लेने) की आज्ञा मिले।"

"तात ! तू प्रव्रजित (हो) या अप्रव्रजित, मेरे पुत्र को लाकर दिखा।"

"देव ! अच्छा" (कह) वह राजा का सन्देश (=शासन) ले, राजगृह गया और बुद्ध (=शास्ता) के धर्म उपदेश के समय सभा (परिषद्) के अन्त में खडा हो, धर्म सुन, साथियो (=परिवार) सहित अर्हत्फल को प्राप्त हो "भिक्षु ! आओ" के वचन से साधु (=प्रव्रजित) हुआ।

भगवान् ने (=शास्ता) बुद्ध हो कर पहला वर्षावास ऋषिपतन में किया। वर्षावास समाप्ति पर प्रवारणा कर, उरुवेला में जा, वहाँ तीन मास रह, तीनो जटाधारी (=जटिल) भाइयो को रास्ते पर ला, एक हजार भिक्षुओ के साथ पौषमास की पूर्णिमा को राजगृह जा, (वहाँ) दो मास रहे। इतने में बनारस से चले पाँच मास बीत गये। सारा हेमन्त-ऋतु समाप्त हो गया। उदायी स्थविर, आने के दिन से सात-आठ दिन बिता, फाल्गुन की पूर्णिमासी को सोचने लगे—"हेमन्त बीत गया। वसन्त आ गया। मनुष्यो ने खेत (शस्य आदि) काट कर, सामने के स्थानो पर रास्ता छोड दिया है। पृथ्वी हरित तृण से आच्छादित है। वन-खण्ड फूलो से लदे हैं। रास्ते जाने लायक हो गये हैं। यह बुद्ध (=दश-बल) के लिए अपने सम्बन्धियो (=जाति) को मिलने (=सग्रह करने) का (ठीक) समय है। (यह सोच) भगवान् के पास जा कर बोले—

"भदन्त इस समय वृक्ष पत्ते छोड़ फलने के लिए (नये पत्तो से) अङ्गारवाले (जैसे) हो गये हैं। उनकी चमक अग्नि-शिखा-सी है। महावीर ! यह शाक्यो (=भगीरथो भगीरसो)[१] (के संग्रह करने) का समय है।

न बहुत शीत है, न बहुत उष्ण है, न भोजन की बहुत कठिनाई है। भूमि हरियाली से हरित है। महामुनि ! यह (चलने का) समय है,"

(इत्यादि) साठ गाथाओ द्वारा बुद्ध (=दश-बल) से (अपने) कुल के नगर को जाने के लिए यात्रा की स्तुति की। भगवान् (=शास्ता) ने पूछा—"उदायी ! क्या है, जो (तुम) मधुर स्वर से यात्रा की स्तुति कर रहे हो ?"

---

[१] शब्द अस्पष्ट है।

"भन्ते! आपके पिता महाराज शुद्धोदन (आपका) दर्शन करना चाहते है। (आप) जातिवालो का सग्रह करें।"

"उदायी! अच्छा? मैं जाति वालो का सग्रह करूँगा, भिक्षु-सघ को कहो कि यात्रा की तैयारी (=व्रत) करे।"

"अच्छा भन्ते!" (कह) स्थविर ने (भिक्षु-सघ को) कहा।

(११) कपिलवस्तु-गमन

भगवान् दस हजार अग-मगध वासी कुल-पुत्रो तथा दस हजार कपिलवस्तु वासी कुल-पुत्रो, सब बीस हजार अर्हत् भिक्षुओ के साथ राजगृह से निकल कर, प्रति दिन योजन भर चलते थे। राजगृह से साठ योजन (दूर) कपिलवस्तु दो मास मे पहुँचने की इच्छा से धीमी चारिका से चलते थे। स्थविर भी भगवान् के चल पडने की बात को राजा से कहने की इच्छा से आकाश मार्ग से जा राजा के निवास स्थान पर प्रकट हुए। राजा ने स्थविर को देख प्रसन्न-चित्त हो, (उन्हे बहुमूल्य आसन पर बिठा, अपने लिए तैयार किये गये, नाना प्रकार के स्वादु भोज) से पात्र भर कर दिया। स्थविर ने उठ कर चलने का सा ढग किया। "बैठ कर, भोजन करें" (राजा ने कहा) "महाराज! मैं भगवान् (=शास्ता) के पास जा कर भोजन करूँगा" (स्थविर ने उत्तर दिया)।

"शास्ता कहाँ है?"

"महाराज! बीस हजार भिक्षुओ सहित वह तुम्हारे देखने के लिए चल पडे है।"

राजा ने प्रसन्न-चित्त हो कहा —"आप इस भोजन को ग्रहण करे और जब तक मेरा पुत्र यहाँ नही पहुँचता, तब तक उसके लिए यहीं से भिक्षा (=पिण्ड-पात) ले जाये।" स्थविर ने स्वीकार किया। राजा ने स्थविर को (भोजन) परोस कर दिया, और (भिक्षा-पात्र) मे सुगन्धित चूर्ण लगा, उसे उत्तम भोजन से भर 'इसे तथागत को दें' कह, पात्र स्थविर के हाथ मे दिया। स्थविर ने सब के सामने ही, पात्र को आकाश मे फेंक दिया, और अपने आप भी आकाश मे उड भिक्षा (=पिण्डपात) लेकर भगवान् (=शास्ता) के हाथ मे दी। भगवान् (=शास्ता) ने वह आहार ग्रहण किया। इस प्रकार स्थविर प्रति दिन (आहार) लाते थे।

यात्रा मे भगवान् (शास्ता) ने राजा की ही भिक्षा (=पिण्डपात) ग्रहण

की। स्थविर ने भी प्रतिदिन भोजन करने के बाद "भगवान्! आज इतना चले आये, भगवान्! आज इतना चले आये" (कह) भगवान् के दर्शन से पहले ही बुद्ध के गुणो की कथा से सारे राजपरिवार मे बुद्ध (=शास्ता) के प्रति श्रद्धा पैदा कर दी। इसलिए भगवान् ने 'भिक्षुओ! मेरे गृहस्थो का मन-प्रसन्न करने वाले (=कुलप्रसादक) शिष्य (श्रावक) भिक्षुओ मे काल-उदायी सर्वश्रेष्ठ है" (कह) उसे ऊँचा (=अग्र) स्थान दिया है।

शाक्य भी भगवान् के पहुँचने पर, 'अपनी जाति के (सर्व-) श्रेष्ठ (पुरुष) के दर्शन की इच्छा से एकत्रित हुए, और 'अपनी सभा मे' भगवान के ठहराने के लिए स्थान पर विचार किया। उन्होने न्यग्रोध (नामक) शाक्य के आराम को रमणीय जान, वहाँ सब प्रकार से सफाई कराई। अगवानी के लिए पहले गन्ध, पुष्प हाथ मे ले, सब अलकारो से अलकृत, नगर के छोटे छोटे लडको तथा लडकियो को भेज फिर राजकुमारो और राजकुमारियो को भेजा। उनके बाद स्वय गन्ध, पुष्प, चूर्ण आदि से भगवान् की पूजा करते, (उन्हे) न्यग्रोधाराम लिवा ले गये। वहाँ बीस हजार अर्हतो के साथ (जा कर) भगवान्, बिछे श्रेष्ठ बुद्ध के आसन पर बैठे। शाक्य अभिमानी स्वभाव के थे। उन्होने 'सिद्धार्थ-कुमार हमसे छोटा है, हमारा कनिष्ठ है, हमारा भानजा है, हमारा पुत्र है, हमारा नाती है', सोच छोटे छोटे राजकुमारो को कहा—"तुम प्रणाम करो। हम तुम्हारे पीछे बैठेगे।" उनके इस प्रकार (बिना प्रणाम किये ही) बैठे रहने पर, भगवान् ने उनके मन की बात जान विचारा—"जाति-सम्बन्धी मुझे प्रणाम नही कर रहे है। अच्छा तो मै उनसे प्रणाम कराऊँगा" और अभिज्ञा के सहारे ध्यानावस्थित हो, आकाश मे चढ, उनके सिर पर पैर की धूलि बखेरते हुए से, गण्डम्ब वृक्ष के नीचे किये गये यमक नामक दिव्य-प्रदर्शन (यमक-प्रातिहार्य) जैसी प्रातिहार्य की।

राजा ने इस आश्चर्य को देख कर कहा—'भगवान्! मै उत्पन्न होने के दिन, तुम्हें काल-देवल की वन्दना के लिए ले गया था, उस समय (तुम्हारे) चरणो को उलट कर ब्राह्मण के सिर में लगे देख, मैंने तुम्हारी वन्दना की। वह मेरी प्रथम वन्दना (थी)। फिर खेत बोने के उत्सव के दिन, जामुन की छाया मे सुन्दर शय्या पर बैठे रहने के समय, दिन ढल जाने पर भी जामुन के वृक्ष की छाया का बना रहना देख कर भी (मैंने तुम्हारे) चरणो मे वन्दना की थी। वह मेरी दूसरी वन्दना (थी)। अब पहले कभी न देखी गई यह प्रातिहार्य, देख कर

भी, मैं तुम्हारे चरणो की वन्दना करता हूँ। यह मेरी तीसरी वन्दना है। राजा के वन्दना करने पर, एक शाक्य भी ऐसा नहीं बचा, जो बिना वन्दना किये रहा हो। सभी ने वन्दना की। इस प्रकार भगवान् जाति-सम्बन्धियो से प्रणाम करवा, आकाश से उतर बिछे आसन पर बैठे। भगवान् के बैठने पर जाति-सम्बन्धियो का समूह अत्यन्त प्रसन्न (=शिखर-प्राप्त) हो सभी एकाग्र चित्त हो बैठे।

तब महामेघ ने कमल-वर्षा (=पुष्कर वर्षा) आरम्भ की। ताम्बे के रग का पानी, नीचे, शब्द करता हुआ बहने लगा। भीगने की इच्छा वाले भीगते थे, जो नही भीगना चाहते थे, उनके शरीर पर बूद मात्र भी न गिरती थी। यह देख सभी चकित हुए, और कहने लगे—अहो! आश्चर्य! अहो! अद्‌भुत!

बुद्ध ने कहा कि यहाँ केवल अभी मेरे वंश के समागम के समय ही वर्षा नहीं बरसी पहले भी वह बरसी है" और इस अर्थ को स्पष्ट करने के लिए, **महावेस्सन्तर-जातक**[1] कही। धर्म उपदेश सुन, सभी उठ, प्रणाम कर चले गये। न राजा ने, न राजा के महामात्य ने, और न दूसरे किसी ने भी कहा कि भगवान्! कल हमारी भिक्षा ग्रहण करें।

(१२) सम्बन्धियों से मिलन

अगले दिन बीस हजार भिक्षुओ सहित बुद्ध (=शास्ता) ने कपिलवस्तु में भिक्षाटन के लिए प्रवेश किया। (वहाँ) न किसी ने उन्हे भोजन के लिए निमन्त्रित ही किया, न किसी ने पात्र ही ग्रहण किया। भगवान् ने इन्द्रकील[2] पर खडे हो सोचा—"पूर्व के बुद्धो ने (अपने) कुल के नगर में कैसे भिक्षाटन किया? क्या बीच के घरो को छोडकर (सिर्फ) बडे बडे आदमियो के ही घर गये, अथवा एक ओर से सब के घर?" फिर देखा कि एक बुद्ध ने भी बीच बीच में घर छोड कर भिक्षाटन नहीं किया है, फिर निश्चय किया—"मेरा भी (कुल) अब यही (बुद्धो का) कुल है, इसलिए मुझे अपना यह कुल-धर्म ग्रहण करना चाहिए। ऐसा करने से भविष्य में मेरे शिष्य (=श्रावक) मेरा ही अनुकरण करते (हुए) भिक्षा-

---

[1] जातक (५४७)।

[2] किले के द्वार के बाहर खड़ा खम्भा।

चार के व्रत को पूरा करेंगे।" ऐसा (सोच), छोर के घर से ही, एक ओर से भिक्षाचार आरम्भ किया।

"आर्य सिद्धार्थकुमार भिक्षाचार कर रहे हैं" यह (सुन) लोग दुतल्ले, तितल्ले प्रासादो पर से खिडकियाँ खोल देखने लगे।

राहुल-माता देवी ने भी—'आर्यपुत्र इसी नगर मे राजाओ के बडे भारी ठाट से सोने की पालकी आदि मे (चढकर) घूमे, और आज (इसी नगर मे) वह शिर-दाढी मुडा, काषाय वस्त्र पहिन, कपाल (=खपडा) हाथ में ले, भिक्षाचार कर रहे है! क्या (यह) शोभा देता है' कह, खिडकी खोल कर देखा कि परम वैराग्य से उज्ज्वल (बुद्ध का) शरीर नगर की सडको को प्रभासित कर रहा है। चारो ओर व्याम भर प्रभा वाली, बत्तीस महापुरुष लक्षणो और अस्सी अनुव्यञ्जनो से अलकृत अनुपम बुद्ध शोभा से शोभायमान भगवान् को देखा और (उसका) शिर से पाँव तक (इस प्रकार) आठ नरसिह गाथाओ मे वर्णन किया—

"चिकने, काले, कोमल, घुघरवाले केश है, सूर्य्य सदृश निर्मल तलवाला ललाट है, सुन्दर, ऊँची, कोमल, लम्बी नासिका है; नरसिंह अपने रश्मि-जाल को फैला रहे है।"

इत्यादि फिर (जा कर) राजा से कहा—"आपका पुत्र भिक्षाचार कर रहा है।"

राजा घबराया हुआ, हाथ से धोती सँभालता, जल्दी जल्दी निकल कर, वेग मे जा, भगवान् के सामने खडा हो बोला—"भन्ते! हमे क्यो लजवाते हो? किस लिए भिक्षाटन करते हो? क्या यह प्रगट करते हो कि इतने भिक्षुओ के लिए (हमारे यहाँ) भोजन नही मिलता?"

"महाराज! हमारे वश का यही आचार है।"

"भन्ते! निश्चय से हम लोगो का वश **महा सम्मत** (=मनु) का क्षत्रिय वश है? इस वश मे एक क्षत्रिय भी तो कभी भिक्षाचारी नही हुआ।"

"महाराज! वह राज-वश तो आपका वश है। हमारा वश तो दीपङ्कर-कौडिन्य काश्यप (आदि) का बुद्ध-वश है। और दूसरे अनेक सहस्र बुद्ध भिक्षाचारी (रहे है), भिक्षाचार से ही जीविका चलाते रहे हैं।" उसी समय सडक में खडे ही खडे यह गाथा कही —

"उद्योगी आलसी न बने, सुचरित धर्म का आचरण करे, धर्माचारी (पुरुष इस लोक में भी और परलोक में भी सुख-पूर्वक सोता है।"

गाथा की समाप्ति पर राजा **श्रोतापत्ति-फल** में स्थित हुआ। (फिर) —

"सुचरित कर्म का आचरण करे, दुश्चरित कर्म का आचरण न करे। धर्मचारी (पुरुष) इस लोक और परलोक में सुख पूर्वक सोता है।" इस गाथा को सुनकर राजा **सकृदागामी** फल में प्रतिष्ठित हुआ। **महाधम्मपाल जातक**[1] को सुन कर अनागामी फल में प्रतिष्ठित हुआ। अन्त में मृत्यु के समय, श्वेत छत्र के नीचे, सुन्दर शय्या पर लेटे ही लेटे अर्हत्पद को प्राप्त हुआ। राजा को अरण्यवास कर योगाभ्यास आदि प्रयत्न नही करना पड़ा। (उसने) स्रोत-आपत्ति-फल का साक्षात्कार कर, भगवान् का पात्र ले, मण्डली सहित भगवान् को महल पर ले जाकर, उत्तम खाद्य भोज्य परोसे। भोजन के बाद एक राहुल-माता को छोड़, शेष सभी रनिवास ने आ आ कर भगवान् की वन्दना की। वह परिजन द्वारा—'जाओ, आर्यपुत्र की वन्दना करो' कहने पर 'यदि मेरे में गुण है, तो आर्यपुत्र स्वय मेरे पास आयेंगे, आने पर ही वन्दना करूँगी' कह न गई।

भगवान् राजा को पात्र दे, दो प्रधान शिष्यो (=सारिपुत्र, मौद्गल्यायन) के साथ, राजकुमारी के शयनागार (=स्त्री-गर्भ) में जा "राजकन्या को यथा-रुचि वन्दना करने देना, कुछ न बोलना" कह बिछे आसन पर बैठे। उसने जल्दी से आ पैर पकड़ कर, शिर को पैरो पर रख, अपनी इच्छानुसार वन्दना की। राजा ने भगवान् के प्रति राजकन्या के स्नेह-सत्कार आदि गुण को कहा—"भन्ते! मेरी बेटी आपके काषाय-वस्त्र पहिनने को सुन कर, तभी से काषाय-धारिणी हो गई। आपके एक बार भोजन करने को सुन, एकाहारिणी हो गई। आपके ऊँचे पलङ्ग के छोड़ने की बात सुन, तख्ते पर सोने लगी। आपके माला, गन्ध आदि से विरत होने की बात सुन, माला गन्ध आदि से विरत हो गई। अपने पीहर वालोके 'हम तुम्हारी सेवा सुश्रूषा करेंगे' ऐसा पत्र भेजनेपर एक सम्बन्धी को भी नही देखती। भगवान्! मेरी बेटी ऐसी गुणवती है।"

"महाराज! इसमें (कुछ) आश्चर्य नही, इस समय तो आपकी सुरक्षा में रह, परिपक्व ज्ञान के साथ राजकन्या ने अपनी रक्षा की है। पहले तो बिना

---

[1] जातक (४४७)।

किसी रक्षा के, अपरिपक्व ज्ञान रखते भी, पर्वत के नीचे विचरते समय अपनी रक्षा की थी" कह 'चन्द किन्नर जातक'[1] सुना, बुद्ध आसन से उठ कर चले गये।

दूसरे दिन (नन्द) राजकुमार का अभिषेक, गृहप्रवेश, विवाह—ये तीन मगल-उत्सव थे। उस दिन, भगवान् नन्द के घर जाकर, उसे प्रव्रजित करने की इच्छा मे नन्दकुमार के हाथ मे पात्र दे मगल कह, आसन से उठ कर चल पडे। (नन्द की नव वधू) जनपद-कल्याणी ने कुमार को पीछे जाते देखा पर, "आर्य पुत्र! जल्दी आइयो" कह गर्दन वढा कर देखने लगी। राजकुमार भी (सकोच वश) भगवान् को 'पात्र ग्रहण कीजिये' न कह, विहार (तक) चला गया। उसकी (अपनी) इच्छा न रहने पर भी भगवान् ने उसे प्रव्रजित किया। इस प्रकार भगवान् ने कपिलपुर जाने के तीसरे दिन नन्द[2] को साधु वनाया।

(१३) पुत्र को दाय-भाग

सातवे दिन राहुल-माता ने (राहुल) कुमार को अलकृत कर, भगवान् के पास यह कह कर भेजा, "तात! देख! वीस हजार साधुओ श्रमणो के मध्य मे (जो वह) सुनहले उत्तम रूप वाले साधु(=श्रमण) है वही तेरे पिता है। उनके पास वहुत से खजाने थे, जो उनके (घर से) निकलने के वाद से नही दिखाई देते। जा, उनसे वरासत माँग। (उनसे कह) "तात! मै (राज-) कुमार हूँ। अभिषेक प्राप्त करके चक्रवर्ती (-राजा) वनना चाहता हूँ। मुझे धन चाहिए। धन दें। पुत्र पिता की सम्पत्ति का स्वामी होता है।" कुमार भगवान् के पास जा, पिता का स्नेह पा प्रसन्न-चित्त हो, "श्रमण! तेरी छाया सुखमय है" कह और भी अपने अनुकूल (कुछ कुछ) कहता खडा रहा।

भगवान् भोजन के वाद (दान का) महत्त्व कह आसन से उठ कर चले गये। कुमार भी, 'श्रमण! मुझे दायज दे। श्रमण! मुझे दायज दे।' कहता भगवान् के पीछे पीछे हो लिया। भगवान् ने कुमार को नही लौटाया। परिजन भी उसे भगवान् के साथ जाने मे न रोक सके। इस प्रकार वह भगवान् के साथ आराम तक चला गया। भगवान् ने सोचा—"यह पिता के पास के जिस धन को माँगता

---

[1] जातक (५८५)।

[2] सिद्धार्थ की मौसी और सौतेली माँ महागौतमी प्रजापती का पुत्र।

है, वह (धन) सासारिक है, नाशवान है। क्यो न मै इसे वोधिमण्ड मे मिला अपना सात प्रकार का **आर्य-धन**[1] दू। इसे अलौकिक वरासत का स्वामी वनाऊँ (ऐसा सोच) आयुष्मान् सारिपुत्र को कहा—"सारिपुत्र! तो लो राहुल-कुमार को साधु बनाओ।" राहुल-कुमार के साधु होने पर राजा को अत्यन्त दु:ख हुआ। उस दु:ख को न सह सकने के कारण राजा ने (उसे) भगवान से निवेदन कर, वर माँगा—"अच्छा भन्ते! आर्य (भिक्षु लोग) माता पिता की आज्ञा के विना (उनके) पुत्र को प्रव्रजित न करें"। भगवान ने राजा को वह वर दिया।

फिर एक दिन (भगवान्) राज-महल में प्रात:काल के भोजन के लिए गये। (भोजन) कर चुकने पर, एक ओर वैठे राजा ने कहा—"भन्ते! आपके दुष्कर तपस्या करने के समय, एक देवता ने मेरे पास आ कर कहा कि तुम्हारा पुत्र मर गया। उसके वचन पर न विश्वास करके उसके वचन का खण्डन करते हुए मैंने कहा' "मेरा पुत्र बुद्ध-पद प्राप्ति किये विना मर नही सकता।"

ऐसा कहने पर, भगवान् ने कहा, "जब तुमने उस समय मे, हड्डियाँ दिखा कर, 'तुम्हारा पुत्र मर गया' कहने पर विश्वास नही किया, तो अब क्या विश्वास करोगे?" इसके अर्थ को स्पष्ट करने के लिए (भगवान् ने) **महाधम्मपाल जातक**[2] कहा। कथा की समाप्ति पर राजा अनागामीफल मे स्थित हुआ।

(१४) अनाथपिण्डिक का दान

इस प्रकार पिता को तीन फलो मे स्थापित कर, भिक्षुसघ सहित भगवान् (कपिलवस्तु से चल कर) फिर एक दिन राजगृह जा सीतवन मे ठहरे। (उस) समय, अनाथपिण्डिक गृहपति पाँच सौ गाडियो मे माल भर, राजगृह जा अपने प्रिय मित्र सेठ के घर ठहरा था। वहाँ उसने भगवान् बुद्ध के उत्पन्न होने की बात सुनी। फिर अत्यन्त प्रात:काल (उठा और) देवताओ के प्रताप से खुले द्वार से बुद्ध के पास पहुँचा। धर्मोपदेश सुन, स्रोतापत्ति-फल मे प्रतिष्ठित हो, दूसरे दिन

---

[1] श्रद्धा, शील (=सदाचार) लज्जा, निन्दा-भय, (बहु-) श्रुत होना, त्याग तथा प्रज्ञा।

[2] जातक (४४७)।

भिक्षु-सघ सहित बुद्ध को महादान दे, उसने श्रावस्ती आने के लिए भगवान् (=शास्ता) से वचन लिया।

(अनाथपिण्डिक ने) रास्ते मे पेंतालीस योजन तक लाख लाख खर्च करके, योजन योजन पर विहार बनवाये। अठ्ठारह करोड अशर्फी (=सुवर्ण) बिछा कर जेतवन मोल ले, उसने मकान बनवाना आरम्भ किया। (वहाँ) बीच मे दश-बल बुद्ध की गन्धकुटी बनवाई। उसके इर्द गिर्द अस्सी महास्थविरो के पृथक् पृथक् निवास, एक दीवार-दो दीवार-वाली, हस के आकार की लम्बी शालाये, मण्डप तथा दूसरे बाकी शयनासन, पुष्करिणियाँ, टहलान (=चक्रमण), रात्रि के स्थान और दिन के स्थान बनवाये।, (इस प्रकार) अठ्ठारह करोड के खर्च' से रमणीय स्थान मे सुन्दर विहार बनवा भगवान् के लिवा लाने के लिए दूत भेजा। भगवान् (=शास्ता) दूत का सन्देश सुन महान् भिक्षु-सघ के साथ राजगृह से निकल क्रमश श्रावस्ती नगर मे पहुँचे।

महासेठ भी विहार-पूजा की तैयारी (पहले ही से) कर चुका था। उसने तथागत के जेतवन मे प्रवेश करने के दिन, सब अलकारो से अलकृत पाँच सौ कुमारो के साथ, सब अलकारो से प्रतिमण्डित (अपने) पुत्र को आगे भेजा। अपने साथियो सहित वह, पाँच रग की चमकती हुई, पाँच सौ पताकाये ले कर बुद्ध के आगे आगे चला। उसके पीछे महासुभद्रा और चूलसुभद्रा (नाम की) सेठ की दो बेटियाँ, पाँच सौ कुमारियो के साथ, पूर्ण घट लेकर निकली। उनके पीछे सब अलकारो से अलकृत सेठ की देवी (=भार्या) पाँच सौ स्त्रियो के साथ भरा थाल लेकर निकली। उसके बाद सफेद वस्त्र धारण किये स्वय सेठ वैसे ही श्वेत वस्त्र धारण किये अन्य पाँच सौ सेठो को साथ ले, भगवान् की अगवानी के लिए चला।

यह उपासक मण्डली आगे जा रही थी। (पीछे पीछे) भगवान् महाभिक्षु-सघ से घिरे हुए, जेतवन को अपनी सुनहरी शरीर-प्रभा से रञ्जित करते हुए, अनन्त बुद्ध-लीला और अतुलनीय बुद्ध शोभा के साथ जेतवन मे प्रविष्ट हुए। तब अनाथपिण्डिक ने उन्हे पूछा—"भन्ते ! मैं इस विहार के विषय मे कैसे क्या करूँ ?"

'श्रेष्ठी नगर का अवैतनिक पदाधिकारी होता था। वह धनिक व्यापारियों में से बनाया जाता था।

"गृहपति ! यह विहार आये हुए तथा न आये हुए भिक्षु-सघ को दान कर दे।"

'अच्छा भन्ते !' कह महासेठ ने सोने की झारी ले, बुद्ध के हाथ पर (दान का) जल डाल, "मैं यह जेतवन विहार सब दिशा और सब काल (आगत अनागत चतुर्दिश) के बुद्ध-प्रमुख भिक्षुसघ को देता हूँ कह प्रदान किया। शास्ता ने विहार को स्वीकार कर दान की प्रशसा करते हुए कहा —

"यह गर्मी सर्दी से, हिंस्र जन्तुओ से, रेंगने वाले (=सर्पादि) जानवरो से, मच्छरो से, बूंदा-बांदी से, वर्षा से और घोर हवा-धूप से रक्षा करता है। यह आश्रय के लिए, सुख के लिए, ध्यान के लिए और योगाभ्यास के लिए (उपयोगी है) इसीलिए बुद्ध ने विहार-दान को श्रेष्ठ-दान (=अग्रदान) कह, उसकी प्रशसा की है। अपनी भलाई चाहने वाले पुरुष को चाहिए कि सुन्दर विहार बनवाये और उनमें बहु-श्रुतो को निवास कराये और प्रसन्न-चित्त उन सरल चित्त वालो को, अन्न-पान वस्त्र तथा निवास '(-शयनासन) प्रदान करे। तब (ऐसा करने पर) वे सब दु खो के नाश करने वाले, धर्म का उपदेश करते हैं, जिसे जान कर वह मलरहित (=अनाश्रव) परिनिर्वाण को प्राप्त होगा"

इस प्रकार विहार-दान का माहात्म्य कहा।

दूसरे दिन से अनाथपिण्डिक ने विहार-पूजोत्सव आरम्भ किया। विशाखा का प्रासाद का पूजोत्सव चार महीने मे समाप्त हुआ। लेकिन अनाथपिण्डिक का विहार-पूजोत्सव नौ महीनो में समाप्त हुआ था। विहार पूजोत्सव में भी अठारह करोड ही खर्च हुए। इस प्रकार (उसने) उस विहार ही में चौवन करोड धन का दान किया।

पूर्व में भगवान् **विपस्सी** के समय, **पुन्नवसुमित्र** नामक सेठ ने सोने की ईंटो को सिरे से सिरे लगा कर, (उससे भूमि) खरीद कर, उसी स्थान में योजन भर का सघाराम बनवाया था। भगवान् **शिखि** के समय **श्रीवर्द्ध** नामक सेठ ने सोने के पलको को फैला कर (भूमि) खरीद कर, उसी स्थान पर तीन गव्यूति (६ मील) भर का सघाराम बनवाया था। भगवान् **विश्वभू** (=वेस्सभू) के समय **स्वस्ति** (=सोत्थि) नामक सेठ ने सोने के हस्ति-पदो के फैलाव से खरीद कर, उसी स्थान पर आधे-योजन भर का सघाराम बनवाया था। भगवान् **ककुसन्ध** के समय **अच्युत** नामक सेठ ने सोने की ईंटो के फैलाव से खरीद कर, उसी स्थान पर गव्यूति (२ मील) भर का सघाराम बनवाया। भगवान् **कोनागमन** के समय

उग्र नामक सेठ ने सोने के कच्छुओ के फैलाव से खरीद कर, उसी स्थान पर, आधेन गव्यूति एक मील का सघाराम बनवाया। भगवान् **काश्यप** के समय में **सुमङ्गल** नामक सेठ ने सोने की ईटो के फैलावे से खरीद कर, उसी स्थान पर सोलह करीष तक का संघाराम बनवाया। लेकिन हमारे भगवान् के समय **अनाथपिण्डिक** सेठ ने करोडो कार्षापणो के फैलाव से खरीद कर, उसी स्थान पर आठ करीष[1] भर में सघाराम बनवाया। यह स्थान भी बुद्धो से अपरित्यक्त स्थान है। इस प्रकार बोधिमण्ड मे सर्वज्ञता प्राप्ति से महापरिनिर्वाण-मञ्च तक, जिस जिस स्थान पर भगवान रहे यह सब 'सन्तिकेनिदान' है।

इसी के सम्बन्ध से (आगे) सब जातको का वर्णन करेगे।

जातकट्ठकथा की निदान-कथा समाप्त

---

[1] एक करीष=४ अम्मण। चार अम्मण बीज बोने की जगह।

पहला परिच्छेद

१. अपरणक वर्ग

१. अपरणक जातक

अप्पणक (इत्यादि)—यह धर्म-कथा भगवान् ने श्रावस्ती के जेतवन महा-विहार में रहते समय कही। किस के कारण यह कथा कही गई? एक सेठ के पाँच सौ तैर्थिक मित्रों के कारण।

क. वर्तमान कथा

एक दिन अनाथपिण्डिक सेठ, अपने पाँच सौ अन्य-तीर्थिक[1] मित्रों को साथ ले, बहुत सा गन्ध, माला, लेप, तेल, मधु, मक्खन, वस्त्र-आच्छादन आदि लिवाकर, जेतवन गया। (वहाँ) भगवान् की वन्दना कर, माला आदि से पूजा कर, भिक्षु-सघ को भैषज तथा वस्त्र आदि प्रदान कर, बैठने के सम्बन्ध के छ दोषों[2] को छोड, एक ओर बैठ गया। वे दूसरे मत के शिष्य भी तथागत की वन्दना कर, शास्ता के पूर्ण चन्द्र की शोभा से शोभित मुख, लक्षण और अनुलक्षणो (अनुव्यञ्जनो) से मण्डित, तथा चारो ओर चार हाथ (=व्याम) की दूरी तक प्रभा से प्रकाशित सुन्दर शरीर (=ब्रह्म काय)—जिससे समय समय पर जोडा जोडा होकर घनी बुद्ध-किरणें निकलती थी—को देखते, अनाथपिण्डिक के समीप ही बैठ गये।

तब बुद्ध ने उन्हें, मन शिलातल पर सिंह-नाद करते तरुण सिंह की तरह, या वर्षा के गरजते मेघ की तरह, या आकाश-गङ्गा के अवतरण की तरह, या रत्नो

---

[1] किसी अन्य पथ के अनुयायी।

[2] अत्यन्त समीप, अत्यन्त दूर, जिधर से हवा आती हो उधर, ऊँचे स्थान पर, बिल्कुल सामने तथा बिल्कुल पीछे होकर बैठना—ये बैठने के छ दोष हैं।

की माला गूंथते हुए की तरह, आठ बातो से युक्त, श्रवण-योग्य, कमनीय और उत्तम स्वर से नाना प्रकार की विचित्र धर्म-कथायें कही। उन्होने बुद्ध के उपदेश सुन, प्रसन्न चित्त हो, उठ कर बुद्ध की वन्दना की, और दूसरे मतो की शरण छोड बुद्ध की शरण ग्रहण की। उस दिन से आरम्भ करके, वे नित्य-प्रति, **अनाथपिण्डिक** के साथ, गन्ध माला आदि हाथ मे ले, विहार जा कर धर्म सुनते, दान देते, सदाचार (=शील) रखते तथा व्रत (=उपोसथ-कर्म) करते थे।

दूसरे दिन भगवान् **श्रावस्ती** से **राजगृह** चले गये। बुद्ध (=तथागत) के जाने पर, वे अन्य-तीर्थिक श्रावक तथागत की शरण छोड, फिर दूसरे मतो की शरण ग्रहण कर, अपने पहले स्थान पर ही चले गये। भगवान् सात आठ मास बिता कर फिर जेतवन लौट आये। अनाथपिण्डिक फिर उन्हे (साथ) ले जा कर, बुद्ध के पास जा गन्ध आदि से पूजा तथा प्रणाम कर, एक ओर बैठा। वे (तैर्थिक) भी भगवान् की वन्दना कर, एक ओर बैठ गये। तब (अनाथपिण्डिक ने) बुद्ध (=तथा-गत), से, (उनके) चारिका पर चले जाने के समय, उन (तैर्थिको) के (तथागत) की) शरण छोड, फिर दूसरे मतो की शरण ग्रहण करके, अपने पहले स्थान पर चले जाने की बात कही।

भगवान् ने अनन्त (=अप्रमाण) करोड कल्पो तक निरन्तर वाणी सम्बन्धी सदाचार को पालन करने के प्रताप से, दिव्य सुगन्धो से सुगन्धित, नाना प्रकार की सुगन्धियो से भरे रत्न-करण्ड को खोलते हुए की तरह, अपने मुख-पद्म को खोल कर, मधुर स्वर मे पूछा—"उपासको! क्या तुम सचमुच **तीन-शरणो**[1] को छोड कर दूसरे मत की शरण चले गये थे?"

उन्होने छिपा न सकने के कारण कहा—"भगवान्! सच (है)।"

तब बुद्ध ने कहा—"उपासको! नीचे **अवीचि** नामक नरक से ऊपर भवाग्र नामक सर्वोपरि देव-लोक तक जितनी अप्रमाण लोक-धातुये है, उनमे (कही भी) (सदाचार=शील) आदि गुणो मे बुद्ध के समान भी कोई नही, बढ कर तो कहा से होगा?' 'भिक्षुओ! (पैर) या वे पैर वाले जितने भी प्राणी है बुद्ध (=तथा-गत) उनमे सर्वश्रेष्ठ कहे जाते है[2]। 'इस लोक या पर-लोक मे जितने भी धन है

---

[1] बुद्ध, धर्म, और संघ की शरण।

[2] इतिवुत्तक।

. . .तथागत ', 'शुद्ध-चित्तो में श्रेष्ठ (=अग्र ' इत्यादि सूत्रो में प्रकाशित तीनो रत्न (=बुद्ध, धर्म और सघ) के गुण प्रकाशित किये। "इस प्रकार के गुणो से युक्त तीनो रत्नो की शरण जाने वाले उपासक वा उपासिका नरक आदि मे पैदा नही होते। वे नरक के जन्म से बच कर, देव-लोक मे उत्पन्न हो, महासम्पत्ति भोगते है। इसलिए तुम लोगो ने इस प्रकार की शरण को छोड कर, दूसरे मतो की शरण ग्रहण करके, अनुचित किया है।"

त्रिरत्न को मोक्ष (-दायक) और उत्तम मान कर (उनकी) शरण जाने वालो का नरक आदि में जन्म न लेना—यह दिखाने के लिए, यह सूत्र[1] उद्धृत करना चाहिए —

"जो बुद्ध की शरण गये है, वे नरक नहीं जायेंगे। मनुष्य-देह को छोड़ कर, वे देव-लोक में पहुँचेंगे॥"

"जो धर्म की शरण गये है, वे नरक नहीं जायेंगे। मनुष्य-देह को छोड़ कर, वे देव-लोक में पहुँचेंगे॥"

"जो सघ की शरण गये है, वह नरक नहीं जायेंगे। मनुष्य-लोक को छोड़ कर, वे देव-लोक में पहुँचेंगे॥"

भयभीत हो मनुष्य पर्वत, वन, आराम (उद्यान), वृक्ष, चैत्य आदि, अनेक स्थानो (को देवता मान उन) की शरण लेते है। किन्तु ये शरण मङ्गल दायक नहीं, ये शरण उत्तम नहीं, क्योकि इन शरणो को ग्रहण करने से, सब दुःखो से छुट-कारा नहीं मिलता।

जो बुद्धधर्म तथा सघ की शरण जाते है, जिन्होने चारो आर्य सत्यो को भली प्रकार प्रज्ञा से देखा है। (वे चार आर्य सत्य हैं—) (१) दु.ख, (२) दु:ख की उत्पत्ति, (३) दु:ख का नाश और (४) दु:खनाशक आर्य अष्टाङ्गिक मार्ग। ये हैं मङ्गलप्रद शरण, ये हैं उत्तम शरण, इन शरणो को पा कर (मनुष्य) सारे दु.खो से छूट जाता है॥"[2]

शास्ता ने केवल उन्हें इतना ही धर्मोपदेश नही किया, वलिक यह भी कहा— "उपासको! बुद्धानुस्मृति कर्मस्थान (=योगाभ्यास के लिए मन का विषय),

---

[1] सयुक्त निकाय, महासमय सूत्र।

[2] धम्मपद, बुद्धवग्ग।

धर्मानुस्मृति कर्मस्थान, संघानुस्मृति कर्मस्थान, श्रोतआपत्ति मार्ग, श्रोतआपत्ति फल, सकृदागामी मार्ग, सकृदागामी फल, अनागामी मार्ग, अनागामी फल, अर्हत्-मार्ग तथा अर्हत् फल, का दायक होता है। (और उस) क्रम से भी धर्मोपदेश कर (अन्त मे कहा—) "इस प्रकार की शरण छोड कर तुमने अनुचित किया।"

बुद्धानुस्मृति श्रोतापत्ति मार्ग आदि को देते है, यह भिक्षुओ! एक धर्म (=बात) के अभ्यास करने से, बढती करने से, सम्पूर्ण निर्वेद=विराग, निरोध, उपशमन, अभिज्ञा, सम्बोधि (=परमज्ञान) तथा निर्वाण की प्राप्ति होती है। कौन सा है वह एक धर्म ? बुद्धानुस्मृति "[1] आदि सूत्रो से प्रतिपादित करना चाहिए। इस प्रकार भगवान् ने नाना प्रकार से उपासको को उपदेश दे कहा— "उपासको! पूर्व (काल) मे भी मनुष्यो ने (एक बार) तर्क-वितर्क से अयोग्य शरण को शरण समझ ग्रहण किया, और भूतो (=अमनुष्यो) वाले मरुभूमि (=कान्तार) मे जा भूतो (=यक्षो) के ग्रास को बर्बाद हुए। लेकिन उसी मरुभूमि मे निर्दोष (=अपण्णक) शरण को अनुकूलता के साथ सम्पूर्ण रूप से ग्रहण करने वाले मनुष्य कल्याण (=स्वस्तीभाव) को प्राप्त हुए।" यह कह (तथागत) चुप हो गये।

तब अनाथपिण्डिक गृहपति आसन से उठ, भगवान् की वन्दना तथा प्रशसा कर, (दोनो) हाथो को जोड, सिर पर रख, इस प्रकार बोला—"भन्ते! इन उपासको का इस समय उत्तम शरण को छोड वितर्क के पीछे चलना तो हमें मालूम है, लेकिन पूर्व समय में भूतो वाली मरुभूमि मे वितर्क के पीछे चलने वालो का बर्बाद होना, और निर्दोष-ग्रहणी (=अपण्णक-ग्राह) ग्रहण करने वालो का कल्याण प्राप्त करना—यह (बात) हमे मालूम नही। वह आपको ही मालूम है। भगवान्! अच्छा हो, यदि आप हमे इस बात को आकाश मे उदय हुए पूर्ण चन्द्रमा की भाँति प्रकट करे।"

तब भगवान ने 'गृहपति! मैने अनन्त (=अप्रमाण) समय तक दस पारमिताओ को पूरा करके, लोगो को सशय निवारण के लिए, बुद्ध (=सर्वज्ञता) का ज्ञान प्राप्त किया है। सोने के पात्र (=नालिका) में सिह के तैल डालने की भाँति अच्छी तरह ध्यान देकर सुनो' कह, सेठ को सचेत कर, बादलो को फाड कर निकलते चन्द्रमा की तरह, पूर्व-जन्म की छिपी बात को प्रकट किया —

---

[1] अङ्गुत्तर निकाय, एकक निपात।

(ख) अतीत कथा

पूर्व समय में काशी देश के बनारस (=वाराणसी) नगर में ब्रह्मदत्त नामक राजा राज्य करता था। उस समय बोधिसत्त्व ने (एक) बंजारे (=सत्थवाह) के घर में जन्म ग्रहण किया था। क्रमश सयाने हो, वह पाँच सौ गाड़ियाँ ले, व्यापार करते हुए विचरते थे। वह कभी पूर्व-देश से अपरान्त देश जाते थे, कभी अपरान्त से पूर्व।

बनारस ही मे (एक) और भी बंजारे का पुत्र था, लेकिन वह मूर्ख, जड़ और मोढ़ था। उस समय बोधिसत्त्व ने बनारस से बहुत सा मूल्यवान सौदा पाँच सौ गाड़ियो पर लाद, चलने की तैयारी की थी। उस मूर्ख बंजारे के पुत्र ने उसी प्रकार पाँच सौ गाड़ियाँ लाद, चलने की तैयारी की थी। बोधिसत्त्व ने सोचा यदि यह मूर्ख मेरे साथ साथ जायगा तो एक ही रास्ते से एक हजार गाड़ियो के जाने से रास्ता काफी न होगा, आदमियो के लिए लकडी-पानी तथा बैलो के लिए घास-चारा मिलना कठिन हो जायगा। इसलिए या तो उसे आगे जाना चाहिए या मुझे।

तब उस आदमी को बुला, यह बात कह कर पूछा—"हम दोनो एक साथ इकट्ठे नही जा सकते तुम आगे जाओगे या पीछे?

उसने सोचा 'आगे जाने में मुझे बहुत लाभ है। बिना बिगाड़े (=अभिन्न) रास्ते से जाऊँगा, बैल अछूते तृण खायेंगे, मनुष्यो को तेमन बनाने के लिए अछूते पत्ते मिलेंगे, शान्त (निर्मल) पानी प्राप्त होगा, और मन माने दाम पर सौदा बेचूगा।' (यह सोच कर) उसने कहा—"सौम्य! मैं ही आगे जाऊँगा।'

बोधिसत्त्व ने पीछे जाने में बहुत लाभ देखे। उन्होने सोचा—'यह आगे आगे जा कर विषम स्थानो को सम करेगा, मैं उसके गये रास्ते से चलूंगा। आगे जाने वाले बैल पकी कड़ी घास खा लेंगे, इस प्रकार मेरे बैल नये मधुर तृणो को खायेंगे। पत्ते तोड़ लिये गये स्थानो पर, नये उत्पन्न पत्ते, साग भाजी के लिए मधुर होंगे। यह लोग जहाँ पानी नही है, ऐसे स्थानो को खोद कर पानी निकालेगे, सो दूसरो के खोदे हुए कुओ (गढो) से हम पानी पियेंगे। (वस्तुओ का) मूल्य निश्चित करना वैसा ही है जैसा मनुष्यो की जान लेना होता है। मैं पीछे जा कर इनके

---

[1] जातको में काशी के राजा ब्रह्मदत्त का बहुत उल्लेख है।

निश्चित किये गये मूल्य से सौदा बेचूगा।" इतने लाभ देख कर उन्होंने कहा — सौम्य ! तुम आगे जाओ।"

"अच्छा ! सौम्य !" कह, वह मूर्ख बजारा गाडियो को जोत (नगर से) निकला। वह क्रमश मनुष्यो की बस्तियाँ पार कर कान्तार (=मरुभूमि) के प्रवेश-स्थान पर पहुँचा।

कान्तार पाँच प्रकार के होते है —"चोरो का कान्तार, व्याल (=हिंसक जन्तुओ) का कान्तार, भूतो का कान्तार, निर्जल (=निरुदक) और अल्पभक्ष कान्तार।"

जिस मार्ग पर चोरो का दखल हो, वह चोर-कान्तार (कहा जाता है)। सिंह आदि व्यालो से अधिकृत मार्ग व्याल-कान्तार, जहाँ स्नान करने वा पीने के लिए पानी न मिले वह निरुदक कान्तार, भूतो (—अमनुष्यो) वाला मार्ग अमनुष्य कान्तार, और खाने-पीने के लायक कद मूल आदि से शून्य मार्ग अल्पभक्ष कान्तार। इन पाँच प्रकार के कान्तार मे से वह कान्तार निरुदक-कान्तार तथा अमनुष्य-कान्तार था। इसलिए यह बजारे का लडका गाडियो मे बडे बडे मटके रखवा, (उन्हे) पानी से भरवा कर (उस) साठ योजन के कान्तार मे चला।

कान्तार के बीच मे पहुँचने पर, कान्तार में रहने वाले दैत्य ने सोचा कि यदि मैं इनके साथ के पानी को फेकवा दू, तो (इनके) दुर्बल हो जाने पर मै इन सब को खा सकूगा। (यह सोच) उसने बिल्कुल सफेद रग के तरुण बैल को मनोरम रथ (=यान) मे जुतवाया, धनुष-तरकस-ढाल (आदि) हथियार (=आयुध) हाथ मे लिये। फिर नीले और सफेद कमलो (की माला को) धारण कर, गीले केश, गीले वस्त्र, दस बारह दैत्यो को साथ ले एक बडे राजा (=ईश्वर-पुरुष) की तरह उस रथ मे बैठ, कीचड मे डूबे हुए पहियो के साथ रास्ते पर हो लिया। उसके आगे पीछे चलने वाले, उसके सेवक (=परिचारक) भी, भीगे केश, भीगे वस्त्र, नीले सफेद कमलो की मालाये धारण किये हुए, लाल सफेद कमलो के गुच्छे लिये, पानी तथा कीचड की बूदें टपकाते हुए, और भिस की जडें खाते हुए (साथ) चले। जब सामने की हवा चलती थी, तो बंजारा रथ में बैठ, नौकरो (=परिचारको) के साथ धूली को हटाते हुए आगे आगे चलता था, जब पीछे की हवा चलती थी, तब उसी प्रकार पीछे पीछे चलता था। उस समय तो सामने की हवा थी। इसलिए बजारा आगे आगे जा रहा था।

दैत्य ने उस बजारे को आता देख, अपने रथ को रास्ते से एक ओर कर के पूछा—कहाँ जाते हैं? (फिर) कुशल-क्षेम की बातचीत की।

बजारे ने भी अपने रथ को रास्ते से एक ओर हटा, (अन्य) गाडियों को जाने का रास्ता दे, एक ओर खडे खडे उस दैत्य से कहा—"जी! हम बनारस से आते हैं" और पूछा—"यह जो आप उत्पल-कुमुद धारण किये, पद्म-पुण्डरीक हाथ में लिये, कीचड से सने और पानी की बूंदें चुवाते और भिस की जडें खाते आ रहे हैं, सो क्या आप लोगों के आने के रास्ते में वर्षा हो रही है, (वहाँ) उत्पल आदि से ढके सरोवर हैं?"

उसकी बात सुन कर दैत्य बोला—'मित्र! यह क्या कहते हो? सामने यह जो हरे रंग की वन-पाँती दिखाई देती है, उससे आगे के सारे जंगल में मूसलाधार वर्षा हो रही है। पहाड की दरारें भरी हुई हैं। जगह जगह पर पद्म आदि से पूर्ण जलाशय हैं। फिर आगे पीछे जाती गाडियों की ओर, इशारा करके पूछा—"यह गाडियाँ ले कर कहाँ जा रहे हो?"

"अमुक देश को।"

"इस गाडी में क्या क्या सौदा है।'।"

"यह (सौदा) है, और यह (सौदा) है।"

"पिछली गाडी बहुत भारी मालूम हो रही है। उसमें क्या सौदा है?"

"उसमें पानी है।"

"अभी जो पानी साथ लाये, सो तो अच्छा किया। लेकिन अब यहाँ से आगे पानी की आवश्यकता नहीं। आगे बहुत पानी है। मटकों को फोड, पानी फेंक सुख से जाओ।"

इस प्रकार की बातचीत कर "आप जाइये, हमें देर होती है" कह, कुछ दूर जा कर, उनकी आँख से ओझल हो, (दैत्य) अपने नगर को ही चला गया।

उस मूर्ख बजारे ने अपनी मूर्खता के कारण दैत्य की बात मान, मटके फुडवा, चुल्लू भर भी पानी बाकी न रख, सभी (पानी) फिकवा गाडियाँ हँकवाई। आगे (रास्ते में) जरा सा भी पानी न था। आदमी पानी बिना पीडित होने लगे। उन्होंने सूर्यास्त तक चलते रह कर, (शाम को) बैलों को खोल, गाडियों का घेरा बना, खडा कर, बैलों को गाडियों के पहियों से बाँधा। न बैलों को पानी मिला, न मनुष्यों को भोजन (=यवागू-भात)। दुर्बल मनुष्य जहाँ तहाँ पड कर सो रहे।

रात होने पर दैत्यो के नगर से (वह) दैत्य आये (और) सब बैलो तथा मनुष्यो को मार, उनका मास खा, हड्डियाँ (वही) छोड कर चले गये। इस प्रकार (उस) मूर्ख बजारे के पुत्र (की मूर्खता) के कारण, वह सब नाश को प्राप्त हुए। उनकी हाथो आदि की हड्डियाँ इधर उधर बिखर गई, (किन्तु) पाँच सौ गाडियाँ जैसी की तैसी खडी रही।

उस मूर्ख बजारे के पुत्र के चले जाने के मास आध-मास बाद, बोधिसत्त्व भी पाँच सौ गाडियो के साथ नगर से निकले, और क्रमश कान्तार के मुख पर पहुँचे। वहाँ उन्होने पानी के मटके मे बहुत सा पानी भर लिया (और) अपने तम्बुओ मे ढँढोरा पीट, आदमियो को एकत्रित कर कहा—"बिना मुझे पूछे, एक चुल्लू भर पानी भी काम मे न लाना। जगल मे विषैले-वृक्ष भी होते है। (इस लिए) किसी ऐसे पत्ते, फूल या फल को, जिसे पहले न खाया हो, बिना मुझ से पूछे कोई न खाये।"

इस प्रकार आदमियो को ताकीद कर, पाँच सौ गाडियो के साथ मरुभूमि (=कान्तार) की ओर बढे।

उस मरुभूमि के मध्य मे पहुँचने पर, उस दैत्य ने पहले ही की भाँति अपने ही को बोधिसत्त्व के मार्ग मे प्रकट किया। बोधिसत्त्व ने उसे देखते ही पहचान लिया (और सोचा)—"इस मरुभूमि में जल नही है। इसका नाम ही निर्जल-कान्तार है। यह (पुरुष) निर्भय है। इसकी आँखे लाल है। (और) इसकी छाया तक दिखाई नही पडती। निस्सन्देह इसने आगे गये मूर्ख बजारे के पुत्र का सब पानी फिकवा, उन्हें पीडित कर, उसे मडली सहित खा लिया होगा। लेकिन यह मेरी पडिताई (=बुद्धि) तथा चतुराई (=उपाय-कुशलता)को नही जानता।" फिर उससे कहा—"तुम जाओ। हम व्यापारी लोग बिना दूसरा पानी देखे, (साथ) लाये पानी को नही फेकते। जहाँ दूसरा पानी दिखाई देगा, वहाँ इस पानी को फेंक गाडियो को हलका कर चल देगे।"

दैत्य थोडी दूर जा कर, अन्तर्धान हो अपने नगर को चला गया। दैत्य के चले जाने पर आदमियो ने बोधिसत्त्व से पूछा—"आर्य! यह मनुष्य 'यह हरे रग वाली वन पाँती दिखाई देती है। उसके आगे मूसलाधार वर्षा बरस रही है' कहते हुए, उत्पल-कुमुद आदि की मालाये (धारण किये हुए), पद्म-पुण्डरीक के गुच्छे को (हाथ मे) लिये, भिस की जड खाते, भीगे वस्त्र, भीगे सीस, पानी की

बूँदे चूते हुए, आये हैं। इसलिए (क्यो न) हम पानी को फेंक, गाडियो को हलका कर, जल्दी जल्दी चलें।"

बोधिसत्व ने उनकी बात न सुन, गाडियो को रुकवा, सब मनुष्यो को एकत्रित करवा, (उनमे) पूछा—"क्या तुम मे से किसी ने इस कान्तार में तालाब अथवा पुष्करिणी होने की बात पहले कभी सुनी ?"

"आर्य ! नही ! यही सुना है कि यह कान्तार निर्जल-कान्तार है।"

"अब कुछ मनुष्य कहते हैं कि इस हरे रग की वन-पाँती के उस पार वर्षा होती है। (अच्छा, तो) वर्षा की हवा कितनी दूर तक चलती है ?"

"आर्य ! योजन भर।"

"क्या किसी एक (जने) के शरीर को भी वर्षा की हवा लग रही है ?"

"आर्य ! नही।"

"बादल का सिरा (=मेघ-सीम) कितनी दूर तक दिखाई देता है ?"

"आर्य ! योजन भर।"

"क्या किसी एक को भी बादल दिखाई दे रहा है।"

"आर्य ! नही।"

"बिजली कितनी दूर तक दिखाई देती है ?"

"आर्य ! चार पाँच योजन तक।"

"क्या किसी को बिजली का प्रकाश दिखाई पडा है ?"

"आर्य ! नही।"

"बादल की गर्ज कितनी दूर तक सुनाई देती है ?"

"आर्य ! एक दो योजन भर।"

"क्या किसी को बादल की गर्ज सुनाई दी है ?"

"आर्य ! नही।"

"यह मनुष्य नही, यह दैत्य (थे)। (वह) हमारा पानी फिकवा कर, दुर्बल कर, (हमें) खाने के विचार मे आये होगे। आगे जाने वाला मूर्ख बजारे का पुत्र चतुर (=उपाय-कुशल) नही था। इन्होने अवश्य पानी फिकवा, पीडा दे, उसे खा लिया होगा। उसकी पाँच सौ गाडियाँ जैसी की तैसी भरी खडी होगी। आज हम उन्हें देखेंगे। चुल्लू भर पानी भी बिना फेंके (गाडियो को) हाँको" (कह) हँकवाया।

फिर जाते हुए, उन्हो (=वोधिसत्त्व) ने जैसी की तैसी भरी हुई पॉच सौ गाडियॉ, तथा वैलो और आदमियो के हाथो आदि की हड्डियो को इधर उधर विखरा देख, गाडियॉ खुलवा दी। गाडियो के इर्द गिर्द घेरे मे तम्बू तनवा, दिन रहते ही आदमियो और वैलो को शाम का भोजन खिलवा, मनुष्यो के (घेरे के) वीच मे वैलो को वँधवा-सुलवा स्वय सर्दारो (वलनायको) सहित हाथ मे खड्ग ले, रात्रि के तीनो याम पहरा देते, खडे ही खडे सवेरा कर वैलो को खिला, कमजोर गाडियो को छोड, (उनकी जगह) मजवूत को ले, कम मोल का सौदा छोड (उसकी जगह) अधिक दाम वाले सौदे को लाद, जहॉ जाना था, उस स्थान पर चले गये। सामान को दुगुने-तिगुने मोल पर वेंच, सारी मडली को (साथ) ले फिर (सानद) अपने नगर को लौट आये।

यह कथा कह कर वुद्ध (शास्ता) ने कहा—गृहपति ! इस प्रकार पूर्व काल मे वितर्क के पीछे चलने वाले सर्वनाश को प्राप्त हुए, लेकिन यथार्थ-ग्राही लोग दैत्यो के हाथ से वच कर, सकुशल इच्छित-स्थान पर जा, फिर अपने स्थान पर लौट आये।

इस प्रकार इन दो कथाओ को मिला, पूर्वापर कथा सम्वन्ध जोड, सम्बुद्ध हो जाने पर इस यथार्थ (=अपण्णक) धर्म-उपदेश के सम्वन्ध मे यह गाथा कही—

अपण्णक ठानमेके दुतिय आहु तक्किका।
एतदञ्ञाय मेधावी त गण्हे यदपण्णक॥

['कुछ (पडित) लोग यथार्थ (=अपण्णक) वात (=स्थान) कह रहे है, तार्किक लोग दूसरी (अयथार्थ)। यह जान कर वुद्धिमान् पुरुप, जो यथार्थ है, उसे ग्रहण करे।']

इसमे जो **'अपण्णक'**(शव्द') है, उसका अर्थ है=ऐकातिक, अविरोधी नैर्याणिक (=निर्वाण को प्राप्त करने वाला)। **ठान** (=स्थान) का मतलव हे, वात या कारण। 'कारण' को 'स्थान' इसलिए कहते है, क्योकि 'फल' उस कारण के अधीन हो कर ठहरता है। 'स्थान को स्थान, अस्थान को अस्थान समझ कर'[1] इत्यादि

---

[1] **अङ्गुत्तर अट्ठान पाली।**

में 'स्थान' का जो भावार्थ है (=प्रयोग) है, उसे भी जानना चाहिये। यहाँ 'अपण्णक ठान' इन दो शब्दो का मतलब है, सारे हितो सुखो का दाता, पडितो द्वारा आचरित जो एकातिक कारण है, यथार्थ कारण है, नैर्याणिक-कारण है। सक्षेप रूप मे यह (अर्थ) है। विस्तार से तो (बुद्ध, धर्म, सघ इन) तीन की शरण जाना, (गृहस्थो को) पाँच शील (=सदाचार), (साधुओ को) दस शील (पालन करना), प्रातिमोक्ष (=भिक्षु-नियमो) से (अपनी) रक्षा करना (=सवर), इन्द्रिय-सयम, शुद्ध-जीविका रखना, विहित वस्तुओ (=प्रत्ययो) का सेवन, सभी चारो प्रकार की शुद्धता वाला शील, इन्द्रियो का सयम (=गुप्त-द्वारता), भोजन की (उचित) मात्रा का ज्ञान, जागरूक रहना, ध्यान, विदर्शना, अभिञ्ञा, समापत्ति (=समाधि), आर्य (अष्टागिक-) मार्ग, आर्य-फल-यह सब अपण्णक बातें (=स्थान) अपण्णक रास्ता (प्रतिपदा), नैर्याणिक रास्ता (है) यह अर्थ है। क्योकि यह **'अपण्णक-प्रतिपदा'** नैर्याणिक प्रतिपदा का ही नाम है, इसीलिए भगवान् ने अपण्णक-प्रतिपदा का उपदेश देते हुए यह सूत्र[1] कहा है—

"भिक्षुओ! तीन धर्मो (=बातो) से युक्त भिक्षु अपण्णक (=यथार्थ) प्रतिपदा में लग कर, अपने चित्त के मलो के विनाश के लिए प्रयत्नशील होता है। कौन मे तीन धर्मों से? भिक्षुओ! भिक्षु इन्द्रियो को वश मे रखता है, भोजन की (उचित) मात्रा का जानकार होता है। सचेत रहता है। भिक्षुओ! भिक्षु कैसे इन्द्रियो को वश में रखता है? भिक्षुओ! जब भिक्षु रूप (=स्थूल वस्तुओ) को देख कर, उसके आकार (=निमित्त) को ग्रहण नही करता इस प्रकार भिक्षुओ! भिक्षु इन्द्रियो को वश में रखता है। भिक्षुओ! भिक्षु कैसे भोजन की (उचित) मात्रा का जानकार होता है? भिक्षुओ! जब भिक्षु सोच-समझ कर आहार ग्रहण करता है, न तो मस्ती के लिये, न अभिमान के लिये । इस प्रकार भिक्षुओ! भिक्षु भोजन की (उचित) मात्रा का जानकार होता है। भिक्षुओ! भिक्षु कैसे सचेत (=जागरूक) रहता है? भिक्षुओ! भिक्षु दिन मे टहलना और बैठना । इस प्रकार भिक्षुओ! सचेत होता है।"

इस सूत्र मे तीन ही धर्म कहे गए है। लेकिन यह अपण्णक-प्रतिपदा अर्हत

---

[1] अङ्गुत्तर निकाय, तिक निपात।

फल की प्राप्ति तक रहती है। यहाँ अर्हत-फल भी फल-समाधि तथा उपाधि-रहित -निर्वाण की प्राप्ति के मार्ग (=प्रतिपदा) का ही नाम है।

कुछ (=एके) इस शब्द का मतलब है पण्डितजन। अमुक पण्डितजन, इस प्रकार का कोई नियम नही। लेकिन यहाँ पर 'एक' शब्द का प्रयोग मडली सहित बोधिसत्त्व के ही लिए जानना चाहिये। तार्किक लोगो ने दूसरा ही कहा है (=दुतिय आहु तक्किका)—दूसरा अर्थात् पहले कहे गये अपण्णक स्थान, नैर्याणिक-कारण से भिन्न (=दूसरा) तर्क के पीछे चलना, अनैर्याणिक कारण। तार्किको ने कहा (=आहु तक्किका) इसे यहाँ पहले शब्द (=दुतिय) से मिला कर पढना अपण्णक स्थान—अविरोधी बात—नैर्याणिक बात-को-बोधिसत्त्व आदि कुछ बुद्धिमान् (=पण्डित) मनुष्यो ने ग्रहण किया। लेकिन जिन्होने मूर्ख बजारे को अपना मुखिया बनाया वह तर्क-ग्राही (=दलील-बाज) थे, उन्होने दूसरी अयथार्थ, अनैकातिक, अनैर्याणिक बात स्वीकार की। उनमे से जिन्होने अपण्णक स्थान को ग्रहण किया, उन्होने शुद्ध मार्ग (=शुक्लमार्ग) का अनुगमन किया। जिन्होने दूसरे 'आगे जल अवश्य होगा' इस प्रकार की दलीलबाजी (=तर्क-ग्राह) से युक्त अनैर्याणिक बात को माना, उन्होने अशुद्ध (=कृष्ण) मार्ग का अनुगमन किया। इसमे जो शुक्ल-मार्ग है वह उन्नति का मार्ग है, जो कृष्ण-मार्ग है वह अवनति का मार्ग। इसलिए जिन्होने शुक्ल-मार्ग का ग्रहण किया, उनकी अवनति न हो कर, वह सुखी हुए, लेकिन जिन्होने कृष्ण-मार्ग का अनुसरण किया, वे अवनत हो दु ख को प्राप्त हुए।"

इस प्रकार भगवान ने **अनाथपिण्डिक** गृहपति को उक्त बात कह कर, आगे यू कहा—"यह जान कर मेधावी पुरुष जो यथार्थ है, उसे ग्रहण करे।"

इसमे "एतदञ्ञाय मेधावी" का अर्थ है—मेधा कही जाने वाली विशुद्ध, उत्तम, प्रज्ञा से युक्त कुलपुत्र, इस अपण्णक और सपण्णक, तर्क-ग्राह तथा अतर्क-ग्राह कहे जाने वाले दोनो स्थानो मे गुण-दोष, लाभ-हानि, अर्थ-अनर्थ जान कर। 'त गण्हे यदपण्णक' का अर्थ है, जो सम्पूर्ण रूप से शुक्ल-मार्ग है, उन्नति-मार्ग कहा जाने वाला नैर्याणिक-कारण है, उसी को ग्रहण करे। किस लिए? पूर्ण रूप से शुक्ल-मार्ग होने के कारण। लेकिन दूसरे को ग्रहण न करे। किस लिए।? अनैकातिक (=असम्पूर्ण) होने के कारण। यह अपण्णक-प्रतिपदा सब **बुद्धो**, **प्रत्येक-बुद्धो**, और **श्रावको** (=बुद्ध-पुत्रो) की प्रतिपदा है। सभी बुद्ध इस अपण्णक-

प्रतिपदा (=मार्ग) का अनुसरण करके ही दृढ पराक्रम से पारिमितायें पूरी कर बोधि (-वृक्ष) के नीचे बुद्ध-पद को प्राप्त होते हैं, प्रत्येक-बुद्ध प्रत्येक-बुद्ध-पद को प्राप्त होते हैं, बुद्ध-पुत्र श्रावक-पारमिता-ज्ञान को साक्षात् करते हैं। इस प्रकार भगवान् ने उन उपासको को तीन कुल-सम्पत्तियाँ,[1], छ कामावचर स्वर्ग[2] और ब्रह्म-लोक सम्पतियाँ दे कर भी अन्त मे अर्हत्-मार्ग को देने वाली अपण्णक प्रतिपदा, तथा चार दुर्गतियो (=अपायो) और पाँच नीच-कुलो[3] मे जन्म देने वाली नपण्णक प्रतिपदा इस प्रकार यथार्थ (=अपण्णक) धर्म का उपदेश कर, चारो आर्य सत्यो को, सोलह प्रकार से प्रकाशित किया। चारो सत्यो (के प्रकाशित करने के) के अन्त मे, वह सब पाँच सौ उपासक श्रोत-आपन्न हो गये।

बुद्ध ने इस धर्म-उपदेश को दिखला कर, दो कथाएँ कह, तुलना कर, जातक का सारांश निकाला।

उस समय का मूर्ख बजारा देवदत्त था। उसकी मण्डली देवदत्त की मण्डली थी। (इस समय की) बुद्ध की मण्डली, बुद्धिमान् (=पण्डित) बजारे की मण्डली थी। और बुद्धिमान् बजारा तो मैं ही था। (यह कह) भगवान् ने धर्म-उपदेश समाप्त किया।

२. वण्णुपथ जातक

"अकिलासुनो" इत्यादि यह धर्म-कथा भगवान् ने श्रावस्ती मे विहार करते समय कही। किस के लिए ? एक शिथिल-प्रयत्न भिक्षु के लिए।

क. वर्तमान कथा

बुद्ध के श्रावस्ती मे विहार करते समय एक श्रावस्ती-निवासी कुल-पुत्र (=सभ्रान्त तरुण) ने जेतवन जा कर बुद्ध (=शास्ता) के पास जा धर्मउपदेश

---

[1] क्षत्रिय, ब्राह्मण तथा वैश्य।

[2] चातुर्महाराजिक, त्रयस्त्रिंश, याम, तुषित, निर्माण-रति तथा परनिर्मित वश-वर्ति।

[3] (१) बाँस का काम करने वाले, (२) नैषाद, (=मल्लाह), (३) रथ-कार, (४) मेहतर, (५) चाण्डाल।

सुना, और प्रसन्न-चित्त (हो) इन्द्रिय-सम्बन्धी सुखो (=कामो) मे दोप देख, साधु हो, भिक्षु-दीक्षा (=उपसम्पदा) ग्रहण की। पाँच-वर्ष बीत जाने पर दो **मात्रिकायें**[1] और **विदर्शना-क्रम** को सीख, बुद्ध से अपने चित्त के अनुकूल योगक्रिया (=कर्मस्थान) ग्रहण की। फिर एक जगल मे प्रविष्ट हो, वर्षावास के तीन महीने तक साधना में लगे रहने पर भी **अवभास-मात्र**[2] वा निमित्त-मात्र भी न उत्पन्न कर सका।

तब उसके मन मे यह विचार हुआ—"बुद्ध ने चार प्रकार के व्यक्ति कहे है। मै शायद चौथी प्रकार का—पदपरम—व्यक्ति होऊँगा। मालूम होता है मै इस जन्म मे मार्ग या फल कुछ नही प्राप्त कर सकूगा। तो फिर मै जगल मे रह कर ही क्या करूँगा? (इसलिए) बुद्ध के पास जा, उनके अति सुन्दर शरीर को देखते तथा (उनके) मधुर धर्मोपदेश को सुनते हुए विचरूँगा।" (यह सोच) फिर **जेतवन** वापिस चला गया।

तब परिचितो तथा मित्रो ने उससे पूछा—"आयुष्मान! तू योगाभ्यास (=श्रमणधर्म)करने के लिए भगवान्(=शास्ता)से योगविधि(=कर्मस्थान)लेकर गया था, लेकिन अब लौट कर सघ के साथ घूम रहा है। क्या तेरे साधु होने (=प्रव्रज्या)का उद्देश्य पूरा हो गया है? क्या तू जन्म-ग्रहण से मुक्त हो गया है?"

"आयुष्मानो! मैंने मार्ग या फल नही प्राप्त किया। यह सोच, कि (शायद) मै इसके योग्य नही हूँ, मै अभ्यास को छोड चला आया हूँ।"

"आयुष्मान्! दृढ पराक्रमी-उपदेशक के धर्म (=शासन) में साधु बन कर तू ने, जो प्रयत्न करना छोड दिया, वह उचित नही किया। आ तुझे तथागत के पास ले चले" कह, उसे शास्ता के पास लिवा ले गये।

शास्ता ने उसे देख कर कहा—"भिक्षुओ! तुम इस अनिच्छुक भिक्षु को ले कर आये हो। इस भिक्षु ने क्या (अपराध) किया है?"

"भन्ते! यह भिक्षु ऐसे उबारने वाले (=नैर्याणिक) धर्म में साधु बन, योगाभ्यास (=श्रमण-धर्म) करते करते उस प्रयत्न को छोड कर, लौट आया है।"

---

[1] **भिक्षु-प्रातिमोक्ष तथा भिक्षुणी-प्रातिमोक्ष।**

[2] **ध्यान के विषय (** object **) का अवभास अथवा साकार रूप दिखाई देना।**

तब भगवान् ने उससे पूछा—"क्या सचमुच भिक्षु ! तूने प्रयत्न ढीला कर दिया।"

"हाँ सचमुच ! भगवान् !"

"भिक्षु ! ऐसे धर्म में साधु हो तू अपने को 'अल्पेच्छ', 'सन्तुष्ट', 'एकान्तप्रिय' या 'प्रयत्नवान्' न बना, क्यो आलसी भिक्षु प्रकट कर रहा है ? क्या तू पूर्व-जन्म में उद्योगपरायण नही था ? (पूर्व जन्म में) तेरे अकेले के उद्योगो से मरुभूमि में पाँच सौ गाडियो के आदमी और बैल पानी पाकर सुखी हुए थे। अब तू किसलिए हिम्मत हार रहा है ?"

वह भिक्षु (भगवान् की) इस बात से सँभल गया।

यह बात सुन कर भिक्षुओ ने भगवान् से प्रार्थना की—"भन्ते ! इस समय इस भिक्षु का हिम्मत-हार बैठना तो प्रकट है, लेकिन पूर्व-जन्म में इस अकेले के प्रयत्न से मरुभूमि में बैलो और मनुष्यो का पानी पाकर सुखी होना हमे मालूम नही। वह आपके बुद्धत्त्व (=सर्वज्ञता) के ज्ञान को ही प्रकट है। हमें भी वह बात (=कारण) कहिये।"

"तो भिक्षुओ ! सुनो।" (कह) भगवान् ने उस भिक्षु को ध्यान दिला (उस) पूर्व-जन्म की अज्ञात बात को प्रकट किया—

ख. अतीत कथा

पूर्व काल मे काशी देश के बनारस नगर में, ब्रह्मदत्त (राजा) के राज्य करते समय, बोधिसत्त्व बजारे के कुल मे पैदा हुए, सयाना होने पर पाँच सौ गाडियो के साथ वह व्यापार करने लगे। वह एक दिन साठ योजन वाली मरु-भूमि मे जा रहे थे। उस कान्तार का रेत इतना बारीक था कि मुट्ठी मे लेने पर हाथ में नही ठहरता था। सूर्योदय के समय से (ही) भौर की आग की तरह (इतना) गर्म हो जाता था कि उस पर चला नही जाता था। इसलिए उस कान्तार को पार करने वाले, लकडी, पानी, तिल, चावल सब को गाडियो पर लाद, रात को ही चलते थे। (वह) उषा (अरुणोदय) के समय गाडियो को घेरे मे खडी कर, उन पर मण्डप तनवा, समय रहते ही भोजन समाप्त कर, छाया में बैठे बैठे दिन बिताते थे। सूर्यास्त होने पर शाम का भोजन खा कर, भूमि के ठडी होने पर, गाडियो को जुतवा चल देते थे। यह यात्रा समुद्र-यात्रा जैसी होती थी। (उसमे भी)

दिशा प्रदर्शक (=थल नियामक) की जरूरत रहती थी। वह दिशा-प्रदर्शक तारो को देख कर, काफिले को (कान्तार से) पार उतारता था।

वह वजारा भी, उस समय, इसी ढग से, उस कान्तार मे जा रहा था। उन्सठ योजन पार कर लेने पर, यह सोच कि अब एक ही रात मे हम मरु-भूमि से बाहर हो जायेंगे, शाम को भोजन कर, सब लकडी पानी फेकवा गाडियाँ जुतवा चल पडा। दिशा-प्रदर्शक (पुरुष) अगली गाडी पर आसन (कुर्सी) बिछवा, आकाश मे तारो को देखता, 'इधर हाँको उधर हाँको', कहता हुआ लेटा था। इतनी दूर तक न सोया रहने के कारण, थक कर, उसे नीद आ गई। बैलो ने लौट कर, जिस रास्ते से वह आये थे, उसी (रास्ते) को ग्रहण कर लिया, और उसे पता नही लगा। बैल सारी रात चलते रहे। दिशा-प्रदर्शक ने अरुणोदय के समय उठ कर, तारे को देख कर, 'गाडियो को लौटाओ, लौटाओ' कहा। गाडियो को लौटा कर क्रमश रास्ते पर लाते ही लाते अरुणोदय हो गया।

आदमियो ने (पहचान लिया)—'यह तो हमारा कल के पडाव का स्थान है।' (फिर सोचने लगे)—हमारा लकडी पानी खतम हो गया। इसलिए अब हमारा नाश है।—गाडियो को खोल, घेरे मे खडा कर, ऊपर से मण्डप तान, चिन्ता के मारे वे अपनी अपनी गाडी के नीचे लेट रहे।

बोधिसत्त्व ने 'मेरे हिम्मत हारने पर सभी नाश को प्राप्त होगे' (सोच), प्रात काल ठटे ठडे समय मे ही घूमते हुए दूबघास के एक पौदे को देख कर विचारा —'ये पौदे नीचे पानी की नमी के ही कारण उगे होगे', (और) कुदाली मँगवा, वह जगह खुदवाने लगे। (लोगो ने) साठ हाथ तक खोदा। इतना खोदने पर (उनकी) कुदाली नीचे एक पत्थर मे टकरायी। (पत्थर से) टकराते ही सब ने हिम्मत हार दी। लेकिन बोधिसत्त्व ने सोचा—"इस पत्थर के नीचे पानी होना, चाहिए।" (यह सोच) नीचे उतर, पत्थर पर खडे हो, झुक कर, कान लगा, शब्द पर ध्यान दिया। नीचे पानी के बहने का शब्द सुन, ऊपर आ, अपने छोटे सेवक से कहा—"तात! यदि तूने हिम्मत छोड दी, तो हम सब नष्ट हो जायेंगे। तू बिना हिम्मत छोडे, इस हथौडे (=अयकूट) को ले, गढे मे उतर कर, इस पत्थर को तोड।"

उसने बोधिसत्त्व की बात मान ली, और सब के हिम्मत छोड देने पर भी हिम्मत न हार, नीचे उतर कर पत्थर पर चोट की। पत्थर बीच से टूट कर,

नीचे गिर, पानी के सोते के बीच मे पड़ा। (वहाँ से) ताड के तने जितनी (ऊँची) पानी की धारा निकली। सब ने पानी पी, स्नान कर, पुराने धुरे (=अक्ष) और जुए फाड, खिचड़ी-भात पका कर खाया। बैलो को भी खिलाया। (फिर) सूर्यास्त होने पर, पानी के गढे के पास ध्वजा गाड, इच्छित स्थान को गए। वहाँ उन्होने सौदे को बेच, दुगुणा, चार गुणा, मुनाफा उठाया, और फिर अपने निवास स्थान को लौट आये।

वहाँ अपनी आयु भर जी कर, कर्मानुसार गति को प्राप्त हुए। बोधिसत्त्व भी दान आदि पुण्य-कर्म करके पर-लोक सिधारे। बुद्ध (=सम्यक्सम्बुद्ध) ने बुद्ध-पद प्राप्त कर लेने पर (ही) यह कथा कह, इस गाथा को कहा था—

अकिलासुनो वण्णुपथे खणन्ता,
उदङ्गणे तत्थ पप अविन्दु।
एव मुनी विरियबलूपपन्नो,
अकिलासु विन्दे हदयस्स सन्ति॥

[प्रयत्नशील लोगो ने बालू के मार्ग मे खोद कर पानी पाया। इसी प्रकार वीर्य्य-बल मे युक्त मुनि प्रयत्नशील हो हृदय की शान्ति को प्राप्त करे।]

इसमे **अकिलासुनो** का अर्थ है, आलस्यरहित व प्रयत्नशील। **वण्णुपथे** वण्णु कहते है वालू को, सो इसका अर्थ है बालू का मार्ग। **खणन्ता**=भूमि को खोदना हुआ। **उदङ्गणे**, इस मे उद् जो है, सो निपात है, **अङ्गण**=मनुष्यो के घूमने का स्थान=खुला प्रदेश। **तत्थ**=उस बालू मार्ग में। **पप अविन्दु** का अर्थ है पानी को पाया। पिया जाने से पानी को **पपा** कहते है या बहने वाला (-जल) आप, पपा अर्थात् महाजल। **एव** शब्द उपमा का द्योतक है। **मुनी** —मौन कहते है ज्ञान को, अथवा काय-मौन आदि में से किसी एक से युक्त व्यक्ति **'पच्चेकमुनि'**, को मुनी कहते है। लेकिन इस मुनीके, **'अगारिय-मुनी'** अनगारिय-**मुनि**, **'सेखि मुनि'**, **'असेखमुनि'**, **'मुनि-मुनि'**—इस प्रकार के कई भेद हैं। सो अगारिय(=आ गारिक-मुनि, जिसने गृहस्थ रहते मार्ग-फल को प्राप्त कर लिया है, जो धर्म (=शासन) का ज्ञाता है। अनगारिय (=अनागारिक) मुनि, जो

उक्त प्रकार से ही मार्ग-फल को प्राप्त है, लेकिन साधु है। सेख (=शैक्ष्य) मुनि का अर्थ है सात शैक्ष्य (=श्रोतापन्न से अर्हत्-मार्ग प्राप्त तक) पच्चेक (=प्रत्येक) मुनि का अर्थ है 'प्रत्येक-सम्बुद्ध'। **'मुनि-मुनि'**—बुद्ध (=सम्यक् सम्बुद्ध)। संक्षेप में यहाँ इन सबसे मौनेय्य (=मौन) नामक प्रज्ञा से मुक्त मुनी समझना चाहिये। **विरियबलूपपन्नो** का अर्थ है वीर्य्य (=हिम्मत) से तथा शरीर-बल और ज्ञान-बल से युक्त। **अकिलासु**—आलस्यरहित। 'चाहे चमड़ा, नस और हड्डी ही बाकी रह जाये, चाहे शरीर में सारा मांस और खून सूख जाय'—इस प्रकार के चारों अङ्गों से सम्पूर्ण वीर्य्य से युक्त=आलस्य-रहित (कहा जाता है)। **विन्दे हृदयस्स सन्ति** का अर्थ है चित्त तथा हृदय की शीतलता का कारण होने से 'शान्ति' कहे जाने वाले ध्यान-विदर्शना-अभिज्ञा-अर्हत्व-मार्ग ज्ञान नामक आर्य-धर्म को प्राप्त करता है।

भगवान् ने, "भिक्षुओ! आलसी मनुष्य दुःख से जीवन बिताता है, पाप, बुरे कर्म (=अकुशल धर्म) से युक्त होता है, महान हित को खो देता है। (लेकिन) भिक्षुओ! प्रयत्नशील (मनुष्य) सुख से जीवन बिताता है। पाप, बुराइयों (=अकुशल धर्मों) से रहित होता है, सच्चे हित की पूर्ति करता है। भिक्षुओ! ढील करने से उत्तम (=अग्रपद) की प्राप्ति नहीं होती[1]"—इस प्रकार अनेक सूत्रों में आलसी के जीवन का दुःखमय होना और प्रयत्न-शील के जीवन का सुखमय होना बतलाया है। यहाँ भी आग्रह-रहित, प्रयत्न शील विदर्शक को उद्योग द्वारा होने वाले सुखमय जीवन को दिखाते हुए कहा है—"इस प्रकार उद्योग बल से युक्त, मुनी निरालस हो चित्त की शान्ति प्राप्त करे।" (इसीलिए) यह कहा गया "जिस प्रकार उन व्यापारियों ने निरलस (हो) वालुका पथ में भी खोद कर जल पा लिया। इसी प्रकार इस धर्म (-शासन) में भी निरालस हो प्रयत्न करने वाला पण्डित-भिक्षु इस ध्यान आदि भेद से कही गई हृदय की शान्ति को प्राप्त करता है। इस-लिए, भिक्षु! (जब) पूर्व-जन्म में तू ने (केवल) पानी के लिये प्रयत्न किया, तो अब इस प्रकार के उबारने वाले (=नैर्याणिक) धर्म (=शासन) में मार्ग-फल की प्राप्ति के लिये क्यों हिम्मत हारता है?' इस प्रकार धर्मोपदेश के बाद (भगवान् ने) चारों (आर्यसत्यों) की व्याख्या (=प्रकाशन) की। सत्यों की व्याख्या समाप्त

---

[1] संयुक्त-निकाय, दस-बल सूत्र।

होने पर वह हिम्मत हारा भिक्षु अर्हत्व (नामक) उत्तम-फल मे प्रतिष्ठित हुआ।

शास्ता ने दोनो कथाए सुना, तुलना, कर जातक का साराश दिखाया—"उस समय हिम्मत न हार कर पाषाण को तोड कर, जन-समूह को पानी देने वाला (मेरा) छोटा-सेवक (चुकुपस्थायक) यही हिम्मत हारा भिक्षु था। बाकी मण्डली आज की बुद्ध-मडली थी। प्रधान बजारा तो मै (स्वय) ही था" कह (धर्म-) उपदेश समाप्त किया।

३. सेरिवाणिज जातक

'इध चेहि नं विराधेसि'—इस धर्म उपदेश को भी भगवान् ने श्रावस्ती में रहते हुए एक हिम्मत हारे भिक्षु के ही सम्बन्ध मे कहा था।

क. वर्तमान कथा

पूर्वोक्त प्रकार से ही भिक्षुओ द्वारा (बुद्ध के सम्मुख) लाए जाने पर बुद्ध (=शास्ता) ने उससे कहा—"भिक्षु! इस प्रकार के मार्ग-फल-दायक धर्म (=शासन) में साधु हो कर भी (यदि) तू हिम्मत हार बैठेगा, तो तू उसी प्रकार चिन्ता को प्राप्त होगा, जैसे लाख के मूल्य की सोने की थाली गँवा कर सेरि नामक बनिया।" भिक्षुओं ने भगवान् से उस बात के स्पष्ट करने की प्रार्थना की। भगवान् ने पूर्व-जन्म की अज्ञात बात (इस प्रकार) प्रकट की—

ख. अतीत कथा

अब से पाँच कल्प पूर्व बोधिसत्त्व सेरिव नामक देश मे फेरी करने वाले बनिए (के रूप मे पैदा) हुए थे। वह सेरिव नामक एक (दूसरे) फेरी करने वाले लोभी बनिये के साथ नील वाहिनी नामक नदी पार कर, अन्धपुर नामक नगर में गया। (दोनो ने) नगर की गलियो को आपस में बाँट लिया। बोधिसत्त्व अपने हिस्से की गलियो मे सौदा बेचते, दूसरा बनिया अपने हिस्से की गलियो मे।

उस समय नगर के एक सेठ का परिवार दरिद्र हो गया था। उसके जाति-सम्बन्धी और (उसका) धन नष्ट हो गया। (उस परिवार में) बाकी रह गई थी अपनी दादी के साथ एक लडकी। दोनो जने दूसरो की नौकरी-चाकरी (=

मजदूरी) करके पेट पालते थे। लेकिन, उनके घर मे पहले महासेठ के उपयोग मे आनी वाली दूसरे (साधारण) बरतनो मे फेकी हुई एक सोने की थाली थी। चिरकाल से उपयोग मे न आने के कारण वह मैली हो गई थी। वह (दोनो) इतना भी नही जानती थी कि यह सोने की थाली है। उस समय वह लोभी बनिया "(हीरे) मोती लो, (हीरे) मोती लो" (कहता) घूमता हुआ, उस घर के सामने आया। लडकी ने उसे देख कर अपनी दादी से कहा—

"अम्मा! मुझे एक कण्ठा ले दो।"
"अम्मा! हम दरिद्र क्या देकर लेगे।"

"हमारे पास यह थाली जो है, यह हमारे किसी काम की नही है, इसे दे कर ले ले।"

उसने व्यापारी को बुला कर, आसन पर बिठा, वह थाली देकर कहा—"आर्य! (इस थाली) को लेकर, अपनी बहन को कुछ दे दो।"

व्यापारी ने थाली हाथ मे ले, सोने की थाली होगी (सोच) उलट कर, थाली की पीठ पर सूई से रेखा खीची। 'सोने की है' जान, "इनसे मुफ्त मे ही थाली लेनी चाहिये" (सोच) कहा, "यह कितने दाम की होगी? यह तो आधे मासे के मूल्य की भी नही है" (कह) थाली को भूमि पर फेक, आसन से उठ कर चला गया।

(अपने मे तै पाये नियम के अनुसार) एक के गली मे हो आने पर, दूसरा उस गली मे प्रवेश करता था। उस (बनिये) के बाद बोधिसत्त्व उस गली मे प्रविष्ट हो '(हीरे) मोती लो, (हीरे) मोती लो' कहते घूमते हुए उसी द्वार पर पहुँचे। उस लडकी ने फिर उसी प्रकार अपनी दादी को कहा। दादी ने पूछा—"अम्मा! पहला आया व्यापारी थाली को जमीन पर पटक कर चला गया, अब क्या देकर 'कण्ठा' ले?" लडकी ने उत्तर दिया—"अम्मा! वह व्यापारी कठोर-भाषी था, लेकिन यह सौम्य मूर्ति तथा मृदुभाषी है। आशा है कि यह थाली को ले लेगा।"

"अच्छा! तो पुकार।"

उसने उसे बुलाया। उसके घर मे प्रवेश कर बैठने पर, (उन्होने उसे) वह थाली दी।

उसने 'थाली सोने की है' जान, कहा—"अम्मा! यह थाली लाख के मूल्य की है। थाली के मूल्य का सामान मेरे पास नही।"

"आर्य! पहले आया व्यापारी, यह आधे मासे के मूल्य की भी नहीं है, कह पृथ्वी पर पटक कर चला गया था। यह (अब) तेरे ही पुण्य (के प्रताप) से सोने की थाली हो गई होगी। हम इसे तुझे देते हैं। (इसके बदले में) हमें कुछ ही देकर, इसे ले जाइये।"

बोधिसत्त्व के हाथ में उस समय पाँच सौ कार्षापण और पाँच सौ के मूल्य का सौदा था। वह सब देकर, 'मुझे यह तराजू, थैली, और आठ कार्षापण दे," माँग-लेकर चले गये। और शीघ्र ही नदी के किनारे पहुँच, मल्लाह को आठ कार्षापण दे, नाव पर चढ़ चले।

तब लोभी बनिये ने फिर उनके घर जा कर कहा—"लाओ वह थाली मैं तुम्हे कुछ देही दूँ।"

लड़की ने उसे गाली देते हुए कहा—"तू हमारी लाख के मूल्य की थाली को आधे मासे के मूल्य की भी नहीं बताता था। लेकिन तेरे स्वामी जैसा एक धर्मात्मा व्यापारी, हमें (एक) हज़ार दे कर उसे ले गया।"

यह सुन 'मैंने लाख के मूल्य की सोने की थाली गँवा दी, उसने मेरी बड़ी हानि की' (सोच) अत्यन्त व्याकुल (=शोकग्रस्त) हो उठा। उसकी स्मृति ठिकाने न रही, और वह पागल (=सज्ञाहीन) सा हो गया। उसने अपने हाथ के कार्षापण और सौदे को घर के दरवाजे पर बखेर दिया। जो कुछ पहने-ओढे था, उसे भी उतार दिया, और वह तराजू की डण्डी की मुगरी बना, बोधिसत्त्व के पीछे पीछे भागा। नदी के किनारे पहुँच, बोधिसत्त्व को (नाव में) जाते देख, मल्लाह से कहा—'ओ! मल्लाह! मल्लाह! नाव को लौटाओ"। बोधिसत्त्व ने "नाव को मत लौटाओ" कह मना किया।

उस बनिये को बोधिसत्त्व को निकल जाते देख, अत्यन्त शोक हुआ। उस का हृदय गर्म हो गया। और मुँह से खून निकल पड़ा, तथा हृदय (सूखे) कीचड़ की तरह फट गया। (इस प्रकार वह) बोधिसत्त्व के प्रति शत्रुता का भाव मन में रख, उसी क्षण मर गया।

बोधिसत्त्व के प्रति देवदत्त का यह पहला दाह हुआ। बोधिसत्त्व (भी) दान आदि पुण्य करके कर्मानुसार गति को प्राप्त हुए।

सम्यक् सम्बुद्ध ने यह धर्मोपदेश कह, सम्बुद्ध होने ही की अवस्था में यह गाथा कही—

इध चेहि नं विराधेसि सद्धम्मस्स नियामतं।
चिर त्वं अनुतपेस्ससि सेरिवा यं व वाणिजो ॥

[यदि तू सद्धर्म के नियम को नही प्राप्त करता, तो तू सेरिवा बनिये की तरह दु ख को प्राप्त होगा]

इसमे '**इध चेहि नं विराधेसि सद्धम्मस्स नियामत**' का अर्थ है कि इस धर्म मे जो अधिक से अधिक सात जन्म ग्रहण करने के ही नियम वाला श्रोत-आपत्ति-मार्ग है, उसे यदि तू प्राप्त नही करे, हिम्मत हार दे, तो यह नही मिलता। '**चिरं त्वं अनुतपेस्ससि**' का अर्थ है, ऐसा होने पर चिरकाल तक सोच करते हुए, रोते हुए, तपेगा अथवा हिम्मत हार देने के कारण, आर्य-मार्ग न पाने के कारण, (तू) चिर काल तक नरक आदि मे उत्पन्न हो, नाना प्रकार के दु खो को भोगेगा, सतप्त-परि-तप्त होगा, क्लेश को प्राप्त होगा। कैसे ? "**सेरिवा यं व वाणिजो।**" **सेरिवा**— यह नाम है। य वा का अर्थ है जैसे। यह कहा गया है कि "जिस प्रकार पूर्वसमय मे सेरिवा नामक व्यापारी लाख के मूल्य की सोने की थाली पाकर, उसकी प्राप्ति के लिये प्रयत्न न करके, उसे गँवा कर, (पीछे) अफसोस को प्राप्त हुआ। उसी प्रकार तू भी इस धर्म मे, तैयार की गई सोने की थाली के सदृश, आर्य-मार्ग को प्रयत्न की ढिलाई के कारण न प्राप्त करके, उससे भ्रष्ट हो, चिरकाल तक अनुताप को प्राप्त करेगा। लेकिन यदि प्रयत्न नही छोडेगा, तो जैसे बुद्धिमान् व्यापारी ने सोने की थाली पाई, वैसे ही (तू भी) मेरे धर्म (=शासन) मे नौ प्रकार के अलौकिक (=लोकोत्तर) धर्मो को प्राप्त करेगा।

इस प्रकार बुद्ध (=शास्ता) ने अर्हत्व-प्राप्ति को सर्वोच्च स्थान दे, यह धर्म उपदेश कर चारो (आर्य-) सत्यो की व्याख्या की। सत्यो की व्याख्या समाप्त होने पर, वह हिम्मत हारा भिक्षु अर्हत्व (नामक) सर्वोत्तम (=अग्र) फल में स्थित हुआ। बुद्ध ने भी दोनो कथाएँ सुना, तुलना कर, जातक का साराश निकाला

'उस समय का मूर्ख व्यापारी देवदत्त था, और बुद्धिमान व्यापारी तो मैं ही था', कह उपदेश समाप्त किया।

४. चुल्लसेट्ठि जातक

"अप्पकेनापि मेधावी"—यह धर्म-उदेश भगवान् ने राजगृह के पास स्थित जीवक के आम्रवन में विहार करते समय चुल्ल पन्थक स्थविर को उद्देश करके कहा।

क. वर्तमान कथा

यहाँ पहले चुल्ल पन्थक की उत्पत्ति कहनी चाहिए—राजगृह मे एक धन सेठ की लडकी का अपने नौकर से सम्वन्ध था। दूसरो से अपने इस कर्म को छिपाने के लिये उसने डर से नौकर से कहा—"अव हम यहाँ नही रह सकते। यदि मेरे माता-पिता इस दोप को जान लेंगे, तो मेरे टुकडे टुकडे कर देंगे। चलो हम विदेश निकल चलें।"

(तव वे) दोनो हाथ मे ही ले चलने योग्य कीमती कीमती (सारवान्) चीज़े ले (नगर के) प्रधान द्वार से वाहर हो किसी अपरिचित स्थान में रहने की इच्छा से निकल भागे। उनके एक ही स्थान पर इकट्ठे रहते समय, दोनो के सहवास से (लडकी को) गर्भ हो गया। गर्भ के परिपक्व होने पर उस (लडकी) ने स्वामी से सलाह की—"गर्भ परिपक्व हो गया। जिस स्थान मे जाति-सम्वन्धी नही हो वैसे स्थान पर प्रसव होने पर हम दोनो को वहुत कष्ट होगा। चलो पिता के घर चले।"

वह 'आज चले, कल चले', करते-करते दिन विताने लगा। लडकी सोचने लगी—'यह मूर्ख अपने अपराध के भारीपन के कारण जाने से डरता है। माता पिता हर तरह से हितैपी होते हैं। चाहे यह जाए, या न जाए, मुझे जाना चाहिए।' फिर पति के घर से वाहर गये रहते वक्त घर के सामान को ठीक ठाक कर दिया।

अपने पिता के घर चलने की बात पडोसियो को कह, रास्ते पर चल पडी। तब उस आदमी ने घर लौट कर, स्त्री को न देख, पडोसियो से पूछा। पिता के घर जाने की बात सुन, जल्दी जल्दी अनुगमन करते जा, उसे मार्ग में पाया। उस स्थान पर उसे प्रसव हो चुका था "भद्रे! क्या हुआ ?" उसने पूछा। "स्वामी! एक पुत्र हुआ है। अब क्या करना चाहिये ? जिस मतलब के लिये हम पिता के घर जा रहे थे, वह काम रास्ते में ही हो गया। अब वहाँ जाकर क्या करेंगे ? चलो लौटे।"

फिर दोनो एक राय हो वापिस लौटे। उस बच्चे के पन्थ मे पैदा होने के कारण उसका नाम पन्थक रक्खा गया।

कुछ समय बाद उसे दूसरा गर्भ हो गया। (पहले की भाँति यहाँ भी सारी कथा समझनी चाहिये)।

पन्थ (=मार्ग) मे ही उत्पन्न होने के कारण, पहले उत्पन्न हुए (बालक) का नाम महापन्थक और दूसरे का चुल्लपन्थक कर दिया गया। दोनो बच्चो को लेकर, वह अपने निवास स्थान पर लौट आये। पन्थक बच्चो ने दूसरे बच्चो को 'चाचा, नाना, नानी' कहते सुनकर माता से पूछा—"दूसरे बच्चे, 'चाचा, नाना, नानी' कहते है, माँ! क्या हमारे नातेदार नही है ?"

"हाँ तात! यहाँ तुम्हारे नातेदार नही है, लेकिन राजगृह नगर में धन सेठ नाम के (तुम्हारे) नाना है! वहाँ तुम्हारे बहुत से नातेदार है।"

"अम्मा, वहाँ हम किस लिये नही जाते है ?"

उसने पुत्र को अपने न जाने का कारण कह, पुत्रो के बार बार कहने पर स्वामी से कहा—"यह बच्चे बहुत दुःखी हो रहे है। क्या माता पिता हमे देख कर (हमारा मास थोडे ही खा लेंगे ? आओ! इन बच्चो को पिता का घर दिखला दें।"

"मै सामने न जा (=खडा ही) सकूँगा। हाँ! तुझे वहाँ ले जाऊँगा।"

"आर्य! अच्छा जैसे भी हो बच्चो को पितृ-कुल दिखलाना है।"

दोनो जने बच्चो को लेकर, क्रमश राजगृह पहुँचे। नगर-द्वार पर एक शाला मे ठहरे। माता पिता के पास सन्देश भेजा—"बच्चो की माँ (अपने) दो बच्चो को लेकर आई है।"

उन्होने वह सन्देश सुन कर कहला भेजा—"ससार मे जन्म-मरण के चक्कर में घूमते हुए (ऐसा) कोई नही, जो (कभी न कभी) पुत्र या पुत्री न बना हो।

उन दोनो ने हमारा बडा अपराध किया है। इसलिये वह हमारी आँखो के सामने नही खडे हो सकते। इतना धन लेकर वह दोनो (किसी) सुख की जगह जाकर रहे, लेकिन बच्चो को यहाँ छोड जाये।"

सेठ की कन्या ने माता पिता के भेजे धन को लिया, और बच्चो को आये हुए दूतो के साथ भेज दिया। बच्चे, (अपने) नाना के कुल में पलने लगे।

उन दोनो मे से चुल्लपन्थक तो (अभी) बहुत छोटा था, लेकिन महापन्थक (अपने) नाना के साथ बुद्ध का धर्म-उपदेश सुनने जाता था। नित्य भगवान् (शास्ता) के सम्मुख (जाकर) धर्मोपदेश सुनने से, उसका मन साधु बनने को चाहा। उसने नाना से कहा—"यदि आप आज्ञा दें, तो मैं भिक्षु बनूँ।"

"तात! क्या कहा? मेरे लिये, सारे लोक की प्रव्रज्या से बढकर, तेरी प्रव्रज्या श्रेष्ठ है। यदि निभ सके तो तात! साधु बन जा।" (कह) स्वीकार कर बुद्ध के पास गया। बुद्ध ने पूछा—'क्यो महासेठ! क्या पुत्र मिला है?"

"हाँ भन्ते! यह बालक मेरा नाती है, कहता है कि आपके पास साधु बनूँगा।"

बुद्ध ने एक पिण्डपातिक[1] भिक्षु को बालक को प्रव्रजित करने की आज्ञा दी। स्थविर ने उस (बालक) को त्वच्-पञ्चक[2] कर्मस्थान कह प्रव्रजित किया।

उसने बुद्ध के बहुत से उपदेश सीख (बीस) **वर्ष की अवस्था में ही**[3] उपसम्पदा प्राप्त की। उपसम्पन्न होने पर भली प्रकार मन देकर अभ्यास करते हुए अर्हत्व को प्राप्त हुआ। ध्यान-सुख और मार्ग-सुख से समय व्यतीत करते उसने सोचा—'क्या मैं यह सुख चुल्लपन्थक को भी दे सकता हूँ?' फिर नाना सेठ के पास जा कर कहा "महासेठ! यदि तुम्हें स्वीकार हो, तो मैं इस बालक को प्रव्रजित करूँ?"

"भन्ते! प्रव्रजित करें।"

स्थविर ने चुल्लपन्थक बच्चे को प्रव्रजित कर, दश शीलो में स्थापित किया। चुल्लपन्थक श्रामणेर प्रव्रजित होते ही मन्द-बुद्धि हो गया।

---

[1] पिण्डपातिक—भिक्षा पर ही निर्भर रहने वाले।

[2] भिक्षु (=श्रामणेर) की प्रव्रज्या के समय केश, लोम, नख, दन्त तथा त्वच् इन पाँच शब्दो का सांकेतिक उपदेश।

[3] बीस वर्ष से कम आयु रहने पर, कोई भी भिक्षु उपसम्पन्न नहीं हो सकता।

"पदुम यथा कोकनद सुगन्ध
पातो सिया फुल्लमवीतगन्ध,
अङ्गीरस पस्स विरोचमान
तपन्तमादिच्चमिवन्तलिक्खे ।"

[जैसे लाल-कमल या सुगन्धित कोकनद आकाश में प्रकाशमान् सूर्य को देख सुगन्धित और प्रफुल्लित होता है,उसी प्रकार आकाश मे तपने वाले सूर्य के सदृश प्रकाशयुक्त अंगिरस गोत्रीय (=वुद्ध) को देखो ।]

इस एक गाथा को चार महीनो मे भी न सीख सका। यह भिक्षु (पूर्व में) **काश्यप सम्यक् सम्बुद्ध** के समय प्रव्रजित हुआ था। (अपने) वुद्धिमान् (होने के अभिमान मे) एक मन्द-वुद्धि भिक्षु के पॉती (=वुद्ध-वचन) सीखने के समय उसका मज़ाक उडाया। उस परिहास से उस भिक्षु को इतनी लज्जा आई कि वह भिक्षु न पाठ ही याद कर सका, न स्वाध्याय ही कर सका। उसी कर्म के फल से (इस जन्म मे) यह भिक्षु प्रव्रजित होते ही मन्दवुद्धि हो गया। याद किये पद को वह अगले पद के सीखते समय भूल जाता था। उस समय एक ही गाथा को कण्ठ-स्थ करने का प्रयत्न करते उसे चार महीने वीत गये। तव उसे **महापन्थक** ने कहा—"पन्थक ! तू इस धर्म (=शासन) के योग्य नही है। चार महीने में एक गाथा भी तू नही सीख सका, तो प्रव्रज्या का उद्देश्य किस प्रकार पूरा करेगा ? निकल यहाँ से"—(कह) विहार से निकाल दिया।

वुद्ध शासन के प्रति स्नेह से **चुल्लपन्थक** गृहस्थ न होना चाहता था। **महा-पन्थक** उस समय भोजन-प्रवन्धक (**=भत्त उद्देसक**) थे। (एक दिन) **कौमार-भृत्य जीवक**[1] वहुत गन्धमाला सहित अपने आम्रवन मे गया, (वहाँ) बुद्ध की पूजा कर उसने धर्मोपदेश सुना। आसन से उठ, वुद्ध को प्रणाम कर, महापन्थक के पास जाकर पूछा—"भन्ते ! (आजकल) भगवान् के साथ कितने भिक्षु हैं ?"

"पाच सौ भिक्षु है।"

"भन्ते ! वुद्ध सहित पाँच सौ भिक्षुओ के साथ कल आप मेरे घर पर भिक्षा ग्रहण करे।" स्थविर ने उत्तर दिया—

---

[1] **वुद्ध का समकालीन प्रसिद्ध वैद्य।**

"उपासक ! चुल्लपन्थक नामक (भिक्षु) मन्द-बुद्धि है, मूढ है, उसे छोड शेष सबका निमन्त्रण स्वीकार करता हूँ।"

चुल्लपन्थक ने सोचा—"स्थविर इतने भिक्षुओ का निमन्त्रण स्वीकार करते है, किन्तु मुझे बाहर रख कर, स्वीकार करते है। निस्सन्देह मेरे भाई का मन मेरी ओर बिगडा हुआ है। अब मुझे इस शासन (में रहने) से क्या (लाभ) ? गृहस्थ हो कर दान आदि पुण्य करते जीवन व्यतीत करूँगा।"

सो वह एक दिन प्रात ही गृहस्थ बनने की इच्छा से चल दिया। बुद्ध ने प्रात काल ही लोक के बारे मे विचार करते, (अपने दिव्य-ज्ञान से) इस बातको जान लिया, और चुल्लपन्थक से भी पहले, उसके जाने के मार्ग के बरामदे में जाकर टहलने लगे। चुल्लपन्थक ने घर से निकल कर, बुद्ध को देख, (उनके) पास जा वन्दना की। बुद्ध ने पूछा—"चुल्लपन्थक ! इस समय तू कहाँ जा रहा है।"

"भन्ते ! मेरे भाई ने मुझे निकाल दिया है, इसलिये मैं गृहस्थ होने जा रहा हूँ।"

"चुल्लपन्थक ! तू मेरे आधीन (=पास) प्रव्रजित हुआ है। यदि भाई ने निकाल दिया, तो तू मेरे पास क्यो नही आया ? आ, गृहस्थ हो कर क्या करेगा ? मेरे समीप रहना।" (कह) **चुल्लपन्थक** को ले कर **गन्धकुटी** के दरवाजे में बिठा कर कहा—"**चुल्लपन्थक** पूर्व दिशा की ओर मुँह करके इस कपडे के टुकडे पर **'रजो हरण रजो हरण'** कह, परिमार्जन करते हुए यही (बैठे) रहना।" (और-फिर) ऋद्धि-बल से निर्मित कपडे का एक परिशुद्ध टुकडा, उसे देकर, (उचित) समय की सूचना मिलने पर (स्वय) भिक्षुसघ सहित जीवका के घर जा कर बिछे आसन पर बैठे।

चुल्लपन्थक भी सूर्य की ओर देखते, तथा उस वस्त्र के टुकडे से **'रजो हरण रजो हरण,** कह पोछते बैठा रहा। पोछते पोछते उसका वह वस्त्र का टुकडा मैला हो गया। तब वह सोचने लगा—"यह वस्त्र का टुकडा अति परिशुद्ध (था) लेकिन इस शरीर के कारण, अपने पूर्व-स्वरूप को छोड इस प्रकार मैला हो गया।" (यह सोच) उसने "सभी सस्कार अनित्य है" का ख्याल कर, सस्कारो के क्षय और व्यय पर विचार करते हुए विदर्शना-भावना (=समाधि) बढाई।

बुद्ध ने '**चुल्लपन्थक** का चित्त विदर्शना-भावना पर आरुढ हुआ' जान, "**चुल्ल-पन्थक** ! तू यह ही मत सोच कि यह वस्त्र का टुकडा रज (=धूलि, मैल) से

रञ्जित हो गया। तेरे अपने अन्दर जो राग आदि मैल है, उनको दूर कर।" कह, सामने बैठ प्रकाश फैलाते हुए से दिखाई देते हुए हो कर यह गाथाये कही --

"रागो रजो न च पन रेणु वुच्चति
रागस्सेतं अधिवचन रजोति,
एतं रजं विप्पजहित्व भिक्खवो
विहरन्ति ते विगतरजस्स सासने॥
दोसो रजो न च पन रेणु वुच्चति
दोसस्सेत अधिवचनं रजोति,
एतं रज विप्पजहित्व भिक्खवो
विहरन्ति ते विगतरजस्स सासने"।
मोहो रजो न च पन रेणु वुच्चति
मोहस्सेत अधिवचन रजोति,
एतं रज विपज्जहित्व भिक्खवो
विहरन्ति ते विगतरजस्स सासने"॥

"राग को (असल) रज (=धूलि) कहते है, न कि रेणु को। रज राग का पर्य्यायवाची शब्द है। भिक्षु इस रज से मुक्त हो कर रज-रहित के शासन मे विचरते है।

द्वेष (=क्रोध) को रज कहते है, न कि रेणु को। रज द्वेष का पर्य्यायवाची शब्द है। भिक्षु इस रज से मुक्त हो कर रज-रहित के शासन मे विचरते है।

मोह को रज कहते है, न कि रेणु को। रज मोह का पर्य्यायवाची शब्द है। भिक्षु इस रज से मुक्त हो कर, मोह-रहित के शासन मे विचरते है।"

गाथाओ की समाप्ति पर **चुल्लपन्थक** को **पटि-सम्भिदा**—ज्ञान के सहित अर्हत्व प्राप्त हुआ, और **पटि-सम्भिदा**-ज्ञान के साथ ही साथ **तीनो पिटको** का भी ज्ञान हो गया।

उसने पूर्व (-जन्म) मे राजा हो, नगर की प्रदक्षिणा करते हुए, माथे से पसीना गिरने पर, शुद्ध वस्त्र से माथे को पोछा। वस्त्र मैला हो गया 'इस शरीर के कारण इस प्रकार का परिशुद्ध वस्त्र अपने पूर्व-स्वरूप को छोड मैला हो गया' सोच उसे,

'सव सस्कार (=निर्माण) अनिन्य है'[1]—ऐसी अनित्य-वुद्धि हुई। इसी कारण मे (इम जन्म में भी) उस (की अर्हत्व-प्राप्ति) का सावन (=प्रत्यय) 'रजो हग्ण' ही हुआ।

कौमारभृत्य जीवक वुद्ध के लिये दक्षिणा का जल लाया। वुद्ध ने 'जीवक! (अभी) विहार मे भिक्षु हैं' कह हाथ से पात्र ढक दिया। महापन्थक ने कहा—"भन्ते! (अव) विहार में (और) भिक्षु नही हैं।"

गास्ता ने कहा—"जीवक! है।"

जीवक ने आदमी भेजा, 'भणे! जाओ, देखो तो विहार मे भिक्षु है या नही?'

उम ममय चुल्लपन्थक ने, "मेरा भाई 'विहार मे भिक्षु नही है' कहता है, सोच उमे विहार मे भिक्षुओं का होना दिखाऊँगा"—सोच, सारे आम्रवन को भिक्षुओ मे भर दिया। कुछ भिक्षु चीवर-कर्म (चीवर का सीना) कर रहे थे। कुछ भिक्षु चीवर ग्ग रहे थे। कुछ मिल कर पाठ कर रहे थे। इस प्रकार एक दूसरे से भिन्न हज़ारो भिक्षु वना दिये। उस आदमी ने वहुत से भिक्षुओ को देख, लौट कर जीवक मे कहा—"आर्य! सारा आम्रवन भिक्षुओ से भग पडा है।" उस समय चुल्ल-पन्थक स्थविर—

"सहस्सक्खत्तुं अत्तान निम्मिनित्वान पन्थको,
निसीदम्ववने रम्मे याव कालप्पवेदना॥"

[चुल्लपन्थक अपने को भिन्न भिन्न हज़ार प्रकार का वना, (भोजन के) ममय की मूचना मिलने तक रमणीय आम्रवन मे वैठे रहे।]

तव वुद्ध ने उम पुरुप से कहा—"विहार जाकर कहो कि गास्ता चुल्लपन्थक को वुलाते है।"

उमके जाकर वैसा कहने पर, सहस्त्रो मुखो से "मै चुल्लपन्थक, मै चुल्लपन्थक" की (आवाज) उठी।

आदमी ने लौट कर कहा—"भन्ते! सव चुल्लपन्थक ही है।"

---

[1] अनिच्चा वत संखारा।

"अच्छा! तू जाकर, जो पहले वोले मै चुल्लपन्थक हूँ, उसका हाथ पकड लेना। वाकी सव अन्तर्धान हो जायेंगे।"

उस (आदमी) ने वैसा ही किया। उसी सामय हज़ार के हजार भिक्षु अन्तर्धान हो गये। स्थविर आदमी के साथ आये। बुद्ध ने भोजन के वाद जीवक को बुला कर कहा—"जीवक! चुल्लपन्थक का पात्र ग्रहण कर। चुल्लपन्थक तुझे (दान-) अनुमोदन करेगा।"

जीवक ने वैसा ही किया। स्थविर ने सिंहनाद करते हुए तरुण-सिह की तरह **तीनो पिटको** का साराश निकाल कर अनुमोदन किया।

वुद्ध भिक्षु-सघ के साथ आसन से उठ, विहार मे गये। वहाँ भिक्षुओ ने (अपना) माध्याह्निक सन्मान प्रदर्शित किया। फिर आसन से उठ कर (भगवान् ने) गन्ध-कुटी के सामने खडे हो, भिक्षुसघ को सुगतोपदेश (=बुद्धोपदेश) दे, **कर्मस्थान**[1] वता, भिक्षुसघ को उत्साहित कर, सुगन्धित गन्धकुटी मे प्रवेश कर दाहिनी करवट लेट सिंह-शय्या से शयन किया। तव शाम को धर्म-सभा मे, भिक्षु इधर-उधर से एकत्र हुए। लाल वनात की कनात पसारते से, बैठ कर, वह वुद्धत्व के गुण को वर्णन कर रहे थे—"आयुष्मानो! महापन्थक ने चुल्लपन्थक की प्रवृत्ति (=अध्याम) न जानी, और (यह चार महीनो में एक भी गाथा कण्ठस्थ न कर सका, इसलिये मूढ है सोच विहार से निकाल दिया। लेकिन सम्यक् सम्बुद्ध ने अतुलनीय धर्मराज होने के कारण, प्रात काल और मध्यान्ह के भोजन के समय के भीतर ही उसे पटिसम्भिदा-ज्ञान सहित अर्हत्व प्रदान कर दिया, और पटि-सम्भिदा-ज्ञान के साथ ही उसे त्रिपिटक (का ज्ञान) भी आ गया। अहो! बुद्धो के वल की महानता!"

तव भगवान् ने यह जान कि धर्म-सभा मे इस प्रकार की बातचीत हो रही है, सोचा कि आज मुझे भी वहाँ जाना चाहिए। उन्होने बुद्ध-शय्या से उठ सुरक्त सघाटी धारण की, बिजली के सदृश (चमकदार) पट्टी (=काय वधन) को वाँधा, लाल वनात (कम्वल) सदृश अपने महा-चीवर को पहना, और फिर सुगन्धित गन्धकुटी से निकले। मस्त हाथी का पीछा करने वाले सिंह के समान, अनन्त वुद्ध-लीला के साथ, वह धर्म-सभा मे पहुचे। (वहाँ सभा मे जाकर) अल-

---

[1] **योग विधियाँ।**

कन मण्डप के बीच में अच्छी तरह विछाये श्रेष्ठ बुद्धासन पर चढ, छ वर्ण की बुद्ध किरणें फैलाते, समुद्र-गर्भ को प्रकाशित करने वाले, युगन्धर पर्वत के शिखर पर स्थित बाल-सूर्य्य की भाँति, आसन के बीच में विराजमान् हुए। सम्यक् सम्बुद्ध के आते ही भिक्षु सब बातचीत छोड चुप हो गया। शास्ता ने मृदु, मैत्रीपूर्ण चित्तसे परिषद् को देख कर सोचा—"यह परिषद् अति सुन्दर लगती है। किसी एक में भी हाथ की चञ्चलता नही, पाँव की चञ्चलता नही, खाँसने का शब्द वा छीकने का शब्द नही। सभी बुद्ध का गौरव करने वाले हैं। सभी बुद्ध के तेज से प्रभावित है। मेरे आयु-कल्प तक भी चुपके रहने पर, यह पहले बोलना आरम्भ न करेंगे। मुझे ही बातचीत आरम्भ करने का विषय ढूंढना चाहिए।" अपने ही प्रथम बोलने का निश्चय कर, भगवान् ने मधुर ब्रह्म-स्वर से भिक्षुओ को आमन्त्रित कर पूछा—"भिक्षुओ! इस समय किस बातचीत में लगे थे? इस समय क्या कथा चल रही थी?"

"भन्ते! यहाँ हम कोई और फजूल (=तिरश्चीन-कथा) बात नही कर रहे थे। हम यहाँ बैठे आपका गुणानुवाद ही कर रहे थे, कि "आयुष्मानो! महापन्थक ने चुल्लपन्थक की प्रवृत्ति अहो! बुद्धो के बल की महानता!!!"

शास्ता ने भिक्षुओ की बात सुनकर कहा—"भिक्षुओ! इसी जन्म मे चुल्लपन्थक ने मेरे कारण धर्म मे महानता (नही) प्राप्त की है, पूर्व जन्म में भी मेरे कारण उसने भोगो (=ऐश्वर्य्य) मे महानता प्राप्त की थी।"

भिक्षुओ ने भगवान् से, उस बात को प्रकट करने की प्रार्थना की। तब भगवान् ने पूर्व-जन्म की छिपी हुई बात को प्रकट किया—

ख. अतीत कथा

पूर्व काल मे काशी राष्ट्र के, वाराणसी (नगर) में ब्रह्मदत्त (राजा) के राज्य करते समय, बोधिसत्त्व एक सेठ परिवार मे उत्पन्न हुए थे। वयस्क होने पर श्रेष्ठी[1] (=सेठी) का पद पा चुल्लसेठी नाम से प्रसिद्ध हुए। वह पण्डित थे, व्यक्त थे, सब लक्षणो के जानकार थे। एक दिन उन्होंने राजा की सेवा मे जाते समय

---

[1] उस समय का एक राजकीय पद जो कि नगर के अधिक धनी पुरुष को मिलता था।

नाली में एक मरे चूहे को देखा। उसी समय नक्षत्र का विचार करके कहा—बुद्धि-मान (चक्षुमान्) कुलपुत्र इस चूहे को ले जाकर (अपने) परिवार का पालन कर सकता है, अथवा जीविकोपार्जन के पेशे (=कर्मान्त) मे लगा सकता है।

एक दरिद्र कुलपुत्र ने श्रेष्ठी की वात सुन, "यह विना जाने नही कह रहा है" (सोच) उस चूहे को एक दुकान पर ले जा बिल्ली के (खाने के) लिये दे डाला। उसके लिए उसे एक **काकणी** (=कार्षापण का आँठवाँ हिस्सा) मिली। उस **काकणी** से उसने गुड खरीदा। फिर एक वरतन में पानी ले जगल से आते हुए मालियो को देख, उन्हे थोडा थोडा गुड और पानी देने लगा। उन्होने उसे एक एक मुट्ठी फूल दिये। अगले दिन वह उन फूलो को वेच कर प्राप्त किये मूल्य से, फिर गुड और पानी का घडा लेकर, पुष्प-उद्यान मे ही चला गया। मालियो ने उसे आधे चुने पुष्प-वृक्ष दे दिये।

थोडे समय मे इस उपाय से उसने आठ **कार्षापण** प्राप्त कर लिये। एक दिन ऐसा हुआ कि आँधी आई; और हवा से राज्योद्यान मे वहुत सी सूखी लकडी, शाखायें और पत्ते गिर पडे। माली नही जानता था कि उनको कैसे हटवाये। उसने आकर माली से कहा—"यदि यह लकड़ी-पत्ते मुझे दो, तो मै इन सब को यहाँ से उठवा ले जाऊँ।" "आर्य! ले जाओ।" (कह) उसने स्वीकार कर लिया। तव वह **चुल्ल-अन्तेवासिक** (=छोटा शिष्य) छोटे लडको के खेलने की जगह पर गया। उन्हे (थोडा थोडा) गुड दे, थोडी ही देर मे लकडी-पत्ते उठवाकर उद्यान के द्वार पर ढेर लगवा लिया। उस समय राजकीय कुम्हार राज-परिवार के वर्तनो को पकाने के लिए लकडी ढूढ रहा था। राजोद्यान के द्वार पर जा उसने उन (लकडी पत्तो) को देखा। उन्हें खरीद लिया। उस दिन **चुल्ल-अन्तेवासिक** को लकडी के वेचने से सोलह **कार्षापण** और चाटी तथा दूसरे पाच बर्तन मिले। (इस प्रकार) धीरे धीरे उसके पास चौबीस कार्षापण हो गये। उसने सोचा 'मेरे लिये यह एक (अच्छा) ढग है।' वह नगर-द्वार के समीप एक पानी की चाटी रख पाँच सौ घसि-यारो (=तृणहारको) को पानी पिलाने लगा। वे पूछने लगे "सौम्य, तू ने हमारा बहुत उपकार किया है। हम तेरे लिये क्या करे?"

"काम पडने पर कहूँगा (करना)"—कह, इधर उधर घूमते हुए, उसने

स्थलपथकर्मिक (स्थल-मार्ग के कर्मचारी)' से और जल-मार्ग के कर्मचारी' (=जलपथकर्म्मिक) से मित्रता कर ली।

(एक दिन) स्थलपथकर्मिक ने उससे कहा—"कल इस नगर में, घोडों का व्यापारी, पाँच सौ घोड़े ले कर आने वाला है।" उसने उसकी बात सुन घसियारों से कहा—"आज मुझे (सब जने) एक एक घास की पूली (=तृणकलाप) दो, और मेरा घास न बिकने तक, अपना घास न बेचो।" उन्होंने 'अच्छा' कह स्वीकार किया और घास के पाँच सौ पूले लाकर उसके घर पर डाल दिये। घोडों के व्यापारी ने सारे नगर में (ढूँढा)। किसी दूसरी जगह घोडों के लिये उसे चारा न मिला। (अन्त में) उसे एक सहस्र देकर, उससे (वह) घास खरीदी।

कुछ दिन बाद,उसके जलपथकर्मिक मित्र ने कहा कि घाट (=पत्तन=बन्दरगाह) पर बड़ी नाव आई है। उसने सोचा 'यह एक (अच्छा) मौका है, और आठ कार्षापण में सब सामान से सुसज्जित एक रथ किराये पर लिया। बडी सज-धज के साथ नाव के घाट पर जा, नाविकको एक अँगूठी पेशगी दे (उससे) थोडी दूर पर कनात तनवा, (भीतर) बैठ, आदमियों से कह दिया "जब बाहर से व्यापारी आये तो उन्हें तीन पहरों में लिवा कर सूचित करना।"

"नाव आई है" सुन, वाराणसी के सौ व्यापारी सामान खरीदने के लिये आये। 'यहां से तुम्हें सामान नहीं मिल सकता, अमुक स्थान के महान् व्यापारी ने पेशगी दी है', सुन वह उसके पास आये। सेवकों ने पूर्व आज्ञा के अनुसार उन्हें तीन पहरों में से लिवा कर सूचना दी।

वे व्यापारी सौ थे। उनमें से प्रत्येक ने एक एक सहस्र देकर, उसे नाव में भागीदार बनाया। फिर एक सहस्र देकर, अपने अपने हिस्से (=के माल) को छुटा लिया। (इस प्रकार) चुल्ल-अन्तेवासिक दो लाख ले वाराणसी आया। कृतज्ञता प्रकट करने की इच्छा से वह एक लाख साथ ले चुल्लसेठी के पास गया। श्रेष्ठी ने पूछा—"तात! क्या करके तू ने यह धन कमाया।"

उसने कहा—"आपके ही बताये उपाय से चार महीने के अन्दर यह धन कमाया।' और मरे चूहे से आरम्भ करके सब कहानी कह डाली। चुल्लक-

---

'उस समय के राज-पदाधिकारी।

महासेठी ने 'इस प्रकार के तरुण को किसी दूसरे के पास छोडना अच्छा नही, सोच उसे अपनी तरुण कन्या दे सारे परिवार का मालिक बना दिया'।

श्रेष्ठी की मृत्यु के बाद, उसे उस नगर के श्रेष्ठी का पद प्राप्त हुआ। वोधि-सत्त्व भी कर्मानुसार परलोक सिधारे। सम्यक् सम्वुद्ध ने यह धर्मोपदेश कह, वुद्ध होने की अवस्था मे यह गाथा कही—

अप्पकेनापि मेधावी पाभतेन विचक्खणो,
समुट्ठापेति अत्तानं अणुं अग्गि व सन्धमं।

[(चतुर) मेधावी (पुरुप) थोडी सी भी आग को फूक मारकर वढा लेने की तरह, थोडे से भी मूलधन से अपने को उन्नत कर लेता है।]

इसमे **'अपप्केनापि'** का अर्थ है थोडे से भी—परिमित से भी। **मेधावी**=प्रज्ञा-वान्। **पाभतेन**=सामान का मूल्य। **विचक्खणो**=व्यवहार-कुशल। **समुट्ठापेति अत्तानं** का अर्थ है वहुत सा धन तथा यश कमा कर, उसपर अपने को प्रतिष्ठित करता है। कैसे ? **अणुं अग्गिं व सन्धमं,** जैसे वुद्धिमान आदमी थोडी सी आग को भी क्रम से गोवर का चूरा आदि डालकर, तथा मुह से फूक मारकर उठा लेता है, वढा लेता है, वडा अग्नि-पुञ्ज वना लेता है ? उसी प्रकार वुद्धिमान मनुष्य थोडा भी मूल प्राप्त कर, नाना (प्रकार के) उपायो से धन और यश की वृद्धि करता है, और वृद्धि कर, उसपर अपने को प्रतिष्ठित करता है अथवा उस महान् धन और यश मे अपने को उठाता है, प्रसिद्ध करता है, मशहूर करता है।"—यह अर्थ है।

इस प्रकार भगवान् ने, "भिक्षुओ ! इस जन्म मे चल्लुपन्थक ने मेरे कारण धर्म मे धर्म की महानता को प्राप्त किया, और पूर्व जन्म मे मेरे कारण भोगो (=ऐश्वर्य) की महानता तथा यश की महानता को प्राप्त किया" कह, इस धर्मोपदेश को स्पष्ट कर, दोनो कहानियाँ सुना, तुलना करके जातक का साराश निकाल दिखाया—"उस समय का **चुल्लअन्तेवासिक** (यही) **चल्लुपन्थक** था, और **चुल्लकमहासेट्ठी** तो मै (स्वय) ही था" कह देशना समाप्त की।

५ तण्डुलनालि जातक

'किमग्घति तण्डुलनालिका', तण्डुल-नालि का क्या मूल्य है? यह (उपदेश) बुद्ध ने जेतवन मे विहार करते समय लाल-उदायी स्थविर को उद्देश करके कहा।

क. वर्तमान कथा

उस समय मल्लपुत्र आयुष्मान् दब्ब सघ के भोजन-प्रबन्धक (=भत्तुद्देसक) थे। जब प्रात काल वह भोजन की शलाकायें[1] बाँटते तो लाल-उदायी स्थविर को, किसी दिन अच्छा भोजन मिलता, किसी दिन खराब। जिस दिन उन्हे खराब भोजन मिलता, वह भोजन की शलाकायें बाँटने के स्थान पर गडबड करते, और कहते 'क्या दब्ब ही शलाका देना जानता है, हम नही जानते'। उसके शलाका की जगह पर गडबड करने से उसे ही शलाकाओं की डलिया दे दी गई, "हन्त! लो तुम ही शलाकायें बाँटो।" उस दिन से वह ही सघ को (भोजन की) शलाकायें बाँटने लगा। बाँटते समय वह न जानता था— यह अच्छे भोजन (की शलाका) है और यह खराब भोजन (की शलाका) है। यह भी न जानता था—अमुक वर्ष की[2] आयु तक के भिक्षुओं को अच्छा भात दिया जा चुका है, और अमुक-वर्ष की आयु तक के भिक्षुओं को खराब। 'अमुक-वर्षों' की सीमा (=ठितिका) करते हुए भी 'अमुक वर्ष-तक की सीमा की जा चुकी है'—का ख्याल न रखता था। भिक्षुओं के स्थान के बारे मे, 'इस स्थान पर, इस (आयु)-सीमा तक के भिक्षु ठहरें', इस

---

[1] गृहस्थो की ओर से परिमित भिक्षुओं को निमन्त्रण होने पर भिक्षुओं के चुनने में पेंसिल जैसी लकडी की शलाकाओ का उपयोग होता था।

[2] भिक्षुओं की आयु उनकी उपसम्पदा से गिनी जाती है।

स्थान पर, इस सीमा तक के भिक्षु ठहरें, करके पृथ्वी या दीवार पर रेखा खीचता था। अगले दिन शलाका की जगह मे भिक्षु (पहले दिन से) कम हो जाते वा अधिक हो जाते। उनके कम होने पर रेखा नीचे हो जाती, अधिक होने पर ऊपर। वह सीमा (=ठितिका) का ख्याल न कर, रेखा के चिन्ह के अनुसार शलाका बाँटता। तव उसे भिक्षु कहते—"आयुष्मान् लालउदायी। रेखा चाहे ऊपर हो, चाहे नीचे, लेकिन अच्छे भोजन मिल चुकने की सीमा अमुक वर्ष के भिक्षुओ तक है, और खराव-भोजन मिल चुकने की सीमा अमुक-वर्ष के भिक्षुओ तक।" (लालउदायी) खीझ कर उत्तर देता—"यदि ऐसा है, तो यह रेखा यहाँ किस लिए है ? मैं तुम्हारा विश्वास थोडे ही करूँगा। मैं (तो) इस लकीर का विश्वास करूँगा।"

तव नए भिक्षुओ ने और श्रामणेरो ने उसे, "(आयुष्मान् ! लालउदायी) तेरे शलाका बाँटने पर भिक्षुओ के लाभ की हानि होती है। तू बाँटने के योग्य नही। यहाँ से निकल" कह, शलाका-बाँटने की जगह से निकाल दिया। उस समय शलाका की जगह पर वडा कोलाहल हुआ।

उसे सुन बुद्ध ने आनन्द स्थविर से पूछा—"आनन्द ! शलाका की जगह मे वडा कोलाहाल है। यह क्या शोर है ?" स्थविर ने तथागत को वह बात बताई।

शास्ता ने कहा—"आनन्द ! अपनी मूर्खता से **लाल-उदायी** न केवल इस जन्म में दूसरो के लाभ की हानि कर रहा है, वल्कि (इसने) पहले भी ऐसा किया है।" स्थविर ने इस वात को स्पष्ट करने के लिये प्रार्थना की। भगवान् ने पूर्व-जन्मकी गुप्त वात प्रकट की—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे, **काशी** राष्ट्र के **वाराणसी** (नगर) में **ब्रह्मदत्त** (नामक) राजा राज्य करते थे। उस समय हमारे वोधिसत्त्व उस (राजा) के **अर्घ-कारक**, मूल्य निश्चित करने वाले (=appraiser of the preces)थे। (वे) हाथी, घोडे, मणि, सुवर्ण आदि का मूल्य (निश्चित) करते और मूल्य करवा चीज के मालिको को चीज का उचित मूल्य दिलवाते थे। लेकिन राजा लोभी था, उसने लोभी-स्वभाव होने के कारण सोचा—"यदि यह अर्घकारक मूल्य (निश्चित) करता रहा तो थोडे ही समय मे मेरे घर का धन नष्ट हो जायेगा। (इसलिए) किसी दूसरे को अर्घकारक रक्खूगा।" उसने खिडकी खोल कर राजागन मे देखते हुए, एक लोभी,

मूर्ख, गँवार आदमी को वहाँ से जाते देख कर सोचा—"यह मेरा दाम लगाने का काम कर सकेगा।" और फिर उसे बुला कर पूछा—"अरे! क्या तू हमारा दाम लगाने का काम कर सकेगा ?"

"देव! कर सकता हूँ।" राजा ने अपने धन की रक्षा करने के लिए उस मूर्ख आदमी को अर्घ-कारक के पद पर स्थापित किया। उस समय से वह मूर्ख अर्घ-कारक हाथी, घोडे आदि का दाम लगाते वक्त दाम को घटा कर जैसा मन में आता, वैसा कहता था। उसके उस पद पर प्रतिष्ठित होने के कारण, जो कुछ वह कहता, वही चीजों का मूल्य होता।

उस समय एक मरहट्टी (=उत्तरापथक) घोडे का व्यापारी पाँच सौ घोडे लेकर आया। राजा ने उस आदमी को बुलाकर घोडों का दाम लगवाया। उसने पाँच सौ घोडों का दाम एक तण्डुल नालिका किया और फिर "घोडो के व्यापारी को एक तण्डुल नालिका दे दो" कह, घोडो को (राजकीय) अश्वशाला में भिजवा दिया। घोडे के व्यापारी ने पुराने अर्घ-कारक के पास जा, उसे समाचार सुना कर पूछा, कि अब क्या करना चाहिए ?

उसने उत्तर दिया—"उस आदमी को रिश्वत देकर, उससे कहो—कि हमारे घोडों का मूल्य एक तण्डुल-नालिका है; यह तो हमें मालूम हो गया, अब हम यह जानना चाहते हैं कि आपसे जो तण्डुल-नालिका मिली है, उसका क्या मूल्य है ? क्या आप राजा के सम्मुख खडे हो कर, कह सकेंगे कि तण्डुल-नालिका का क्या मूल्य है ? यदि कहे कि 'कह सकता हूँ' तो उसे राजा के पास लेकर आओ। मैं भी वहाँ आऊँगा।"

घोडों के व्यापारी ने "अच्छा" कह बोधिसत्त्व के वचन को स्वीकार कर, अर्घ-कारक को रिश्वत दे, वह बात कही। उसने रिश्वत पाकर उत्तर दिया—"हाँ, तण्डुल-नालिका का मोल करा सकता हूँ।" "तो राज-कुल चलें" कह, उसे ले, राजा के पास आये। बोधिसत्त्व तथा दूसरे बहुत से अमात्य भी आ गये।

घोडों के व्यापारी ने राजा को प्रणाम करके कहा—"देव! यह तो मैंने जाना कि पाँच सौ घोडों का मूल्य एक तण्डुल-नालिका है, अब अर्घ-कारक से पूछें कि एक तण्डुल-नालिका का क्या मूल्य है ?"

राजा ने रहस्य न जानने के कारण पूछा—"अरे अर्घकारक! पाँच सौ घोडों का क्या मूल्य है ?"

"देव ! तण्डुल-नलिका।"

"अरे ! पाँच सौ घोडो का तो मूल्य तण्डुल-नलिका है, उस तण्डुल-नलिका का क्या मूल्य है ?" उस मूर्ख ने उत्तर दिया—'तण्डुल-नलिका का मूल्य है भीतर-बाहर (=सब) वाराणसी।"

राजा का पक्ष लेकर, उसने पहले तो घोडो का मूल्य एक तण्डुल-नालिका (स्थिर किया) अब घोडो के व्यापारी से रिशवत लेकर, उस तण्डुल-नालिका का मूल्य अन्दर-बाहर (=सब) **वाराणसी** किया।

> **"किमग्घति तण्डुलनालिकाय**
> **अस्सान मूलाय वदेहि राज !**
> **बाराणसिं सन्तरबाहिरन्त**
> **अयमग्घति तण्डुलनालिका॥"**

[राजन् ! घोडो की कीमत, इस तण्डुल-नालिका का क्या मूल्य है ? इस तण्डुल-नालिका का मूल्य अन्दर-बाहर (सारी) वाराणसी है]

उस समय **वाराणसी** का शहर-पनाह (प्राकार) **बारह योजन** का था, (और) उसके अन्दर-बाहर तो **तीन सौ योजन** का देश (=राष्ट्र) था। सो, उस मूर्ख ने अन्दर और बाहर सहित इतनी बडी बाराणसी को तण्डुल-नालिका का मूल्य बताया।

इसे सुन अमात्य ताली पीट कर हँसते हुए कहने लगे—"हम आज तक यही समझते रहे कि पृथ्वी और राज्य अमूल्य (होते) है। (लेकिन आज मालूम हुआ) कि इतने बडे राज्य सहित वाराणसी का मूल्य एक तण्डुल-नालिका मात्र है। अहो ! मूल्य करने वाले की प्रज्ञा ! इतने समय तक यह अर्घ-कारक कहाँ (छिपे) रहे। हमारा राजा ही (इनके) योग्य नही है।"

उस समय राजा ने लज्जित हो, उस मूर्ख को निकाल, बोधिसत्त्व को ही अर्घ-कारक का पद दिया। (समय आने पर) बोधिसत्त्व भी कर्मानुसार (परलोक को) गये।

शास्ता ने इस धर्म-उपदेश की कहानी कह कर, तुलना कर, जातक का साराश निकाल दिखाया—"उस समय का गँवार, मूर्ख अर्घकारक (आज कल यह) लाल-उदायी है। बुद्धिमान् अर्घकारक तो मैं (स्वय) ही था" कह धर्मदेशना समाप्त की।

६. देवधम्म जातक

"हिरि ओत्तप्प सम्पन्ना . . ." यह (धर्मदेशना) भगवान् ने जेतवन में विहार करते समय, एक बहुत सामान रखने वाले भिक्षु को लेकर कही।

क. वर्तमान कथा

उसने प्रव्रजित होने से पहले अपने लिए परिवेण, अग्निशाला, भाण्डागार बनवा कर उस भाण्डागार को घी-चावल आदि से भर कर प्रव्रज्या ग्रहण की। फिर प्रव्रजित होने पर, वह अपने नौकरों को बुलवा (उनसे) यथारुचि भोजन पकवा कर खाता था। उसके पास सामान बहुत था। रात को दूसरा ओढन-बिछावन होता था, दिन को दूसरा। वह विहार के एक सिरे पर बसता था।

एक दिन वह चीवर, बिछौने आदि को निकाल कर परिवेण में फैला कर सुखवा रहा था। उसी समय, जनपद (=देश) के बहुत से भिक्षु शयनासन देखते घूमते हुए (उस) परिवेण में पहुँचे। वे चीवर आदि देख पूछने लगे—"यह किसके हैं?" उसने उत्तर दिया, "आवुसो! ये मेरे हैं।"

"आवुस! यह भी चीवर, यह भी चीवर, यह भी ओढन, यह भी ओढन, यह भी बिछावन, यह भी बिछावन—यह सब तुम्हारे हैं?"

"हाँ! ये सब मेरे हैं।"

"आवुस! भगवान् ने (अधिक से अधिक) तीन चीवरों (के रखने) की आज्ञा दी है। इस प्रकार के निर्लोभी बुद्ध के धर्म में साधु हो कर (भी) तू इतना सामान रखता है?" 'चल, तुझे भगवान् के पास ले चलें' कह उसे शास्ता के पास ले गये।

शास्ता ने देख कर पूछा—"भिक्षुओ! क्यो जवरदस्ती इस भिक्षु को ले कर आये हो?"

"भन्ते! यह भिक्षु वहुत भाण्ड वटोरे है, वहुत सामान रक्खे है।"

"भिक्षु! क्या तू सचमुच वहुत सामान रखता है?"

"भगवान्! हाँ, सचमुच।।"

"भिक्षु! तू किस लिए, वहु-भाण्डिक हो गया? क्या मै निर्लोभता, संतोप एकान्त-चिन्तन और अभ्यास की प्रशसा नही करता?"

शास्ता की इस वात को सुन वह भिक्षु क्रुद्ध हो, "तो अच्छा! अव से मै इस तरह रहूँगा" कह, ऊपर पहने चीवर को उतार, सभा के वीच मे केवल एक चीवर (=अन्तरवासक) धारी हो कर खड़ा हो गया।

तव शास्ता ने उसे सँभालते हुए पूछा—"भिक्षु! क्या तू ने जल-राक्षस के जन्म में लज्जा तथा निन्दा-भय के साथ विहार करते हुए वारह वर्प नही विताये? तो फिर अव इस गौरव-पूर्ण वुद्ध धर्म मे प्रव्रजित होकर तू किस लिए चार प्रकार की परिषद के वीच में पहने हुए चीवर को छोड, लज्जा-भय त्याग खडा है?"

वह शास्ता के वचन को सुन, लज्जा तथा निन्दा-भय से युक्त हो, उस चीवर को पहन, शास्ता को प्रणाम कर, एक ओर वैठ गया। भिक्षुओ ने भगवान् से उस वात के प्रगट करने की प्रार्थना की। भगवान् ने पूर्व-जन्म की छिपी हुई बात प्रगट की—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे **काशी** देश मे **वाराणसी** (वनारस) मे **ब्रह्मदत्त** राजा था। उस समय वोधिसत्त्व ने उस (राजा) की पटरानी की कोख से जन्म ग्रहण किया। नाम-करण के दिन उसका नाम **महिंसास** कुमार रक्खा। उसके खेल-कूद करते, राजा को एक और भी पुत्र हुआ, जिसका नाम **चन्द्रकुमार** रक्खा गया, लेकिन उसके खेल-कूद करते समय ही उसकी माता (वोधिसत्त्व-माता) मर गई। राजा ने दूसरी पटरानी वनाई। वह राजा की प्रिया तथा अनुकूल थी। राजा के सहवास से उसे एक पुत्र पैदा हुआ, जिसका नाम **सूर्य्य-कुमार** रखा गया। राजा ने पुत्र को देख, सन्तुष्ट हो, कहा—"भद्रे! तेरे पुत्र को वर देता हूँ।" देवी ने 'इच्छा होने पर ग्रहण करूँगी' कह वर को अमानत रक्खा। (फिर) पुत्र के सयाने होने पर उसने राजा

मे कहा—"आपने पुत्र-जन्म के समय मुझे वर दिया था, अब मेरे पुत्र को राज्य दीजिये।"

'प्रज्वलित अग्निपुञ्ज के समान चमकते मेरे दो पुत्र है, (उन्हें छोड कर) तेरे पुत्र को राज्य नही दे सकता'—कह राजा ने इन्कार किया। लेकिन रानी को बार बार याचना करते देख, राजा ने सोचा, 'यह मेरे पुत्रो का बुरा भी सोच सकती है।' (इसलिये) पुत्रो को बुला कर कहा—"तात! मैंने सूर्य्यकुमार के उत्पन्न होने के समय वर दिया था। अब उसकी माता राज्य माँगती है। मै उसको नही देना चाहता। लेकिन स्त्री-जाति पापिन होती है, वह तुम्हारी बुराई भी सोच सकती है। इसलिए अभी तुम जगल में चले जाओ, मेरे मरने पर आकर अपने कुल के आधीन (इस) नगर में राज्य करना।" (यह कह) रोते कुमारो के सिरो को चूम, (उन्हें जङ्गल मे) भेज दिया।

पिता को प्रणाम कर उन्हें राज-प्रासाद मे उतरते समय देख, सूर्य्यकुमार को भी बात मालूम हो गई। "मै भी भाइयो के साथ जाऊँगा' (सोच) वह भी उनके साथ निकल पडा।

वह हिमालय मे प्रविष्ट हुए। बोधिसत्त्व ने मार्ग से हट, वृक्ष के नीचे बैठ, सूर्य्यकुमार को बुला कर कहा—"तात! सूर्य्य! इस तालाब पर जाओ, वहाँ नहा, पानी पी, हमारे पीने के लिये भी कमल के पत्ते में पानी ले आओ। उस तालाब को कुबेर(=वैश्रवण)ने एक जल-राक्षस को दिया था, और कुबेर ने उस (राक्षस) को कह रक्खा था कि देव-धर्म जानने वालो को छोड, अन्य जो कोई इस तालाब में उतरेंगे, वे (सब) तेरे आहार होगे, (तालाब मे) न उतरने वाले तेरे आहार नही होगे।"

तब से वह राक्षस, जो उस तालाब में उतरते, उनसे देवधर्म पूछता। जो न जानते, उनको खा जाता। सूर्य्यकुमार उस तालाब पर पहुँचा। बिना सोचे विचारे ही, उसमें उतरा। राक्षस ने उसे पकड कर पूछा—"तुझे देवधर्म मालूम है?"

उसने उत्तर दिया—"हाँ जानता हूँ। चाँद सूर्य्य देव-धर्म है।"

"तू देव-धर्म को नही जानता' (कह) उसने पानी मे प्रवेश कर, उसे अपने वासस्थान पर ले जाकर रक्खा। बोधिसत्व ने उसे देर करता देख, चन्द्र-कुमार को भेजा। राक्षस ने उसे भी पकड कर पूछा—'तुझे देव-धर्म मालूम है?' "हाँ

जानता हूँ। चारो दिशाये देव-धर्म है।" राक्षस ने 'तू देव-धर्म को नही जानता' कह उसे भी पकड कर वही रक्खा।

उसके भी देर करने पर "कोई आफत पडी" सोच, **बोधिसत्त्व** अपने आप वहाँ पहुँच, दोनो (जनो) के उतरने के पद-चिन्ह देख, "यह तालाव राक्षस के अधिकार मे होगा" (सोच) तलवार निकाल, (तीर-) कमान ले खडे हो गये। जल-राक्षस ने बोधिसत्त्व को पानी मे उतरते न देख जगल मे काम करने वाले मनुष्य का रूप धारण कर, वोधिसत्त्व से पूछा—"महाशय! रास्ते के थके तुम किस लिए इस तालाब मे उतर, नहा, (पानी) पी, भिसे खा, फूल को धारण कर सुख पूर्वक (आगे) नही जाते?"

बोधिसत्त्व ने उसे देख, सोचा, "यह वही यक्ष होगा" (और) यह जान कर पूछा—"क्या तूने मेरे भाइयो को पकड रक्खा है?"

"हॉ, मैंने (पकड रक्खा है)।"

"किस कारण से?"

"इस तालाव मे उतरने वालो पर मुझे अधिकार है।"

"क्या सब पर अधिकार है?"

"जो देव-धर्म को जानते हैं, उन्हे छोड बाकी सब पर अधिकार है?"

"क्या तू देव-धर्म (जानना) चाहता है? यदि चाहता है, तो मै तुझ से देव धर्म कहूँगा।"

"तो कहें, मै देव-धर्मों को सुनूगा।"

"मैं देव-धर्मो को कहने के लिए तैयार हूँ, लेकिन मेरा शरीर साफ नहीं है।"

यक्ष ने बोधिसत्त्व को नहलाया, भोजन करवाया, पानी पिलाया, फूल धारण कराया, सुगन्धियो का लेप कराया, फिर अलकृत मण्डप के बीच आसन प्रदान किया। वोधिसत्त्व ने आसन पर बैठ, यक्ष को पैरो में विठा, 'तो, देवधर्मों को ध्यान-पूर्वक कान देकर सुनो' कह, इस गाथा को कहा—

> **हिरिओत्तप्पसम्पन्ना　　सुक्कधम्मसमाहिता,**
> **सन्तो　सप्पुरिसा लोके देव-धम्माति　वुच्चरे॥**

[लज्जा और निन्दा-भय से युक्त, शुभ-कर्मों से युक्त (लोगो) का शान्त और सत्पुरुष देव-धर्मा कहते है।]

यहाँ **हिरि ओत्तप्पसम्पन्ना** का अर्थ है हिरि (=लज्जा) और ओत्तप्प (=निन्दा-भय) से युक्त। इन (दो शब्दों) में, कायिक दुराचार आदि में जो लज्जा मानना है, वह हिरि (=ह्री) है। 'हिरि' लज्जा का ही पर्य्याय-वाची शब्द है। और उन्ही (=कायिक दुराचार आदि) से जो तपना है, वह 'ओत्तप्प' है, पाप मे उद्विग्न होने का यह पर्य्यायवाची शब्द है। सो हिरि (=लज्जा) अपने (अन्दर) मे उत्पन्न होती है, ओत्तप्प (=निन्दा-भय) वाहरी (कारणो) से। हिरि का स्वामी (=आधिपत्य) खुद है, किन्तु ओत्तप्प का स्वामी लोक। हिरि में लज्जा का भाव रहता है, ओत्तप्प में निन्दा-भय का भाव। हिरि का लक्षण है (आत्म-) गौरव (आदि) का भाव, ओत्तप्प का लक्षण है दुष्कर्म (=वद्य) करने में भयभीत होना। सो (पुरुष) अपने (अन्दर) से उत्पन्न होने वाली 'हिरि' को चार कारणो से उत्पन्न करता है—जात (=जाति) का विचार करके, आयु का विचार करके, वीरता का विचार करके, तथा (अपनी) वहुश्रुतता (=पाण्डित्य) का विचार करके। सो कैसे? (प्राणि-हिंसा आदि) पाप-कर्म (ऊँची) जात वालो का काम नही, यह केवट आदि नीच जातियो का काम है। वैसी (ऊँची) जात वाले को ऐसा कर्म करना अनुचित है—इस प्रकार जात का विचार कर प्राण-हिंसा आदि पाप-कर्म को न करते हुए, **हिरि** उत्पन्न करता है। पाप-कर्म वच्चो का काम है, सयाने पुरुष को लिए ऐसा करना अनुचित है, इस प्रकार आयु का विचार कर, प्राणि-हिंसा आदि पाप को न करते हुए, **हिरि** उत्पन्न करता है। पाप-कर्म दुर्वलो का काम है, मेरे जैसे वीर (पुरुष) को इस प्रकार का कर्म करना अनुचित है, इस प्रकार वीरता (=शूरभाव) का विचार कर प्राणि-हिंसा आदि पाप-कर्म को न करते हुए, **हिरि** उत्पन्न करता है। पाप-कर्म (करना) अन्धे-मूर्खों का काम है, पण्डितो का काम नही। (मेरे) जैसे पण्डित, वहुश्रुत को इस प्रकार का कर्म करना अनुचित है। इस प्रकार वहुश्रुत-भाव का विचार कर, प्राणि-हिंसा आदि पाप-कर्म को न करते हुए, हिरि उत्पन्न करता है। इसी प्रकार अपने से उत्पन्न होने वाली 'हिरि' को चार कारणो से उत्पन्न कर, और उस हिरि को अपने चित्त मे स्थापित कर, पाप-कर्म नहीं करना। इस प्रकार हिरि अपने (अन्दर) से उत्पन्न होने वाली होती है।

ओत्तप्प कैसे वाहर (के कारणो) से उत्पन्न होने वाला है? 'यदि तू पाप-कर्म करेगा, तो चारो प्रकार की सभा (=परिषद्) मे निन्दा का भागी होगा—

"गरहिस्सन्ति त विञ्ञू असुचि नागरिको यथा
विवज्जितो सीलवन्तेहि कथ भिक्खु! करिस्ससि ॥"

[विज्ञ लोग तेरी उसी प्रकार निन्दा करेंगे, जैसे नागरिक (लोग) गन्दगी की। सच्चरित्र भिक्षुओ द्वारा (अकेला) छोड दिये जाने पर, हे भिक्षु! तू कैसे करेगा?]

इस प्रकार विचार करने से बाहर (के कारणो) से उत्पन्न ओत्तप्प (=निन्दा-भय) के मारे, पाप-कर्म नही करता। इस प्रकार ओत्तप्प बाहर (के कारणो) से उत्पन्न होने वाला है।

हिरि (=लज्जा) का स्वामित्व कैसे अपने आप है? जब एक कुल-पुत्र अपने को अधिपति (=प्रधान), ज्येष्ठ मान कर सोचता है, मेरे जैसे श्रद्धा से प्रव्रजित, बहुश्रुत, धुतङ्ग[1] रखने वाले को पाप-कर्म करना अनुचित है, (और) यह सोच पाप-कर्म से बचा रहता है। इस प्रकार हिरि का स्वामी अपना आप है। इसलिए भगवान् ने कहा है—"वह अपने को ही स्वामी करके, अकुशल को छोडता है, कुशल (=अच्छे) कर्म का अभ्यास करता है। सदोष को छोडता है, निर्दोष कर्म का अभ्यास करता है। अपने आपको पवित्र बनाये रखता है।[2]" ओत्तप्प का स्वामी लोक कैसे है? यहाँ एक कुल-पुत्र लोक को ही स्वामी (=अधिपति), ज्येष्ठ करके, पाप-कर्म से बचता है। जैसे कहा है—"यह लोक-समूह महान् है। इस लोक-समूह मे (ऐसे) श्रमण-ब्राह्मण है, जो ऋद्धिमान है, दिव्यचक्षु (वाले) है, दूसरो के चित्त की बात जान लेने वाले है। वे (अपने) दूर से भी देख लेते है, और स्वय पास होने पर भी नही दिखाई देते। वे (अपने) चित्त से, (दूसरो के) चित्त को जान लेते है। वे मुझे जान लेगे (और) कहेगे), 'भो! देखते हो। इस श्रद्धा-पूर्वक घर से बेघर (हो), प्रव्रजित हुए कुल-पुत्र को, जो पाप बुरे-कर्मों से युक्त हो, विहरता है।" (और) ऐसे देवता भी है, जो ऋद्धि-मान् है, दिव्य-चक्षु (वाले) है, दूसरो के चित्त की बात जान लेने वाले है। वे तो दूर से भी देख लेते है, और स्वय पास होने पर भी दिखाई नही देते। वे (अपने) चित्त से, (दूसरो के) चित्त

---

[1] अवधूतो के नियम, आरण्यक, पिण्डपातिक, पासुकूलिक आदि होना।

[2] अंगुत्तर-निकाय, तिक निपात।

को जान लेते हैं। वे मुझे जान लेंगे, (और कहेंगे)—"भो! देखते हो। इस श्रद्धा पूर्वक घर से बेघर (हो) प्रव्रजित हुए कुल-पुत्र को, जो पाप बुरे कर्मों से युक्त हो, विहरता है।" (इस प्रकार) वह लोक को ही स्वामी (=अधिपति) मान कर बुराइयों को छोडता है, भलाइयों का अभ्यास करता है, सदोष को छोडता है, निर्दोष-कर्म का अभ्यास करता है, अपने आपको पवित्र बनाये रखता है।[1] इस प्रकार ओत्तप्प का स्वामी लोक है।

'हिरि में लज्जा का भाव रहता है, ओत्तप्प में निन्दा भय'—सो, यहाँ लज्जा का अर्थ है, लज्जा का आकार-प्रकार। इस भाव से जो युक्त हो, उसे हिरि (कहते हैं)। भय का अर्थ है नरक-भय, इस भाव से जो युक्त है, वह ओत्तप्प। ये दोनो (हिरि और ओत्तप्प) ही पाप के त्याग मे कारण होते हैं। जैसे पाखाना-पेशाव करता हुआ कोई कुल-पुत्र, शरम खाने के योग्य किसी को देख कर, लज्जा करने लगे, शरम खाये, इसी प्रकार अपने-आप मे लज्जा का भाव उत्पन्न होने पर, (व्यक्ति) पाप-कर्म नही करता। कोई नरक-गामी होने के भय से डर कर पाप नहीं करता। यहाँ यह उपमा है—'जैसे लोहे के दो गोलो मे, एक शीतल हो, लेकिन मल लगा हुआ, दूसरा ऊष्ण अङ्गार-वर्ण। (उन दोनो मे से) वुद्धिमान (आदमी) शीतल को मल लगा रहने के कारण घृणा के मारे नही ग्रहण करता, दूसरे को जलने के भय से। सो शीतल (गोले) के मल लगे रहने के कारण, घृणा के मारे न ग्रहण करने की तरह अपने-आप में लज्जा उत्पन्न होने से पाप-कर्म का न करना, और ऊष्ण (गोले) के जलने के भय से, न ग्रहण करने की तरह, नरक के भय से पाप का न करना', जानना चाहिए।

ह्री। (=हिरि) का लक्षण है (आत्म-) गौरव (आदि) का भाव, ओत्तप्प का लक्षण है दुष्कर्म करने में भयभीत होना—ये दोनो भी पाप-कर्म के त्याग मे ही कारण होते हैं। एक व्यक्ति अपनी जाति (=जात) की महानता का विचार कर, अपने शास्ता की महानता का विचार कर, अपनी विरासत की महानता का विचार कर, अपने गुरुभाइयो (=सब्रह्मचारियो) की महानता का विचार कर, (इन) चार कारणो से गौरव स्वभाव वाली ह्री को उत्पन्न कर पाप-कर्म से बचता है। दूसरा व्यक्ति आत्म-निन्दा के भय से, पर-निन्दा के भय

---

[1] अगुत्तर निकाय, तिक निपात।

ने, दण्ड के भय से, दुर्गति के भय से, —(इन) चार कारणो से दुष्कर्म करने से भय रूपी ओत्तप्प को उत्पन्न कर पाप-कर्म नही करता। यहाँ जाति की महानता आदि के विचार, तथा आत्मनिन्दा आदि के भय विस्तार से कहने चाहिये। इनका विस्तार अङ्गुत्तर निकाय की अट्ठकथा मे आया है। सुक्कधम्मसमाहिता (शुक्लधर्मसमाहित) का अर्थ है, इन हिरि तथा ओत्तप्प से ही आरम्भ करके, जितनी भी आचरणीय भलाइयाँ है, वे सब शुक्ल धर्म है, और वे सक्षेप मे चातुर्भूमिक लौकिक तथा लोकोत्तर धर्म है—इन धर्मो से समाहित =समन्नागत=युक्त। सन्तो सप्पुरिसा लोके—काय-कर्मादि के शान्त होने से शान्त, कृतज्ञता=कृतवेदिता के कारण शोभायमान् पुरुष, सत्पुरुष। लोक—संस्कार-लोक, सत्व (=प्राणि) लोक, ओकास (=स्थान) लोक, स्कन्ध-लोक, आयतनलोक, धातु-लोक—ये अनेक प्रकार के लोक है। सो 'एक लोक—सब सत्वो की स्थिति आहार पर निर्भर है   अट्ठारह लोक, अट्ठारह धातु-लोक,—इसमे संस्कार-लोक, कहा गया है। स्कन्ध-लोक, आदि सब उसके अन्दर आ ही गये। यही लोक, परलोक, देव-लोक, मनुष्य-लोक आदि मे सत्व-लोक कहा गया है—

यावता चन्दिमसुरिया परिहरन्ति दिसाभन्ति विरोचना,
ताव सहस्सधा लोको एत्थ ते वत्तति वसो॥

[जहाँ तक चन्द्रमा तथा सूर्य्य घूमते है, प्रकाश से दिशाओ को प्रकाशित करते है, वहाँ तक सहस्र (चक्रवाले) लोक है, और इस सारे लोक पर तेरा वश है।]

इस गाथा में ओकास-लोक का वर्णन किया गया है। इनमें यहाँ मतलब है सत्व-लोक से। सत्व लोक मे ही (जो) इस प्रकार के सत्पुरुष होते है, वे देव-धम्माति वुच्चरे,, (=वे देव-धर्मा कहलाते है)। इनमे देव तीन प्रकार के होते है—सम्मुति-देव उत्पत्ति-देव और विशुद्धि-देव। महासम्मत के समय से लेकर लोग (जिन जिन) राजा राजकुमार आदि को देव कह (करके) बुलाते है (=सम्मत करते है), वे सम्मुति-देव। देव-लोक मे उत्पन्न हुए देव, उत्पत्ति-देव। क्षीणास्रव

(=अर्हत्) विशुद्धि-देव। ऐसा कहा भी गया है—"सम्मुति-देव हैं राजा, महा-रानियाँ, (राज-) कुमार। उत्पत्ति-देव हैं भूमि के देवो से आरम्भ करके ऊपर के देवो तक। विशुद्धि-देव है बुद्ध, प्रत्येक-बुद्ध, क्षीणाश्रव।" इन देवो के देव हैं देव-धर्म। वुच्च का अर्थ है कहलाते हैं। हिरि तथा ओत्तप्प—यह दोनो कुशल-धर्मों के मूल है। कुशल (-कर्म) रूपी सम्पति से देव-लोक मे उत्पत्ति होने से, और विशुद्धता का कारण होने से, कारण के अर्थ में ही, तीन प्रकार के देवो के धर्म, **देव-धर्म**। इन देव-धर्मो से युक्त मनुष्य भी देव-धर्म है। इसलिये व्यक्ति की ओर संकेत करके उपदेश किये गये इस धर्मोपदेश में, इन धर्मो का उपदेश करते हुए कहा है, "**सन्तो सप्पुरिसा लोके देव-धम्माति वुच्चरे।**"

यक्ष इस धर्म-देशना को सुन प्रसन्न हुआ, और बोधिसत्त्व से बोला, "पण्डित! मैं तुम पर प्रसन्न हुआ हूँ। एक भाई को (लौटा) देता हू। (बोलो) किस (भाई) को लाऊँ?"

"छोटे भाई को लाओ।"

"पण्डित! तू देव-धर्मो को केवल जानता भर है, उनके अनुसार आचरण नही करता।"

"कैसे (=किस कारण से)?"

"क्योंकि तू ज्येष्ठ (भाई) को छोड़े, उसके छोटे भाई को मँगवा कर ज्येष्ठ का गौरव नही रखता है।"

"यक्ष! मैं देव-धर्मों को जानता हूँ, और उनके अनुसार आचारण करता हूँ। इसी (भाई) के कारण, हमने इस वन में प्रवेश किया। इसीके कारण, हमारे पिता से इसकी माँ ने राज्य माँगा। हमारे पिता ने उसे वर न दिया, (लेकिन) हमारी रक्षा के लिए, हमें वनवास की आज्ञा दी। (सो) इस कुमार को बिना लिये यदि हम लौटेंगे, तो—"इसे जगल में एक यक्ष ने खा लिया"—यह बात कहने पर भी कोई विश्वास न करेगा। इसलिए मैं, निन्दा के भय से भय-भीत, इसीको माँगता हूँ।"

"साधु, साधु पण्डित! तू देव-धर्मो को जानता है, और उनके अनुसार आचरण भी करता है" कह, यक्ष ने बोधिसत्त्व को साधु (-वाद) दे, (उसके) दोनो भाई लाकर, (उसे) दे दिये।

तब बोधिसत्त्व ने उसे कहा—"सौम्य ! तू अपने पूर्व के पाप-कर्मके कारण, दूसरो का रक्त-मास खाने वाले यक्ष की योनि मे उत्पन्न हुआ। अब फिर भी पाप-कर्म ही करता है। यह पाप-कर्म नरक आदि से छूटने न देगा। (इसलिए) अब से तू पाप-कर्म को छोड कर पुण्य (=कुशल) कर्म कर।" (इस प्रकार) बोधिसत्त्व उस यक्ष को दमन कर सके। उस यक्ष का दमन कर, उसी यक्ष की रक्षा में वही रहने लगे।

एक दिन नक्षत्र देख, पिता के मरने की बात जान, यक्ष को साथ ले, वे **बारा-णसी** पहुँचे। फिर राज्य को ग्रहण कर, **चन्द्रकुमार** को उप-राज और सूर्य्य-कुमार को सेनापति का स्थान दिया। यक्ष के लिए एक रमणीय स्थान पर, मन्दिर (=आयतन) बनवा दिया, और ऐसा (प्रबन्ध) कर दिया, जिससे उसे श्रेष्ठ माला, श्रेष्ठ-पुष्प, और श्रेष्ठ-भोजन मिलता रहे। धर्मानुसार राज्य करके वह कर्मानुसार (परलोक) को गये।

शास्ता ने इस धर्म-उपदेश को ला कर, (आर्य-) सत्यो को प्रकाशित किया। आर्य-सत्यों के प्रकाशन के अन्त मे, उसने भिक्षुओ को **स्रोतापत्ति फल**मे प्रतिष्ठित किया। सम्यक्-सम्बद्ध ने दोनो कथाएँ कह कर, तुलना कर, जातक का साराश निकाल दिखाया।

उस समय का उदक-राक्षस, (इस समय का) बहु-भाण्डिक भिक्षु है। **सूर्य-कुमार** (इस समय का) **आनन्द**, **चन्द्र-कुमार** (इस समय का) **सारि-पुत्र**, और **महिंसास-कुमार** नामक ज्येष्ठ भ्राता तो मै ही था।

७. कट्टहारि जातक

"पुत्तो त्याह महाराज..." यह गाथा, शास्ता ने जेतवन में विहार करते हुए वासभ खत्तिय (क्षत्रिया) की कथा के सम्बन्ध मे कही। वासभ-खत्तिया की कथा बारहवें परिच्छेद (निपात) मे भद्दसाल जातक[1] में आयेगी।

क. वर्त्तमान कथा

महानाम शाक्य को नागमुण्डा नामक दासी की कोख से लडकी उत्पन्न हुई। (पीछे वह) कोसल-नरेश की पटरानी हुई। उससे राजा को पुत्र हुआ। लेकिन राजा ने उसका पूर्व में दासी होना जान, उसको तथा उसके पुत्र विडूडभ को भी स्थान से च्युत कर दिया। दोनो घर के भीतर ही रहते। शास्ता ने उस बात का पता पा, पाँच सौ भिक्षुओं के साथ, प्रात काल ही राजा के निवास-स्थान पर जा, बिछे आसन पर बैठकर पूछा—"महाराज! वासभ-खत्तिया कहाँ है?" राजा ने (उसके सम्बन्ध में) उक्त बात कही। "महाराज! वासभ खत्तिया किसकी लडकी है?"

"भन्ते! महानाम की।"

"और (यहाँ) आकर, वह किसे प्राप्त हुई?"

"भन्ते! मुझे"

"महाराज! यह राजा की लडकी, राजा को प्राप्त हुई, राजा से ही इसे पुत्र हुआ। सो वह पुत्र किस लिए पिता के राज्य का अधिकारी नही? पूर्व समय में राजाओ ने लकडहारिनी के मुहूर्त भर के सहवास से, उसकी कोख से उत्पन्न पुत्र को भी राज्य दिया है।"

---

[1] भद्दसाल जातक (४६५)।

राजा ने भगवान् से, उस बात को स्पष्ट कर, कहने की प्रार्थना की। भगवान् ने पूर्व जन्म की छिपी हुई बात प्रकट की—

ख. अतीत कथा

"पूर्व समय मे वाराणसी मे, ब्रह्मदत्त राजा बडे समारोह के साथ उद्यान गया। वह वहाँ पुष्प-फलो की चाह से घूम रहा था, उसी समय उद्यान के वन-खण्ड मे गा गा कर लकडी चुनती एक स्त्री को देख, उसपर आसक्त हो, उसने उससे सहवास किया। उसी क्षण, बोधिसत्त्व ने उसकी कोख मे प्रवेश किया। उसकी कोख, वज्र—से भरी गई की तरह, भारी हो गई। उसने गर्भ स्थापित हुआ जाना, (राजा से) कहा—"देव! मुझे गर्भ हो गया है।" राजा ने अँगुली की अँगूठी देकर कहा—"यदि लडकी हो, तो इस (अँगूठी) को फेककर, (अपनी) लडकी को पालना। यदि लडका हो, तो अँगूठी के साथ, उसे मेरे पास लाना।" इतना कहकर, वह चला गया। गर्भ परिपक्व होने पर, उसने बोधिसत्त्व को जन्म दिया। बोधिसत्त्व के इधर उधर दौड-भाग कर क्रीडा भूमि मे खेलते समय, कोई कोई (उसके सम्बन्ध मे) कहते थे, "बिना-बाप-के ने हमे मारा"। इसे सुन, बोधिसत्त्व ने माता के पास जाकर पूछा—"माँ, मेरा पिता कौन है?"

"तात! तू वाराणसी-नरेश का पुत्र है।"

"अम्मा! क्या इसका कोई साक्षी (—सबूत) है?"

"तात! राजा 'यदि लडकी हो, तो इस अँगूठी को फेककर '(अपनी) लडकी को पालना, यदि लडका हो, तो अँगूठी के साथ, उसे मेरे पास लाना,' कह, यह अँगूठी दे गया है।"

"अम्मा! यदि ऐसा है, तो मुझे क्यो पिता के पास नही ले चलती?"

उसने पुत्र का विचार जान, राज-द्वार पर जा, राजा को कहला भेजा, और राजा के बुलवाने पर, राजा को प्रणाम कर कहा—"देव! यह तुम्हारा पुत्र है।"

राजा ने पहचानते हुए भी, सभा में लज्जा के मारे, कहा—"यह मेरा पुत्र नही है।"

"देव! यह तुम्हारी अँगूठी है, इसे पहचानेंगे?"

"यह अँगूठी भी मेरी नही है।"

"देव! तो अव मेरे पास **सत्य क्रिया**[1] के अतिरिक्त कोई दूसरा साक्षी नहीं है। 'यदि यह वालक आप से पैदा हुआ है, तो आकाश मे ठहरे, नही तो भूमि पर गिरकर मर जाये' कह, उसने वोधिसत्त्व को पैरो से पकड, आकाश में फेंक दिया। वोधिसत्त्व ने आकाश मे पालथी मार, वैठ, मधुर स्वर से पितृ-धर्म (=पिता का कर्तव्य) कहते हुए, यह गाथा कही—

पुत्तो त्याहं महाराज! त्वं मं पोस जनाधिप!
अञ्ञेपि देवो पोसेति किञ्च देवो सकं पजं।

[महाराज! तुम्हारा पुत्र हूँ। जनाधिप! तुम मेरा पालन करो। देव! तुम तो औरो का भी पालन करते हो, (फिर) अपनी सन्तान की (तो वात ही) क्या?]

इसमें **पुत्तो त्याहं** का मतलव है, मैं तुम्हारा पुत्र हूँ। पुत्र होते है चार प्रकार के—**आत्मज, क्षेत्रज, अन्तेवासिक** तथा **दिन्नक** (=दत्तक)। अपने हेतु (शरीर) मे जो उत्पन्न हुआ हो, वह **आत्मज,** शयनासन पर, पलग पर, छाती पर,—इस प्रकार के स्थानो पर जो (दूसरे से) उत्पन्न हुआ, वह **क्षेत्रज,** अपने पास रह कर शिल्प (=विद्या) सीखने वाला **अन्तेवासिक,** तथा पालने-पोसने के लिए दिया गया (वालक) **दिन्नक**। यहाँ पुत्र शव्द का प्रयोग आत्मज के अर्थ में है। चारों प्रकार की **संग्रह-वस्तुओं**[2] से जो प्रजा का रजन करे, वह राजा, फिर महान् राजा सो महाराज, आमन्त्रित करने के लिए ही **महाराज!** कहा गया है। **त्वं मं पोस जनाधिप** का अर्थ है, हे जनाधिप! हे महाजन (-समूह) में ज्येष्ठतम! आप मेरा पोषण करें, भरण करें, वृद्धि करें। **अञ्ञेपि देवो पोसेति** का अर्थ है कि देव अन्य अनेक हाथी-पालक, अश्व-पालक आदि मनुष्यो तथा हाथी घोडे आदि प्राणियों का पालन करते है। **किञ्च देवो सकं पजं** में किञ्च (=और क्या) शव्द निन्दार्थक तथा अनुग्रहार्थक निपात है। 'देव, अपनी सन्तान, मुझ अपने पुत्र की पालना नहीं करते' कहकर निन्दा भी की गई है, और 'अन्य वहुत जनो का पालन करते है' कहकर

---

[1] सत्य-किरिया, सत्य और पुण्य की शपथ।

[2] दान, प्रिय-वाणी, लोक-हित का आचरण तथा समानता।

अनुग्रह (का भाव भी जाग्रत) किया गया है। इस प्रकार बोधिसत्त्व ने निन्दा करते हुए, तथा अनुग्रह (का भाव जाग्रत) करते हुए कहा—"किञ्च देवो सक पज (=अपनी सन्तान की (तो बात ही) क्या?)।

राजा ने बोधिसत्त्व को आकाश मे बैठे, इस प्रकार धर्मोपदेश करते सुन हाथ पसार कर कहा—"तात! आ! मैं ही पालन करूँगा। मैं ही पालन करूँगा।" (और भी लोगो ने) सहस्रो हाथ फैलाये। बोधिसत्त्व और किसी के हाथ मे न उतर कर, राजा के ही हाथ मे उतर, उसकी गोद मे बैठे। राजा ने उन्हे उप-राजा बना उनकी माता को पटरानी (=अग्र-महिषी) बनाया। पिता के मरने पर वह काष्टवाहन राजा के नाम से धर्म-पूर्वक राज्य का सञ्चालन कर (अपने) कर्मानुसार परलोक को गया।

शास्ता ने कोसल-नरेश का यह धर्मोपदेश ला दोनो कहानियाँ कह, तुलना करके जातक कथा का साराँश निकाल दिखाया। उस समय की माता, (अब की) महामाया थी, पिता (अब का) शुद्धोदन राजा था और काष्टवाहन-राजा तो मैं ही था।

८. गामणी जातक

"**अपि अतरमानानं**" यह गाथा शास्ता ने जेतवन मे विहार करते समय, एक उद्योग-हीन (=आलसी) भिक्षु के सम्बन्ध मे कही। इस जातक की वर्तमान-कथा[1] तथा अतीत-कथा,[1] दोनो ग्यारहवें परिच्छेद के सवर-जातक[2] में आयेगी। उस जातक में तथा इसमे कहानी समान ही है, हाँ गाथा का भेद है।

---

[1] पच्चुप्पन्न वत्थु तथा अतीत-वत्थु।

[2] सवर जातक (४६२) ग्यारहवें परिच्छेद की इस कथा से ग्रामणी जातक

बोधिसत्त्व के उपदेश को मानकर, सौ भाइयो में सबसे छोटा होने पर भी ग्रामणी कुमार, सौ भाइयो के बीच, श्वेतछत्र के नीचे, सिंहासनासीन हुआ। अपने यश रूपी धन पर विचार करते हुए, 'मेरा यह यश रूपी धन, मुझे अपने आचार्य से मिला है', सोच, सन्तुष्ट-चित्त हो, यह उदान (=हर्ष से प्रेरित कथन) कहा—

अपि अतरमानान फलासाव समिज्झति,
विपक्कब्रह्मचरियोस्मि एव जानाहि गामणी॥

[जल्द-बाज़ी न करने वालो की विशेष-फल की आशा पूर्ण होती है। ग्रामणी! तू ऐसा जान कि मैं पूर्ण ब्रह्मचारी हूँ।]

इसमे जो अपि है, सो केवल निपात-मात्र है। अतरमानान का मतलब है पण्डितो के उपदेश को मानकर, जल्द-बाज़ी से काम न ले, ढग (=उपाय कौशल) से काम करने वालो की। **फलासाव समिज्झति** का अर्थ है—इच्छित फल की जो आशा है, वह उस फल की प्राप्ति होने से पूरी होती है। अथवा फलासा= आशा-फल, इच्छानुसार फल की प्राप्ति होती ही है, यह अर्थ है। **विपक्कब्रह्मचरियोस्मि** चारो सग्रह-वस्तुएँ श्रेष्ठ-चर्या होने से ब्रह्म-चर्या (कही गई है)। और क्योकि वह यश रूपी धन की प्राप्ति का मूल-कारण है, इसलिए यश रूपी धन की प्राप्ति हुई रहने से (ब्रह्म-चर्य) का परिपक्व (=विपक्व) होना कहा गया है। और जो उसके यश की उत्पत्ति हुई है, वह भी श्रेष्ठता के कारण 'ब्रह्मचर्य' (कहा जा सकता है)। इसीलिए कहा है—

विपक्कब्रह्मचरियोस्मि। एव **जानाहि गामणी**—कही कही ग्रामिक पुरुष को; और कही कही ग्राम में जो बडा हो, उसे भी ग्रामणी कहा गया है। लेकिन यहाँ (अपने को) सब जनो में श्रेष्ठ समझ अपनी ही ओर इशारा कर, अपने को सम्बोधन करके उदान कहा है—"भो ग्रामणी! तू इस बात को इस प्रकार जान। यह जो सौ भाइयो का अतिक्रमण करके, तुझे इस महाराज्य की प्राप्ति हुई है, सो यह आचार्य्य (की कृपा) से हुई है।" उसकी राज्य प्राप्ति के बाद सात आठ दिन व्यतीत होने पर, उसके सभी भाई अपने अपने निवास स्थान को चले गये। ग्रामणी-

---

की गाथा की सङ्गति नहीं बैठती। मालूम होता है कि असली ग्रामणी जातक लुप्त हो गई है।

राजा धर्मानुकूल राज्य का सञ्चालन कर, कर्मानुसार परलोक को प्राप्त हुआ।

शास्ता ने इस धर्म-उपदेश को ला, दिखाकर, (आर्य-) सत्यो को प्रकाशित किया। (आर्य-) सत्यो के प्रकाशन के अन्त मे, (वह) आलसी भिक्खु अर्हत-पद मे प्रतिष्ठित हुआ। शास्ता ने दोनो कहानियाँ कह, तुलनाकर, जातक का सारांश निकाल दिखाया।

९. मखादेव जातक

उत्तमङ्गरुहा मय्ह इस गाथा को शास्ता ने जेतवन मे विहार करते समय, महानिष्क्रमण के बारे मे कहा। वह (=महानिष्क्रमण) पहले निदान-कथा मे कहा ही जा चुका है।

क. वर्त्तमान कथा

उस समय भिक्षु बैठे बुद्ध के गृहत्याग (=महानिष्क्रमण) की प्रशंसा कर रहे थे। शास्ता ने धर्म-सभा मे आ बुद्धासन पर बैठ, भिक्षुओ को सम्बोधित किया—"भिक्षुओ! बैठे क्या बात-चीत कर रहे हो?"

"भन्ते! और कोई बात-चीत नही, बैठे आपके अभिनिष्क्रमण की ही प्रशंसा कर रहे है।"

"भिक्षुओ! तथागत ने केवल अब ही अभिनिष्क्रमण नही किया, पहले भी अभिनिष्क्रमण किया है।"

भिक्षुओ ने भगवान् से इस बात को स्पष्ट करने की प्रार्थना की। भगवान् ने पूर्व-जन्म की छिपी हुई बात प्रकट की।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में विदेह राष्ट्र (की) मिथिला (नामक नगरी) में, मखादेव नाम का धार्मिक राजा हुआ। वह चौरासी हज़ार वर्ष तक वाल-क्रीडा (खेल-कूद) मे लगा रहा। उसके वाद उपराजा और फिर महाराजा हुआ। चिरकाल के वाद (उसने), एक दिन (अपने) नाई (कप्पक) से कहा—"सौम्य कप्पक! जब तुझे मेरे सिर मे सफेद (वाल) दिखाई दे, तो मुझे कहना?" नाई ने कितने ही समय वाद एक दिन राजा के सुरमे के रग के (=काले) केशो मे केवल एक सफेद (वाल) देखकर राजा से निवेदन किया—"देव! आपके (सिर मे) एक सफेद (वाल) (दिखाई) दे रहा है।"

"तो सौम्य! उस सफेद (वाल) को उखाडकर मेरी हथेली पर रक्खो।"

ऐसा कहने पर, (नाई ने उस वाल को) सोने की चिमटी से उखाडकर राजा की हथेली पर रख दिया। उस समय भी राजा की चौरासी हजार वर्ष की आयु शेष थी, लेकिन फिर भी सफेद (वाल) को देखते ही, जैसे यमराज आकर समीप खडा हो गया हो, (अथवा) आग लगी कुटिया मे दाखिल हुआ हो, उसका चित्त, उद्विग्न हो उठा। वह सोचने लगा—"मूर्ख मखादेव! सफेद (वाल) के उगने तक भी तू इन (चित्त के मैलो) का परित्याग न कर सका।" उसके इस प्रकार सफेद (वाल) की उत्पत्ति पर वार वार विचार करने से, (उसका) हृदय गर्म हो उठा। शरीर से पसीना चूने लगा। वस्त्र भीगकर उतारने योग्य हो गये। उसने 'आज ही मुझे निकलकर प्रव्रजित होना चाहिए' (का निश्चय कर) नाई को लाख (मुद्रा) आमदनी के गाँव देकर ज्येष्ठ-पुत्र को वुलाकर कहा—"तात! मेरे सिर मे सफेद (वाल) उग आया है। मै वूढा हो गया हूँ। (अभी तक) मैने मानुषिक-भोगो का उपभोग किया है, अव मै दिव्य-भोगो की खोज करूँगा। (यह) मेरा गृहत्याग (=निष्क्रमण) का समय है। (अव) तू इस राज्य को सँभाल। मै प्रव्रजित हो, मखादेव-आम्र-उद्यान में रहते हुए योगाभ्यास (=श्रमण-धर्म) करूँगा।"

इस प्रकार उसने जव इस प्रव्रज्या के लेने की इच्छा प्रकट की, तो आमात्यो ने आकर इसे पूछा—"देव! आपके प्रव्रजित होने का क्या कारण है?" राजा ने सफेद (वाल) को हाथ में लेकर, अमात्यो से यह गाथा कही—

उत्तमङ्गरुहा मय्हं इमे जाता वयोहरा,
पातुभूता देवदूता पब्बज्जासमयो मम ॥

[यह मेरी आयु का हरण करनेवाले मेरे सिर के बाल पैदा हो गए हैं। यह देव-दूत प्रादुर्भूत हुए हैं। यह मेरी प्रव्रज्या का समय है।]

यहाँ उत्तमङ्गरुहा का अर्थ है केश। हाथ पाँव आदि अङ्गो मे उत्तम-अङ्ग (=सिर) मे उत्पन्न होने के कारण, केश, उत्तमङ्गरुहा कहलाते है। इमे जाता वयोहरा, अर्थात् तात ! देखो, सफेद (बाल) होने से, यह तीनो प्रकार की आयु के हरण करनेवाले (है), (इसलिए) इमे जाता वयोहरा। पातुभूता—उत्पन्न हुए। देवदूता, देव कहते है मृत्युको, उसके दूत, सो देवदूत। सिर मे सफेद (बालो) के उत्पन्न होने पर (मनुष्य अपने को) यमराज (=मृत्यु-राज) के समीप खडा सा समझता है, इसलिए सफेद (बाल) मृत्यु-देव के दूत कहलाते है। देवताओ जैसे दूत, इस अर्थ में भी देव-दूत। जिस प्रकार अलकृत-सजे हुए देवता के, आकाश मे खडे होकर 'अमुक दिन मरेगा' कहने से वह (मरण) वैसे ही होता है, इसी प्रकार सिर मे सफेद (बाल) का उगना भी देवता की भविष्यद्वाणी के सदृश ही होता है। इसलिए सफेद (केश) देव सदृश दूत कहलाते है। विशुद्धि-देवो के दूत, इस अर्थ में भी देव-दूत। सभी बोधिसत्त्व बूढे, व्याधिग्रस्त, मृत तथा प्रव्रजित को देख कर ही वैराग्य को प्राप्त हो, निकल कर प्रव्रजित होते है। जैसे कहा है—

जिण्ण च दिस्वा दुखित च व्याधित
मतञ्च दिस्वा गतमायुसङ्खय

कासाव वत्थं पब्बज्जितञ्च दिस्वा
तस्मा अहं पब्बजितोम्हि राजा ॥

[जीर्ण (=बूढे) दुखित=व्याधित को देखकर, आयुक्षय-प्राप्त=मृत को देखकर, (तथा) काषाय वस्त्र धारी प्रव्रजित को देखकर, हे राजन् ! मै प्रव्रजित हुआ हूँ।]

इस प्रकार सफेद (केश) विशुद्धि-देवों के दूत होने से देव-दूत कहलाते है। पब्बज्जासमयो मम,, स्पष्ट करता है कि यह मेरे लिए गृहस्थ से निकलने के कारण 'प्रव्रज्या' कहे जाने वाले, साधु-वेश धारण करने का समय है।

यह (सब) कहकर, वह उसी दिन राज्य छोड, ऋषि-प्रव्रज्या के अनुसार प्रव्रजित हुआ और उसी मखादेव-आम्र-वन मे विचरते हुए, चौरासी हज़ार वर्ष तक चारो ब्रह्मविहारो [1] की भावना करते ध्यानावस्था को बिना छोडे मरकर, ब्रह्म-लोक में उत्पन्न हो, फिर वहाँ से मिथिला ही मे निमि नामक राजा (के रूप में) उत्पन्न हुआ, और उसने नष्ट होते हुए अपने वश को सँभाला। फिर वही आम्रवन मे व्रजित हो, ब्रह्मविहारो की भावना कर, फिर ब्रह्मलोक ही में उत्पन्न हुआ।

शास्ता ने भी, "भिक्षुओ! तथागत ने केवल इसी जन्म मे महाभिनिष्क्रमण नही किया, पहले भी अभिनिष्क्रमण किया है।"

इस धर्म-उपदेश को लाकर, दिखाकर, चारो (आर्य-) सत्यो को प्रकाशित किया। (उस समय) कोई स्रोतापन्न हुए। कोई सकृदागामी। कोई अनागामी।

इस प्रकार भगवान् ने इन दो कहानियो को कहकर, तुलना करके जातक का सारांश निकाल दिखाया। उस समय का नाई (अबका) आनन्द था, पुत्र (अबका) राहुल था। और मखादेव राजा तो मै ही था।

---

[1] मैत्री-भावना, करुणा-भावना, मुदिता-भावना तथा उपेक्षा-भावना।

१०. सुखविहारी जातक

'यञ्च अञ्ञे न रक्खन्ति—' यह गाथा, बुद्ध ने अनूपिय नगर के समीप स्थित अनूपिय आम्र-वन मे विहार करते समय सुख पूर्वक विहार करनेवाले भद्दिय स्थविर के बारे मे कही।

क. वर्त्तमान कथा

सुख पूर्वक विहार करनेवाले भद्दिय स्थविर छ क्षत्रियो तथा सातवे उपाली की प्रव्रज्या के समय, प्रव्रजित हुए थे। उन (सात) मे से भद्दिय स्थविर किम्बिल स्थविर, भृगु स्थविर तथा उपालि स्थविर अर्हत्व-पद को प्राप्त हुए। आनन्द स्थविर स्रोतापन्न हुए। अनुरुद्ध स्थविर दिव्य-चक्षु के लाभी हुए। देवदत्त ध्यान के लाभी हुए। अनूपिय नगर तक छओ क्षत्रियो की कथा खण्डहाल जातक[1] मे आयेगी। आयुष्मान् भद्दिय राज करने के समय, अपनी हिफाजत के लिए, पहरेदारो तथा और भी कई प्रकार की आरक्षा के साथ रहते थे। महल के ऊपरले तल्ले पर, बडे पलग पर लेटते समय भी, अपने भय-भीत होने की बात स्मरण कर, तथा अब अर्हत्पद प्राप्त कर लेने पर जङ्गल आदि मे जहाँ तहाँ विचरते हुए भी, अपने को निर्भय देख, प्रसन्नता से कहते थे—"अहो! सुख! अहो! सुख।"

इसे सुन भिक्षुओ ने भगवान् से कहा कि—

'आयुष्मान् भद्दिय अपना अर्हत् होना (=अञ्ञ) कह रहे है[2]।"

---

[1] खण्डहाल जातक (५४२)।

[2] चुल्लवग्ग में भद्दिय का 'गृह-सुख' को याद करना लिखा है।

भगवान् ने कहा, "भिक्षुओ ! भद्दिय, केवल अब ही सुख-पूर्वक विहार करने-वाला नही है, यह पहले भी सुख पूर्वक विहार करनेवाला था।" भिक्षुओ ने भग-वान् से उस बात के स्पष्ट करने की प्रार्थना की। भगवान् पूर्व-जन्म की छिपी हुई बात प्रकट की—

ख. अतीत कथा

पूर्व-समय वाराणसी मे ब्रह्मदत्त के राज्य करते समय, बोधिसत्त्व ने (एक) प्रसिद्ध, महान् कुल में ब्राह्मण हो, जन्म लिया था। भोगो (=कामो) में लिप्त रहने के दुष्परिणाम (=आदीनव) और वैराग्य (निष्क्रमण) मे लाभ देखकर, भोगो को छोड, हिमवन्त मे प्रवेश कर, वह ऋषि-प्रव्रज्या के अनुसार प्रव्रजित हुए। उन्होने आठ समापत्तियो को प्राप्त किया। इनके अनुयायी अनेक थे, पाँच सौ तो तपस्वी थे। इन्होने वर्षा-काल आने पर हिमवन्त से निकल, तप-स्वियो के गण सहित, ग्राम, नगर (=निगम) आदि मे घूमते हुए, वाराणसी पहुँच राजा के आश्रित, राज-उद्यान में वर्षा-वास किया। वहाँ वर्षा के चारो मास रह कर, राजा से (चलने के लिए) पूछा। राजा ने प्रार्थना की—"भन्ते ! आप वृद्ध है। आपको हिमवन्त से क्या ? शिष्यो को हिमवन्त भेजकर, आप यही रहे।"

बोधिसत्त्व ने अपने प्रधान शिष्य को पाँच सौ तपस्वी सौंपकर कहा—"जा। तू इनके साथ हिमवत में रह। मैं यही रहूँगा।" (इस प्रकार) उनको चलता कर, आप वहीं रहने लगे। इनका वह प्रधान-शिष्य राज-प्रव्रजित था। उसने बडे भारी राज्य को छोड, प्रव्रजित हो कसिण-परिकर्म (=योगाभ्यास) कर, आठ समापत्तियाँ प्राप्त की थी। हिमवन्त में तपस्वियो के साथ रहते रहते एक दिन, उसने (अपने) आचार्य्य को देखने की इच्छा से तपस्वियो को बुलाकर कहा—'तुम उत्कण्ठा रहित हो, यही रहो। मैं आचार्य्य की वन्दना करके लौटूगा।' और आचार्य्य के पास जाकर, प्रणाम कर, कुशल-क्षेम पूछ, एक चटाई फैलाकर, उसपर आचार्य्य के समीप ही लेट रहा।

उस समय राजा तपस्वी को देखने की इच्छा से उद्यान में जाकर, प्रणाम कर, एक ओर बैठा रहा। शिष्य-तपस्वी राजा को देखकर भी (अपने स्थान से) नही उठा। लेटा ही लेटा 'अहो ! सुख ! अहो ! सुख'—इस प्रकार का उदान (=प्रीति-वाक्य) कहता रहा। राजा ने 'यह तपस्वी मुझे देखकर भी नही उठा

है' (सोच) असन्तुष्ट हो बोधिसत्त्व से कहा—"भन्ते ! मालूम होता है, इस तपस्वी को पेट भर खाने को मिला है। तभी तो 'उदान' कहता हुआ सुख-पूर्वक लेटा है।"

"महाराज ! पहले, यह तपस्वी भी तुम्हारे सदृश एक राजा था ? सो 'मैंने राज्य-श्री का आनन्द लूटते कितने ही शस्त्रधारी पहरेदार मेरी रक्षा करते हैं, तो भी, इस प्रकार का सुख अनुभव नही किया' (सोच) यह अपने प्रव्रज्या-सुख के बारे मे इस प्रकार का उदान कह रहा है।"

यह कह बोधिसत्त्व ने राजा को धर्म-कथा कहने के लिए, यह गाथा कही—

यञ्च अञ्ञे न रक्खन्ति यो न अञ्ञे न रक्खति,
स वे राज ! सुख सेति कामेसु अनपेक्खवा॥

[जिनकी न दूसरे रक्षा करते हैं, और जो न दूसरो की रक्षा करता है ! राजन् ! वही भोगो (=कामो) मे अपेक्षा-रहित व्यक्ति सुख से सोता है।]

यञ्च अञ्ञे न रक्खन्ति का अर्थ है, जिस व्यक्ति की दूसरे बहुत से व्यक्ति आरक्षा नही करते। **यो च अञ्ञे न रक्खति** का अर्थ है, जो अकेला व्यक्ति मैं राज्य का सञ्चालन करूँ, (सोच) दूसरे बहुत से व्यक्तियो की आरक्षा (हिफाजत) नही करता है। **स वे राज ! सुखं सेति** का अर्थ है, महाराज ! वह अकेला, अद्वितीय प्रविविक्त (=एकान्तसेवी) व्यक्ति, शारीरिक तथा मानसिक सुख से समन्वित हो सोता है। यह तो देशना (=पाँति) का शब्दश अर्थ हुआ। नही तो, इस प्रकार का व्यक्ति सुख से केवल सोता ही नही है, वह सुख से चलता है, ठहरता है, सोता है—अर्थात् सर्व अवस्थाओ (=ईर्य्यापथो) मे वह सुखी ही रहता है। **कामेसु अनपेक्खवा**=वस्तु-कामना तथा किलेस (=पापेच्छा)-कामना में आसक्ति-रहित हो, जिसके छन्द=राग का नाश हो गया है जो तृष्णा-रहित है 'हे राजन् ! इस प्रकार का व्यक्ति सब शारीरिक अवस्थाओ मे सुख से विहार करता है।'

राजा धर्म-देशना (= धर्मोपदेश) सुन, सन्तुष्ट-चित्त हो, प्रणाम कर, (अपने) निवास-स्थान पर गया। और (वह) शिष्य भी आचार्य्य को प्रणाम कर **हिमवन्त** को चला गया। लेकिन **बोधिसत्त्व** वही विहार करते हुए, ध्यानावस्थित रह, काल करके **ब्रह्मलोक** मे उत्पन्न हुए।

शास्ता ने इस धर्म-उपदेश को ला, दिखा, दोनो कहानियो को कह, तुलनाकर जातक का साराश निकाल दिखाया। उस समय (का) शिष्य, **भद्दिय** स्थविर था, और गण-शास्ता तो मै ही था।

पहला परिच्छेद

२. सील वर्ग

११. लक्खण जातक

'होंति सीलवतं अत्थो'—इस गाथा को, राज-गृह के समीप वेलुवन मे विहार करते हुए (बुद्ध ने) देवदत्त के बारे मे कहा ।

क वर्तमान कथा

देवदत्त का (भगवान् को) मारने का प्रयत्न करने तक का वृत्तान्त खण्डहाल जातक[1] मे, धनपाल (हाथी) के भेजने तक का वृत्तान्त चुल्लहंसजातक[2] मे, तथा पृथ्वी मे प्रवेश करने तक का वृत्तान्त सोलहवे परिच्छेद मे समुद्दवाणिज जातक[3] मे आयेगा।

एक समय देवदत्त ने भगवान् से पाँच बातें[4] (=वस्तु) स्वीकार करने की प्रार्थना की। उन (पाँच बातो) के अस्वीकृत होने पर, वह सघ मे फूट पैदा कर, पाँच सौ भिक्षुओ को साथ ले गया-सीस मे रहने लगा। (समय बीतने पर) उन भिक्षुओं को कुछ अकल आई। यह जानकर, बुद्ध ने (अपने दोनो) प्रधान-शिष्यो, को कहा—

"सारिपुत्त ! तुम्हारे साथी पाँच सौ भिक्षु, देवदत्त के मत को पसन्द कर

---

[1] ५४२ जातक। [2] ५३३ जातक। [3] ४६६ जातक।

[4] सभी भिक्षु आजीवन आरण्य-वासी; वृक्षो के नीचे रहने वाले (=घर मे न रहें); पंसु-कूलिक (=गुदड़ी धारी); पिण्डपातिक (=भिक्षा पर ही जीवित रहना) तथा शाकाहारी (=अमांस-भोजी) हो।

उसके साथ चले गये, लेकिन अव उनको अकल आ गई है। तुम वहुत से भिक्षुओ के साथ वहाँ जाओ, और उन्हें धर्मोपदेश द्वारा मार्ग-फल का वोध करवा, साथ ले आओ।" तव वह वैसे ही (गयासीस) गये, और उन्हे धर्मोपदेश द्वारा मार्ग-फल का अववोध करवा, फिर एक दिन अरुणोदय के समय उन भिक्षुओ को साथ लेकर, वेलुवन चले आये। आकर, सारिपुत्र स्थविर भगवान् को प्रणाम कर, एक ओर खडे हुए। तव भिक्षुओ ने स्थविर की प्रशसा करते हुए, भगवान् से कहा—

"भन्ते! हमारे ज्येष्ठ-भ्राता, धर्मसेनापति (सारिपुत्र) पाँच सौ भिक्षुओ के वीच में आते कैसे सुन्दर लगते हैं, लेकिन देवदत्त तो अनुयायियो (=परिवार) के विना रह गया।"

"भिक्षुओ! जाति-सघ के वीच मे आते हुए सारिपुत्र, केवल अव ही सुन्दर नही लगते हैं, पहले भी वह शोभा देते थे, और देवदत्त, केवल अव ही वे-जमाती (गण-रहित) नही हुआ, पहले भी हुआ है।"

भिक्षुओ ने भगवान् से उस वात को प्रकट करने की प्रार्थना की। भगवान् ने पूर्व-जन्म की छिपी हुई वात प्रगट की—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में मगध देश के राजगृह नगर मे, कोई मगध-नरेश राज्य करते थे। उस समय वोधिसत्त्व ने मृग की योनि मे जन्म ग्रहण किया था। वड़े होकर वह (एक) हजार मृगो के दल के साथ जगल मे वास करते थे। उनके लक्षण और काल नाम के दो पुत्र थे। उन्होने अपने वूढा होने पर, "तात! मैं अव वूढा हो गया, अव तुम इस मृग-गण को सँभालो" कह एक एक पुत्र को पाँच पाँच सौ मृग सौंप दिये। उस समय से, वह दोनो जने मृग-गण को लेकर घूमने लगे। मगध देश में खेती के दिनो में, खेती पकने के समय जगल में मृगो को खतरा होता था। खेती-खानेवाले मृगो को मारने के लिए लोग जहाँ तहाँ गढे खोदते, काँटे लगाते, पत्थर-यन्त्रों (=गुलेल) को सँवारते, कूट-पाश आदि वन्धन फैलाते थे (जिससे) वहुत से मृग मारे जाते। वोधिसत्त्व ने खेती पकने का समय जान, पुत्रो को वुलवा कर कहा—"यह खेती पकने का समय है। (इस समय) वहुत से मृग मारे जाते हैं। हम वडे (लोग) तो जिस किसी ढग से एक ही स्थान पर (रहते) दिन काट

लेंगे, लेकिन तुम अपने अपने मृग-गणको लेकर, जङ्गलमें, पर्वत में जाओ, और (वहाँ रह) खेती कटने के समय (लौट) आना।"

वे पिता के वचन को 'अच्छा' (कह), अपने अनुयायियो सहित निकल पडे। उनके जाने के मार्ग मे रहने (वाले) मनुष्य, "इस समय मृग पर्वतो पर चढते है, इस समय पर्वतो से उतरते है" जानते थे और जहाँ तहाँ छिपने योग्य जगहो पर छिप कर वे बहुत से मृगो को मार डालते थे। काल (नामक) मृग अपनी मूढता के कारण, यह जाने योग्य समय है (अथवा) यह नही जाने योग्य समय है, न समझ, मृग-गण को ले पूर्वाण्ह के समय भी, सायकाल के समय भी, रात्रि के समय भी, (तथा) प्रात काल के समय भी ग्राम-द्वार के पास से ही निकलता था। जहाँ तहाँ प्रगट ही खडे, अथवा छिपे रह मनुष्य बहुत से मृगो को मार डालते। इस प्रकार अपनी मूढता के कारण (उसने) बहुत से मृगो को मरवा कर, बहुत थोडे से ही मृगो के साथ आरण्य में प्रवेश किया। लेकिन पण्डित =व्यक्त, उपायकुशल लक्षण (नामक) मृग, 'इस समय जाना चाहिए, इस समय नही जाना चाहिए' जानता था। वह न ग्राम-द्वार से जाता, न दिन में जाता, न रात्रि (=शाम) के समय जाता, न प्रात काल के समय जाता, मृग-गण को लेकर केवल आधीरात के समय जाता। इसलिए वह एक भी मृग का नाश बिना होने दिये ही जगल में प्रविष्ट हुआ। वहाँ चार महीने रहकर वे (मृग) खेत कट जाने पर, पर्वत से उतरे। कालमृग लौटते समय भी, पहली ही तरह से (लौटकर) बाकी मृगो को भी मरवा कर अकेला ही (वापिस) आया। लेकिन लक्षण मृग की मडली का एक भी मृग नष्ट न हुआ और अपने पाँच सौ मृगो के साथ, माता पिता के पास (वापिस) आया। बोधिसत्त्व ने दोनो पुत्रो को आता देख, मृग-गण से बातचीत करते हुए यह गाथा कही—

होति सीलवतं अत्थो पटिसन्थारवुत्तिनं,
लक्खण पस्स आयन्त ञातिसघपुरक्खतं;
अथ पस्ससि म कालं सुविहीनं च ञातिहि॥

[(सदाचारी) और श्रेष्ठ जीवन व्यतीत करने वालो की उन्नति होती है। जाति-सघ के आगे आगे आते हुए लक्षण को देखो और जाति-सघ से रहित (अकेले) आते हुए इस काल को (तो) तुम देखते ही हो)।]

यहाँ सीलवत का अर्थ है, शुक्ल-शील से युक्त, आचार-युक्त (=सदाचारी)। अर्थ=उन्नति। 'पटिसन्थार वुत्तिन' धम्म-पटिसन्थार तथा आमिष-पटिसन्थार—उन दोनो की वृत्ति को कहते हैं पटिसन्थार-वृत्ति। सो उन पटिसन्थारवृत्ति वालो का पाप निवारण सम्बन्धी उपदेश=अनुशासन रूपी पटिसन्थार (=बात-चीत) ही धर्म-पटिसन्थार है। गोचर-लाभ, गिलानुपट्ठाक (=रोगी की सेवा) धार्मिक रक्षा के रूप मे सम्बन्धित पटिसन्थार ही आमिष-पटिसन्थार कहा जाता है। ऐसा कहा गया है कि इन दोनो पटिसन्थारो मे जो स्थित हैं, सदाचारी हैं, पण्डित हैं, उनकी उन्नति होती है। अब उस उन्नति को दिखाने के लिए, जैसे पुत्र माता को बुलाता हो वैसे 'लक्खण पस्स' आदि कहा। संक्षेप मे इसका अर्थ है—(सदा-) आचार-पटिसन्थार युक्त, एक मृग को भी बिना खोये, बिरादरी के साथ आगे आते हुए अपने पुत्र को देखो, और उसी (सदा-) आचार-पटिसन्थार सम्पत्ति से रहित, मूढ, एक भी जाति-भाई को बिना बचाये, सभी नातेदारो से रहित, अकेले आनेवाले इस काल मृग को देखो (अथपस्ससिम काल)। इस प्रकार पुत्र की प्रशसा करते हुए बोधिसत्व आयु-भर (जीवित) रहकर कर्मानुसार परलोक सिधारे।

बुद्ध ने भी 'भिक्षुओ! जाति-संघ भाइयो के साथ आता हुआ सारिपुत्र केवल अब ही सुन्दर नही लगता, पहले भी शोभा देता था। और देवदत्त, केवल अब ही गण से रहित नही हुआ पहले भी हुआ है'—इस धर्म-देशना को दिखा, दोनो कहानियो को जोड, तुलनाकर, जातक का साराश निकाल दिखाया।

उस समय का काल मृग (अब का) देवदत्त था और उसकी परिषद् भी देव-दत्त परिषद् ही थी। लक्षण मृग सारिपुत्र है। लेकिन उसकी मण्डली बुद्ध की मण्डली ही है। माता, (अब की) राहुल-माता हुई। और पिता तो मै ही था।

१२. निग्रोध मृग जातक

"निग्रोधमेव सेवेय्य   "यह गाथा, बुद्ध ने जेतवन मे विहार करते समय, कुमार काश्यप स्थविर की माता के बारे मे कही।

क. वर्त्तमान कथा

वह राजगृह नगर के (एक) महासम्पत्तिशाली सेठ की लडकी थी। अति स्वच्छ-विचार (=ऊँचे कुशल-मूल), परिमार्जित-सस्कार, अन्तिम शरीर वाली (उस लडकी) के हृदय मे मुक्त होने की इच्छा वैसेही प्रज्वलित हो रही थी, जैसे घडे के अन्दर प्रदीप। जब से होश सँभाला, तभी से उसका मन गृहस्थ में न लगता था। उसने प्रव्रजित होने की इच्छा से माता पिता से कहा—"अम्मा-तात! मेरा मन घर मे नही लगता। मै (मोक्ष की ओर) ले जानेवाले बुद्ध-धर्म में प्रव्रजित होना चाहती हूँ। आप मुझे प्रव्रजित कराये।"

"अम्मा! क्या कहती है? यह धनी कुल, और तू हमारी अकेली लडकी! तू प्रव्रजित नही हो सकती।"

माता-पिता से बार-बार प्रार्थना करने पर भी, प्रव्रज्या की आज्ञा न मिलने पर, वह सोचने लगी—"अच्छा (=हो)। पति-कुल जाकर, स्वामी को मनाकर प्रव्रजित होऊँगी।" फिर आयु-प्राप्त होने पर, पति-कुल जाकर, पति को देवता बना शीलवान् सदाचारिणी (=कल्याण-धर्मा) हो गृहस्थ में रहने लगी। उनके सहवास से उसकी कोख मे गर्भ प्रतिष्ठित हो गया। (लेकिन) उसको गर्भ के प्रतिष्ठित होने का पता नही लगा।

उस समय उस नगर में उत्सव (=नक्षत्र) की घोषणा हुई। सब नगरवासी उत्सव मनाने लगे। नगर देव-नगर की भाँति अलकृत किया गया। लेकिन उसने

इस प्रकार के विशाल उत्सव के रहने पर भी, न अपने शरीर पर (चन्दनादि का) लेप किया, न उसे अलकृत किया। स्वाभाविक वेष में ही घूमती रही।

उसके स्वामी ने उससे पूछा—"भद्रे! सारा नगर (तो) उत्सव मना रहा है, तू अपने को क्यो नही सजा रही है?"

"आर्य्य! यह शरीर वत्तीस प्रकार की गन्दगियों[1] से भरा है, इसे अलकृत करने से ही क्या? यह शरीर न तो देव का वनाया हुआ है, न ब्रह्म का बनाया हुआ है, न स्वर्णमय है, न मणिमय, न हरिचन्दनमय है, न ही पुण्डरीक, कमल, उत्पल (आदि) के गर्भ से उत्पन्न हुआ है, न अमृतौषधि से पूर्ण है। (यह) गन्दगी में पैदा हुआ, माता-पिता (के सयोग) से अस्तित्व मे आया है। अनित्यता, मालिश तथा मर्दन की आवश्यकता होना, टूटना, ध्वस्त होना—यही इसका स्वभाव है। यह श्मशान को बढाने वाला है, तृष्णा से उत्पन्न है। शोकों का निदान है। विलाप का कारण है। सब रोगो का आलय है। (दण्ड-) कर्मों का भोगनेवाला है। अन्दर से गन्दा है, वाहर नित्य (गन्दगी) चूती रहती है। कीटो का निवासस्थान (= आवास) है। श्मशान का यात्री है। मरना (ही) इसका अन्त है। (यह शरीर) सब लोगो की दृष्टि में रहता हुआ भी—

अट्ठीनहारुसयुत्तो तचमसविलेपनो,
छविया कायो पटिच्छन्नो यथाभूत न दिस्सति॥
अन्तपूरो उदरपूरो यकपेलस्स वत्थिनो,
हदयस्स पप्फासस्स वक्कस्स पिहकस्स च।
सिघाणिकाय खेलस्स, सेदस्स, मेदस्स च
लोहितस्स, लसिकाय, पित्तस्स च वसाय च॥
अयस्स नवहि सोतेहि असुचि सवति सव्वदा
अक्खिम्हा अक्खिगूथको, कण्णम्हा कण्णगूथको॥
सिघाणिका च नासातो मुखेन वमति एकदा
पित्त सेम्हं च वमति कायम्हा सेदजल्लिका॥

---

[1] केस, रोम, नख, दाँत, त्वच् आदि (देखो सत्तीपट्ठान-सुक्त, मज्झिम निकाय)।

अयस्स सुसिर सीसं मत्थलुङ्गेन पूरितं,
सुभतो नं मञ्ञति बालो अविज्जाय पुरक्खतो[1] ॥
अनंत्तादीनवो कायो विसरुक्खसमूपमो,
आवासो सब्बरोगान पुञ्जो दुक्खस्स केवलो ॥
सचे इमस्स कायस्स अन्तो बाहिरतो सिया।
दण्डं नून गहेत्वान काके सोणे च वारये ॥
दुग्गन्धो असुचो कायो कुणपो उक्करूपमो,
निन्दितो चक्खूभूतेहि कायो बालाभिनन्दितो ॥

[यह हड्डी और नसो का सयोग है, ऊपर से त्वच् और मास का लेप है, और उसके ऊपर चमडी से ढका है। (इसलिए इस शरीर का) यथार्थ स्वरूप नही दिखाई देता। (यह) आँतो, आमाशय, यकृत-पेल, उदरस्थ (वस्ती), हृदय, फुस्फुस, वृक्क, प्लीहा (पिहक) सीढ, थूक, पसीना, वर (मेद), रक्त, लसिका[2] पित्त और चर्वी (वस)—इन सबसे भरा हुआ है। इसके नौ स्रोतो से सदा गन्दगी बहती है—आँखो से आँख का मैल, कानो से कान का मैल, नाक से सीढ। कभी कभी मुह से उल्टी, पित्त और कफ भी, शरीर से पसीना (=स्वेद जल)। इसका छिद्रो वाला शीस मत्थलुङ्ग[3] से भरा है। अविद्या से घिरे हुए लोगो को यह (शरीर) आकर्पक (=शुभ) मालूम होता है। यह विप-वृक्ष सदृश शरीर अनेक दोपो (आदिनव) से युक्त है। सब रोगो का घर है। केवल दु ख का ढेर है। यदि (किसी तरह से) इस शरीर के अन्दर का हिस्सा बाहर आ जाये, तो निश्चय से डण्डा लेकर कौओ और कुत्तो को हटाना पडे। (इसीलिए) पडितो (=चक्षुभूत) ने इस दुर्गन्ध-युक्त, अशुचिपूर्ण कचवर-सदृश, गन्दे शरीर की निन्दा की है। बाल (मूर्ख) ही इस पर रीझते है (=प्रशसा करते है।)]

"आर्य पुत्र! इस शरीर को अलकृत करके क्या करूँगी? इस शरीर का अलकृत करना क्या वैसा ही नही है जैसा गन्दगी भरे घडे के बाहर चित्र बनाना?"

---

[1] विजय सुत्त (सुत्त-निपात)।
[2] कोहनी आदि जोडो में स्थित तरल पदार्थ।
[3] खोपडी के भीतर का गुद्दा।

सेठ-पुत्र ने उसके इस वचन को सुनकर कहा—"भद्रे ! यदि तू इस शरीर मे इतने दोष देखती है, तो प्रव्रजित क्यो नही होती ?" "आर्य पुत्र ! यदि मुझे प्रव्रज्या मिले, तो मै आज ही प्रव्रजित होऊँ।" सेठ-पुत्र ने 'अच्छा' मै तुझे प्रव्रजित कराऊँगा कह, महा-दान दे महासत्कार कर, वहुत सी साथनो (परिवार) के साथ, उसे भिक्षुणी-विहार मे ले जाकर, वहाँ देवदत्त के पक्ष की भिक्षुणियो के पास प्रव्रजित कराया। वह प्रव्रज्या प्राप्त कर, सकल्प पूर्ण होने के कारण सन्तुष्ट हुई। तव उसके गर्भ के परिपक्व होने से, उसकी इन्द्रियो (=आकार-प्रकार) का परिवर्तन (=अन्यथा होना), हाथ-पैर तथा पीठ का भारीपन, तथा पेट (=उदर पटल) का मोटा पन देखकर भिक्षुणियो ने पूछा—"आर्ये ! तू गर्भिणी सी प्रतीत होती है। सो यह क्या है ?"

"आर्ये ! मै इसे नही जानती कि यह क्या है, लेकिन मेरा शील (= सदाचार) परिपूर्ण हे।"

तव उन भिक्षुणियो ने उसे देवदत्त के पास ले जाकर, देवदत्त से पूछा—"आर्य ! इस कुलपुत्री ने वडी कठिनाई से (अपने) स्वामी को मना कर प्रव्रज्या प्राप्त की। लेकिन अव इसे गर्भ दिखाई देता है। हम नही जानती कि यह गर्भ इसे गृहस्थ रहते समय से ही हे, अथवा प्रव्रजित होने पर रहा है ? अव हम क्या करे ?" देवदत्त ने वुद्ध न होने के कारण, तथा क्षान्ति मैत्री और दया का भी अभाव होने के कारण सोचा "मुझे चाहिए कि मै इसका चीवर उतरवा दू (=अपप्रव्रजित करा दू), नही तो (लोग) मेरी यह कहकर निन्दा करेगे कि देवदत्त के पक्ष की एक भिक्षुणी कोख मे गर्भ लिये फिरती है और देवदत्त उसकी उपेक्षा करता है।"

तव उसने विना सोचे विचारे, पत्थर के रोडे को उलटाने की तरह कहा—"जाओ, इसे अप्रव्रजित कर दो।" वे, उसका वचन सुन, उठ, प्रणाम कर विहार (=उपाश्रय) चली गई।

तव इस कम आयु की भिक्षुणी ने दूसरियो से कहा—"आर्ये ! न तो देवदत्त स्थविर 'वुद्ध' है, न ही मै उनकी अनुयायी होकर प्रव्रजित हुई हूँ। मै जो लोकाग्र, सम्यक्-सम्वुद्ध है, उनकी अनुयायी हो प्रव्रजित हुई हूँ। और यह 'प्रव्रज्या' मुझे वडी कठिनाई से मिली है, सो मेरी इस (प्रव्रज्या) का लोप मत करो। आओ, मुझे (साथ) लेकर, शास्ता के पास जेतवन चलो।" वे उसे साथ ले, राजगृह से पैतालीस योजन मार्ग क्रम से चलकर, जेतवन पहुँची। वुद्ध को प्रणाम कर, उन्होने

वह बात निवेदित की। शास्ता ने सोचा—"यद्यपि इसको गृहस्थ के समय ही गर्भ रहा है, लेकिन फिर भी तैर्थिको को यह कहने को हो जायगा कि श्रमण गौतम, देवदत्त द्वारा छोडी (भिक्षुणी) को साथ लिये फिरता है। इसलिए इस कथा को शान्त करने के लिए राजा सहित परिषद् के बीच मे, इस अधिकरण (=मुकद्दमे) का फैसला होना चाहिए।"

फिर एक दिन, कोशल-नरेश **प्रसेनजित्**, बडे **अनाथपिण्डिक**, छोटे **अनाथ-पिण्डिक**, महाउपासिका विशाखा, तथा अन्य प्रसिद्ध महाकुलो को बुलवाकर, सायकाल के समय चारो प्रकार की परिषद् के एकत्र होने पर, उपाली स्थविर को सम्बोधित किया—"जाओ! चारो प्रकार की परिषद् के बीच में इस तरुण-भिक्षुणी के कर्म की परीक्षा करो।"

"भन्ते! अच्छा" कह, स्थविर ने परिषद् के बीच मे जाकर अपने आसन पर बैठ, राजा के आगे उपासिका विशाखा को बुलवाकर, (उसे) यह अधिकरण सौंपा—"विशाखे! इस तरुणी ने अमुक महीने, अमुक दिन प्रव्रज्या ग्रहण की है। तू जाकर, इसका गर्भ प्रव्रज्या से पूर्व का है, अथवा पीछे का, इसे यथार्थ जान।"

उपासिका ने 'अच्छा' कह, इसे स्वीकार कर, कनात तनवा दी। और कनात के अन्दर तरुण भिक्षुणी के हाथ, पाँव, नाभी तथा उदर तक देखकर, महीने और दिनो का विचार कर, ठीक से जान लिया, कि गृहस्थ रहते यह गर्भ ठहरा। फिर स्थविर के पास जाकर, यह बात निवेदित की। स्थविर ने चारो प्रकार की परिषद् के बीच मे उस भिक्षुणी को बरी किया। वह बरी होकर भिक्षु-सघ तथा शास्ता को प्रणाम कर, भिक्षुणियो के साथ ही भिक्षुणी-विहार को गई। गर्भ के परिपाक होने पर उसने ऐसे महाप्रतापी पुत्र को जन्म दिया जिसने पद्मोत्तर (बुद्ध) के चरणो मे प्रार्थना की थी।

तब एक दिन राजा ने भिक्षुणियो के विहार के समीप से जाते हुए, बालक की आवाज सुनकर मन्त्रियो से पूछा। अमात्यो ने मालूम कर उसे कहा—"देव! उस तरुण भिक्षुणी के पुत्र हुआ है। यह उसकी आवाज है।"

"भणे! भिक्षुणियो को बच्चो के पालन पोषण मे कठिनाई होती है, इस-लिए इस (बालक) को हम पालेगे" (कह) राजा ने उस बच्चे को नटी स्त्रियो को दिलवा कर, (राज-) कुमार की तरह पालन करवाया। नामग्रहण के दिन उसका

नाम काश्यप रक्खा। (राज-)कुमार की तरह पालन होने से, वह कुमार-काश्यप नाम से प्रसिद्ध हुआ। वह सात वर्ष की आयु मे शास्ता के पास प्रव्रजित हुआ। (बीस वर्ष की) आयु पूरी होने पर उपसम्पदा प्राप्त कर, समय बीतने पर सुन्दर धर्मोपदेशक हुआ। शास्ता ने 'भिक्षुओ! मेरे सुन्दर (=चित्र) धर्म-कथित श्रावको मे कुमार-काश्यप सर्व-श्रेष्ठ है'[1] (कह) उसे सर्व-श्रेष्ठ पद दिया। आगे चलकर, वम्मिक-सुत्र[2] सुनने पर, उसने अर्हत्-पद प्राप्त किया। उसकी भिक्षुणी माता ने भी विदर्शना-भावना (=योगाभ्यास) द्वारा अग्र-फल (=अर्हत्व) प्राप्त किया। कुमार-काश्यप स्थविर, बुद्धो के शासन रूपी आकाश में पूर्ण-चन्द्र की भाँति प्रकाशित हुए।

एक दिन तथागत, भिक्षाटन से लौटकर, भोजन करने के बाद भिक्षुओ को उपदेश दे गन्धकुटी मे प्रविष्ट हुए। भिक्षु उपदेश ग्रहण कर, अपने अपने रात-दिन रहने के स्थानो मे दिन बिता कर, शाम के सयम धर्म-सभा में एकत्रित हो, "आवुसो! देवदत्त ने 'बुद्ध' न होने के कारण, तथा क्षमा, मैत्री और दया का अभाव होने के कारण, कुमार काश्यप स्थविर और स्थविरी को क्षण में नष्ट कर दिया। लेकिन सम्यक् सम्बुद्ध ने, धर्म-राज होने के कारण, तथा क्षमा, मैत्री और दया रूपी सम्पत्ति से युक्त होने के कारण उन दोनो को आश्रय दिया" कहते हुए, बैठे बुद्ध-गुणो की प्रशसा कर रहे थे।

शास्ता ने बुद्ध-लीला से धर्म-सभा मे आ, बिछे आसन पर बैठकर पूछा, "भिक्षुओ! इस समय बैठे क्या बात-चीत कर रहे थे?"

सभी ने उत्तर दिया, "भन्ते! आप ही की गुण-कथा (कहने) में लगे थे।"

"भिक्षुओ! तथागत केवल अब ही, इन दोनो के आश्रय (-दाता) तथा सहारा नहीं हुए, पहले भी हुए है।"

भिक्षुओ ने भगवान् से उस बात को प्रगट करने की प्रार्थना की। भगवान् ने पूर्व-जन्म की छिपी हुई बात प्रगट की—

---

[1] अङ्गुत्तर निकाय, एतदग्ग वग्ग।

[2] मज्झिम निकाय।

ख. अतीत कथा

"पूर्व समय में **वाराणसी** मे **ब्रह्मदत्त** के राज्य करने के समय, वोधिसत्त्व ने मृग की योनि में जन्म ग्रहण किया। वह माता की कोख से निकलते ही सोने के रग का था। उसकी ऑखे मणि की गोलियो के सदृश, उसके सीग रजत-वर्ण के, (उसका) मुह लाल रग के दुशाले की राशि के सदृश, हाथ पैर के सिरो पर जैसे लाख लगी हो, और उसकी पूछ चमरी (गाय) की सी थी। लेकिन उसका शरीर घोडे के बच्चे जितना बडा था। वह पाच सौ मृगो के साथ जगल में रहता था। और उसका नाम था निग्रोध मृग-राज। वहाँ से थोडी ही दूर पर (=अविदूर) पॉच सौ मृगो के साथ, एक दूसरा भी शाख-मृग रहता था। वह भी सुनहरे ही रग का था।

उस समय बनारस का राजा मृगो का वध करने पर तुला हुआ था। विना मास के वह खाता ही न था। मनुष्यो के काम छुडा, सारे निगमो तथा जनपदो के लोगो को इकट्ठा करवा, प्रतिदिन शिकार के लिये जाता था। मनुष्यो ने सोचा—"यह राजा (प्रतिदिन) हमारा काम छुडवाता है। क्यो न हम उद्यान में घास (=निवाप) वो, पानी रख, बहुत से मृगो को उद्यान में दाखिल करा, द्वार वन्द कर, राजा को सौंप दे ?" उन सब ने उद्यान में मृगो के लिए घास और तृण वो दिया, पानी रख दिया। फिर वे दरवाजे लगाकर नगर के मनुष्यो के सहित, मुद्गर आदि नाना प्रकार के हथियार हाथ में ले, जगल मे घुमे, मृगो को ढूढते हुए, (घेरे के) वीच में आये मृगो को पकडेगे सोच, योजन भर स्थान को घेर, (उस घेरे को) कम करते हुए निग्रोध-मृग तथा शाख-मृग के निवासस्थानो को वीच में घेर लिया। फिर, उस मृग यूथ को देख, वृक्ष, गुल्म आदि तथा भूमि को मुद्गरो से पीटते हुए, मृगो के झुण्ड को छिपी छिपी जगहो से निकाला और तलवार शक्ति, धनुष आदि आयुधो को निकाल, कोलाहल करते हुए, उस झुड को उद्यान में दाखिल कर, द्वार को बन्द कर, राजा के पास जा, कहा—'देव ! लगातार शिकार के लिए जाने से हमारे काम की हानि होती है। हमने जगल से मृगो को लाकर (उनसे) अपना उद्यान भर दिया। अब से आप उनका मास खायें।' फिर राजा से आज्ञा मांग चले गये।

राजा ने उनकी वात सुन, उद्यान मे जा, मृगो को देखते हुए, (उनमें) दो

सुनहरे मृगों को देख, उन्हें अभय-दान दिया। उस दिन से लगाकर, कभी वह स्वयं जाकर, एक मृग को मार लाता, कभी उसका रसोइया ही जाकर मृग को मार लाता। मृग धनुष को देखते ही मरने के भय से डरकर भागते। दो तीन चोटें खाकर दुःखित होते, जखमी (=रोगी) होते और मर भी जाते। मृग यूथ ने यह बात बोधिसत्त्व से कही। उसने शाख-मृग को बुलवा कर कहा—"सौम्य! मृग बहुत नष्ट हो रहे हैं। यदि मरना अवश्य ही है, तो अब से मृग तीर से न बेधे जायें। गर्दन काटने की जगह (धर्म-गण्डिक स्थान) पर मृगों की बारी बँध जावे। एक दिन मेरी परिषद् (मंडली) में से एक की बारी हो एक दिन तेरी मंडली में से एक की। जिसकी बारी आवे, वह मृग धर्म-गण्डिका पर जाकर, सिर रखकर पड़ रहे। इस प्रकार मृग जखमी न होंगे।"

उसने 'अच्छा' कह स्वीकार किया। उस समय से जिसकी बारी आती, वह मृग जाकर, धर्म-गण्डिका पर सीस रखकर पड़ रहता। रसोइया आकर, वहाँ पड़े को लेकर, जाता।

एक दिन शाख-मृग की टोली से एक गर्भिणी हिरणी की बारी आई। उसने शाख-मृग के पास जाकर कहा—"स्वामी! मैं गर्भिणी हूँ। पुत्र पैदा होने पर, हम दो जने बारी बारी से जायेंगे। आज मेरी जगह किसी और को भेज दो।" उसने उत्तर दिया, "मैं तेरी जगह, किसी दूसरे को नहीं भेज सकता। जो तुझ पर पड़ी है, उसे तू ही जान। जा।"

उसके दया न दिखाने पर, वह बोधिसत्त्व के पास गई, और जाकर वही बात कही। वह उस (हिरणी) की बात सुन, 'अच्छा तू जा, मैं तेरी बारी टाल दूंगा' कह, स्वयं जाकर धर्म-गण्डिका पर सिर रखकर लेट रहा। रसोइये ने उसे देख, 'अभय-प्राप्त मृग-राज गण्डिका पर पड़ा है, क्या कारण है?' (सोच) जल्दी से जाकर राजा से कहा। राजा ने उसी समय रथ पर चढ़ बहुत से जन-समूह (=परिवार) के साथ आकर, बोधिसत्त्व को देखकर पूछा—"सौम्यराज! क्या मैंने तुझे अभय-दान नहीं दिया? यहाँ तू किसलिए पड़ा है?"

"महाराज! गर्भिणी हिरणी ने आकर कहा कि मेरी बारी किसी दूसरे पर टाल दो। मैं एक का मरण-दुख किसी दूसरे पर न टाल सकता था। इसलिए अपना जीवन उसे देकर, और उसका मरना अपने ऊपर लेने के लिए, मैं यहाँ आकर पड़ा हूँ। महाराज! इसमें और कोई दूसरी शंका न करें।"

राजा ने कहा—"स्वामी! स्वर्ण-वर्ण मृग-राज! मैंने तेरे सदृश क्षमा, मैत्री और दया से युक्त, मनुष्यो मे भी किसी को इससे पहले नही देखा। इसलिए मै तुझ पर प्रसन्न हूँ। उठ, तुझे और उसको—दोनो को अभय देता हूँ।"

"महाराज! हम दोनो को अभय मिलने पर वाकी क्या करेगे?"

"स्वामी! वाकियो को भी अभय देता हूँ।"

"महाराज! इस प्रकार केवल उद्यान के ही मृगो को अभय मिलेगी। वाकी क्या करेगे?"

"स्वामी! उनको भी अभय देता हूँ।"

"महाराज! मृग तो अभय प्राप्त करे, वाकी चतुष्पाद (=चौपाये) क्या करेगे?"

"स्वामी! उनको भी अभय देता हूँ।"

"महाराज! चतुष्पाद तो अभय प्राप्त करे, वाकी पक्षी (=द्विज) क्या करेगे?"

"स्वामी! उनको भी अभय देता हूँ।"

"महाराज! पक्षी तो अभय प्राप्त करे, वाकी जल मे रहनेवाले जन्तु (=मच्छ) क्या करेगे?'

"स्वामी! उनको भी अभय देता हूँ।"

इस प्रकार महा-सत्व (=वोधिसत्त्व) राजा से सब सत्वो के लिए अभय की याचना कर, उठकर, राजा को पाँच-शीलो मे प्रतिष्ठित कर, "महाराज! धर्माचरण करे। न्याय करे। माता, पिता, पुत्र, पुत्री, ब्राह्मण-गृहपति, निगम तथा जनपद के लोग, (सब के साथ) धर्म का व्यवहार (=उचित व्यवहार) करने से शरीर छूटने पर, मरने के वाद, सुगति, स्वर्ग लोक को प्राप्त होगे।"—इस प्रकार राजा को बुद्ध-लीला से धर्मोपदेश दे, कई दिन उद्यान मे रह, मृगो के झुड के साथ, अरण्य मे चला गया। उस हरिणी ने भी पुष्प सदृश पुत्र को जन्म दिया। वह खेलता खेलता शाख-मृग के पास चला जाता। उसकी माता उसे वहाँ जाता देख, 'पुत्र! अव से उसके पास न जाकर (केवल) निग्रोध (-मृग) के पास ही जाना' कह उपदेश देती हुई, यह गाथा कहती—

निग्रोधमेव सेवेय्य न साखमुपसवसे,
नीग्रोधस्मि मत सेय्यो यञ्चे साखस्मि जीवित॥

[निग्रोध की ही सेवा करे। साख के समीप न जाये। साख (के आश्रय) में जीने की अपेक्षा निग्रोध (के आश्रय) में मरना श्रेयस्कर है।]

निग्रोधमेव सेवय्य का अर्थ है कि तात ! तू, अथवा अपना हित चाहनेवाला अन्य कोई निग्रोध की ही सेवा करे=भजे=पास रहे । **न साखमुपसंवसे** का अर्थ है कि साख-मृग के पास न रहे, पास जाकर न रहे, उसके आश्रय मे रह कर जीविका न चलाए। **निग्रोधस्मि मत सेय्यो** का अर्थ है कि निग्रोध राजा के चरणो मे मरना भी श्रेष्ठ है, अच्छा है, उत्तम है। **यञ्चे साखस्मि जीवित** का अर्थ है कि साख (-मृग) के पास जो जीना है, वह श्रेष्ठ नही है, अच्छा नही है, उत्तम नही है।

उसके बाद से अभय-प्राप्त मृग मनुष्यो के खेत खाने लगे। मनुष्य 'यह, अभय-प्राप्त मृग हैं' (सोच) न उन्हें मारते थे, न भगाते थे। उन्होने राजाङ्गण मे इकट्ठे हो, राजा से इसकी शिकायत की। राजा ने उत्तर दिया—"मैने प्रसन्न चित्त हो, उस श्रेष्ठ निग्रोध मृग को वर दिया है। मै राज्य छोड दूगा, लेकिन उस प्रतिज्ञा को नहीं छोडूगा। जाओ, मेरे राज्य मे किसी को मृग मारने की छुट्टी नही है।"

निग्रोध मृग ने उस समाचार को सुन, मृगो के समूह को एकत्र कर, "अब से दूसरो के खेत न खाये जायें" (कह) मृगो को (खेत खाने से) रोक, मनुष्यो को कहलवाया कि अब से लगाकर खेती करनेवाले खेती की रक्षा के लिए बाड न बाँधे। (केवल) खेत को घेर करके पत्तो की झण्डी (=निशानी) बाँध दे। उस समय से खेतो में पत्तो की निशानी बाँधने की प्रथा आरम्भ हुई। उसके बाद से कोई भी मृग पत्तो की निशानी को न लाँघता। (क्योकि) बोधिसत्त्व ने उनको ऐसा करने का उपदेश दिया था। इस प्रकार मृग-यूथ को उपदेश दे, बोधिसत्त्व आयु पर्य्यन्त जीवित रह, कर्मानुसार (परलोक) सिधारे। राजा भी बोधिसत्त्व के उपदेशानुसार पुण्य कर्म करके, कर्मानुसार (परलोक) को सिधारा।

शास्ता ने, 'भिक्षुओ ! मै केवल अब ही इस स्थविरी तथा कुमार-काश्यप का आश्रय (-दाता) नही हुआ हूँ, पहले भी आश्रय (-दाता) रहा हूँ,—इस धर्म देशना को लाकर, चार आर्य-सत्य रूपी धर्म-देशना कर, दोनो कहानियाँ कह, मेल मिलाकर, जातक का सारांश निकाल दिखाया।

उस समय का साख-मृग (अब का) देवदत्त था। उसकी परिषद् (=टोली) भी देवदत्त-परिषद् थी। हिरणी (अबकी) थेरी (=स्थविरी) हुई।]पुत्र (अबके) कुमार-काश्यप। राजा (अबके) आनन्द (स्थविर)। लेकिन निग्रोध मृगराज तो मैं ही था।

१३. कण्डिन जातक

"धिरत्थु कण्डिनं सल्लं"—यह गाथा, बुद्ध ने जेतवन में विहार करते समय, पूर्व-भार्य्या के लोभ के बारे मे कही।

वह (कथा) आठवें परिच्छेद के इन्द्रिय-जातक[1] मे आयेगी।

क. वर्तमान कथा

भगवान् ने उस भिक्षु को कहा—"भिक्षु! पूर्व समय में भी तू इस स्त्री (-जाति) के कारण, प्राणों से हाथ धो, बिना लाट के अङ्गारो पर पकाया गया था।" भिक्षुओ ने भगवान् से उस बात को प्रकट करने की प्रार्थना की। भगवान ने पूर्व-जन्म की छिपी हुई बात प्रगट की —

अब आगे 'भिक्षुओ की प्रार्थना करना' तथा 'पूर्व-जन्म की छिपी बात होना' न कहकर केवल अतीत की बात कही—इतना ही कहेंगे। केवल इतना कहने पर भी 'प्रार्थना करना' तथा बादलो के गर्भ मे चन्द्रमा के निलकने की तरह, 'पूर्व-जन्म की छिपी बात का प्रकट होना'—यह सब पूर्वोक्त प्रकार से ही जोडकर समझना चाहिए।

---

[1] ४२३ जातक।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे मगध राष्ट्र के राजगृह (नगर) मे मगध-नरेश राज्य करते थे। मगध वासियो को खेती के समय मृगो से बडी हानि होती। वे (मृग) जगल में पर्वतो पर जाते। सो, एक जगली पर्वत-निवासी मृग, एक ग्राम वासिनी हरिणी के साथ सवास (=मेल) के कारण, उन मृगो के पर्वत से नीचे (=ग्रामान्त) उतरने के समय, उस हरिणी पर आसक्त हो, उन (मृगो) के साथ नीचे उतर आया। उस (हरिणी) ने उससे पूछा, "आर्य ! तू पर्वतवासी मूर्ख मृग सा कौन है ? ग्राम आशका तथा भय का स्थान है। (तू) हमारे साथ मत उतर।" लेकिन वह उस (हरिणी) पर आसक्त रहने के कारण नही लौटा और साथ ही आया।

मगध वासी, 'इस समय मृगो का पर्वत से उतरने का समय है' जान छिपे हुए स्थानो में (छिप कर) रहते। उन दोनो के आने के मार्ग पर भी, एक शिकारी, एक छिपे स्थान पर खडा था। हरिणी (=मृगपोतिका) ने, मनुष्य-गन्ध सूघ कर, 'एक शिकारी खडा होगा' सोच, उस बाल (=मूर्ख) मृग को आगे कर पीछे पीछे हो ली। शिकारी ने एक ही बाण के प्रहार से, उस मृग को वही गिरा दिया। हरिणी, आहत जान, छलाग मार कर, हवा की गति से भाग गई। शिकारी छिपे स्थान (=कोठे) से निकल, मृग को काट कर, अग्नि जलाकर बिना लाट के अङ्गारो पर मधुर मास को पका, खा कर, पानी पी, रक्त की बूद चूते शेष मास को बहँगी पर रख, बच्चो को सन्तुष्ट करने के लिए घर ले गया।

उस समय बोधिसत्त्व ने उस जगल मे देवता होकर जन्म लिया था। उन्होने उस घटना को देख, (सोचा), यह मूर्ख-मृग न तो माता के लिए मरा न पिता के लिए, (यह मरा तो) कामुकता के लिए। कामुकता के कारण प्राणी सुगति से (गिर कर) हाथो का कटना आदि दुर्गति, पाँच प्रकार के बन्धनादि (तथा) नाना प्रकार के दुःख को प्राप्त होते है। दूसरो को मरने का दुःख देना भी, इस लोक में निन्दनीय ही है। जिस देश पर स्त्री न्यायाधीश (=विचारक) होती है, अनुशासन करती है, वह स्त्री की अधीनता में रहनेवाला देश भी निन्दनीय ही है। इस प्रकार एक गाथा से तीन निन्दनीय वस्तुओ को दिखाकर, वन देवताओ को 'साधुकार' देकर गन्धपुष्पादि से पूजा करने के समय मधुर स्वर से उस वन-खण्ड को उन्नादित करते हुए उस गाथा से धर्मोपदेश दिया—

धिरत्थु कण्डिन सल्ल पुरिस गाळहवेधिनं,
धिरत्थु तं जनपद यत्थित्थी परिनायिका;
ते चापि धिक्किता सत्ता ये इत्थीन वस गता ॥

[कण्डेवाले तीर से, जोर से वेधनेवाले मनुष्य को धिक्कार है। जिस जनपद का स्त्रियाँ सञ्चालन करती हैं, उस जनपद को धिक्कार है। जो सत्त्व (=प्राणी) स्त्रियों के वशीभूत हो जाते हैं, उन प्राणियों को धिक्कार है।]

धिरत्थु गरहा=निन्दा के अर्थ में 'निपात' है। सो इसे यहाँ त्रास और उद्वेग के कारण गर्हा-वाचक समझना चाहिए। त्रसित और उद्विग्न-चित्त होकर ही बोधिसत्त्व ने उस प्रकार कहा। 'कण्डा' जिसको है, सो कण्डी, उसको (=न) कण्डी को। उस 'कण्ड' को प्रवेश होने के अर्थ मे शल्य कहते हैं। इसलिए कण्डिन सल्ल का अर्थ है सल्ल कण्डिन। अथवा शल्य वाला होने के कारण शल्य, और शल्य बड़ा भारी ज़ख्म करके, जोर का प्रहार देता, तेजी से बीधता है, इसलिए 'गाळ्ह-वेधी'। उस गाळ्ह-वेधी को गाळ्ह-वेधिन। नाना प्रकार के कण्डे, कुमुद (=कवल) के पत्ते के आकार के तल (=नोक) वाले, सीधे जाने वाले शल्य से युक्त पुरुष को—गाळ्हवेधिन पुरिस धिरत्थु—धिक्कार है।

परिनायिका का अर्थ है स्वामिनी (=ईश्वरा), सविधान (=प्रबन्ध) करनेवाली। 'धिक्किता' का अर्थ है गर्हिता। शेष, यहाँ स्पष्ट ही है। इससे आगे, इतना भी न कहकर, जो जो अस्पष्ट है, उसीकी व्याख्या करेंगे। इस प्रकार एक गाथा मे तीन निन्दित-चीजे दिखाकर, बोधिसत्त्व ने वन को उन्नादित करते हुए बुद्ध की भाँति (बुद्ध-लीला मे) धर्मोपदेश किया।

बुद्ध ने इस धर्मोपदेश को लाकर (आर्य-) सत्यों को प्रकाशित किया। (आर्य-) सत्यों के प्रकाशित होने की समाप्ति पर उत्कण्ठित भिक्षु स्रोतापत्तिफल मे प्रतिष्ठित हुआ। शास्ता ने दोनो कथाये कह, मेल मिला, जातक का साराश निकाल दिखाया। इसमे आगे 'दोनो कथाये कहकर'—यह शब्द बिना कहे, केवल 'मेल मिलाकर' (=अनुसन्धिघटेत्वा)—इतना ही कहेगे। लेकिन बिना कहे भी, उसे, पूर्वोक्त प्रकार से ही ग्रहण करना चाहिए।

उस समय का पर्वतवासी मृग (अब का) उत्कण्ठित-भिक्षु था। मृग पोतिका (अब की) पूर्व-भार्य्या थी। कामुकता में दोष दिखाकर, उपदेश करनेवाला देवता तो मैं ही था।

१४. वातमिग जातक

"न किरत्थि रसेहि पापियो"—यह गाथा, शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय चुल्लपिण्डपातिक-तिष्य स्थविर के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

शास्ता के राजगृह के समीप वेलुवन में विहार करते समय, एक महा सम्पत्ति-शाली सेठ-कुल के तिष्य-कुमार नामक पुत्र ने, एक दिन वेलुवन जा, शास्ता की धर्म-देशना सुन, प्रव्रजित होने की इच्छा से, प्रव्रज्या की याचना की। माता पिता की आज्ञा न मिलने पर, रट्ठपाल स्थविर[1] की तरह सप्ताह भर भूखे रह, माता पिता से आज्ञा ले, बुद्ध के पास प्रव्रज्या ग्रहण की। बुद्ध उसे प्रव्रजित करने के बाद, कोई आधे महीने तक वेलुवन में विहार कर, जेतवन को चले गये। वहाँ वह कुल-पुत्र तेरह धुताङ्ग व्रतों को ग्रहण कर, श्रावस्ती में क्रम से[2] भिक्षा माँगते हुए, समय बिताने लगा। चुल्लपिण्डपातिक तिस्स स्थविर का नाम लेने पर, वह बुद्ध मत में वैसे ही प्रगट=प्रसिद्ध था, जैसे आकाश तल पर चन्द्रमा। उस समय राजगृह में उत्सव (=नक्षत्र-क्रीडा) था। स्थविर के माता पिता, उन सब आभरणों को, जिन्हें स्थविर गृहस्थ में रहते पहनते थे, चाँदी की डलिया में रख, (उसे) अपनी छाती

---

[1] देखो मज्झिम निकाय सुत्त ८२ (३३०)
[2] एक सिरे से, सभी घरों से।

बात चल रही है ?" उन्होंने वह समाचार कहा। भगवान् ने "भिक्षुओ! यह भिक्षु केवल अब ही रस-तृष्णा मे बँधकर, उसके वशीभूत नही हुआ, पहले भी हुआ है," कह, अतीत की बात कही—

ख. अतीत कथा

"पूर्व-समय मे वाराणसी मे राजा ब्रह्मदत्त का (एक) **सञ्जय नामक** माली था। एक शीघ्रगामी मृग (वात-मृग) उस उद्यान मे आता, (लेकिन) **सञ्जय** को देख कर भाग जाता। **सञ्जय** उसको डराकर निकालता था। वह बार बार आकर उद्यान में ही चरता था। माली प्रति दिन उद्यान से नाना प्रकार के फल-फूल राजा के पास ले जाता था। एक दिन राजा ने उससे पूछा—"सौम्य। उद्यान-पाल! उद्यान में कोई आश्चर्य (की चीज) देखते हो?"

"देव! और तो कुछ नही देखता, हाँ यह देखता हूँ कि एक शीघ्र-गामी-मृग आकर उद्यान मे चरता है।"

"क्या, उसे पकड सकोगे?"

"यदि थोडा मधु मिले, तो उसे यहाँ राज-निवास के अन्दर भी ला सकूगा।"

राजा ने उसे मधु दिलवा दिया। उसने मधु ले, उद्यान में जाकर, शीघ्रगामी-मृग के चरने की जगह (कुछ) तिनको को मधु से माख (=चुपड) दिया। मृग आकर, मधु लगे तिनको को खाकर, रस-तृष्ण मे बँधा हुआ, किसी दूसरी जगह न जा, उद्यान मे ही आता था। माली ने, उसके मधु-लिप्त तृण में लुब्ध हो जाने पर धीरे धीरे अपने को प्रगट किया।

उसने उसे देख, कुछ दिन तक भाग कर, फिर फिर देखने से विश्वास पैदा कर, धीरे धीरे माली के हाथ में रखे तृणो को भी खाना आरम्भ कर दिया। माली ने उसका 'विश्वास जीत लिया' जान, राज-भवन तक सडक पर चटाइयाँ बिछवाईं। जहाँ तहाँ (पत्तो की) डालियाँ गिरवाईं। (तब वह) मधु के कुप्पे को कन्धे पर लटका, तृणो की पूली को बगल में दबा, मधु से माखे तृण मृग के आगे आगे बखेरते राज-भवन के अन्दर चला गया। मृग के अन्दर दाखिल होने पर द्वार बन्द कर लिये गये। मृग मनुष्यो को देखकर, काँपता हुआ, मरने से भयभीत (राज-) भवन के आङ्गण में इधर उधर भागने लगा। राजा ने प्रासाद से उतर, उसे काँपते देख, (सोचा)—वात-मृग मनुष्य दिखाई देने की जगह एक सप्ताह तक नही जाता।

और जहाँ से डर दिया जाय, वहाँ तो जन्म-भर नही जाता। सो इस प्रकार छिपकर रहनेवाला वात-मृग रस-तृष्णा मे बँधकर अब ऐसी जगह आ गया। भो! लोक मे रस-तृष्णा से बढ़कर बुरी चीज नही है। यह (सोच) इस गाथा से धर्मोपदेश की स्थापना की—

> न किरत्थि रसेहि पापियो आवासेहि वा सन्थवेहि वा।
> वातमिग गेहनिस्सित वसमानेसि रसेहि सञ्जयो॥

[निवासस्थान वा मित्रो के मिलाप की भी आसक्ति, रस की आसक्ति से बढ़कर खराब नही है। घोर जगल मे रहनेवाले मृग को रस के द्वारा सञ्जय ने वश मे कर लिया।]

'किर' तो यो ही 'निपात' है। रसेहि का अर्थ है जिह्वा से चखे जानेवाले मीठे, खट्टे आदि। पापियो=पापतर (=बहुत बुरी)। आवासेहि वा सन्थवेहि वा का अर्थ है दिल लगे हुए रहने के स्थान तथा मित्रो के मिलाप मे भी आसक्ति बुरी ही है, लेकिन आसक्ति-पूर्वक परिभोग=आवास से तथा मित्रो के मिलाप से सौगुणा, हजारगुणा बुरी है भोजन के रस मे आसक्ति, क्योकि आहार का सेवन निरन्तर करना होता है, (और) उसके बिना प्राणो की रक्षा नही हो सकती। बोधिसत्त्व ने इस अर्थ को पूर्व अनुश्रुति के अनुसार कहा कि न किरत्थि रसेहि पापियो आवासेहि वा सन्थवेहि वा। यहाँ उनकी दोष-पूर्णता प्रदर्शित कर वातमिग आदि कहा। गेह निस्सितं[1] का अर्थ है गहन स्थान में रहनेवाला।

भावार्थ यह है—देखो रसो की दोषपूर्णता—सञ्जय (नामक) माली ने अरण्य निवासी वातमृग (=जगली-मृग) को मधु-रस (के लालच) से, अपने वश मे कर लिया। सब ही जगह रस-भोग कीआसक्ति के समान दोषपूर्ण=बुरी, दूसरी कोई (चीज) नही। इस प्रकार रस-तृष्णा के दोष कहकर, उस मृग को (फिर) जगल में ही भेज दिया।

---

[1] 'अगेह-नस्सितं' पाठ अधिक अच्छा होता।

शास्ता ने, 'भिक्षुओ! न केवल अब ही, उस वेश्या ने इसे रस-तृष्णा मे बाँध-कर, अपने वश में किया है बल्कि पहले भी किया था।' इस धर्म-देशना को ला, मेल मिला, जातक का साराश निकाल दिखाया।

उस समय (का) सञ्जय यह (अब की) वेश्या थी। वातमृग (अब का) चुल्लपिण्डपातिक था। लेकिन वाराणसी का राजा तो मैं ही था।

१५. खरादिय जातक

"अट्ठखुर खरादिये" यह गाथा, बुद्ध ने जेतवन मे विहार करते समय, एक कटुभाषी भिक्षु के सम्बन्ध मे कही।

क. वर्तमान कथा

वह कटुभाषी भिक्षु (किसी का) उपदेश न ग्रहण करता था। बुद्ध ने उस से पूछा—"भिक्षु! क्या तू सचमुच कटुभाषी (है), (किसी का) उपदेश नही ग्रहण करता?"

"भगवान्! यह (बात) सच है।"

बुद्ध ने, 'पहले भी तू ने कटुभाषिता के कारण, पण्डितो का उपदेश नही ग्रहण किया, और पाश से बँधकर, अपने प्राणो का नाश किया' कह अतीत की कथा सुनाई।

ख. अतीत कथा

"पूर्व समय मे, वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करते समय, बोधिसत्त्व मृग योनि में पैदा हो, मृग-गण के साथ जगल में रहते थे। (एक दिन) उनकी बहन ने उन्हें हरिण-पुत्र दिखाकर कहा—"भाई! यह तुम्हारा भाजा है। इसे मृग-

माया सिखाओ।" यह कह (उसे मृग-पुत्र) सौपा। उसने भाजे को कहा—"अमुक समय पर आकर सीखना।" वह कहे हुए समय पर न आया। जैसे एक दिन उसी प्रकार सात दिनो तक, सात उपदेशो (=आज्ञाओ) का उल्लघन कर, वह मृग-माया को विना सीखे ही चरता हुआ पाश मे वध गया। माता ने भाई से आकर पूछा—"क्यो भाई! तू ने भाजे को मृग-माया सिखा दी थी?" बोधिसत्त्व ने, "उस वात न मानने वाले का सोच मत कर। तेरे पुत्र ने मृग-माया नही सीखी" कह, अब भी उसे सिखाने का अनिच्छुक ही हो, यह गाथा कही—

अट्ठखुरं खरादिये! मिग वङ्कातिवङ्किन।
सत्तहि कलाहतिक्कन्त न तं ओवदितुस्सहे॥

[हे खरादिये! वकातिवक, सात कलाओ (=उपदेशो) का उल्लघन करने वाले, उस मृग को मेरी उपदेश देने की रुचि (=प्रेरणा) नही।]

अट्ठखुरं; एक एक पाव मे दो दो (खुर) होने से आठ खुर। **खरादिये**; इस नाम से सम्बोधन करता है। **मिग**—सव (मृगो) के लिए एक शब्द है। **वङ्कातिवङ्किनं**—आरम्भ मे टेढे, आगे और भर भी टेढे, इस प्रकार वकातिवक (टेढे अति टेढे), जिसके ऐसे सीग हो, वह वकातिवकी, उस (=त), वकातिवकी को। **सत्तहि कलाहतिक्कन्तं** का अर्थ है, उपदेश के सात समयो पर उपदेश का उल्लघन करने वाला। **न त ओवदिस्तुस्सहे** का अर्थ है, इस प्रकार के कटुभाषी मृग को उपदेश देने की मेरी प्रवृत्ति नही होती। ऐसे को उपदेश देने का मुझे विचार तक नही होता।—यही स्पष्ट किया है।

सो शिकारी, उस पाश मे वधे हुए कटुभाषी मृग को मारकर, मास लेकर चला गया।

बुद्ध ने भी, 'भिक्षु! तू केवल अब ही कटुभाषी नही है, पहले भी कटुभाषी ही रहा है'—यह धर्म-देशना लाकर, मेल मिला, जातक का साराश निकाल दिखाया।

उस समय का भाजा मृग (अब का) कटुभाषी भिक्षु था। वहन (अब की) उत्पल-वर्णा (भिक्षुणी) थी। लेकिन उपदेश देने वाला मृग तो मैं ही था।

१६. तिपल्लत्थमिग जातक

"मिगतिपल्लत्थ . . " यह गाथा, शास्ता ने, कोसम्बी[1] के बदरिकाराम में विहार करते हुए शिक्षा-कामी राहुल स्थविर के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

एक समय, शास्ता के आलवि नगर के पास के अग्गालव चैत्य में विहार करते समय उपासिकायें और भिक्षुणियाँ धर्म सुनने के लिए विहार को जाती थी। धर्म-श्रवण दिन में होता था। समय बीतने पर, उपासिकाओं और भिक्षुणियों ने जाना छोड दिया। भिक्षु और उपासक ही (धर्म-श्रवणार्थ) रह गये। उसके बाद धर्म-श्रवण रात को होने लगा। धर्म सुनने के बाद स्थविर भिक्षु अपने अपने निवास स्थान को चले जाते थे। दहर (=कम आयु वाले भिक्षु) उपासकों के साथ उपस्थानशाला (=दान-शाला) में सो जाते थे। उनके सो जाने पर, कोई कोई घुर घुर श्वास खींचते हुए दाँतो को कटकाते हुए सोते। कोई कोई थोडी देर सो कर उठ खडे होते। उस विकार (=विकृति) को देखकर, उन्होंने बुद्ध से निवेदन किया। भगवान् 'जो भिक्षु (किसी) अनुपसम्पन्नके साथ सोये, वह पाचित्तिय (- प्रायश्चित्त करने योग्य दोष) का भागी होता है' शिक्षा-पद की घोषणा (- प्रज्ञप्ति) कर, कोसम्बी को चले गये।

[1] इलाहाबाद से प्राय तीस मील पश्चिम, जमुना के बायें किनारे कोसम (जिला इलाहाबाद, उ० प्र०)।

भिक्षुओ ने आयुष्मान् राहुल को कहा—"आयुष्मान् राहुल ! भगवान ने शिक्षापद की घोषणा कर दी है। अब तू अपने लिए निवासस्थान ढूढ।" इससे पहले, भगवान के प्रति गौरव रहने से , और उस आयुष्मान् राहुल के शिक्षा-कामी होने से , भिक्षु, आयुष्मान् राहुल के अपने निवास-स्थान पर आने पर उसका बडा सत्कार करते थे। उसके लिए छोटी सी चारपाई बिछा देते, और सिरहाना करने के लिए चीवर देते थे। लेकिन उस दिन शिक्षा-पद के भय से निवास-स्थान तक नही दिया। राहुल-भद्र भी दशबल (-धारी) मेरे पिता है या धर्म-सेनापति (=सारिपुत्र) मेरे उपाध्याय है, या महामौदगल्यायन मेरे आचार्य है या आनन्द स्थविर मेरे चाचा है (सोच) उनमे से किसी एक के पास न जा दशबल (-धारी) के काम आने वाले शौचागार मे, ब्रह्मविमान मे प्रविष्ट होने के सदृश, दाखिल हो, (वही) रहा।

बुद्धो के शौचागार का द्वार भली प्रकार बन्द रहता है। भूमि सुगन्धियुक्त होती है, सुगन्धित मालाओ की लडियाँ फैली ही होती है। तमाम रात दीपक जलता है। लेकिन राहुल-भद्र ने, उस शौच-स्थान (=कुटि) मे इन सब चीजो (=सम्पत्ति) के होने के कारण, वहाँ वास नही किया, बल्कि भिक्षुओ के 'अब तू अपने स्थान को जा' कहने से, उनके उपदेश का गौरव रखनेवाला, तथा शिक्षा-कामी होने से वहाँ निवास किया। बीच बीच मे, भिक्षु भी, उस आयुष्मान् को दूर से आता देख, उसकी परीक्षा लेने के लिए, मुट्ठ वाली झाड अथवा कूडा-फेकने-वाला, बाहर फेक देते। और उसके आने पर पूछते—"आवुसो ! यह बाहर किसने छोड दिये ?" तब किसी के, 'राहुल ! इस मार्ग से गया है' कहने पर, वह 'भन्ते ! मै यह नही जानता हूँ' न कहकर, उन्हे उचित स्थान पर रख, 'भन्ते ! मुझे क्षमा करे' कह क्षमा माँगकर जाता। यह ऐसा शिक्षाकामी था। इस अपनी शिक्षा-काम्यता के ही कारण , उसने वहाँ निवास किया।

शास्ता ने अरुणोदय से पूर्व ही शौचालय के द्वार पर खडे होकर खाँसा। उस आयुष्मान् ने भी खाँसा। "यह कौन है ?" "मै राहुल हूँ" कह, निकलकर प्रणाम किया। "राहुल ! तू यहाँ किसलिए पडा है ?" "रहने का स्थान न मिलने के कारण। भन्ते ! भिक्षु पहले मेरा सत्कार (=सग्रह) करते थे, लेकिन अब आपत्ति (=दोषी होने) के भय से मुझे निवास-स्थान नही देते। सो मै "इस स्थान में औरो का दखल नही" सोच यहाँ लेटा हूँ।"

भगवान् के मन में 'राहुल को (भी) इस प्रकार लापरवाही कर, भिक्षु अन्य कुल-पुत्रो को प्रव्रजित कर क्या करेंगे ?' (सोच) धर्म-संवेग उत्पन्न हुआ। सो प्रातःकाल ही, सब भिक्षुओ को एकत्र करवा, भगवान् ने धर्म-सेनापति से पूछा—"सारिपुत्र तुझे मालूम है कि आज (रात) राहुल कहाँ रहा ?" "भन्ते! नहीं मालूम है।" "सारिपुत्र! आज राहुल शौचालय (=वच्च-कुटि) में रहा है। सारिपुत्र! तुम राहुल को इस प्रकार छोडकर, और बालको को प्रव्रजित कर क्या करोगे? यह (हाल) रहने पर तो, इस शासन मे प्रव्रजित प्रतिष्ठित नही होंगे। इससे आगे अनुपसम्पन्न को एक दो दिन, अपने पास रखकर, तीसरे दिन उनका निवासस्थान मालूम कर, उन्हे (वहाँ) बाहर बसाओ"—इस उप-नियम को बनाकर, फिर शिक्षा-पद की घोषणा की।

उस समय धर्म-सभा में बैठे भिक्षु, राहुल की प्रशंसा कर रहे थे। "आयुष्मानो! देखो! यह राहुल कितना शिक्षा-कामी है! 'अपने निवास-स्थान को जा' कहने पर, 'मैं दशबल का पुत्र हूँ। तुम कौन लगते हो शयनासन के। निकलो, तुम ही निकलो।'—इस प्रकार, किसी एक भिक्षु को भी प्रत्युत्तर न दे, शौच-स्थान में जा (सो) रहा।" उनके इस प्रकार कहते समय, शास्ता ने धर्म-सभा में आ, अलंकृत आसन पर बैठ पूछा—"भिक्षुओ! इस समय बैठे क्या बात-चीत कर रहे थे?" "भन्ते! और कोई बात नही; राहुल के शिक्षा-कामी होने की बात।" शास्ता ने, "भिक्षुओ! राहुल केवल अब ही शिक्षा-कामी नही है पूर्व पशु-योनि में भी शिक्षा-कामी ही रहा है" (कह) अतीत की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में राजगृह मे एक मगध-नरेश राज्य करते थे। उस समय बोधिसत्त्व मृग की योनि में उत्पन्न हो, मृग-गण के सहित अरण्य में रहते थे। उनकी बहन ने, अपने पुत्र को उनके पास ले जाकर, कहा—"भाई! (अपने) इस भाजे को मृग-माया सिखा।" बोधिसत्त्व ने 'अच्छा' कह, स्वीकार कर, कहा—'जा तात! अमुक समय आकर सीखना।' उसने मामा के बताये हुए समय पर ही, उसके पास जाकर, मृग-माया सीखी। एक दिन जगल में चरते हुए, उसने, पाश में बँधकर, बँधे जाने की चिल्लाहट (=बन्धरव) की। मृग-गण ने दौड आकर, उसकी माता से कहा—"तेरा पुत्र पाश में बँध गया।" उसने भाई के पास जाकर

पूछा—"भाई ! क्या तेरे भाजे ने मृग-माया सीख रक्खी है ?" वोधिसत्त्व ने, "तू पुत्र के विषय मे कुछ बुरी आशका मत कर, उसने मृग-माया भली प्रकार सीख रक्खी है। वह, अभी हँसता हँसता चला आयगा" कह यह गाथा कही—

मिग तिपल्लत्थमनेकाय,
अखुट्ठर अडढरत्तावपायि
एकेन सोतेन छमास्ससन्तो
छहि कलाहतिभोति भागिणेय्यो ॥

[तीन प्रकार से सोनेवाला, अनेक प्रकार की माया जाननेवाला, अठ खुरो वाला, आधीरात को पानी पीनेवाला, (मेरा) भाजा, एक नासिका-छिद्र को पृथ्वी पर रक्खे स्वास लेते हुए छ कलाओ से (शिकारी को) धोखा देगा।]

मृग=भाजा मृग। **तिपल्लत्थ,** पल्लथ कहते है (पालथी को), शयन को। दोनो पासो पर, और गौ के वैठने की तरह सीधा वैठना, इस तरह जिसका तीन प्रकार का आसन (=शयन) हो, वह 'तिपल्लथो', उस तिपल्लत्थ को, 'तिपल्लत्थ'। **अनेकमायं** का अर्थ है वहुत माया, वहुत धोखा। **अट्ठखुर** एक एक पैर में दो दो खुर होने से आठ खुर। **अडढरत्तावपायि,** का अर्थ है पूर्व-याम के समाप्त होने पर, मध्यम-याम में जगल से लौटकर पानी के पीने से, 'आधी रात को जल पीता है' करके **अडढरत्तावपायि,** उस अडढरत्तावपायि को—यही अर्थ है। मैंने अपने भाजे को अच्छी प्रकार मृग-माया सिखा दी है। कैसे ? **एकेन सोतेन छमस्ससन्तो छहि कलाहतिभोति भागिणेय्यो।** इसका भावार्थ है कि मैने तेरे पुत्र को इस प्रकार सिखाया है। "ऊपर के एक नासिका-श्रोत की वायु को रोककर, पृथ्वी से लगे हुए, एक निचले नासिका छिद्र से, वहाँ पृथ्वी ही मे साँस लेते हुए, छ कलाओ से शिकारी को (अतिभोति=छ प्रकार से अज्झोत्थरति) धोखा देता है। कौन सी छ कलाओ मे। चारो पैर पसारकर, एक पासे पर सोने से, खुरो से तिनके और बालू खोदने से, जीभ निकालने से, पेट को फुलाने से, पाखाना-पेशाब करने से, हवा (स्वास) को रोकने से। दूसरा क्रम—पैरो को अगली ओर पसारने से, शरीर तानने से, दोनो ओर पलटने से, ऊपर उछलने से, नीचे पटकने से,—इन छ कलाओ से धोखा देता है, मर गया है, ऐसा ख्याल पैदा कर धोखा देता है। 'इस प्रकार, उसको मृग-माया सिखाई'—प्रगट किया है। अन्य क्रम—उसको ऐसे सिखाया,

जैसे एकेन सोतेन छमास्ससन्तो छहि कलाह— दो प्रकार से कहे गये छः छ ढगो से (कलाहति=कलायिस्सति) शिकारी को धोखा देगा। 'भोति' शब्द से वहन को सम्बोधन किया है। भागिणेय्यो—इस प्रकार छ ढग से धोखा दे सकने-वाले भाजे का निर्देश करता है।"

इस प्रकार बोधिसत्त्व ने, भाजे के सम्यक् मृग-माया सीख रहने की बात कह बहन को सान्त्वना दी। उस हरिण-बच्चे ने भी पाश मे बँधने पर, बिना हाथ पैर मारे ही, पृथ्वी पर महा-सुख पूर्वक टाँगें फैलाकर, लेट, पैरो के पास स्थान पर खुर-प्रहार से बालू तथा तृणो को उखाड, पेशाब पाखाना कर, सिर को गिरा, जीभ निकाल, शरीर को मुंह की झाग मे भिगो, हवा मे पेट को फुला, आँखो को उलट, निचले नासिका-छिद्र मे स्वास लेते हुए, ऊपर के नासिका-छिद्र से स्वास लेना रोक, सारे शरीर को कडा कर, अपने को मर गये के सदृश दिखाया। नीली मक्खियो ने उसे घेर लिया। जहाँ तहाँ कौवे भी आ जुटे। शिकारी आकर पेट पर हाथ फेर, 'प्रात काल ही फँस गया होगा, अब सड चला' (सोच) उसकी बन्धन रस्सी खोल, 'अब इसे यही काटकर, इसका मास ले जाऊँगा' (सोच) आशका रहित हो, डाल-पात लेने लगा। हरिण-बच्चा उठ कर, चारो पैरो पर खडा हो, शरीर को तान, गर्दन को पसार, तेज वायु से उडाये गये बादल की तरह, जल्दी से माता के पास आ गया।

शास्ता ने, 'भिक्षुओ! राहुल (केवल) अब ही शिक्षा-कामी नही है, पहले भी शिक्षा कामी ही रहा है'—इस धर्म-देशना को ला, मेल मिला, जातक का सारांश निकाल दिखाया। उस समय का भाजा-हरिण बच्चा (अब का) राहुल। माता (अब की) उत्पलवर्णा थी। और माया-मृग तो मैं ही था।

१७. मारुत जातक

'काले वा यदि वा जुण्हे ' इस गाथा को शास्ता ने जेतवन में विहरते हुए, दो चिर-प्रव्रजितो (=वृद्ध-प्रव्रजितो) के बारे मे कहा।

क. वर्तमान कथा

वे (दोनो) कोशल जनपद के एक अरण्य-वास में रहते थे। एक का नाम था काल स्थविर और दूसरे का जुण्ह स्थविर। एक दिन जुण्ह (स्थविर) ने काल से पूछा—"भन्ते! सरदी किस समय पडती है?" उसने उत्तर दिया—"काल (=कृष्ण पक्ष) मे पडती है।" तब एक दिन काल ने जुण्ह से पूछा—"भन्ते! जुण्ह! सरदी किस समय पडती है?" उसने उत्तर दिया—"जुण्ह (=श्वेत पक्ष) में पडती है।" वे दोनो अपनी शका का निवटारा न कर सकने के कारण शास्ता के पास गये (और) शास्ता को प्रणाम कर पूछा—"भन्ते! सरदी किस समय पडती है?" शास्ता ने उनकी कथा सुन "भिक्षुओ! मैंने पहले भी तुम्हारे इस प्रश्न का उत्तर दिया है, लेकिन पूर्वजन्म से छिपा रहने के कारण, तुम उस उत्तर का ख्याल नही करते" कह, पूर्व जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे सिंह और व्याघ्र दो मित्र एक पर्वत-भाग की एक ही गुफा में रहते थे। उस समय वोधिसत्त्व भी ऋषि-प्रव्रज्या के अनुसार प्रव्रजित हो, उसी पर्वत-भाग में रहते थे। एक दिन उन (दोनो) मित्रो का सरदी के बारे मे विवाद चल पडा। व्याघ्र ने कहा—"काल (=कृष्ण पक्ष) मे पडती है" सिंह ने कहा—

"जुण्ह (=श्वेत पक्ष) में।" उन दोनो ने अपनी शका न निवटा सकने के कारण, बोधिसत्त्व से पूछा। बोधिसत्त्व ने यह गाथा कही—

काले वा यदि वा जुण्हे यदा वायति मालुतो,
वातजानि हि सीतानि उभोत्थमपराजिता ॥

[काल-पक्ष में, वा जुण्ह-पक्ष में जब भी वायु (=मारुत) चलती है (सरदी पडती है)। शीत, हवा से उत्पन्न होता है। दोनो कथन (=अर्थ) ही ठीक (=अपराजित) हैं।]

काले वा यदि वा जुण्हे का अर्थ है कृष्ण-पक्ष में वा श्वेत-पक्ष में। **यदा वाति मालुतो** का अर्थ है, जिस समय पुरवा आदि हवा चलती है, उस समय सरदी पडती है। किस कारण से? **वातजानि हि सीतानि,** क्योकि वायु के रहने पर ही शीत होता है, जिसका भावार्थ है कि कृष्ण-पक्ष वा शुक्ल-पक्ष का होना विशेष कारण नहीं। **उभोत्थमपराजित** का अर्थ है कि इस प्रश्न के बारे में तुम दोनो ही ठीक (=अपराजित) हो—इस प्रकार बोधिसत्त्व ने उन मित्रो को समझाया।

शास्ता ने "भिक्षुओ! मैंने पहले भी तुम्हारे इस प्रश्न का उत्तर दिया है" कह, इस धर्म-देशना को लाकर आर्य (-सत्यो) को प्रकाशित किया। (आर्य-) सत्यो के (प्रकाशन के) अन्त में दोनो स्थविर श्रोतापत्ति फल में प्रतिष्ठित हुए। शास्ता ने मेल मिलाकर, जातक का साराश निकाल दिखाया। उस समय का व्याघ्र (अब का) काल (स्थविर) था। सिंह (अब का) जुण्ह (स्थविर) था। प्रश्न का उत्तर देनेवाला तपस्वी तो मैं ही था।

१८. मतकभत्त जातक

"एव चे सत्ता जानेय्युं–" इस गाथा को शास्ता ने जेतवन मे विहार करते हुए, श्राद्ध (=मतकभत्त) के बारे मे कहा।

क. वर्तमान कथा

उस समय मनुष्य बहुत सी भेड बकरी आदि को मार, मृत-सम्बन्धियो की याद मे श्राद्ध (=मतकभत्त) करते थे। भिक्षुओ ने उन मनुष्यो को वैसा करते देख शास्ता से पूछा—"भन्ते! मनुष्य बहुत से प्राणियो की प्राणहानि कर श्राद्ध करते है (=मृतक-भात देते है)। क्या भन्ते! इससे (ऐसा करनेवालो की) उन्नति (हो सकती) है?" शास्ता ने कहा—"भिक्षुओ! श्राद्ध करने के विचार से भी प्राण-हानि करनेवाले की कुछ भी उन्नति नही है। पूर्व समय में पण्डितो ने आकाश में बैठ, धर्मोपदेश कर, (प्राण, नाश) के दोष दिखा, सकल जम्बूद्वीप-वासियो से, इस कर्म को छुडवा दिया था। अब (वह बात) पूर्व-जन्मो में छिप जाने के कारण, यह (कर्म) फिर प्रादुर्भूत हो गया।" (यह कह) अतीत की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे बाराणसी मे (राजा) ब्रह्मदत्त के राज्य करते समय, एक त्रिवेदज्ञ, दिशा-प्रमुख (=लोक-प्रसिद्ध) आचार्य-ब्राह्मण ने श्राद्ध करने के विचार से, एक भेडा मँगवा कर, अपने शिष्यो को कहा—तात! इस भेडे को नदी पर ले जा, नहला, गले मे माला डाल, पञ्चाङगुलियो (का चिन्ह) दे, सजा कर ले आओ। उन्होने 'अच्छा' कह, स्वीकार कर, उस (भेडे) को नदी पर ले जा, (वहाँ) नहला,

मजा, नदी के किनारे पर रक्खा। वह भेडा, अपने पूर्व-कर्म का विचार कर, 'ऐसे दु ग्व मे आज मुक्त हो जाऊँगा' सोच हर्षित हो, घडे के फूटने की तरह, ज़ोर से हँसा और (फिर) 'यह ब्राह्मण मुझे मारकर जिस दु ख को मैंने भोगा है, उसे भोगेगा' सोच, ब्राह्मण के प्रति करुणा का भाव उत्पन्न कर, जोर से रोया। उन ब्रह्मचारियो (=माणवको) ने उससे पूछा—"सम्म ! भेड ! तू ज़ोर (=महाशब्द) से हँसा और रोया ! किस कारण तू हँसा ? और किस कारण रोया ?" "तुम यह बात, मुझे अपने आचार्य्य के पास ले जाकर पूछना।" उन्होने उसे ले जाकर, यह बात अपने आचार्य्य मे जा कही।

आचार्य्य ने उनकी बात सुनकर भेडे से पूछा—"भेड ! तू किस लिए हँसा ? किस लिए रोया ?" भेडे ने पूर्व-जन्म-स्मरण-ज्ञान से अपने पूर्व-कर्म का स्मरण कर ब्राह्मण को कहा—"हे ब्राह्मण ! पूर्व-जन्म मे मैंने तेरे सदृश ही मन्त्रपाठी ब्राह्मण हो, 'श्राद्ध करूँगा' (सोच) एक भेडा मारकर (मृतक-भात) दिया। सो, मैंने उस एक भेडे को मारने के कारण, एक कम पाँच सौ योनियो मे अपना सीस कटवाया। यह मेरा पाँचसौवाँ, अन्तिम जन्म है। 'आज मैं इस दुख से मुक्त हो जाऊँगा' (सोच) हर्षित हुआ, (और) इस कारण से हँसा। और जो रोया ? सो (तो यह सोचकर) कि मैं, तो एक भेडे के मारने के कारण पाँच सौ जन्मो में (अपना) सीस कटा कर, आज इस दुःख से मुक्त हो जाऊँगा, (लेकिन) यह ब्राह्मण मुझे मारकर, मेरी तरह पाँच सौ जन्मो तक सीस कटाने के दु ख को भोगेगा। सो, तेरे प्रति करुणा से रोया।" "भेड ! डर मत। मै तुझे नही मारूँगा।" "ब्राह्मण ! क्या कहते हो ? तुम चाहे मारो, चाहे न मारो, मै आज मरण दु ख से नही छूट सकता।" "भेड ! डर मत। मैं तेरी हिफ़ाज़त (=आरक्षा) करता हुआ, तेरे साथ ही साथ घूमूगा।" "ब्राह्मण ! तेरी हिफाजत अल्प-मात्र है, मेरा किया हुआ पाप बडा भारी है।"

ब्राह्मण, भेडे को मुक्त कर, 'इस भेडे को किसीको न मारने दूगा' (सोच) शिष्यों को ले, भेडे के साथ ही साथ घूमने लगा। भेडे ने छूटते ही, एक पत्थर की शिला के पास उगी हुई झाडी की ओर गर्दन उठाकर, पत्ते खाने शुरु किये। उसी क्षण, उस पत्थर-शिला पर बिजली पडी। उसमें से पत्थर की एक फाँक ने छीज कर, भेडे की पसारी हुई गर्दन पर गिर, गर्दन काट दी। जन (-समूह) एकत्र हो गया। उस समय बोधिसत्त्व, उस जगह वृक्ष-देवता हो कर उत्पन्न हुआ

था। उनने उन लोगो को देखते ही, (अपनी) दैव-शक्ति से आकाश में पल्लथी मारकर बैठ, 'अच्छा हो! यदि ये प्राणी, पाप-कर्म के इस प्रकार के फल जानकर, प्राण-हानि न करें' (सोच) मधुरस्वर से धर्मोपदेश करते हुए, यह गाथा कही—

एवं चे सत्ता जानेय्युं दुक्खाय जाति सम्भवो,
न पाणो पाणिनं हञ्ञे पाणघाती हि सोचति ॥

[यदि प्राणी, इस बात को समझ ले कि जाति (=जन्म लेना) दु ख है, तो (एक) प्राणी दूसरे प्राणी की हत्या न करे। प्राण-घात करनेवाले को चिन्तित रहना पड़ता है।]

"**एवञ्चे सत्ताजानेय्युं....**" यदि प्राणी इस प्रकार जान ले, कैसे **दुक्खायं जाति सम्भवो** यह जहाँ तहाँ जन्म लेना तथा उत्पन्न (हुए) की क्रमपूर्वक वृद्धि कहलाने वाला सम्भव (=होना)—यह, जाति, व्याधि, मरण, अप्रिय-सम्प्रयोग, प्रिय-विप्रयोग, हस्त-पाद छेदन आदि दु खो का कारण होने से दु ख है—यदि इसे जान ले। **न पाणो पाणिन हञ्ञे** का अर्थ है कि दूसरो का वध करनेवाले का वध होता है, पीडा देनेवाले को पीडा होती है, इस प्रकार दूसरे जन्म मे दु ख भोगना होता है, यदि इसे जान ले तो कोई प्राणी दूसरे प्राणी की हत्या न करे, एक सत्व दूसरे सत्व की हत्या न करे। किस कारण से? **प्राणघाती हि सोचति** क्योकि अपने हाथ मे मारना दूसरे के हाथ से मरवाना आदि छ कर्मों मे से किसी भी एक कर्म मे दूसरे को जीवितेन्द्रिय (=प्राण) के नाश करनेवाला प्राण-घाती व्यक्ति, आठ महा-नरको मे, सोलह उस्सद-नरको मे, नाना प्रकार की पशु-योनियो मे, प्रेत-योनि मे, तथा असुर-योनि मे—इन चार प्रकार के अपायो मे महा-दु ख का अनुभव करते हुए, दीर्घ काल तक अन्तर-दाह करने वाले शोक से चिन्तित रहता है। अथवा, जैसे यह भेड मरने के डर से चिन्तित रहा, वैसे दीर्घ काल तक चिन्तित रहता है—यह जान कर भी कोई प्राणी प्राणियो की हत्या न करे। कोई भी प्राणातिपात (प्राण-घात) का कर्म न करे। लेकिन मोह से मूढ हुए, अविद्या से अन्धे हुए (लोग) इन दुष्परिणामो को न देखने के कारण प्राणातिपात करते हैं।

इस प्रकार महासत्व ने निरय (=नरक)-भय का डर दिखाकर धर्मोपदेश किया। मनुष्य, उस धर्मोपदेश को सुन, निरय से भयभीत हो, प्राणातिपात (जीव-हिंसा) से हटे। बोधिसत्त्व, उपदेश दे, मनुष्यो को शील (सदाचार) मे प्रतिष्ठित कर, (अपने) कर्मानुसार, (परलोक) गये। जन (-समूह) ने भी बोधिसत्त्व के उपदेशानुसार आचरण कर, दान-देना आदि पुण्य-कर्म कर, देव-नगर को भर दिया। शास्ता ने इस धर्म-देशना को ला, मेल मिला कर, जातक का सारांश निकाल दिखाया—"मैं ही उस समय वृक्ष-देवता था।"

१९. आयाचितभत्त जातक

'सचे मुञ्चे .....' इस गाथा को, शास्ता ने जेतवन मे विहार करते हुए, देवताओ की याचना सम्बन्धी बलिकर्म (=मिन्नत मानना) के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

उस समय (व्यापारी) लोग, व्यापार के लिये जाते समय, प्राणियो को मार, देवताओ की बलि चढा, 'हम (यदि) बिना विघ्न-बाधा के (अपनी) अर्थ-सिद्धि करके लौटें, तो फिर आपको बलि चढायेंगे' कह, मिन्नत मान (=आयाचना) कर जाते थे। फिर बिना विघ्न-बाधा के अर्थ (=मतलब) पूरा कर, लौट आने पर, 'यह देव-कृपा से हुआ' सोच, बहुत से प्राणियो को मारकर, मिन्नत पूरी करने (=आयाचना) से मुक्त होने के लिए, बलि-कर्म करते। उसे देख भिक्षुओ ने भगवान् से पूछा—भन्ते! इस (बलि-कर्म) से कुछ मतलब सिद्ध होता है? भगवान् ने अतीत की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे काशी-राष्ट्र के एक गामडे मे, एक कुटुम्वी ने ग्राम-द्वार पर खडे न्यग्रोध-वृक्ष के देवता की मिन्नत मान (=वलि-कर्म की प्रतिज्ञा) कर, बिना विघ्न-वाधा के (वापिस) लौट, वहुत से प्राणियो का वध कर, मिन्नत पूरी करनी चाही। वह वृक्ष के नीचे गया। तव वृक्ष-देवता ने वृक्ष के टहने पर खडे होकर यह गाथा कही—

सचे मुञ्चे पेच्च मुञ्चे मुच्चमानो हि वज्झति,
न हेवं धीरा मुच्चन्ति, मुत्ति वालस्स वन्धनं।

[यदि मुक्त होना है, तो आगे (फिर फिर के जन्म) से मुक्त हो, तू तो मुक्त होने का प्रयत्न करता हुआ, और भी वँधता है। धीरा (पण्डित) इस प्रकार मुक्त नही होते। वाल (=मूर्ख मनुष्य) का, मुक्ति (का प्रयत्न), और भी, उसके वन्धन (का कारण) होता है।]

सच मुञ्चे पेच्च मुञ्चे=भो पुरुष! यदि तू मुक्त होवे, यदि मुक्त होने की इच्छा होवे, (तो) **पेच्च मुञ्चे,** तो जैसे परलोक से मुक्त हो सके, वैसे (मुक्त होवे), **मुच्चमानो हि वज्झति,** लेकिन जैसे तू प्राण-घात कर मुक्त होना चाहता है, वैसे तो मुक्त होने का प्रयत्न करनेवाला पाप-कर्म से वँधता है। **न हेव धीरा मुच्चन्ति,** जो पण्डित पुरुष है वह इस प्रकार जन्म-मरण से मुक्त नही होते। क्यो? **एव रूपा हि मुत्ति वालस्स वन्धनं** इस प्रकार प्राणाति-पात करके प्राप्त की गई "मुक्ति" मूर्ख का वन्धन ही होती है—इस धर्म का उपदेश किया।

उस समय से आरम्भ करके मनुष्यो ने इस प्रकार के जीव-हिंसा-कर्म से हट धर्मानुसार आचरण कर, देव-नगर की पूर्ति की। शास्ता ने इस धर्म-देशना को ला, मेल मिला, जातक का साराश निकाल दिखाया। "उस समय, मैं ही वृक्ष-देवता था।"

२०. नलपाण जातक

"दिस्वा पदमनुत्तिण्ण..." यह गाथा, शास्ता ने कोशल (जनपद) में चारिका करते हुए, नलक-पान ग्राम पहुँच नलक-पान पुष्करिणी पर केतक वन मे विहार करते हुए नलदण्ड (सरकण्डो) के वारे में कही।

क. वर्तमान कथा

उस समय, भिक्षुओ ने नलक-पाण पुष्करिणी मे नहा कर, सूई-घर (=सूई रखने की नालियाँ) वनाने के लिए, श्रामणरो से सरकण्डे मँगवा, उनके आर पार छेद देख, शास्ता के पास आकर पूछा—भन्ते! हम ने सूई-घर वनाने के लिए सरकण्डे मँगवाए है, वह नीचे से ऊपर तक छिदे हुए है। इसका क्या कारण है? शास्ता ने "भिक्षुओ! यह मेरे पुराने अधिष्ठान (=निश्चय) (का फल) है" कह अतीत की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वह वन-खण्ड (एक) अरण्य ही था। वहाँ की पुष्करिणी मे रहनेवाला एक जल-राक्षस भी (पुष्करिणी में) उतरने वालो को खा जाता था। उस समय वोधिसत्त्व, रोहित मृग के बच्चे जितने वडे, कपिराज हो, अस्सी हज़ार वानरो से घिरे, कपि-सेना के नायक हो अरण्य मे रहते थे। उसने वानर-गण को उपदेश दिया—"तात! इस अरण्य में विष-वृक्ष है, अमनुष्य-परिगृहीत पुष्करिणियाँ है; इसलिए तुम किसी ऐसे फल-फूल को, जिसे पहले न खाया हो खाने के समय, किसी जल को, जिसे पहले न पिया हो पीने के समय मुझे पूछ लेना।" वे "अच्छा" (कह) स्वीकार कर, एक दिन ऐसे स्थान पर गये, जहाँ पहले कभी

न गये थे। वहाँ दिन मे बहुत देर तक पानी ढूढते हुए, एक पुष्करिणी को देख, बिना पानी पिये, वहाँ बैठे, बोधिसत्त्व के आने की प्रतीक्षा करने लगे। बोधिसत्त्व ने आकर पूछा। "तात! क्यो पानी नही पीते?" "आपके आने की प्रतीक्षा कर रहे है।" "तात! अच्छा किया" (कह) बोधिसत्व ने पुष्करिणी के चारो ओर घूमकर, पद-चिन्हो को देखते हुए, (केवल) उतरने के ही चिन्हो को देखा। वापिस चढने (के चिन्हो) को नही।

'यह पुष्करिणी, निश्चय-पूर्वक अमनुष्य-परिगृहीत है' जान, उसने कहा—"तात! तुमने अच्छा किया, जो पानी नही तिया। यह पुष्करिनी अमनुष्य-परिगृहीत (ही) है।" जल-राक्षस ने भी यह जान, कि वह (पानी पीने के लिए) नही उतर रहे है, नीले पेट, सफेद मुह, और लाल-हाथ-पैर वाला वीभत्स रूप धारण कर, पानी को चीरकर, (बाहर) निकल कहा—"तुम किस लिए बैठे हो? उतर कर, पानी पीओ?"

बोधिसत्व ने पूछा—"तू यहाँ पैदा-हुआ जल-राक्षस है?"

"हाँ! मै हूँ।"

"तू! यहाँ उतरने वालो को हडप लेता है?"

"हाँ! मै यहाँ उतरने वालो को लेता हूँ। और तो और, मै पक्षियो तक को नही छोडता। तुम, सब को भी खाऊँगा।"

"हम तुझे, अपने को खाने नही देगे।"

"और पानी पिओगे?"

"हाँ! पानी पियेगे, और तेरे वशी-भूत न होगे।"

"तो, कैसे पानी पीओगे?"

"क्या तू समझता है कि (पुष्करिणी मे) उतर कर पीयेगे? हम अस्सी हजार के अस्सी हजार (पुष्करिणी मे) विना उतरे, एक एक सरकण्डा ले, कवल की नाली से पानी पीने की तरह, तेरी पुष्करिणी का पानी पियेगे! इस प्रकार, तू हमे खा न सकेगा"—इस अर्थ को जान, शास्ता ने, अभिसम्बुद्ध होने की अवस्था मे, इस गाथा के पहले दोनो चरण कहे—

दिस्वा पदमनुत्तिण्ण दिस्वानोतरित पद,
नळेन वारिं पिविस्साम नेव मे त्वं वधिस्ससि।

[(पैरो के) नीचे जाने के चिन्ह को देख (और) ऊपर आने के चिन्ह को न देख, हम सरकण्डे से जल पीयेंगे और तू हमे नही मारेगा।]

भिक्षुओ! उस कपि-राज ने पुष्करिणी पर चढने का एक भी पदचिन्ह नही देखा। उतरने के पद-चिन्ह को उतरा ही देखा। इस प्रकार चढने के पद-चिन्ह को न देख, और उतरने के पद-चिन्ह को देख 'यह पुष्करिणी निश्चित रूप से अमनुष्य-परिगृहीता है' जान अपने साथ बात-चीत करनेवाली परिषद् को कहा—**नळेन वारिं पिविस्साम,** जिसका मतलब है कि हम तेरी पुष्करिणी मे सरकण्डे से पानी पीयेंगे। और फिर बोधिसत्त्व ने ही कहा—**नेव म त्व वधिस्ससि**—इस प्रकार नल से पानी पीते हुए सपरिषद् मुझे तू नही मारेगा।

ऐसा कह बोधिसत्व ने एक सरकण्डा मँगवा, पारमिताओ का ध्यान कर, सत्य-किरिया कर, मुख से फूका। सरकण्डा अन्दर कुछ गाँठ भी बाकी न रख एक सिरे से दूसरे सिरे तक खोखला हो गया। इस प्रकार दूसरे दूसरे सरकण्डे भी मँगवा कर फूक कर दिये। लेकिन इस प्रकार तो खतम नही हो सकते थे। इसलिए यहाँ ऐसे नही समझना चाहिए। बोधिसत्त्व ने अधिष्ठान किया कि इस पुष्करिणी के चारो ओर उगे हुए सब सरकण्डे एक-छिद्र वाले हो जायँ। बोधिसत्त्वो का हितचिन्तन महान् होने के कारण उनके अधिष्ठान पूरे होते है। तब से उस पुष्करिणी के गिर्द जितने भी सरकण्डे उगे वे सभी एक-छिद्र वाले हुए।

इस कल्प में कल्प-भर तक रहने वाली चार ऋद्धियाँ है। कौन सी चार? (१) चाँद कल्प भर खरगोश के चिन्ह वाला रहेगा। (२) वट्टक जातक[1] मे आग बुझाने की जगह इस सारे कल्प भर आग नही जलेगी। (३) घटिकार के रहने की जगह इस सारे कल्प भर पानी नही बरसेगा[2]। (४) इस पुष्करिणी के गिर्द उगने वाले सरकण्डे, इस सारे कल्प-भर एक-छिद्र वाले ही उगेगे। यह चार कल्प-भर तक रहने वाली ऋद्धियाँ है। बोधिसत्व ऐसा अधिष्ठान करके एक सरकण्डा लेकर

---

[1] वट्टक जातक (३५)   [2] घटिकार सुत्त (मज्झिम निकाय)

वैठे। वे अस्सी हजार वानर भी एक एक सरकण्डा लेकर पुष्करिणी को घेर कर वैठे। वोधिसत्त्व के सरकण्डे से खैंच कर पानी पीने के समय उन्होने भी किनारे पर वैठे ही वैठे पिया। इस प्रकार उनके पानी पीने पर जल-राक्षस कुछ भी न पाकर असन्तुष्ट हो अपने निवास-स्थान को गया। वोधिसत्त्व भी अपने अनुचरों सहित जगल में प्रविष्ट हुए।

शास्ता ने 'भिक्षुओ! इन सरकण्डो का एक-छिद्र वाले होना मेरे ही पुराने अधिष्ठान का फल है', कह धर्म-देशना ला, मेल मिला, जातक का साराश निकाल दिखाया।

उस समय जल-राक्षस देवदत्त था। अस्सी हजार वानर वुद्ध-परिषद्। हाँ, उपाय-कुशल कपिराज मैं ही था।

पहला परिच्छेद

३. कुरुंग वर्ग

२१. कुरुंगमिग जातक

“जातमेतं कुरुङ्गस्स . . .” यह गाथा शास्ता ने वेळुवन में विहार करते समय, देवदत्त के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

एक समय धर्मसभा में बैठे भिक्षु, देवदत्त की निन्दा करते हुए कह रहे थे, “आवुसो! देवदत्त ने तथागत के मारने के लिए धनुर्धर नियुक्त किये, शिला फेंकी, धनपालक (हाथी) को छोड़ा,—इस प्रकार सब तरह से तथागत के वध का प्रयत्न करता है।” बुद्ध ने आकर, बिछे आसन पर बैठ, भिक्षुओं से पूछा—“भिक्षुओ! इस समय क्या बात-चीत हो रही है?” “भन्ते! देवदत्त, आपके वध के लिए प्रयत्न करता है, सो हम बैठे उसकी निन्दा कर रहे हैं।” शास्ता ने “भिक्षुओ! देवदत्त केवल अब ही मेरे वध का प्रयत्न नहीं कर रहा है, पहले भी किया है, लेकिन (वह) समर्थ नहीं हुआ” कह अतीत की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में (राजा) ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय, बोधिसत्व, कुरुङ्गमृग (की योनि में उत्पन्न) हो, एक अरण्य में फल खाकर रहते थे। एक बार, वह फलदार सेपण्णि वृक्ष के सेपण्णि फल खाते थे। एक ग्रामीण, अटारी पर से शिकार खेलनेवाला शिकारी, फल-दार वृक्षों के नीचे मृगों के पद-चिन्ह देख, उन वृक्षों के ऊपर अटारी बाँध, उसपर से फल खाने के लिए आये मृगों को शक्ति

(आयुध) से बींध, उनका मांस बेचकर गुजारा करता था। उसने एक दिन, उस वृक्ष के नीचे जा बोधिसत्त्व के पद-चिन्ह को देखा। उस सेपण्णि-वृक्ष पर अटारी बाँध प्रातःकाल ही (खाना) खा, शक्ति ले, वन में प्रवेश कर, उस वृक्ष पर चढ अटारी पर जा बैठा। बोधिसत्त्व भी प्रातःकाल ही अपने निवास-स्थान से निकल सेपण्णि फलों को खाने की इच्छा से उस वृक्ष के नीचे एक दम न जा, 'कभी कभी अटारी बाँध शिकार खेलने वाले शिकारी, वृक्षो पर अटारी बाँधते हैं' (सोच) कहीं इस तरह की कुछ गड़बड़ (=उपद्रव) तो नहीं है (सोचते हुए) बाहर ही खड़े रहे। शिकारी ने बोधिसत्त्व को न आता जान, अटारी पर बैठे ही बैठे सेपण्णि-फलों को बोधिसत्त्व के आगे फेंका। बोधिसत्त्व ने 'यह फल आ आ कर मेरे सामने गिरता है। शायद ऊपर शिकारी है' (सोच) बार बार ऊपर देखते हुए शिकारी को देख न देखने की ही तरह हो, कहा—'हे वृक्ष! पहले तू लटका कर गिराते हुए की तरह, फलों को सीधे ही गिराता था। लेकिन, आज तूने अपना वृक्ष-स्वभाव छोड़ दिया। सो, जब तूने वृक्ष-स्वभाव छोड़ दिया, तो मैं भी (तुझे छोड़) दूसरे वृक्ष के नीचे जा अपना आहार खोजूंगा।' यह कहकर, यह गाथा कही—

ञातमेतं कुरुङ्गस्स यं त्वं सेपण्णि! सेय्यसि,
अञ्ञं सेपण्णिं गच्छामि न मे ते रुच्चते फलं।

[हे सेपण्णि! यह जो तू (मेरे आगे) विशेष रूप से (फल) फेंक रहा है, उसने कुरुङ्ग (मृग) को मालूम हो गया है। इसलिए मैं अब दूसरे सेपण्णि वृक्ष के नीचे जाऊँगा। मुझे तेरे फल अच्छे नहीं लगते।]

ञात का अर्थ है प्रकट हो गया। एतं=यह। कुरुङ्गस्स=कुरङ्ग मृग को। यं त्वं सेपण्णि! सेय्यसि का अर्थ है कि हे सेपण्णि-वृक्ष! यह जो तू (मेरे) आगे फलों को बिखेर कर, श्रेष्ठता=विशेषता धारण कर रहा है, फल-बिखेरने वाला हो रहा है, वह सब कुरङ्ग मृग को मालूम हो गया है। न मे ते रुच्चते फलं—"इस प्रकार फल देते हुए के, तेरे फल मुझे अच्छे नहीं लगते। तू ठहर! मैं दूसरी जगह जाता हूँ" कह चला गया।

शिकारी ने अटारी पर बैठे ही बैठे शक्ति फेंक कर कहा—"जा! तू इस बार बच गया।" बोधिसत्त्व ने रुक कर, खड़े हो कहा—"मैं तो अब जैसे तैसे बच गया, लेकिन तू आठ महानरकों[1] में, सोलह उस्सदनरकों[1] में, पाँच प्रकार के बन्धन आदि दण्डों से, नहीं बचेगा।" इतना कह भाग कर, जिधर इच्छा थी, उधर चला गया। शिकारी भी उतर कर, यथारुचि चला गया।

बुद्ध ने, "भिक्षुओ! देवदत्त केवल अब ही मेरे वध का प्रयत्न नहीं कर रहा है, पहले भी किया है, लेकिन (वह) सफल नहीं हुआ" कह इस धर्मोपदेश को लाकर मेल मिला, जातक का सारांश निकाल दिखाया। उस समय अटारी पर से शिकार खेलने वाला शिकारी (अब का) देवदत्त था। (और) कुरुङ्गमृग तो मैं था ही।

२२. कुक्कुर जातक

"ये कुक्कुरा..." इस गाथा को शास्ता ने, जेतवन में विहार करते समय, ज्ञाति (-सम्बन्धियों) के बारे में कहा।

क. वर्तमान कथा

वह (कथा) तो बारहवें परिच्छेद के भद्दसाल-जातक[2] में आयेगी। यहाँ तो (वर्तमान-) कथा की स्थापना के बाद की अतीत की कथा कही गई है—

---

[1]सञ्जीव, कालसूत्र, संघात, रौरव, महारौरव, तपन, प्रतापन तथा अवीचि—यह आठ महानरक हैं। इनके अतिरिक्त और भी नरक हैं, जिनमें से कुछ 'उस्सद-नरक' कहलाते हैं।

[2]भद्दसाल जातक (४६५)

ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे, (राजा) **ब्रह्मदत्त के बाराणसी** मे राज्य करने के समय, बोधि-सत्व, किसी वैसे कर्म के फलस्वरूप कुत्तो मे पैदा हो, सैकडो कुत्तो को साथ लिये, महा-श्मशान मे रहते थे।

एक दिन राजा उजले-घोडो वाले, सब अलकारो से अलकृत रथ पर चढ उद्यान मे जा, वहाँ दिन भर खेल, सूर्य्यास्त होने पर, (वापिस) नगर मे प्रविष्ट हुआ। रथ को, उन्होने जैसे का तैसा कसा ही, राजाङ्गण मे खडा कर दिया। रात को वर्षा होने से, वह भीग गया। महल के ऊपर रहने वाले पारिवारिक कुत्ते उतर कर, रथ के चर्म और चमडे की रस्सी खा गये। अगले दिन राजा को खबर दी गई कि "देव! कुत्तो ने मोरी मे से घुसकर रथ के चर्म और चमडे की रस्सी खा डाली है।" राजा ने कुत्तो पर क्रोधित हो आज्ञा दी कि "जहाँ-जहाँ कुत्ते दिखाई दें उन्हें मार डालो।" उस समय से कुत्तो पर बडी विपत्ति आई। वे जहाँ जहाँ दिखाई दे, वहाँ वहाँ मारे जाते हुए, भाग कर श्मशान मे बोधिसत्त्व के पास पहुँचे। बोधि-सत्त्व ने पूछा—"तुम बहुत सारे इकट्ठे होकर आये हो, क्या कारण है?" उन्होने उत्तर दिया—"अन्त पुर मे कुत्तो के रथ के चर्म और चमडे की रस्सी खा लेने से क्रुद्ध हो राजा ने (सभी) कुत्तो के मारने की आज्ञा दी है। बहुत कुत्तो का नाश हो रहा है। महा-भय उत्पन्न हुआ है।" बोधि (-सत्त्व) ने सोचा—"पहरे के स्थान मे बाहर के कुत्तो को तो (ऐसा करने का) मौका नही। राज-महल के अन्दर रहने वाले पारिवारिक कुत्तो की ही यह करनी होगी। लेकिन अब चोरो को तो कुछ (दण्ड) नही। अचोर मर रहे हैं। क्यो न मैं राजा को (असली) चोर दिखा-कर, (अपने) जाति-सघ को जीवन-दान दिलवाऊँ?" उसने कुत्तो को सान्त्वना दे, "तुम मत डरो। मै 'अभय-दान' ले आऊँगा। जब तक मै राजा से मिल (आऊँ) तब तक तुम यही रहो" (कह) पारमिताओ का विचार कर, मैत्री-भावना को आगे कर, अधिष्ठान किया—कि मेरे ऊपर रोडा, मुद्गर वा अन्य कोई चीज कोई न फेंके। (और यह अधिष्ठान कर) उसने, अकेले ही नगर के अन्दर प्रवेश किया। सो, उसे देखकर, किसी एक जने ने भी, उस पर क्रोध नही किया। राजा कुत्तो के वध की आज्ञा देकर, अपने न्यायासन पर बैठा था। बोधिसत्त्व, वही पहुँच, उछल कर, राजा के आसन के नीचे चले गये। राज-पुरुष उसको निकालने को

तैयार हुए। लेकिन, राजा ने रोक दिया। बोधिसत्त्व ने थोड़ी देर साँस ले, राज्यासन के नीचे से निकल, राजा को प्रणाम कर पूछा—"क्या आप कुत्तों को मरवाते हैं?" "हाँ! मैं (मरवाता हूँ)।" "राजन्! उनका अपराध क्या है?" "उन्होंने मेरे रथ के ऊपर का चमड़ा और चमड़े की रस्सी खा ली।" "मालूम है, किन कुत्तों ने खाई है?" "नहीं जानता।"

"देव! 'इन्होंने चर्म खाया है', इसे ठीक से न जान, जहाँ जहाँ (कुत्ते) दिखाई दें, उन सभी को मरवाना उचित नहीं।"

"क्योंकि रथचर्म को कुत्तों ने खाया था, इसलिए मैंने आज्ञा दे दी कि जहाँ जहाँ (कुत्ते) दिखाई दें, उन सभी को मार डालो।"

"तो, क्या मनुष्य, सभी कुत्तों को मारते हैं? या ऐसे भी कुत्ते हैं, जो नहीं मारे जाते?"

"हैं, हमारे घर के कुत्ते नहीं मारे जाते।"

"महाराज! अभी तो आपने कहा, "क्योंकि, रथचर्म को कुत्तों ने खाया, इसलिए मैंने आज्ञा दे दी कि जहाँ जहाँ (कुत्ते) दिखाई दें, उन सब को मारो", और अभी आप कहते हैं कि "हमारे घर के कुत्ते मारे नहीं जाते।" ऐसा होने पर, क्या आप पक्षपाती हो, अगति[1] को नहीं प्राप्त हो रहे? अगति को प्राप्त होना अनुचित है। यह राज-धर्म नहीं। राजा को बात की तह में जाने के विषय में तुला के सदृश निष्पक्ष होना चाहिए। सो, घर के कुत्ते तो मारे नहीं जाते, दुर्बल कुत्ते ही मारे जाते हैं। यदि ऐसा है, तो यह सब कुत्तों का घात करना नहीं है, केवल दुर्बल कुत्तों का घात करना है।" यह कह, बोधिसत्त्व ने मधुरस्वर से, "महाराज! यह जो आप कर रहे हैं सो (राज-) धर्म नहीं" कहते हुए, यह गाथा कही—

> ये कुक्कुरा राजकुलम्हि वद्धा,
> कोलेय्यका वण्णवलूपपन्ना,
> ते मे न वज्झा मयमस्म वज्झा,
> नाय सघच्चा दुब्बलघातिकायं ॥

---

[1] छन्द, दोष, भय तथा मूढता के वशीभूत हो अकर्तव्य करना (अँगुत्तरनिकाय, चतुक्कनिपात तथा दीघनिकाय, सिगालोवाद सुत्त)।

[जो वर्ण और बल से युक्त, राज-कुल में पले, राज्य-कुल के कुत्ते हैं, सो तो मारे नहीं जाते, (केवल) हम ही मारे जाते हैं। यह (सब) कुत्तों का मारना नहीं है। (केवल) दुर्बल कुत्तों का मारना है।]



ये कुक्कुरा—जो कुत्ते। जैसे धारोष्ण पेशाब भी गन्दा मूत्र (कहलाता है), उसी दिन पैदा हुआ शृगाल भी पुराना (= जर) शृगाल (कहलाता है), कोमल गडूच (=गलोचि) बेल भी गन्दी लता (कहलाती) है, स्वर्ण-वर्ण काय भी गन्दा-शरीर (कहलाता है), इसी प्रकार सौ वर्ष का कुत्ता भी कुक्कुर कहलाता है। इसलिए, बूढ़ों, बड़े बड़े शरीर वालों को भी 'कुक्कुर' ही कहा गया है। वद्धा = वर्धित (=पले)। कोलेय्यका—राजकुल में पैदा हुए, पले। वण्णबलूपपन्ना—शरीर-वर्ण और काय-बल से युक्त। ते मे न वज्झा— सो यह स्वामियों वाले, आरक्षा वाले (कुत्ते) वध्य नहीं हैं। मयमस्म वज्झा हम, जिनका कोई स्वामी नहीं, कोई हिफाजत करने वाला नहीं, हम ही वध्य हैं। नाय सघच्चा सो ऐसा होने पर, तो यह सब (कुत्तों) का मारना नहीं है, "दुब्बल घातिकाय" दुर्बलों का घात करने से यह (केवल) दुर्बलों को मारना है। राजाओं को चोरों का निग्रह करना चाहिए, अचोरों का नहीं। लेकिन यहाँ चोरों को तो कुछ नहीं, अचोर मारे जाते हैं। ओह! इस लोक में अनौचित्य होता है। ओह! अधर्म होता है।



राजा ने बोधिसत्त्व के वचन को सुनकर, पूछा—"पण्डित! क्या तुझे मालूम है कि अमुक (कुत्तों) ने रथ-चर्म खाया है?"

"हाँ! जानता हूँ।"

"किन्होंने खाया है?"

"तुम्हारे घर (ही) में रहने वाले कुत्तों ने।"

"यह कैसे मालूम हो, कि उन्होंने खाया है?"

"उनका खाना मैं साबित करूँगा (=दिखाऊँगा)।"

"पण्डित! दिखा।"

"अपने घर के कुत्तों को मँगवा, थोड़ा मट्ठा और दूब के तिनके मँगवा ले।"

राजा ने वैसा किया। महासत्व ने कहा—इस मट्ठे मे, इन तिनको को मथकर, इन कुत्तो को पिलवा दे। राजा ने वैसा करा, मट्ठा पिलवा दिया। जिसने पिया, उस उस कुत्ते ने चमड़े सहित उल्टी कर दी। राजा ने इसे सर्वज्ञ, बुद्ध के समझाने के समान जान, अति प्रसन्न हो, श्वेत छत्र से बोधिसत्त्व की पूजा की। बोधिसत्व ने, "धम्म चर महाराज! मातापितुसु खत्तिय (=महाराज! हे क्षत्रिय! माता पिता के प्रति धर्म का व्यवहार करें)" आदि, तेसकुण जातक[1] में आई हुई दस धर्माचरण सम्बन्धी गाथाओ से राजा को धर्मोपदेश कर, "महाराज! अब से आप अप्रमादी (हो) रहें" (कह), राजा को पाँचशीलो में प्रतिष्ठापित कर, श्वेत छत्र राजा को ही लौटा दिया।

राजा महासत्व (=बोधिसत्व) की धर्म-कथा सुन, सभी प्राणियो को 'अभयदान' दे, बोधिसत्त्व-प्रमुख सब कुत्तो के लिए अपने भोजन जैसे ही भोजन के नित्य मिलने का प्रबन्ध कर, बोधिसत्त्व के उपदेशानुसार आचरण कर, आयु रहते दान आदि पुण्य-कर्म कर, मरने पर देव लोक मे उत्पन्न हुआ। कुक्कुरोवाद(=कुत्ते के उपदेश) का दस हजार वर्ष (तक प्रभाव) रहा। बोधिसत्व भी, जितनी आयु थी, उतना जीवित रहकर, कर्मानुसार (परलोक) गये।

बुद्ध ने, 'भिक्षुओ! तथागत केवल अब ही अपने जाति-सम्बन्धियो का उपकार नही करते, पहले भी किया ही है' कह, इस धर्म-देशना को ला मेल मिला, जातक का सारांश निकाल दिखाया। उस समय का राजा (अब का) आनन्द था। सब बुद्ध-परिषद् थी। लेकिन कुक्कुर मैं ही था।

---

[1] तेसकुण जातक (५२१)

२३. भोजाजानीय जातक

'अपि पस्सेन सेमानो...' यह गाथा, शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय, एक प्रयत्न-हीन भिक्षु के बारे मे कही।

क. वर्तमान कथा

उस समय शास्ता ने उस भिक्षु को आमन्त्रण कर, 'भिक्षु! पूर्व समय मे पण्डित लोग सामर्थ्य से बाहर के (कार्य) में भी प्रयत्नवान होते थे। चोट खाकर भी, प्रयत्न न छोडते थे' कह, अतीत की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे **बाराणसी** मे (राजा) **ब्रह्मदत्त** के राज्य करने के समय, बोधि-सत्त्व, **भोजाजानीय** नाम के सैन्धव-कुल (सिन्धु पार के घोडो के कुल) मे उत्पन्न हो, बाराणसी नरेश के, सब अलकारो से अलकृत मागलीक अश्व हुए। वह लाख के मूल्य की सोने की थाली ही मे नाना प्रकार के श्रेष्ठ रसो से युक्त तीन वर्ष के पुराने चावल का (बना) भोजन खाते थे। चार प्रकार की सुगन्धि से लिपी भूमि पर खडे होते थे। वह (खडे होने का) स्थान, लाल कम्बल की कनात से घिरा था। उसके ऊपर, सोने के तारे लगा हुआ कपडे का चन्दवा (तना) था। चारो ओर सुगन्धित पुष्प-मालाये (लटकती) थी और सदा सुगन्धित तेल का प्रदीप (जलता) रहता था। ऐसा कोई राजा नही है, जो **बाराणसी** के राज्य की इच्छा न करता हो। एक बार सात राजाओ ने **बाराणसी** को घेर कर **बाराणसी** के राजा

के पास सन्देश भेजा "या तो हमें राज्य दे दो, अथवा युद्ध करो।" राजा ने अमात्यों को एकत्रित कर, वह समाचार कह, पूछा—"कि तात! अब क्या करें?" (अमात्यों ने उत्तर दिया) "देव! पहले तुम्हें युद्ध के लिए नहीं जाना चाहिए। पहले अमुक नाम के अश्वारोह को भेज कर युद्ध कराना चाहिए। उसके असमर्थ रहने पर, (हम) फिर सोचेंगे (=जानेंगे)।" राजा ने उस (अश्वारोह) को बुलवा कर पूछा, "तात! क्या सात राजाओं के साथ युद्ध कर सकोगे?" "देव! यदि मुझे भोजाजानीय सिन्धव मिले, तो सात राजा तो क्या, मैं सकल जम्बूद्वीप के राजाओं से युद्ध कर सकूँगा।" "तात! भोजाजानीय सिन्धव हो, अथवा कोई और हो जो अच्छा लगे, उसे लेकर युद्ध करो।"

उसने, 'देव! अच्छा' कह, राजा को प्रणाम किया। फिर प्रासाद से उतर, सिन्धुदेशीय भोजाजानीय (घोड़े) को मँगवा, उस पर कवच बाँध, अपने भी सब शस्त्र धारण कर, खड्ग बाँध, सिंधु देशी (=घोड़े) की पीठ पर सवार हुआ। फिर नगर से निकल, बिजली की तरह घूमते हुए, पहले सेना के घेरे को तोड़, एक राजा को जीवित ही पकड़ लिया। फिर नगर को बिना लौटे, (उस राजा को) अपनी सेना सौंप, फिर जाकर दूसरे सेना के घेरे को तोड़, दूसरे (राजा) को पकड़ लिया। इस प्रकार उसने पाँच राजाओं को जीवित ही पकड़ लिया। छठे सेना के घेरे को तोड़ कर छठे राजा को पकड़ने के समय भोजाजानीय को चोट आ गई। लहू बह रहा था। कड़ी वेदना हो रही थी। अश्वारोह भोजाजानीय को 'चोट लगी' जान, उसे राज-द्वार पर लिटा, साज ढीला कर, दूसरे घोड़े को कसने को तैयार हुआ। बोधिसत्त्व ने अत्यन्त दुःख के ढंग से लेटे लेटे ही आँखें खोल, अश्वारोह को देख, सोचा—"यह (अश्वारोह) दूसरे घोड़े को कस रहा है। यह घोड़ा, सातवें सेना के घेरे को तोड़, सातवें राजा को न पकड़ सकेगा। मेरा किया कराया (काम) नष्ट हो जायगा। यह अनुत्तरीय अश्वारोह भी नाश को प्राप्त होगा। राजा भी पराये हाथ चला जायगा। मुझे छोड़, कोई भी दूसरा घोड़ा, सातवें सेना के घेरे को तोड़, सातवें राजा को नहीं पकड़ सकता।" (यह सोच) उसने लेटे ही लेटे अश्वारोह को बुलवा, "मित्र अश्वारोह! मुझे छोड़, सातवें सेना के घेरे को तोड़, सातवें राजा को पकड़ ला सकने वाला, अन्य कोई घोड़ा नहीं है। मैं अपने किये कराये काम को नष्ट न होने दूंगा। मुझे ही उठा कर, कस" कह यह गाथा कही—

अपि पस्सेन सेमानो सल्लेहि सल्ललो कतो,
सेय्योव वळवा भोज्जो युञ्ज मञ्ञोव सारथि ।।

[शल्य से जखमी हो गये होने के कारण, एक करवट सोया हुआ भी भोजा-जानीय-अश्व ही (किसी दूसरे) घोडे से श्रेष्ठ है। इसलिए हे सारथी ! तू मुझे ही, कस ।]

अपि पस्सेन समानो=एक पासे पर सोने वाला होता हुआ भी। सल्लेहि सल्लली कतो, शल्य से बिधा रहने पर भी। मेय्योव वळवा भोज्जो, वळवा कहते है सिन्धव-कुल मे अनुत्पन्न साधारण अश्व को। भोज्ज=भोजाजानीय सिन्धव। इस साधारण घोडे की अपेक्षा, शल्य से बिंधा हुआ भी भोजाजानीय अधिक श्रेष्ठ है=अच्छा है=उत्तम है। **युञ्ज मञ्ञोव सारथि,** क्योकि जब ऐसा होने पर भी मै ही अधिक श्रेष्ठ हूँ, तो हे सारथी ! तू मुझे ही जोड, मुझे ही कस।

सवार ने बोधिसत्त्व को उठा, जखमो को बॉधा, और अच्छे प्रकार कस कर, उसकी पीठ पर जा बैठा। सातवे सेना के घेरे को तोड, सातवे राजा को जीवित ही पकड, लाकर राज-सेना को सौपा। बोधिसत्त्व को भी राज-द्वार पर लाया गया। राजा, उसके दर्शन करने के लिए बाहर निकला। महासत्व ने राजा को कहा—"महाराज ! (इन) सात राजाओ को मारे मत। शपथ करवाकर, छोड दे। मुझे और अश्वारोह को जो यश देना है, वह सब अश्वारोह को ही दे। सात राजाओ को पकड ला देने वाला योधा नष्ट करने के योग्य नही है। आप भी दान दे। शील (=सदाचार) की रक्षा करे। धर्म से और पक्षपात रहित होकर राज्य करें।" इस प्रकार बोधिसत्त्व के राजा को उपदेश कर चुकने पर, बोधिसत्त्व का साज खोल दिया गया। वह, साज के खुलते ही खुलते चल बसा। राजा ने उसका शरीर-कृत्य करवा, अश्वारोह को महान् यश दे, सात राजाओ से फिर दुबारा द्रोह न करने की शपथ करवा, उन्हे उन उनके स्थान पर भेज दिया। तदनन्तर, राजा, धर्म से तथा पक्षपात-रहित राज्य करते हुए, आयु समाप्त होने पर, कर्मा-नुसार, (परलोक को) गया।

बुद्ध ने, "हे भिक्षु ! पहले समय मे पण्डितो ने सामर्थ्य से बाहर (=अनायतन) बात के लिए भी प्रयत्न किया है। इस प्रकार की चोट (=प्रहार) खाकर भी प्रयत्न को ढीला नही छोडा। तू, इस प्रकार के नैर्याणिक में (=मोक्षदायक) शासन प्रव्रजित होकर भी, क्यो प्रयत्न ढीला करता है?" कह चार (आर्य-) सत्यो को प्रकाशित किया। सत्यो का प्रकाशन समाप्त होने पर, प्रयत्न-हीन भिक्षु, अर्हत्व-फल में प्रतिष्ठित हो गया। शास्ता ने इस धर्म-देशना को कह, मेल मिला कर, जातक का साराश निकाल दिखाया। उस समय का राजा (अब का) आनन्द था। अश्वारोह सारिपुत्र, (और) भोजाजानीय सिन्धव (-घोडा) तो मैं ही था।

२५. आजञ्ञ जातक

"यदा यदा " यह भी गाथा, बुद्ध ने जेतवन में विहार करते समय (एक) शिथिल-प्रयत्न भिक्षु के ही बारे मे कही।

क. वर्तमान कथा

शास्ता ने उस भिक्षु को आमन्त्रित कर—"भिक्षु ! पूर्व समय में पण्डितो ने सामर्थ्य से बाहर (बात) के लिए भी, जख्म खा कर भी, प्रयत्न किया है" कह, पूर्व की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे वाराणसी मे (राजा) ब्रह्मदत्त के राज्य करते समय, पूर्वोक्त अनुसार ही, सात राजाओं ने नगर को घेर लिया। एक रथ-सवार योद्धा ने, दो सहोदर-सैन्धव-घोडो को रथ में जोत, नगर से निकल, छ सेना के घेरो को तोड

छ राजाओ को पकडा। उस समय (दो अश्वो मे से) ज्येष्ठ अश्व पर प्रहार पडा। सारथी रथ को जोड, हॉकता हुआ राज-द्वार पर आया और ज्येष्ठ-सहोदर को रथ मे खोल, साज को ढीला कर, एक पासे पर लिटा, दूसरे घोडे को कसने को तैयार हुआ। बोधिसत्त्व ने उसे देख, पूर्व प्रकार से ही सोच, सारथी को बुलवा, लेटे ही लेटे यह गाथा कही ---

यदा यदा यत्थ यदा यत्थ यत्थ यदा यदा
आजञ्ञो कुरुते वेगं हायन्ति तत्थ वाळवा॥

[जब जब जहॉ, जब, जहॉ जहॉ, जब जब, आजानीय (घोडा) प्रयत्न (=वेग) करता है, उस समय (=वहॉ) साधारण घोडे (खलुक-अश्व) रह जाते है।]

यदा यदा का अर्थ है कि पूर्वाण्ह समय आदि जिस किसी समय पर। **यत्थ**= जिस स्थान पर, मार्ग मे वा सग्राम में। **यदा**=जिस क्षण मे। **यत्थयत्थ**=सात सेना के घेरे के नाम के बहुत से युद्ध-मण्डलो मे। **यदायदा**=जिस जिस समय, प्रहार पडे रहने के समय, वा न पडे रहने के समय। **आजञ्ञो कुरुते** वेग सारथी के चित्त का झुकाव (=अच्छी लगने वाली बात) जानने की सामर्थ्य रखने वाला आजञ्ञो—श्रेष्ठ अश्व, शीघ्रता करता है, प्रयत्न करता है, हिम्मत करता है। **हायन्ति तत्थ वाळवा**=उस वेग (=प्रयत्न) के किये जाते समय, शेष साधारण घोडा कहे जाने वाले खलुक अश्व रह जाते है (=ह्रास को प्राप्त होते है)। इस-लिए कहा कि इस रथ मे मुझे ही जोत।

सारथी ने बोधिसत्त्व को उठा, (रथ मे) जोत, (उसे) हॉक, सातवे सेना के घेरे को तोड, सातवें राजा को पकड (=ले), रथ को हॉक, राज-द्वार पर सिन्धव-अश्व को खोला। बोधिसत्त्व एक ही पासे पर लेटे लेटे, पूर्व प्रकार ही राजा को उपदेश दे, मरण को प्राप्त हुए। राजा, उसका शारीरिक-कृत्य करवा, सारथी का सम्मान कर, धर्मानुसार राज्य कर, यथा-कर्म (परलोक) गया।

बुद्ध ने इस धर्म-देशना को कह, चारो (आर्य-सत्यो) को प्रकाशित कर, जातक का साराश निकाल दिखाया। सत्यो के प्रकाशन की समाप्ति पर, वह भिक्षु अर्हत्व

मे प्रतिष्ठित हुआ। उस समय राजा (अब के) आनन्द स्थविर थे। और अग्व थे सम्यक् सम्बुद्ध।

२५. तित्थ जातक

"अञ्ञमञ्ञेहि तित्थेहि.. " यह गाथा, बुद्ध ने जेतवन में विहार करते समय, धर्मसेनापति (=सारिपुत्र) के शिष्य, एक सुनार-पुत्र भिक्षु के बारे मे कही।

क. वर्तमान कथा

दूसरो के आशय (=चित्तावस्था) का ज्ञान केवल बुद्धो को ही होता है, अन्यो को नही। इसलिए सारिपुत्र ने, अपने मे दूसरो की चित्तावस्था जानने की सामर्थ्य न होने के कारण, अपने साथी के चित्त की अवस्था न जान कर, उसे अशुभ[1] कर्मस्थान[2] बताया। उसको वह कर्मस्थान अनुकूल नही पडा। क्यो? उसने पाँच सौ जन्म तक नियम से सुनार के ही घर में जन्म ग्रहण किया था। सो चिरकाल तक परिशुद्ध सोने को ही देखते रहने का अभ्यास रहने से, अशुभ (कर्मस्थान) उसको अनुकूल नही पडा। उसने (अभ्यास करते) चार महीने बिता दिये, (लेकिन) वह निमित्त[2] मात्र भी पैदा नही कर सका। धर्मसेनापति जब अपने साथी को स्वयं अर्हत्व न दे सके, तो उन्होंने सोचा कि "यह निश्चय से बुद्ध-वैनेय है, मैं इसे तथागत के पास ले चलूँगा।" यह सोच, प्रात काल ही वह उसे लेकर तथागत के पास गये।

---

[1] शरीर की गन्दगियो का ख्याल कर, योगाभ्यास करना।
[2] शरीर के ३२ हिस्सो में से किसी का भी काल्पनिक आकार।

शास्ता ने पूछा, "सारिपुत्र ! क्यो, एक भिक्षु को लेकर आये हो ?" "भन्ते ! मैंने इसे **कर्मस्थान** दिया। चार महीनो मे यह **निमित्त-मात्र** भी पैदा न कर सका। 'यह वुद्धवैनेय होगा' सोच, मै इसे आपके पास लेकर आया हूँ।" "**सारिपुत्र !** तूने अपने शिष्य को कौन सा **कर्मस्थान** दिया था ?" "भगवान् ! **अशुभ-कर्म-स्थान।**"

"सारिपुत्र ! तेरी (चित्त-) सन्तति मे आशयानुशय-ज्ञान नही। जा, शाम को आना और अपने शिष्य को साथ ले जाना।"

इस प्रकार स्थविर को अनुज्ञा कर, शास्ता ने उस भिक्षु को सुन्दर निवास-स्थान और चीवर दिलवा, (फिर) उसे साथ ले, भिक्षाचार के लिए प्रवेश कर, प्रणीत भोजन (=खाद्य-भोज्य) दिलवा, महाभिक्षुसघ सहित विहार को लौट दिन का समय **गन्धकुटी** में विताया। शाम को उस भिक्षु को साथ ले, विहार-चारिका करते हुए, आम्रवन मे, (दिव्य शक्ति से) एक पुष्करिणी, उसमे पद्मो का एक गुच्छा, और उनमे भी एक वडा कमल-फूल निर्माण कर, उस भिक्षु को, "भिक्षु ! तू इस फूल को देखते हुए बैठा रह" (कह) विठा कर, स्वय **गन्धकुटी** मे प्रविष्ट हुए।

वह भिक्षु, उस फूल को वार वार देखने लगा। भगवान् ने उस फूल को कुम्हला दिया। उसके देखते ही देखते, वह फूल कुम्हला कर कुरूप हो गया। उसके सिरे पर के पत्ते गिरते गिरते थोडी ही देर मे सब के सब गिर गये। उसके वाद रेणु गिरी। केवल डोडा शेष रह गया। उस भिक्षु को उसे देखते देखते ख्याल आया। "यह पुष्प अभी सुन्दर था, दर्शनीय था। अभी, इसका रग वदल गया, पत्ते और रेणु गिर पडे। केवल डोडा रह गया। जब इस प्रकार का यह फूल कुम्हला गया, तो मेरे शरीर को क्या नही हो जायगा ?" (यह सोचते सोचते) सभी सस्कारो की अनित्यता का विचार कर, विदर्शना मे स्थापित हुआ। शास्ता ने, 'उसका चित्त विदर्शनारूढ हो गया' जान, गन्धकुटी मे वैठे ही वैठे, (अपने) तेज को फैला, यह गाथा कही—

उच्छिन्द सिनेहमत्तनो कुमुद सारदिक व पाणिना,
सन्तिमग्गमेव ब्रूहय निब्बाण सुगतेन देसितं॥[1]

---

[1] **धम्मपद, महावग्ग** (२८५)

[हाथ से शरद ऋतु के कमल की तरह, अपने राग (=स्नेह) की जड उखाड फेको। सुगत द्वारा उपदिष्ट निर्वाण रूपी शान्ति-मार्ग में ही उन्नति करो।]

उस भिक्षु ने गाथा के अन्त में अर्हत्व प्राप्त कर, 'मै सब भवो (=ससार) से मुक्त हो गया हूँ' सोच निम्नलिखित गाथाओ में उदान (=प्रीति-वाक्य) कहा—

सो वुत्थवासो परिपुण्णमानसो,
खीणासवो अन्तिमदेहधारी,
विसुद्धसीलो सुसमाहितिन्द्रियो
चन्दो यथा राहुमुखा पमुत्तो।
समोतत मोहमहन्धकार
विनोदयि सब्बमल असेस,
आलोकमुज्जोतकरो पभङ्करो
सहस्सरसी विय भानुमा नभे॥

[वह अर्हत वुसित-वास, परिपूर्णमानस, क्षीणास्रव, अन्तिमदेहधारी, विशुद्ध-शील, सयत (=सुसमाहित-) इन्द्रिय, राहु के मुख से मुक्त हुए चन्द्रमा की तरह होता है।]

मेरा विस्तृत महा मोहान्धकार नष्ट हो गया। मैंने सारे के सारे मैल को हटा दिया, जैसे प्रभास्वर, आलोक को उत्पन्न करने वाला, सहस्र रश्मी सूर्य्य आकाश में (सब अन्धकार को मिटा देता है)।

इस प्रकार, उदान कह, जाकर भगवान् की वन्दना की। स्थविर भी आ शास्ता को प्रणाम कर, अपने शिष्य को साथ ले गये। यह बात भिक्षुओ में प्रगट हो गई। वे धर्म-सभा मे बैठे-बैठे, दश-बल (-धारी) बुद्ध का गुणानुवाद करने लगे—"आवुसो! सारिपुत्र-स्थविर आशयानुशय ज्ञान न होने के कारण अपने साथी के चित्त की अवस्था नही जानते थे। लेकिन शास्ता ने (उसे) जानकर, एक ही दिन मे, उस (भिक्षु) को प्रतिसम्भिदा-ज्ञान के साथ अर्हत्व दे दिया। ओह! बुद्धो की शक्ति (=महानुभाव)!"

बुद्ध ने आ बिछे आसन पर बैठकर, पूछा—"भिक्षुओ! यहाँ बैठे क्या बात-चीत कर रहे हो?" "भगवान् और कुछ नही। आपकी ही, धर्मसेनापति की (अपने) शिष्य के आशयानुशय-ज्ञान की बात-चीत।"

बुद्ध ने, "भिक्षुओ! इसमे कुछ आश्चर्य्य नही, यदि इस समय मै 'बुद्ध' होकर उसका आशय जानता हूँ। मै पहले भी, उसका आशय जानता ही था" कह पूर्व की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे वाराणसी मे (राजा) ब्रह्मदत्त राज्य करता था। बोधिसत्त्व उस समय, राजा को अर्थ तथा धर्म सम्बन्धी उपदेश देनेवाले थे। उस समय राजा के माङ्गलिक घोडे के नहाने के स्थान पर एक खलङ्कु घोडे को नहला लिया। माङ्गलिक अश्व को दूसरे घोडे द्वारा नहाये गये तीर्थ (=पट्टन) पर उतारने लगे, तो उसने घृणा मे उतरना न चाहा। साईस (=अश्वगोपक) ने जाकर राजा से कहा—'देव! माङ्गलिक अश्व तीर्थ पर नही उतरना चाहता है।'

राजा ने बोधिसत्त्व को भेजा, "पण्डित! जाकर मालूम कर कि माङ्गलिक अश्व तीर्थ पर उतारने पर क्यो नही उतरता?" बोधिसत्त्व ने 'देव! अच्छा' कह नदी के तीर पर जाकर, अश्व को देख, उसका निरोगी होना जान सोचा, 'यह किस कारण से इस तीर्थ पर नही उतरता?' यह सोचते हुए, उसे सूझा, 'कि 'यहाँ पहले किसी और को नहलाया होगा। उसीसे यह घृणा करके तीर्थ पर नही उतरता।' यह सोच, उसने अश्व-गोपको से पूछा—"भो! इस तीर्थ पर पहले किसे नहलाया?" "स्वामी! एक दूसरे घोडे को।" बोधिसत्व ने "यह (माङ्गलिक अश्व) अपनी शुचिता (=पवित्रता) के कारण यहाँ नहाना नही चाहता, इसे अन्य तीर्थ पर नहलाना चाहिए"—इस प्रकार उसका आशय जान, उसने अश्व-गोपको को कहा—"भो अश्वगोपक! घृत-मधु-शक्कर मिला दूध भी बार बार पीने से (=भोजन करने से) तृप्ति हो जाती है। यह अश्व अनेक बार इस तीर्थ पर नहाया है। सो, इसे किसी दूसरे तीर्थ पर उतार कर नहलाओ, और जल पिलाओ।" यह कह, यह गाथा कही—

अञ्ञमञ्ञेहि तित्थेहि अस्स पायेहि सारथि!
अच्चासनस्स पुरिसो पायासस्स पि तप्पति।

[हे सारथी! इस घोडे को किसी दूसरे तीर्थ पर (नहलाओ और) जल पिलाओ। आदमी, खीर भी बहुत खाने से तृप्त हो जाता है।]

अञ्ञमञ्ञेहि—अन्य से, अन्य से। पायेहि, यह तो पंक्ति है, अर्थ, नहला और पिला। **अच्चासनस्स** तृतीया (=करणविभक्ति) के अर्थ में षष्ठी। **अति अश्नेन**—बहुत खाने से। **पायासस्सपि तप्पति;** घी में अभि-संस्कृत (=छौंकी हुई) मधुर खीर में भी तृप्ति हो जाती है। वृति (होती है) सुख (होना है), खाने की इच्छा फिर उत्पन्न नहीं होती। इसलिए यह अश्व भी यहाँ (रोज रोज) नियम से नहाने से ऊब गया होगा। इसे दूसरी जगह नहलाओ।

उन्होंने उसका कथन सुन, अश्व को दूसरे तीर्थ पर उतारकर (जल) पिलाया और नहलाया। बोधिसत्व, अश्व के पानी पी कर नहाने के समय राजा के पास चले आये। राजा ने पूछा—"क्यों तात! अश्व ने नहाया या पिया?" "देव! हाँ।"

"पहले क्यों नहीं (नहाना) चाहता था?"

"इस कारण से", सब कह सुनाया।

राजा 'अहो! बोधिसत्व की पण्डिताई! यह ऐसे पशुओं तक के आशय को जानता है।' सोच, बोधिसत्व को बहुत सम्पत्ति दे, आयु समाप्त होने पर, यथा-कर्म (परलोक) सिधारा।

बुद्ध ने, "भिक्षुओ! मैं केवल अब ही, इसका आशय नहीं जानता हूँ। पूर्व में भी जानता था" कह, इस धर्म-देशना को लाकर, मेल मिला, जातक का सारांश निकाल दिखाया। उस समय का माङ्गलिक अश्व, यह (अब का) भिक्षु था। राजा (अब का) आनन्द था। लेकिन पण्डित-अमात्य तो मैं ही था।

२६. महिलामुख जातक

"पुराण चोरान वचो निसम्म . . ." यह गाथा, बुद्ध ने वेळुवन में विहार करते समय, देवदत्त के बारे मे कही।

क. वर्तमान कथा

देवदत्त, राजकुमार अजातशत्रु को अपने प्रति श्रद्धावान् कर, (अपने लिए) लाभ-सत्कार उत्पन्न करता था। (राज-) कुमार अजातशत्रु, **गया-शीर्ष**[1] में देवदत्त के लिए विहार बनवा, (वहाँ) प्रति दिन, नाना प्रकार के रसो से युक्त, तीन वर्ष के पुराने सुगधित चावलो से बने भोजन की पाँच सौ थालियाँ, लिवा जाता था। लाभ-सत्कार (मिलने) के कारण देवदत्त के अनुयायियो की सख्या बढ गई। देवदत्त (अपने) अनुयायियो के साथ विहार में ही रहता। उस समय, राजगृह-निवासी दो मित्रो में से एक तो शास्ता के पास प्रव्रजि तहुआ, और दूसरा देवदत्त के। वह एक दूसरे को जहाँ तहाँ मिलते (=देखते) और विहार में जाकर भी मिलते।

एक दिन देवदत्त के आश्रय में रहने वाले (मित्र) ने, दूसरे से पूछा—"आवुसो! क्या तुम रोज रोज पसीना वहाते हुए भिक्षा माँगते हो? देवदत्त **गया-शीर्ष** विहार में वैठा ही वैठा, नाना प्रकार के रसो से युक्त सुन्दर भोजन खाता है। क्या इस प्रकार का कोई उपाय नही है? तुम किस लिए दु ख भोगते हो? क्या तुम्हारे लिए, यह अच्छा नही है कि तुम प्रात काल ही **गया-शीर्ष** पर आओ, (वहाँ) जल-पान सहित यागु भी, अट्ठारह प्रकार का खाद्य खा, नाना रसो से युक्त सुभोजन करो।"

---

[1] वर्तमान ब्रह्मयोनि-पहाड़ (गया)।

वार वार कहने से, वह जाने का इच्छुक हो गया। उस दिन से, वह गया-शीर्ष पर जाता, और खाकर समय रहते ही वेळुवन लौट आता[1]। इस बात को वह देर तक छिपा कर नही रख सका कि वह गया-शीर्ष जाता है, और देवदत्त का जुटाया हुआ भोजन खा कर आता है। थोडे ही समय में, यह बात प्रगट हो गई। उसके साथियो ने उसे पूछा—"आयुष्मान्! क्या तुम सचमुच, देवदत्त का जुटाया हुआ भोजन खाते हो?" "ऐसा, किसने कहा?" "अमुक, अमुक (व्यक्ति) ने (कहा)।" "आवुसो! मैं सचमुच गया-शीर्ष जाकर, भोजन करता हूँ। लेकिन मुझे, देवदत्त भोजन नही देता, दूसरे ही मनुष्य देते है।" "आयुष्मान्! देवदत्त बुद्धो का विरोधी है, दुश्शील है। (वह) अजातशत्रु को अपने प्रति श्रद्धावान् कर, अधर्म से अपने लिए लाभ-सत्कार उत्पन्न करता है। इस प्रकार के कल्याणकारी शासन में प्रव्रजित होकर भी तू, देवदत्त का अधर्म से पैदा किया हुआ भोजन ग्रहण करता है? आओ, तुझे बुद्ध के पास ले चलें", (कह) वे उसे लेकर धर्म-सभा में पहुँचे।

शास्ता ने देखकर पूछा, "भिक्षुओ! क्यो इस (आने के) अनिच्छुक भिक्षु को लेकर आये हो?"

"भन्ते! हाँ, यह भिक्षु आपके पास प्रव्रजित होकर, देवदत्त द्वारा अधर्म से उत्पन्न भोजन ग्रहण करता है।"

"भिक्षु! क्या तू सचमुच देवदत्त का अधर्म से कमाया हुआ भोजन ग्रहण करता है?"

"भन्ते! देवदत्त, मुझे भोजन नही देता, अन्य मनुष्य देते है, मै उसे ही ग्रहण करता हूँ।"

बुद्ध ने, "भिक्षु! बहाना मत बना। देवदत्त अनाचारी है, दुश्शील है। इधर प्रव्रजित हो, मेरे मत (=शासन) में रहता हुआ तू कैसे देवदत्त का भोजन ग्रहण करता है? तू सदा से ऐसा ही सगति-प्रेमी चला आया है। जहाँ जो सगति मिलती है, उसी में पट जाता है।" (कह) पूर्व-समय की कथा कही—

---

[1] कथाकार को शायद यह मालूम नहीं कि वेळुवन और गयाशीर्ष में कितना अन्तर है?

ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे वाराणसी मे (राजा) ब्रह्मदत्त के राज्य करते समय, बोधिसत्व उसके अमात्य थे। उस समय राजा का महिलामुख नाम का एक माङ्गलिक हाथी था, शीलवान् और सदाचार सम्पन्न। किसी को कष्ट नही देता था। एक दिन आधीरात के समय, चोरो ने उसकी शाला के समीप आकर, उससे थोडी ही दूर पर चोर-मन्त्रणा (=चोरी की बात-चीत) की—"ऐसे सुरग लगानी चाहिए। ऐसे सेंध लगानी चाहिए। 'सुरंग' और 'सेंध' मार्ग-सदृश है, तीर्थ सदृश है। उन्हें रुकावट-रहित, बाधा रहित करके ही सामान चुराना चाहिए। और सामान ले जाते समय (आदमियो को) मारकर ही सामान ले जाना चाहिए। ऐसा करने से कोई उठ (कर पकड) नही सकेगा। चोर को शीलवान् नही होना चाहिए। उसे बद-मिजाज, कठोर और जोर जबरदस्ती करने वाला होना चाहिए।" इस प्रकार आपस मे सलाह कर, और एक दूसरे को सिखाकर (वे चोर वहाँ से) गये। इसी तरह फिर एक दिन, फिर एक दिन (करके) बहुत दिन तक वे (चोर) वहाँ आकर मन्त्रणा करते रहे। उस (हाथी) ने उनकी बात-चीत सुन, यह समझा कि ये मुझे सिखा रहे है, सोचा कि अब से मुझे बद-मिजाज, कठोर और जोर जबरदस्ती करने वाला होना चाहिए। सो, वह वैसा ही हो गया। प्रात काल ही आये हथवान को सूँड मे पकड, जमीन पर पटक कर मार डाला। दूसरे को भी, तीसरे को भी, जो जो आता सभी को मार डालता। (लोगो ने) राजा को खबर दी कि 'महिलामुख' उन्मत्त हो गया है। जिसे देखता है, सब को मार डालता है।" राजा ने बोधिसत्व को भेजा—"पण्डित! जा, मालूम कर, हाथी किस कारण से दुष्ट हो गया है?" बोधिसत्व ने यह देख कि हाथी के शरीर में कोई रोग नही है, विचार किया कि किस कारण से यह दुष्ट हो गया? उसे सूझा कि निश्चय से पास में किसी को बात-चीत करते सुन, यह समझ कर कि 'यह मुझे ही सिखा रहे है' यह दुष्ट हो गया। यह सोच, उसने हथवानो (=हत्थिगोपको) से पूछा—क्या किसी ने हाथीशाला के समीप रात को कुछ बात-चीत की थी? "स्वामी! हाँ चोरो ने आकर बात-चीत की थी।" बोधिसत्व ने जाकर राजा को सूचना दी, "देव! हाथी के शरीर में और कोई विकार नही है। चोरो की बातचीत सुनकर दुष्ट हो गया है।" "तो अब क्या किया जाना चाहिए?" "सदाचारी (=शीलवान्) श्रमण-ब्राह्मणो को

हाथी-शाला में बिठवा, सदाचार सम्बन्धी बात-चीत करनी चाहिए।" "तो तात ! ऐसा करवाओ।" बोधिसत्त्व ने जाकर, सदाचारी श्रमण-ब्राह्मणो को हाथी-शाला में बिठवाकर कहा—"भन्ते ! सदाचार सम्बन्धी बातचीत करें।" उन्होने हाथी से कुछ ही दूर बैठकर सदाचार सम्बन्धी बात-चीत की—"किसी को तग नही करना चाहिए। किसी को मारना नही चाहिए। सदाचारी (होकर) तथा शान्ति-मैत्री और करुणा से युक्त होकर रहना चाहिए।" उसने इसे सुन, सोचा, कि यह मुझे ही सिखा रहे है। इसलिए अब से मुझे सदाचारी होकर रहना चाहिए। और वह सदाचारी हो गया। राजा ने बोधिसत्त्व से पूछा—"क्यो तात ! क्या वह शीलवान् हो गया ?" बोधिसत्त्व ने 'देव ! हाँ, इस प्रकार का दुष्ट हाथी पण्डितो (की सगति) के कारण, अपने पुराने स्वभाव में ही प्रतिष्ठित हो गया' कह, यह गाथा कही—

पुराणचोरान वचो निसम्म,
महिलामुखो पोथयमानुचारि,
सुसञ्ञतानं हि वचो निसम्म
गजुत्तमो सब्बगुणेसु अट्ठा॥

[महिलामुख (हाथी) पुराने चोरों की बात सुन, उनका अनुकरण करने वाला, (लोगो को) मारने वाला हो गया। (और वही) गजुत्तम संयमी मनुष्यों की बात सुन सब गुणो में प्रतिष्ठित हो गया]

पुराण चोरान—पुराने चोरो की। निसम्म—सुनकर। मतलब है, कि पहले चोरों की बात सुन। महिलामुख हथिनी के जैसा मुह होने से महिलामुख अथवा जैसे महिला आगे से देखने पर सुन्दर लगती है, न कि पीछे से, उसी प्रकार वह भी आगे से देखने पर ही सुन्दर लगने के कारण, उसका नाम महिलामुख पड़ गया। पोथयमानुचारि, पोथ देते हुए अथवा मार देते हुए, अनुकरण किया। अथवा अन्वचारि ही पाठ। सुसञ्ञतान का अर्थ है सम्यक् सयत=सदाचारी (पुरुषो) का। गजुत्तमो=उत्तम गज=माङ्गलिक हाथी। सब्ब गुणेसु अट्ठा सब पुराने गुणो में प्रतिष्ठित हो गया।

राजा ने यह देख 'कि यह पशुओं तक के आशय (=मन की अवस्था) को जानता है', वोधिसत्व को वहुत सा ऐश्वर्य्य (=यश) दिया। फिर वह आयु पर्य्यन्त जीवित रहकर वोधिसत्त्व सहित कर्मानुसार (परलोक) सिवारा।

शास्ता ने 'भिक्षु ! पहले भी जिस जिस को देखा, तू उस उसकी सगति में पड गया। चोरो की वात सुनकर, तू उनका अनुयायी हो गया। धार्मिक लोगो की वात सुनकर धार्मिक लोगो का अनुयायी हो गया'— यह धर्मदेशना कह, मेल मिला, जातक का साराश निकाल दिखाया। उस समय का महिलामुख (अव का) विपक्षी-दल में चला जाने वाला भिक्षु था। राजा (अव का) आनन्द था और अमात्य तो मै ही था।

२७. अभिण्ह जातक

"नाल कवलं पदातवे . . . " यह गाथा, शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय, एक उपासक और एक वृद्ध स्थविर के वारे में कही।

क. वर्तमान कथा

श्रावस्ती में दो मित्र रहते थे। उनमें से एक प्रव्रजित होकर (भी) प्रति दिन दूसरे के घर जाता। वह, उसको भिक्षा दे, स्वय खा, उसके साथ ही विहार आता, और सूर्य्यास्त होने तक वात-चीत करने के वाद, नगर को वापिस लौटता। दूसरा भी उसे नगर-द्वार तक पहुँचा आता। उनके परस्पर-प्रेम (=विश्वास) की वात भिक्षुओ को मालूम हुई। सो, एक दिन भिक्षु धर्मसभा में वैठे, उनके परस्पर-प्रेम की वात-चीत कर रहे थे। वुद्ध ने आकर पूछा—"भिक्षुओ ! इस समय वैठे क्या वात-चीत कर रहे हो ?" उन्होने कहा, 'भन्ते ! यह वात-चीत कर रहे थे।' शास्ता ने 'भिक्षुओ ! यह दोनो केवल अभी के परस्पर-प्रेमी नही हैं, यह पहले भी परस्पर प्रेमी रहे हैं' कह पूर्व जन्म की कथा कही —

ख. अतीत कथा

पूर्वसमय में वाराणसी में (राजा) ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय, वोधिसत्व (उसके) अमात्य थे। उस समय एक कुत्ता माङ्गलिक हाथी की शाला में जाकर, माङ्गलिक हाथी के खाने के स्थान पर गिरे हुए चावलो को खाता। उसी भोजन पर पलता पलता माङ्गलिक हाथी का विश्वास-पात्र बन गया। वह हाथी के पास ही (आकर) खाता। दोनो पृथक् पृथक् न हो सकते। वह हाथी की सूड़ पकड कर, (उसे) इधर उधर करके खेलता। एक दिन एक ग्रामीण-मनुष्य आया और हाथीवान् को मूल्य दे, उस कुत्ते को अपने गाव ले गया।

उस समय से वह हाथी कुत्ते को न देखने के कारण, न खाता, न पीता, न नहाता। (लोगोने) राजा को, इस बात की खबर दी। राजाने बोधिसत्व को भेजा—"पण्डित! जा! मालूम कर कि किस कारण से हाथी ऐसा करता है?" बोधिसत्व ने हस्ति-शाला में जा हाथी के दुःखित-चित्त होने को जान, देखा—"कि इसको कोई शारीरिक रोग तो है नही। अवश्य ही इसकी किसी न किसी से मित्रता होगी। मालूम होता है, उस (मित्र) के न दिखाई देने से यह शोकग्रस्त हो गया है।" (यह सोच), उसने हथवानो से पूछा—"क्या इसकी किसी के साथ दोस्ती है?"

"स्वामी हां! एक कुत्ते के साथ बडी पक्की दोस्ती है।"

"वह कुत्ता अब कहाँ है?"

"एक आदमी ले गया।"

"उस (आदमी) का निवास-स्थान जानते हो?"

"स्वामी! नही जानते।"

बोधिसत्व ने राजा के पास जाकर, "देव! हाथी को और कोई पीड़ा (=आबाधा) नही है। उसकी एक कुत्ते से बडी दोस्ती है। मालूम होता है, उसीको न देखने से, नही खाता है" कह, यह गाथा कही—

नालं कबलं पदातवे न च पिण्डं न कुसे न घंसितुं
मञ्ञामि अभिण्ह दस्सना नागो सिनेहमकासि कुक्कुरे।

[न कवल (=ग्रास) न पिण्ड, न तृण (=कुश) खा सकता है, न ही मलने

देता है। मालूम होता है कि निरन्तर मिलते रहने से हाथी और कुत्ते का प्रेम हो गया।]

नाल—सामर्थ्य नही। कवल, भोजन से पहले दिया जाने वाला कड़वा कौल (=ग्रास) पदातवे, सन्धि के कारण आकर लुप्त हुआ जानना चाहिए, नही तो पादातवे, अर्थ ग्रहण करने के लिए। न च पिण्ड, खाने के लिए गोले बनाकर दिया जाने वाला प्रभात-पिण्ड भी नही ग्रहण कर सकता। न कुसे, दिये जाने वाले तृण भी नही ग्रहण कर सकता। न घसितु नहाते समय शरीर को मलने भी नही देता। इस प्रकार जो जो हाथी नही कर सकता वह सब राजा को कह उस (हाथी) के असमर्थ होने के विषय में अपना अनुभव कहते हुए 'मञ्ञामि' आदि कहा।

राजा ने उसकी बात सुन, पूछा, "पण्डित! अब क्या करना चाहिए?"

"देव! आप यह मुनादी फिरवा दे कि हमारे माङ्गलिक हाथी के मित्र कुत्ते को कोई मनुष्य ले गया है। जिसके घर, वह कुत्ता दिखाई देगा, उसको यह यह दण्ड (मिलेगा)।"

राजा ने वैसा ही किया। उस समाचार को सुन, उस आदमी ने, उस कुत्ते को छोड दिया। कुत्ता ज़ोर से दौड कर, हाथी के ही पास आ गया। हाथी ने उसे सूँड पर ले, माथे पर रख, रो कर, पीट कर, माथे पर से उतार, उसके खा लेने पर अपने खाया। 'इसने पशु का भी आशय (=मन की बात) जान लिया' सोच, राजा ने बोधिसत्त्व को बहुत ऐश्वर्य्य दिया।

बुद्ध ने "भिक्षुओ! यह (दोनो) केवल अब ही परस्पर-प्रेमी नही रहे हैं। पहले भी रहे हैं' कह, धर्म-देशना ला, चार आर्य-सत्यो के साथ अनुकूलता दिखा, मेल मिला जातक का साराश निकाल दिखाया। (यह चार आर्य-सत्यो के साथ अनुकूलता दिखाना सभी जातको में है, लेकिन हम इसे वही वही दिखावेंगे, जहाँ इसका कुछ फल हैं।) उस समय का कुत्ता (अब का) उपासक था। हाथी (अब का) वृद्ध स्थविर था। अमात्य-पण्डित तो मै ही था।

२८. नन्दिविसाल जातक

"मनूञ्ञमेव भासेय्य . ." यह गाथा, शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय, छ वर्गीय भिक्षुओ की कठोर-वाणी के सम्बन्ध में कही।

क. वर्तमान कथा

उस समय छ' वर्गीय भिक्षु कलह करते, शान्ति-प्रिय भिक्षुओ को तग करते, उनकी निन्दा करते, उन्हें खिजाते, दस आक्रोश-वस्तुओं[1] से गाली देते। भिक्षुओ ने भगवान् से कहा। भगवान् ने छ' वर्गीय भिक्षुओ को बुलवा, 'भिक्षुओ! क्या यह सच है?' पूछ 'सच है' कहने पर, उनको धिक्कारते हुए कहा—"भिक्षुओ! कठोर-वाणी पशुओ तक को अरुचिकर होती है। पूर्व समय में एक पशु ने, अपने को कठोर-शब्द से पुकारने वाले के हज़ार (मुद्रा) हरा दिये।" (यह कह) पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में गन्धार राज्य स्थित तक्षिला (=तक्षशिला) में गान्धार-नरेश राज्य करते थे। उस समय बोधिसत्त्व बैल की जून में पैदा हुए थे। सो, बोधिसत्त्व के तरुण बछडा होने की अवस्था ही में, एक ब्राह्मण ने गो-दक्षिणा देने वाले दाता के पास जा, उन्हें प्राप्त कर, नन्दिविसाल नाम रख, पुत्र की तरह बड़े लाड-प्यार से यागुभात इत्यादि खिलाकर पाला। आयु प्राप्त होने पर बोधिसत्व ने सोचा—"मुझे इस ब्राह्मण ने बडी कठिनाई से पाला है। सकल जम्बूद्वीप में, मेरे

---

[1] जाति, नाम, गोत्र, कुल, कर्म, शिल्प (=पेशा), आबाध (=रोग), लिङ्ग-क्लेश (=चित्तविकार) तथा आपत्ति (=सदोषता)।

साथ एक धुर में जुतने वाला दूसरा बैल नही है। क्यो न मै अपना बल दिखाकर, इस ब्राह्मण को पालने पोसने का खर्चा दू ?"

एक दिन उसने ब्राह्मण को कहा—"ब्राह्मण ! जा, गो-धन (वाले) सेठ के पास जाकर, "मेरा बैल एक साथ बँधी हुई सौ गाडियो को (एक साथ) खैच लेता है" कह एक हजार की शर्त लगा।"

उस ब्राह्मण ने सेठ के पास जा, बात-चीत चलाई—"इस गाँव में किसके बैल (सबसे) तगडे है ?" उस सेठ ने, 'अमुक के (बैल तगडे) है, अमुक के (बैल तगडे) है,' कह, (अन्त में) कहा कि सारे नगर मे हमारे बैलो के सदृश कोई बैल नही।" ब्राह्मण ने कहा—'मेरा एक बैल, एक साथ बधे सौ छकडो को खीच सकता है।'

सेठ ने कहा, "ऐसा कहाँ है ?"

ब्राह्मण ने उत्तर दिया, "मेरे घर है।"

"तो शर्त लगाओ।" "अच्छा ! शर्त लगाता हूँ" कह, उसने एक हज़ार की शर्त लगाई।

एक सौ छकडो को बालू, ककड तथा पत्थरो से भर, (उन्हें) क्रम से खडा कर, तमाम अक्षो (=धूरो) को बाँधने के जूये से एक साथ बाँध, **नन्दिविसाल** को नहला, सुगन्धि से पाञ्च अडगुलियो का चिन्ह कर, गले में माला डाल, अगले छकडे के धुर में उसे अकेला ही जोड, अपने आप धुर पर बैठ कहा, "अच्छा ! तो कूट, डो कूट।"

बोधिसत्व यह सोच कि 'यह मुझ अकूट को कूट कह कर पुकारता है' चारो पैरो को स्तम्भ की तरह निश्चल करके खडे रहे।

सेठ ने उसी समय ब्राह्मण से (एक) हज़ार (मुद्रा) धरवा (=मँगवा) लिये।

ब्राह्मण (एक) हज़ार हार कर, बैल को छोड, घर जाकर शोकाभिभूत हो पड रहा। नन्दिविसाल ने (घास) चरकर, आकर, ब्राह्मण को शोक निमग्न देख पूछा—"ब्राह्मण ! क्या सोच रहे हो ?"

"(एक) हज़ार हारने वाले को मुझे निद्रा कहाँ ?"

"ब्राह्मण ! मैंने इतने चिर तक, तेरे घर में रहते समय क्या कभी कोई भाजन तोडा ? क्या कभी किसीको कुचला ? क्या कभी किसी अनुचित स्थान पर गोबर-पेशाब किया ?"

"तात! नही।"

"तो फिर तू मुझे 'कूट' कह कर क्यो पुकारता है? यह तेरा ही दोष है, मेरा दोष नही। जा (इस बार) उससे दो हजार की शर्त लगा। केवल मुझ अकूट (=अदुष्ट) को कूट कह कर न पुकारना।"

ब्राह्मण ने उसकी बात सुन, जाकर दो हजार की बाजी लगा, पूर्वोक्त प्रकार से ही सौ छकडो को एक साथ बाध, (नन्दिविसाल) को सजाकर, अगले छकडे के धुर में जोता। कैसे जोता? युग को धुर मे पक्की तरह बाध कर, धुर के एक सिरे पर नन्दिविसाल को जोत, धुर के दूसरे सिरे को धुर की रस्सी से लपेट, युग के सिरे और अक्षो के बीच में मुण्ड-वृक्ष का एक दण्ड देकर, उसे रस्सी से पक्की तरह बाँध दिया। ऐसा करने से जुआ, इधर उधर नही होता था। (उसे) एक ही बैल खैच सकता था। तब उस ब्राह्मण ने धुर पर बैठ नन्दिविसाल की पीठ पर हाथ फेर कहा—"अच्छा, तो भद्र! (ले) ढो भद्र!" बोधिसत्व ने एक बँधे हुए सौ छकडो को एक ही झटके में खैच, (सबसे) पीछे खडी गाडी को, (सबसे) आगे खडी गाडी की जगह पर ला कर खडा कर दिया। गो-धन (वाले) सेठ ने पराजित हो, ब्राह्मण को दो हजार दिये। और दूसरे मनुष्यो ने भी बोधिसत्व को बहुत धन दिया। (वह) सब धन ब्राह्मण का ही हुआ। इस प्रकार बोधिसत्व के कारण, (उसे) बहुत धन मिला।

बुद्ध ने "भिक्षुओ! कठोर-वचन किसीको अच्छा नही लगता" कह, छः वर्गीय भिक्षुओ को धिक्कारते हुए, शिक्षा-पद (=नियम) बना, अभि-सम्बुद्ध हुए रहने के समय ही यह गाथा कही—

मनुञ्ञमेव भासेय्य नामनुञ्ञं कुदाचनं
मनुञ्ञं भासमानस्स गरुम्भारं उदद्धरी,
धनञ्च न अलभेसि तेन चत्तमनो अहु॥

[जब बोले मनोज्ञ (-वाणी) ही बोले, अमनोज्ञ कभी न बोले। मनोज्ञवाणी बोलने से, (बैल ने) भारी-भार ढो दिया। उस (ब्राह्मण) को धन मिला, जिससे वह अत्यन्त सन्तुष्ट हुआ।]

मनुञ्ञमेव भासेय्य का अर्थ है कि किसी दूसरे के साथ बोलते हुए, चार प्रकार के दोषो से रहित,[1] मधुर, सुन्दर, चिकनी, मृदु, प्रिय वाणी ही बोले। **गरुम्भारं उदद्धरी**, नन्दिविसाल बैल ने अप्रिय-वचन बोलने वाले (ब्राह्मण) के भार को न खैंच, पीछे प्रिय-वचन बोलने पर (उसी) ब्राह्मण के भारी-भार को खैंच दिया, खैंच कर, निकाल कर रास्ते पर चला दिया। 'द' केवल व्यञ्जन सन्धि के कारण है।

इस प्रकार शास्ता ने 'मनुञ्ञमेव भासेय्य " इस धर्म-देशना को लाकर, जातक का साराश निकाल दिखाया। उस समय का ब्राह्मण (अब का) आनन्द था। और, नन्दिविसाल तो मै ही था।

२९. कण्ह जातक

"यतो यतो गरुधुरं . . ." यह गाथा, शास्ता ने, जेतवन में विहार करते समय, **यमक प्रातिहार्य**[2] के बारे में कही। वह तेरहवें परिच्छेद में 'देवारोहण' के साथ, **सरभमृग जातक**[3] में आयेगी।

---

[1] दुर्भाषित न हो, अप्रिय न हो, अधर्म न हो तथा असत्य न हो (सुभाषित सूत्र, सुत्तनिपात)

[2] एक ओर से पानी दूसरी ओर से आग निकलना, इस प्रकार की जोड़ीदार अलौकिक क्रिया।

[3] सरभमृग जातक (४८३)

क. वर्तमान कथा

सम्यक् सम्बुद्ध के यमक प्रातिहार्य[1] कर, देव-लोक में रह, महापवारणा के बाद संकिस्स-नगर[2] द्वार पर उतर, बहुत से अनुयायियो के साथ जेतवन में प्रविष्ट होने पर, धर्म-सभा में बैठे भिक्षु तथागत की गुण-कथा कहने लगे—"आवुसो! तथागत असम-धुर हैं। तथागत जिस धुर को ढोते हैं, उसे ढोने वाला कोई और नही। (शेप) छ शास्ता 'हम ही प्रातिहार्य करेंगे', 'हम ही प्रातिहार्य करेंगे' कहकर एक भी प्रातिहार्य न कर सके। अहो! (हमारे) शास्ता असम-धुर हैं।"

शास्ता ने आकर पूछा—"भिक्षुओ! इस समय बैठे क्या बात-चीत कर रहे हो?" "भन्ते! और कोई (बात-चीत) नही, इस तरह से आप ही की गुण-कथा कह रहे हैं।" शास्ता ने 'भिक्षुओ! अब मेरे खैंचे (—ढोये) धुर को कौन खैंचेगा? पूर्वजन्म में पशु-योनि में उत्पन्न हुए रहने पर भी, मुझे अपने 'सम-धुर' कोई नही मिला' कह, पूर्व-जन्मकी कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में (राजा) ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय, बोधिसत्व बैल की योनि में पैदा हुए। सो, उसके स्वामियो ने, उसके तरुण बछडा ही रहते, एक बूढी के घर में रहने के किराये के स्वरूप में, उसे उस बुढिया को दे दिया। उसने यवागु-भात आदि खिलाकर उसका पुत्र की तरह पालन किया। उस (बछडे) का नाम आर्य्यका-कालकक पडा। आयु-प्राप्त होने पर, वह सुरमे के रग का (काला) हो ग्राम के (अन्य) बैलो के साथ चरने लगा। वह सुशील स्वभाव का था। ग्राम-बालक सीग, कान तथा गले को पकड कर लटक जाते। पूछ तक को पकड कर खेल करते। पीठ पर बैठ जाते।

उसने एक दिन सोचा—"मेरी माता दरिद्र है। उसने मुझे बडी कठिनाई से पुत्र की तरह पाला है। मै क्यो न मजदूरी करके इसकी गरीबी दूर करूँ?" सो, उसके बाद से, वह मजदूरी ढूढता हुआ विचरने लगा। एक दिन एक सार्थ-

---

[1] देखो पटिसम्भिदामग्ग।

[2] संकिसा वसंतपुर, स्टेशन मोटा, जिला फर्रुखाबाद।

वाह-पुत्र के पाँच सौ छकडे एक विषम-तीर्थ (=पट्टन) पर आन (फँसे)। उसके बैल गाडियो को न निकाल सके। पाँच सौ गाड़ियो के बैल एक युग में जोतने पर वे, एक भी गाडी न निकाल सके।

बोधिसत्व भी ग्राम के गोरुओ के साथ तीर्थ (=पट्टन) के पास ही चरते थे। सार्त्थ-वाह-पुत्र, गो-शास्त्रज्ञ था। उसने 'इन बैलो मे इन गाडियो को निकाल सकने वाला कोई वृषभ-आजानीय है वा नही ?' सोचते हुए, बोधिसत्व को देख, 'यह आजानीय (वृषभ) है, यह मेरे शकटो को निकाल सकेगा' सोच, ग्वालो से पूछा—"इसका स्वामी कौन है ? मै इसे शकटो मे जोत कर, शकटो के निकल आने पर स्वामी को मज़दूरी (=वेतन) दूगा।" उन्होने उत्तर दिया—"इस स्थान पर, इसका स्वामी नही है। पकड कर जोत ले।" वह, बोधिसत्व को, नाक में रस्सी से बाँध, खैंच कर न चला सका। बोधिसत्व, 'मज़दूरी कहने पर जाऊँगा' सोच न गये। सार्त्थ-वाह-पुत्र ने उसका अभिप्राय जान कर कहा—'स्वामी ! तुम्हारे पाँच सौ गाडियो को खैंच कर निकाल देने पर, एक एक गाडी की मज़दूरी दो कार्षापण करके, एक हज़ार (कार्षापण) दूगा।' तब बोधिसत्व अपने आप चले गये। लोगो ने उसे गाडियो में जोता। उसने एक ही झटके में गाडियो को निकाल कर स्थल पर रख दिया। इस प्रकार सब गाडियाँ निकाल दी।

सार्त्थ-वाह-पुत्र ने एक गाडी के लिए एक के हिसाब से पाँच सौ (कार्षापणो) की पोटली बनाकर, उसके गले मे बाध दी। बोधिसत्व 'यह मुझे निश्चित मज़दूरी नही देता है, सो अब मै इसे जाने नही दूगा' सोच, जाकर, सबसे अगली गाडी के सामने मार्ग रोक कर खड़ा हो गया। उसको हटाने के बहुत प्रयत्न करने पर भी न हटा सके।

सार्त्थ-वाह-पुत्र ने सोचा, 'मालूम होता है ,यह अपनी मज़दूरी की कमी को पहचानता है', सो एक कपडे में एक हज़ार की गाँठ बाँध, 'यह तेरी गाडियाँ निकालने की मज़दूरी है' कह, उसे उसकी गर्दन मे लटका दिया।

वह हज़ार की गाँठ लेकर माता के पास गया। ग्राम के लडके, 'आर्य्यका-कालक' के गले में यह क्या बँधा है (जानने के लिए) समीप आने लगे। वह उनका पीछा कर, उन्हें दूर से ही भगा, माता के पास गया। पाँच सौ गाडियो को उतारने के कारण लाल हुई आँखो से थकावट प्रगट हुई। उपासिका उसके गले मे एक हज़ार की थैली देख "तात ! यह तुझे कहा से मिली ?" पूछ (फिर) ग्राम-दारको से

वह (सब) समाचार जान बोली, "तात ! मैं क्या तेरी मज़दूरी से जीने की भूखी हूँ? तूने किस लिए ऐसा कष्ट उठाया है?" (यह कह) उसने बोधिसत्व को गर्म जल से नहला, सारे शरीर पर तेल लगा, पानी पिला, अनुकूल भोजन खिलाया। बाद में आयु सम्पूर्ण होने पर वह बोधिसत्व सहित कर्मानुसार (परलोक को) गई।

शास्ता ने "भिक्षुओ ! तथागत (केवल) अब ही असम-धुर नही है, पहले भी असम-धुर ही रहे है"—यह धर्म-देशना कह, मेल मिला, अभिसम्बुद्ध होने की ही अवस्था में यह गाथा कही—

> यतो यतो गरुधुर यतो गम्भीर वत्तनी।
> तदस्सु कण्हं युञ्जन्ति स्वास्सु तं वहते धुरं॥

[जहाँ जहाँ पर धुर भारी होती है, जहाँ जहाँ पर मार्ग कठिन होता है, वहाँ वहाँ कृष्ण (=काले बैल) को जोतते है। और वह उस धुर को ढो देता है।]

यतो यतो गरुधुर=जिस जिस स्थान पर धुर भारी होता है, अन्य बैल नही उठा सकते। **यतो गम्भीर वत्तनी** जो वर्ते वह वर्त्तनी, मार्ग का पर्य्यायवाची। जिस स्थान पर पानी-कीचड की अधिकता से, वा तट के विषम तरह से टूटा-फूटा रहने से, मार्ग कठिन होता है। **तदस्सु कण्ह युञ्जन्ति**, अस्सु केवल निपात है। अर्थ है कि उस समय कृष्ण (बैल) को जोतते है। साराश यह है कि जिस समय धुर भारी होता है, मार्ग गम्भीर होता है, उस समय अन्य बैलो को हटा कर, कृष्ण (-बैल) को ही जोतते है। **स्वास्सु त वहते धुर**; यहाँ भी अस्सु तो केवल निपात है। अर्थ है कि वह उस धुर को ढोता (=खीचता) है।

इस प्रकार भगवान् ने "भिक्षुओ ! कृष्ण (-बैल) ही उस धुर को खैचता (=वहन करता) है" दिखाकर, मेल मिलाकर, जातक का साराश निकाल दिखाया। उस समय की वृद्धा (अब की) उत्पलवर्णा थी। आर्य्यक-कालक तो मै ही था।

३०. मुनिक जातक

"मा मुनिकस्स..." यह गाथा, शास्ता ने जेतवन मे विहार करते समय, एक प्रौढ कुमारी के प्रति आसक्ति (=लोभ) के बारे मे कही। वह (कथा) तेरहवें परिच्छेद (=निपात) की चुल्लनारदकस्सप जातक[1] में आयेगी।

क. वर्तमान कथा

बुद्ध ने उस भिक्षु से पूछा, "भिक्षु! क्या तू सचमुच उत्तेजित है?"

"भन्ते! हाँ।"।

"किस लिए?"

"भन्ते! प्रौढ-कुमारी के लोभ के कारण।"

बुद्ध ने, "भिक्षु! यह (कुमारी) तेरा अनर्थ करने वाली है। पूर्व-जन्म मे भी तू, इसके विवाह के दिन प्राणो से हाथ धोकर, महाजन (-समूह) का सालन बना" कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय वाराणसी में (राजा) ब्रह्मदत्त के राज्य करते समय, बोधिसत्त्व, एक गाँवडे (=गामक) मे एक कुटुम्बि के घर गो-योनि में पैदा हुए। उनका नाम महालोहित था, और उनका एक छोटा भाई भी चुल्ललोहित नामक हुआ। इन दोनो भाइयो के कारण ही, उस परिवार का काम-काज उन्नति पर था। उसी

---

[1] चुल्लनारद जातक (४७७)

कुल में एक कुमारी भी थी। उसे एक नगरवासी कुलपुत्र ने अपने पुत्र के लिए वरा। उस (कुमारी) के माता पिता, 'कुमारी के विवाह के अवसर पर आने वाले आगुन्तको के लिए सालन की सामग्री रहेगा' सोच, एक सूअर को यवागु-भात खिला खिला कर पालते थे। उसे देख चुल्ललोहित ने अपने भाई से पूछा— "इस परिवार के काम-काज को उन्नत बनाने वाले हम है। हम दोनो भाइयो के कारण ही यह उन्नति पर है। लेकिन यह घर वाले हमें तो केवल तृण-पराल आदि ही देते है, और सूअर को यवागु-भात खिला कर पालते है। किस कारण से इसको यह सब मिलता है?" उसके भाई ने उत्तर दिया "तात! चुल्ललोहित! तू इसके भोजन की ईर्पा मत कर। यह सूअर अपना मरण-भोजन खा रहा है। 'इस कुमारी के विवाह के अवसर पर आने वाले आगुन्तको के लिए सालन की सामग्री होगा' सोच, यह (घर वाले) इस सूअर को पोस रहे हैं। अब से कुछ ही दिन के बाद वे लोग आ जायेंगे। तब, तू देखेगा कि (यह) इस सूअर को पैरो से पकड, घसीटते हुए, सूअर के निवास-स्थान से निकाल, प्राण-नाश कर, आगन्तुको के लिए सूप-व्यञ्जन बनायेंगे।" यह कहकर, उसने यह गाथा कही—

मा मुनिकस्स पिहयि आतुरन्नानि भुञ्जति,
अप्पोस्सुक्को भुसं खाद एतं दीघायुलक्खणं॥

[मुनिक (सूअर के भोजन) की ईर्पा(=इच्छा) मत कर। वह मरणान्त भोजन खाता है। (तू) उत्सुकता-रहित होकर भूसे को खा। यह दीर्घायु का लक्षण है।]

मा मुनिकस्स पिहयि—मुनिक (सूअर) के भोजन की इच्छा मत उत्पन्न कर, "यह अच्छा भोजन खाता है" (करके) मा मुनिकस्स पिहयि=मैं भी कब ऐसा सुखी होऊँगा, इस प्रकार सोच, मुनिक-भाव की प्रार्थना मत कर। अय हि आतुरन्नानि भुञ्जति; आतुरन्नानि का अर्थ है मरण भोजन। **अप्पोस्सुक्को भुसं खाद,** उसके भोजन के प्रति उत्सुकता (=आशा) रहित होकर, अपने को जो भूसा मिला है, उसे खा। **एतं दीघायुलक्खण**—यह दीर्घायु होने का लक्षण है।

उसके थोडी देर बाद ही, वे मनुष्य आ गये। (उन्होंने) मुनिक को मार कर, (उसे) नाना प्रकार से पकाया। बोधिसत्व ने चुल्ललोहित से पूछा—"तात! तूने मुनिक को देखा?" "भाई! मैंने देख लिया मुनिक को मिलने वाले भोजन का फल। इसके भात (=भोजन) से हमारा तृण-पराल-भूसा लाख दर्जा अच्छा है, दोष रहित है, दीर्घायु का लक्षण है।"

बुद्ध ने, "हे भिक्षु! तू इस प्रकार, पूर्वजन्म में भी, इस कुमारी के कारण प्राणो से हाथ धो, लोगो का सालन बना"—यह धर्म-देशना कह, आर्य (-सत्यो) को प्रकाशित किया। (आर्य-) सत्यो के (प्रकाशन के) अन्त में, उत्कण्ठित भिक्षु स्रोतापत्ति-फल में प्रतिष्ठित हुआ। शास्ता ने भी मेल मिला, जातक का साराश निकाल दिखाया। उस समय का मुनिक सूअर (अब का) उत्कण्ठित भिक्षु था। तरुण-कुमारी यह (प्रौढ-कुमारी) ही; चुल्ल-लोहित (अब के) आनन्द; (और) महा-लोहित तो मैं ही था।

पहला परिच्छेद

४. कुलावक वर्ग

३१. कुलावक जातक

"कुलावका..." यह गाथा, शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय, बिना कपड़-छान किये पानी पीने वाले भिक्षु के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

श्रावस्ती के दो मित्र तरुण-भिक्षुओं ने (कोशल) जन-पद में, सुख-पूर्वक रह सकने योग्य किसी स्थान में, यथेच्छा वास किया। फिर सम्यक् सम्बुद्ध को देखने की इच्छा से, वहाँ से निकल, जेतवन की ओर प्रस्थान किया। एक के पास छन्ना (=पानी छानने का कपड़ा) था, दूसरे के पास नहीं, (इसलिए) दोनों एक ही छन्ने मे छान कर पानी पीते थे। एक दिन उन दोनों में विवाद हो गया। छन्ने के स्वामी ने दूसरे (भिक्षु) को छन्ना न दे, अकेले अपने पानी छान कर पिया। दूसरे ने छन्ना न मिलने से, और प्यास भी न सह सकने से, बिना छाने ही पानी पिया। दोनों क्रम से जेतवन पहुँच कर, बुद्ध को प्रणाम कर बैठे।

बुद्ध ने कुशल-समाचार सम्बन्धी बात-चीत करते हुए पूछा, "कहाँ से आये हो?"

"भन्ते! हम कोशल जन-पद के एक गाँव में रह, वहाँ से निकले, आपके दर्शन करने के लिए आये हैं।"

"क्या मेल-मिलाप पूर्वक आये हो?"

जिस भिक्षु के पास छन्ना नहीं था, उसने कहा, "भन्ते! इसने रास्ते में मेरे साथ विवाद किया, (और फिर अपना) छन्ना नहीं दिया।"

दूसरे ने कहा, "भन्ते! इसने जान-बूझ कर, बिना छाने, जीवों सहित जल पिया।"

"भिक्षु ! क्या तूने सचमुच जान-बूझ कर जीवो सहित जल पिया ?"

"भन्ते ! हाँ, मुझसे विना छना पानी पिया गया।"

शास्ता ने "भिक्षु ! पूर्व समय में देव-नगर में राज्य करते हुए पण्डितो ने युद्ध में पराजित हो, समुद्र की सतह पर भागते हुए, 'हम ऐश्वर्य के लिए प्राणवध न करेंगे' सोच, महान् ऐश्वर्य का त्याग कर, गरुड-बच्चो को प्राण-दान दे, रथ को रोक दिया", कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व-समय में मगध-राज्य के राजगृह नगर में, एक मगध-नरेश राज्य करते थे। जैसे वर्तमान समय के शक्र (=इन्द्र) देव, (अपने) पूर्व-जन्म में, **मगध-राष्ट्र** के **मचल** ग्राम मे पैदा हुए थे, उसी प्रकार वोधिसत्त्व उस समय, उसी **मचल** ग्राम के एक महान् कुल में उत्पन्न हुए थे। नामकरण के दिन, उसका नाम **मघ-कुमार** रक्खा गया। आयु वढने पर, वह **मघ-माणवक** के नाम से प्रसिद्ध हुआ। उसके माता पिता ने, अपने समान जाति के कुल से, (उसके लिए) एक लडकी ला दी। पुत्र-पुत्रियो सहित उसकी वढती होते होते, वह दानपति हो गया। वह पाँच-शीलो की आरक्षा करता। उस गाँव में (कुल) तीस ही कुल थे। वे तीसो कुलो के मनुष्य एक दिन गाव के वीच में खडे होकर ग्राम-कृत्य कर रहे थे। वोधिसत्त्व जहाँ खडे थे, वहाँ के रेत को पाँव से हटा, उस स्थान को रमणीक वनाकर, वहाँ पर खडे हुए। एक दूसरा आदमी आकर, उस स्थान पर खडा हो गया। वोधिसत्व दूसरी जगह को रमणीय वनाकर, वहाँ खडे हो गये। वहाँ भी एक और आदमी आकर खडा हो गया। वोधिसत्त्व ने और दूसरा, और दूसरा करते, सभी के खडे होने के स्थान को रमणीय वनाकर, फिर वहाँ एक मण्डप वनवा दिया। (फिर) मण्डप को हटाकर, एक शाला वनवाई। उसमें पटडो के आसन विछवा कर, (पानी) पीने की चाटी रखवाई। कुछ समय वीतने पर, वह तीस के तीस जने वोधिसत्त्व के समान विचार के हो गये। वोधिसत्त्व उन्हें पाँच शीलो में प्रतिष्ठित कर, उसके वाद से उनको साथ ले पुण्य करते विचरते रहे। वे भी वोधिसत्त्व के साथ पुण्य करते हुए प्रात काल ही उठ कर वसुला, (=वासी) परशु, (=कुल्हाडा) तथा मूसल हाथ में ले, चौरस्तो (=चतुमहापथो) पर जा, वहाँ मूसल से पत्थरो को उलट रास्ते से हटा देते (=पवट्टेन्ति)। गाडियो के अक्षो में वाधक वृक्षो को हटाते

ऊँच-नीच को वरावर करते। पुल वनाते। पुष्करिणियाँ खोदते। शालायें वनाते। दान देते। शील की आरक्षा करते। इस प्रकार प्राय सभी ग्रामवासी, वोधिसत्त्व के उपदेशानुसार सदाचारी वन गये।

तव उनके **ग्राम-भोजक** ने सोचा कि पहले जव यह लोग शराव पीते थे, जीव-हिंसा करते थे, तो मुझे इनसे **चाटी, कार्षापण**के रूप में तथा दण्ड-वलि (=जुर्माने) आदि के रूप में धन मिलता था। लेकिन अव यह मघ, माणवक 'शील आरक्षा कराता हूँ', (करके) लोगो को जीव-हिंसा नही करने देता। "अच्छा! अव तुझे पाँच-शील रखाऊँगा!" (कह) क्रुद्ध हो, उसने राजा से जाकर कहा—

"देव! वहुत से चोर ग्राम-घात आदि करते घूम रहे है।" राजा ने उसकी वात सुन आज्ञा दी—"जा, उन्हें (पकड) ला।" उसने जाकर, सव को वाँध ला कर राजा से कहा—"देव! चोरो को ले आया।" राजा ने उनके कर्म की परीक्षा किये विना ही आज्ञा दी कि उन्हे हाथी से रौंदवा दो। सव को राजाङ्गण मे लिटा कर हाथी को लाया गया।

वोधिसत्त्व ने लोगों को उपदेश दिया—"तुम अपने शील का विचार करो। चुग़ल-ख़ोर के प्रति, राजा के प्रति, हाथी के प्रति, और अपने शरीर के प्रति एक जैसी मैत्री भावना करो।" उन्होंने वैसा ही किया। उन्हें रौंदने के लिए हाथी को आगे वढाया गया। आगे वढाये जाने पर भी, वह उनके ऊपर से नही जाता था। चिघाड़ मार कर भागता था। दूसरे, तीसरे हाथी को लाया गया। वे भी, वैसे ही भागे।

राजा ने सोचा, 'इनके हाथ में कोई औषध होगी', इसलिए आज्ञा दी कि इनकी तलाशी लो। तलाशी लेने वालो ने (कुछ) न देखकर कहा "देव! नही है।" राजा ने सोचा, 'कोई, मन्त्र जपते होगे।' (सो आज्ञा दी) पूछो कि क्या कोई जपने का मन्त्र है? राज-पुरुषो ने पूछा। वोधिसत्व ने कहा, "(मन्त्र) है।" राजपुरुषों ने सूचना दी, "देव! (यह कहता है) कि (मन्त्र) है।" राजा ने सव को वुला कर कहा—"तुम्हें जो मन्त्र मालूम है, सो कहो।"

वोधिसत्त्व ने कहा—"देव! हमारे पास दूसरा कोई मन्त्र नही है। हम तीस जने जीव-हिंसा नही करते, चोरी नही करते, मिथ्या आचार (=व्यभिचार) नहीं करते, झूठ नही वोलते, शराव नही पीते, मैत्री-भावना करते हैं, दान देते हैं, (ऊँचे-नीचे) रास्तो को वरावर करते है, पुष्करिणियाँ खोदते है, शालायें वनाते

है, —यही हमारा मन्त्र है, यही हमारी आरक्षा (=परित्त) है, और यही हमारी वृद्धि है।"

राजा ने उन पर प्रसन्न हो, चुगल-खोर के घर की सब दौलत उनको दिलवा चुगल-खोर को उनका दास बना दिया। वह हाथी और ग्राम भी उन्ही को दे दिया। उस समय से उन्होने यथेच्छ पुण्य करते हुए, चौरास्ते पर एक बडी भारी शाला बनवाने की इच्छा से, बढई को बुलाकर, (उससे) शाला की नीव रखवाई। स्त्रियो (=मातुगाम) के प्रति आसक्ति न होने के कारण, उन्होने उस शाला (के निर्माण) मे स्त्रियो को हिस्सेदार नही बनाया। उस समय बोधिसत्त्व के घर में सुधम्मा, चित्ता, नन्दा और सुजाता नाम की चार स्त्रियाँ थी। उनमें से सुधर्मा ने बढई के साथ मिल, '(भाई! इस शाला (के निर्माण) में, मुझे मीरी (=ज्येष्ठकी) कर' (कह) उसे रिश्वत दी। उसने 'अच्छा' कह, स्वीकार कर, पहले से ही कर्णिक (=शहतीर के योग्य) वृक्ष को सुखवाकर, छीलकर, बीधकर, शहतीर बना तैयार करके, वस्त्र से लिपटवा कर, रखवाया। फिर शाला को समाप्त कर, कर्णिका रखने के समय कहा—"ओह! आर्यो! एक बात याद न रही।" "भो! क्या?" "कर्णिका (=शहतीर) चाहिए" "अच्छा! ले आयेगे।" "अब के (ताजे) कटे वृक्ष से न बन सकेगी। पहले से ही काट कर छील कर, बीध कर, रक्खी हुई कर्णिका मिलनी चाहिए।" "तो अब क्या किया जाये?" "यदि किसीके घर में बेचने के लिए रक्खी हुई कर्णिका हो, तो उसे खोजना चाहिए।" ढूढते हुए, उन्हें सुधर्मा के घर मे (कर्णिका) मिली, (लेकिन वह उसे) मूल्य देकर न ले सके। "यदि मुझे शाला (के निर्माण) में हिस्सेदार बनाओ, तो दूगी" कहने पर, उन्होने कहा कि हम स्त्रियो को हिस्सा (=पत्ति) नही देते। तब बढई ने उन्हे कहा—"आर्यो! क्या कहते हो? ब्रह्मलोक को छोड और कोई ऐसी जगह नही जहाँ स्त्रियाँ न हो। (इससे) कर्णिका को ले लो। ऐसा होने पर, हमारा काम सम्पूर्ण हो जायगा।" उन्होने 'अच्छा' (कह), कर्णिका ले, शाला को समाप्त कर, आसन तथा पटडे बिछवा, पानी की चाटियाँ रखवा, यागुभात (का सदा-व्रत) बाँध दिया। शाला को चार-दीवारी से घेर, (उसमें) दरवाजा लगा, चार-दीवारी के अन्दर बालू-रेत बखेर, उसके बाहर ताड के वृक्षो की पक्ति लगाई। चित्रा ने भी वहाँ उद्यान लगाया। कोई ऐसा फल-फूलदार वृक्ष नही होगा, जो उस उद्यान में न हो। नन्दा ने भी उसी स्थान पर पाँच वर्णों के कमलो से आच्छादित, रमणीय पुष्करिणी बनवाई।

सुजाता ने कुछ न किया। बोधिसत्त्व मातृ-सेवा, पितृ-सेवा, अपने से बडो का आदर, सत्य-भाषण, मृदु-भाषण, चुगल-खोरी-रहित भाषण, मात्सर्य्य (=ईर्षा) का न होना, इन सात व्रतो को पूरा कर—

"माता पेत्तिभरं जन्तुं कुले जेट्ठापचायिनं,
सण्हं सखिल सम्भासं पेसुण्णेय्यप्पहायिनं
मच्छेर विनये युत्तं सच्चं कोधाभिभुं नरं
तं देवा तावंतिसा आहु सप्पुरिसो"[1]

[माता पिता की सेवा करने वाले, बडो का आदर करने वाले, प्रिय-मृदु बोलने वाले, चुगल-खोरी-रहित बात कहने वाले, मात्सर्य्य के नाश में लगे हुए, सत्य-वादी अक्रोधी नर को ही, त्रयस्त्रिंश (=तावतिंस) -लोक के देवता सत्पुरुष कहते है।]

इस प्रकार प्रशसा के भागी हो, जीवन समाप्त होने पर, त्रयस्त्रिंश-भवन में देवेन्द्र शक्र होकर, उत्पन्न हुए। उसके साथी भी वही उत्पन्न हुए। उस समय त्रयस्त्रिंश लोक में असुर रहते थे। देवेन्द्र शक्र ने सोचा, "इनके बराबरी के राज्य मे हमें क्या (लाभ) ?" सो, उसने असुरो को दिव्य पान पिलवा कर, उनके बेहोश होने पर, उन्हें पैरो से पकडवा सुमेरु पर्वत के प्रपात पर से फेंकवा दिया। वे असुर-भवन को प्राप्त हुए। असुर-भवन, सुमेरु(=पर्वत) के निचले तल पर (है) और त्रयस्त्रिंश देव-लोक जितना ही बडा है। देवताओ के पराजित वृक्ष की भाँति, वहाँ असुरो का चित्रपाटली नामक कल्पस्थायी वृक्ष है। उन (असुरो) को चित्र-पाटली वृक्ष के पुष्पित होने पर पता लगा कि यह हमारा देव-लोक नही है, क्योकि देव-लोक में तो पारिजात वृक्ष फूलता है। सो, उन्होने यह जान कि "बूढे शक्र ने, हमें बेहोश करके, महासमुद्र की सतह पर फेंक हमारा देव-नगर ले लिया है" निश्चय किया कि हम उसके साथ युद्ध करके अपना देव-नगर लेंगे। खम्भे पर च्यूटियो के चढने की तरह, वे सुमेरु पर्वत के साथ साथ चढते हुए (ऊपर) उठे। शक्र ने 'असुर उठे' सुन, समुद्र-पृष्ठ पर ही आकर उनसे युद्ध करते हुए, उनसे हार कर, डेढ सौ योजन (लम्बे-चौडे) वैजयन्त रथ में दक्षिण समुद्र के ऊपर ऊपर भागना आरम्भ किया। समुद्र-तल पर वेग से चलता हुआ उसका रथ, सिम्बलि वन के

---

[1] संयुत्तनिकाय, सक्क संयुत्त

पास से गुजरा। उसके रास्ते में आया सिम्बलि वन, ताड के पत्तो की तरह टूट टूट कर, समुद्र-तल पर गिरने लगा समुद्र-तल पर उलटते पलटते गरुड-बच्चे महा चीत्कार करने लगे। शक्र ने (अपने सारथी) मातलि से पूछा—"मातलि! यह अत्यन्त करुणाजनक क्या शब्द है?"

"देव! आपके रथ के वेग से चूर्णित होकर गिरते हुए सिम्बलि वन के कारण, मरने के भय से भयभीत गरुड-पोतक एक साथ चीत्कार कर रहे है।"

महासत्त्व ने कहा—"सम्म मातलि। हमारे कारण इन्हें कष्ट न हो। ऐश्वर्य्य के लिए, हम जीवहिंसा नही करते। इनके लिए, हम अपने प्राणो का परित्याग कर, (उन्हें) असुरो को दे देंगे। इस रथ को लौटाओ।" कह, यह गाथा कही—

कुलावका मातलि! सिम्बलिस्मि,
ईसामुखेन परिवज्जयस्सु;
कामं चजाम असुरेसु पाणं,
मायिमे दिजा विकुलावा अहेसुं॥

[मातलि! सिम्बलि वन में जो गरुड-बच्चे है, (उन्हें रथ के) अगले सिरे (=ईपामुख) से (हानि पहुँचने से) बचाओ। हम असुरो को अपने प्राण भले ही दे दें, लेकिन इन पक्षियो के घोसले नष्ट न हो।]

कुलावका=गरुड के बच्चे। **मातलि!**—यह सारथी का सम्बोधन है **सिम्बलिस्मि**—इस शब्द से स्पष्ट है कि देख, यह सिविम्ल-वृक्षो में लटक रहे हैं। **ईसामुखेन परवज्जयस्सु;** इनको ऐसे बचाओ, जिससे यह इस रथ के अगले सिरे (=ईसामुख) से नष्ट न हो। **काम चजाम असुरेसु पाणं**—यदि हमारे असुरो को अपने प्राण देने से, इनका कल्याण होता हो तो हम अवश्य ही प्रसन्नता पूर्वक असुरो को अपने प्राण दे देगे। **मायिमे दिजा विकुलावा अहेसुं;** लेकिन यह पक्षी (=द्विज), यह गरुड-बच्चे, अपने घोसले के विध्वस, विचूर्ण हो जाने के कारण आश्रय-रहित (=बिना घोसले के) न हो। हमारा दु ख उनके ऊपर मत डाल। रथ को लौटा। रथ को लौटा।

यह शब्द सुन, मातलि-सारथी ने, रथ को रोक दूसरे मार्ग से, देव-लोक की ओर हाँक दिया। असुरो ने रथ को लौटता देख सोचा, "निश्चय से दूसरे चक्रवालो से भी शक्र आ रहे हैं। सेना की सहायता (=वल) मिलने से ही रथ लौटाया गया होगा।" यह सोच मरने से भय-भीत हो भाग कर असुर-भवन में छिप गये। शक्र भी देव-नगर में प्रवेश कर, दो देव-लोको के देवताओ सहित नगर के वीच में खड़े हुए। उसी क्षण पृथ्वी फटी, (और) उसमें से सहस्र योजन ऊँचा वैजयन्त प्रासाद (=महल) निकला। विजय के अन्त में निकलने के कारण, उसका नाम वैजयन्त रक्खा गया। शक्र ने, असुरो का फिर दुवारा आना रोकने के लिए पाँच जगहो पर पहरा (=आरक्षा) स्थापित किया। जिसके वारे में कहा है—

अन्तरा द्विन्नं अयुज्झपुरानं पञ्चविधा ठपिता अभिरक्खा,
उरग करोटि पयस्स च हारी मदनयुता चतुरो च महन्ता॥

[दोनो अयुद्ध-पूरो के वीच में पाँच प्रकार की आरक्षा स्थापित की गई— सर्पो की, गरुडो की, कुम्भाण्ड (=दानव राक्षसो) की, यक्षो की तथा चारो महा-राजाओ की]

दोनो नगर युद्ध से अजेय होने के कारण अयुद्ध-पुर कहलाये—देवनगर तथा असुरनगर। जव असुर वलवान् होते, तव देवताओ के भाग कर देवनगर में प्रविष्ट हो द्वारो के वन्द कर लेने पर एक लाख असुर भी उनका कुछ न कर सकते। जव देवता वलवान् होते, तव असुरो के भाग कर, असुर नगर के द्वार वन्द कर लेने पर, एक लाख शक्र भी (उनका) कुछ न कर सकते। इसलिए यह दोनो नगर अयुद्ध-पुर कहलाये। इन दोनो (नगरो) के वीच में, शक्र ने पाँच स्थानो पर पहरा (=आरक्षा) स्थापित किया।

'उरग' शब्द से नागो का ग्रहण है। वे जलमें वल-शाली होते हैं। इसलिए सुमेरु पर्वत के प्रथम चक्कर में उनका पहरा है 'करोटि' शब्द से गरुडो का ग्रहण है। उनका 'नाम' 'करोटि' इसलिए पडा, क्योंकि वह जीवो को खाते है। दूसरे चक्कर में उनका पहरा है। 'पयस्स हारी' शब्द से कुम्भाण्डो का ग्रहण किया गया है। यह दानव-राक्षस (होते) हैं। तीसरे चक्कर में उनका पहरा है। 'मदन युत' शब्द से यक्षो का ग्रहण है। वे विपम-आचरण वाले (तथा) युद्ध-प्रिय होते

है। चौथे चक्कर में उनका पहरा है। **'चतुरो च महन्ता'** का अर्थ है चारो महा-राजा। पाँचवें चक्कर में उनका पहरा है। सो यदि असुर क्रुद्ध होकर (अथवा) मन विगाड कर देव-पुर पहुँचते, तो उरग उन्हें सुमेरु पर्वत के पाँच प्रकार के घेरो में से जो प्रथम-घेरा है, उससे वाहर निकाल देते। इसी प्रकार वाकी चक्करो में शेष।

इन पाँच स्थानो में पहरा स्थापित करके, देवेन्द्र (शक्र) के दिव्य सम्पत्ति का उपभोग करते समय, सुधर्मा ने च्युत हो (=मर) कर, उस शक्र की ही भार्य्या वन कर जन्म ग्रहण किया। कण्णिका (=शहतीर) दिये रहने के फलस्वरूप, उसके लिए पाँच सौ योजन (लम्वी चौडी) सुधर्मा नामक देव-मणि सभा (-शाला) उत्पन्न हुई, जिसमें दिव्य श्वेत छत्र के नीचे, योजन भर के काञ्चन पलग के ऊपर वैठ कर, देवेन्द्र शक्र देव मनुष्यो के कर्तव्य-कृत्यो (का सम्पादन) करते थे। **चित्रा** भी मर कर, उसी की भार्य्या होकर उत्पन्न हुई। उद्यान लगाये रहने के फलस्वरूप इसके लिए चित्र-लता-वन नाम का उद्यान उत्पन्न हुआ। **नन्दा** भी च्युत होकर, उसीकी भार्य्या होकर उत्पन्न हुई। पुष्करिणी वनवाने के फलस्वरूप इसके लिए नन्दा नाम की पुष्करिणी पैदा हुई।

कोई भी शुभ-कर्म न किया रहने के कारण सुजाता एक अरण्य की किसी कन्दरा में वगुला-पक्षी की योनि मे उत्पन्न हुई। शक्र ने, 'सुजाता नही दिखाई देती, वह कहाँ उत्पन्न हुई ?' विचार करते हुए, उसे देखा। वहाँ जाकर उसे साथ लाया और उसे रमणीय देव-नगर, सुधर्मा देवसभा, चित्र-लता-वन और नन्दा पुष्क-रिणी दिखाई। फिर 'यह शुभ-कर्म करके मेरी स्त्रियाँ होकर उत्पन्न हुईं, लेकिन तू शुभ-कर्म न किये रहने के कारण पशु-पक्षी (=तिरश्चीन) की योनि में उत्पन्न हुई। अव से सदाचार की रक्षा कर'—यह उपदेश देकर, उसे पाँच शीलो में प्रति-ष्ठित किया और उसे वही ले जाकर छोड दिया। वह भी उस समय से सदाचार (=शील) की रक्षा करने लगी। कुछ दिनो के वाद 'वह शील की रक्षा कर सकती है, (वा नही) ?' जानने के लिए, जाकर उसके सामने मच्छ की योनि में चित्त पडे प्रगट हुए। उसने मृत मच्छ समझ सीस पर प्रहार किया। मच्छ ने पूछ हिलाई। उसने 'जीता है' समझ, उसे छोड दिया। शक्र "साधु साधु" (कह) 'शील की रक्षा

कर सकेगी' (सोच) चला गया। वहाँ से च्युत होकर वह वाराणसी में कुम्हार के घर पैदा हुई।

शक्र ने 'कहाँ पैदा हुई ?' (सोच) 'वहाँ पैदा हुई, जान, सोनहरी खीरो की गाडी भरकर, गाँव के बीच में एक बूढे के वेष में बैठ चिल्लाना शुरू किया—"खीरे ले लो, खीरे ले लो।"

मनुष्यो ने आकर कहा—"तात! दो।"

"मैं केवल सदाचारियो को देता हूँ। तुम सदाचार की रक्षा करते हो?"

"हम शील (-वील) नही जानते, मूल्य से दो।"

"मुझे कीमत की जरूरत नही, मैं केवल सदाचारियो को ही देता हूँ।"

"कौन है यह लाल-बुझक्कड (=लालको)!" कहते मनुष्य चले गये। सुजाता ने उस समाचार को सुन, 'मेरे लिए लाये गये होगे' सोच, जाकर कहा—"तात! दो।"

"अम्म! क्या सदाचार की रक्षा करती हो?"

"हाँ! रक्षा करती हूँ।"

"यह (सव) मैं तेरे ही लिए लाया हूँ" (कह) गाडी सहित गृह-द्वार पर छोड चला गया। वह भी जीवन पर्य्यन्त सदाचार की रक्षा कर, वहाँ से च्युत हो, वेपचित्ति असुरेन्द्र की लडकी होकर उत्पन्न हुई। सदाचार (की रक्षा करने) के फलस्वरूप सुन्दरी हुई। असुरेन्द्र ने उसकी उमर होने पर, 'मेरी लडकी अपनी इच्छा के अनुकूल स्वामी ग्रहण करे'—इस इच्छा से—असुरो को एकत्रित किया। शक्र 'वह कहाँ उत्पन्न हुई', देखते हुए, 'वहाँ उत्पन्न हुई जान, 'सुजाता को यथेच्छा स्वामी को चुनने (का अवसर मिलने) पर, मुझे ही चुनेगी' सोच असुर का रूप वनाकर वहाँ गया। सुजाता को सजाकर, सभा में लाकर कहा गया कि यथारुचि स्वामी को चुनो। उसने देखते हुए शक्र को देख, अपने पूर्व स्नेह के भी कारण 'यह मेरा स्वामी है' (कहके) ग्रहण किया। वह उसे देव-नगर में ला, वहाँ उसे ढाई करोड़ नटनियों (नृत्यवालाओं) की मुखिया वना, आयु पर्य्यन्त रहकर, यथा-कर्म (परलोक) सिधारा।

बुद्ध ने यह धर्म-देशना कह 'हे भिक्षु! पूर्व समय में देव-राज्य करते हुए पण्डितो ने, इस प्रकार अपने जीवन का परित्याग करते हुए भी (जीव हिंसा) नही की। और तू इस प्रकार के कल्याण-कारी शासन में प्रव्रजित होकर भी छाने विना,

जीव-सहित जल पीयेगा' (कह) उस भिक्षु को झिडक, मेल मिला, जातक का साराश निकाल दिखाया। उस समय का मातलि (नामक) सारथी (अव का) आनन्द था। शक्र तो मैं ही था।

३२. नच्च जातक

"रुदं मनुञ्ञ..." यह गाथा बुद्ध ने जेतवन में विहार करते समय, एक वहुत सामान रखने वाले भिक्षु के बारे में कही। कहानी पूर्वोक्त **देवधम्म जातक**[1] के सदृश ही है।

क. वर्तमान कथा

बुद्ध ने उस भिक्षु से पूछा—"भिक्षु! क्या तू सचमुच बहु-सामान वाला है?"

"भन्ते! हाँ।"

"भिक्षु! तू किस लिए बहु-भाण्डिक हो गया?"

वह इतनी ही वात से क्रुद्ध हो, पहनना-ओढना छोड 'अब इस ढग से विचरूँगा' (कह) वुद्ध के सामने ही नङ्ग-धडङ्ग खडा हो गया। मनुष्यो ने कहा—"धिक्कार है। धिक्कार है।" उसने वहाँ से भाग जाकर संन्यास छोड दिया। धर्म-सभा में बैठे भिक्षु 'यह वुद्ध के सम्मुख भी ऐसा करेगा!' (कह) उस भिक्षु की निन्दा कर रहे थे

बुद्ध ने आकर पूछा—"भिक्षुओ! इस समय बैठे क्या वात-चीत कर रहे थे?"

"भन्ते! वह भिक्षु आपके सामने (और) चारो प्रकार की परिषद् के वीच में लज्जा-भय छोड गाँव के बच्चो की तरह नङ्गा खडा रह, लोगो के घृणा करने

---

[1] देव जातक (६)

पर, गृहस्थ हो (बुद्ध-) शासन से गिर गया (कहते हुए) बैठे उस भिक्षु की निन्दा कर रहे थे।"

शास्ता ने, 'भिक्षुओ! न केवल अब ही वह भिक्षु लज्जा और भय के अभाव से शासन रूपी रत्न से पतित हो गया है, किन्तु पूर्व-जन्म में भी उसे स्त्री-रत्न के लाभ से हाथ धोना पडा' कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में, प्रथम कल्प में चौपायो ने सिंह को (अपना) राजा बनाया। मत्स्यो ने आनन्द मत्स्य को। पक्षियो ने सुवर्ण हस को। उस सुवर्ण हसराज की लडकी, हस-बच्ची सुन्दरी थी। उस (हस-राज) ने उसे वरदान दिया। उसने अपनी इच्छानुकूल स्वामी (चुनने की आज्ञा) माँगी। हस-राज ने उसे वरदान दे, हिमवन्त (-प्रदेश) के सब पक्षियो को एकत्रित करवाया। नाना प्रकार के हस मोर आदि पक्षी-गण आकर, एक बडे पाषाण-तल के नीचे इकट्ठे हुए।

हस-राज ने लडकी को बुलाया—"आकर, अपनी इच्छा के अनुकूल स्वामी को चुन लो।" उसने पक्षी-समूह को देखते हुए, मणि के रग की ग्रीवा तथा चित्रित पखो वाले मोर को देख कर इच्छा प्रगट की कि यह मेरा स्वामी हो। पक्षियो ने मोर के पास जाकर कहा—"सम्म मोर! इस राज-धीता ने इतने पक्षियो के बीच में स्वामी खोजते हुए, तुझे चुना है।"

मोर ने, "तो क्या वह आज भी मेरे बल को न देखती" (कह) अति प्रसन्न हो, लज्जा-भय छोडकर, उतने बडे पक्षि-सघ के बीच में पखो को पसार कर, नाचना आरम्भ कर दिया। नाचते समय वह नगा (=बिना ढका) हो गया। सुवर्ण हस-राज ने लज्जित हो, 'इसको न तो अन्दर की लज्जा है, न बाहर का भय है। इस लज्जा-भय रहित को मै (अपनी) लडकी न दूगा' (कह) पक्षियो के सघ के बीच में यह गाथा कही—

> रुदं मनुञ्ञ रुचिरा च पिट्ठी
> वेलुरियवण्णूपनिभा च गीवा,
> ब्याम-मत्तानि च पेखुणानि
> नच्चेन ते धीतरं नो ददामि॥

[(यद्यपि तेरा) स्वर मनोहारी है, पीठ सुन्दर है, गर्दन बिलौर के रग की है, पखडियाँ दो हाथ (=व्याम) भर की है, (तो भी) तेरे नाचने के कारण, तुझे लडकी नही देता हूँ]

रुदं मनुञ्ञं, 'रुद' मे 'त' का 'द' कर दिया गया। रुदं मनापं का अर्थ है कि उच्चारित शब्द मधुर। **रुचिरा च पिट्ठी**, तेरी पीठ भी चित्रित तथा शोभासम्पन्न है, **वेलुरियवण्णूपनिभा**=बिल्लौर मणि के वर्ण सदृश। **व्याममत्तानि**; एक व्याम (=दो हाथ) भर। **पेखुणानि**-पखड़ियाँ, **नच्चेन ते धीतरं नो ददामि**—"लज्जा-भय छोड कर नाचने के कारण ही, तुझे, ऐसे निर्लज्ज को लडकी नही देता हूँ" कह, हंस-राज ने उसी परिषद् के बीच में अपने भाजे हस-बच्चे को लडकी दे दी। मोर हस-बच्ची को न पा, लज्जित हो, वहाँ से उड कर भाग गया। हस-राज भी अपने निवास-स्थान को चला गया।

बुद्ध ने "भिक्षुओ! न केवल अब ही यह लज्जा-भय छोडने के कारण (बुद्ध-) शासन रूपी रत्न से पतित हुआ है, पूर्व-जन्म में भी स्त्री-रत्न की प्राप्ति से इसे हाथ धोना पड़ा था।" यह धर्म-देशना कह, मेल मिला, जातक का साराश निकाल दिखाया। उस समय का मोर (अब का) बहुत सामान रखने वाला (भिक्षु) था और हस-राज तो मै ही था।

३३. सम्मोदमान जातक

"सम्मोदमाना..." यह गाथा शास्ता ने कपिलवस्तु के समीप निग्रोधाराम में रहते समय चुम्वट-कलह के वारे में कही। वह कथा कुणाल-जातक[1] में आयेगी।

क. वर्तमान कथा

उस समय बुद्ध ने रिश्तेदारो को आमन्त्रित कर, "महाराजाओ! रिश्तेदारो को एक दूसरे से लडना-झगडना उचित नही। पूर्व समय में तिरश्चीन (=पशु-पक्षी) योनि में पैदा होन पर भी, एकमत रहने के कारण शत्रु को पराजित किया था, और जव विवाद में पड गये, तो महाविनाश को प्राप्त हुए" कह, रिश्तेदार राजाओं के याचना करने पर पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में (राजा) ब्रह्मदत्त के राज्य करते समय, वोधिसत्त्व (एक) वटेर की योनि में उत्पन्न होकर, अनेक सहस्र वटेरो के साथ जगल में रहते थे। उस समय वटेरो का एक शिकारी उनके रहने के स्थान पर जाता। वह वटेरो का सा शब्द करता। जव वटेरें इकट्ठी हो जाती तो उन पर जाल फेंकता, और सिरो पर से दवाते हुए, सव को एक जगह करके, पेटी में भर लेता। घर जाकर, उन्हें वेच, उस आमदनी (=मूल्य) से जीविका चलाता था।

तव एक दिन वोधिसत्त्व ने उन वटेरो को कहा—'यह चिडीमार हमारी जात-विरादरी का नाश करता है। मै एक उपाय जानता हूँ, जिससे यह हमें न पकड सकेगा। अव से, जैसे ही यह तुम्हारे ऊपर जाल फेंके, वैसे ही जाल की एक एक गांठ में सिर रख कर, जाल के सहित उडकर, उसे यथेष्ट स्थान पर ले जाकर, किसी

[1] कुणाल जातक (५३६)

काँटे-दार झाडी के ऊपर डाल दो। ऐसा होने पर, हम नीचे से जहाँ तहाँ से भाग जायेंगे।' उन सब ने 'अच्छा' कहा। दूसरे दिन ऊपर जाल फेंकने पर (वे) बोधिसत्त्व के कथनानुसार जाल को उडा कर, एक कॉटेदार झाडी पर फेंक, अपने आप नीचे से, जहाँ तहाँ से निकल भागे।

चिडीमार को झाडी में से जाल निकालते ही निकालते विकाल हो गया। वह खाली हाथ ही (घर) लौटा। अगले दिन से लगाकर बटेर (रोज़) वैसा ही करते। वह (चिडीमार) भी सूर्य्यास्त होने तक जाल को ही छुडाते रह कर, कुछ भी न पा, खाली हाथ ही घर लौटता। तब उसकी भार्य्या ने क्रुद्ध होकर कहा—"तू रोज रोज खाली हाथ लौटता है। मालूम होता है बाहर किसी और की भी परवरिश कर रहा है।" चिडीमार ने "भद्रे! मुझे किसी और को पालना पोसना नही है। केवल वह बटेर एक मत होकर चुगते हैं। मेरे फेंके जाल को लेकर, काँटो की झाडी पर डाल चले जाते हैं। लेकिन वह सदैव एक मत होकर नही रहेंगे। तू चिन्ता मत कर। जिस समय वह विवाद में पडेगे, उस समय उन सब को लेकर तुझे हँसाता हुआ घर लौटूगा।" कह, भार्य्या को यह गाथा कही—

सम्मोदमाना गच्छन्ति जालमादाय पक्खिनो,
यदा ते विवदिस्सन्ति तदा एहिन्ति मे वस॥

[(अभी) पक्षी एक राय होने के कारण जाल को लेकर (उड) जाते है, लेकिन जब वह विवाद करेंगे, तभी वह मेरे वश में आ जायेंगे।]

यदा ते विवदिस्सन्ति, जिस समय वह बटेर, नाना मत के, नाना (प्रकार की) राय के, होकर विवाद करेगे=कलह करेंगे। **तदा एहिन्ति मे वस**—उस समय वह सभी मेरे वश में आ जायेंगे। और मै उन्हे लेकर तुझे हँसाता हुआ, आऊँगा (कह) भार्य्या को आश्वासन दिया।

कुछ ही दिन के बाद चुगने की भूमि (=गोचर-भूमि) पर उतरता हुआ एक बटेर गलती से (=ख्याल न रहने से) दूसरे के सिर पर से लाँघ गया। दूसरे ने क्रोध से कहा, "मेरे सिर पर से कौन लाँघा?" "मै गलती से लाँघ गया। क्रुद्ध मत हो।" कहने पर भी वह क्रोध ही करता रहा। बार बार बोलते हुए, वह एक दूसरे को ताना देने लगे, "मालूम होता है, जैसे तू ही जाल को उठाता है!"

उन्हें विवाद करते देख, बोधिसत्त्व ने सोचा—"विवाद करने वालो का कुशल नही। अब यह जाल न उठायेंगे, और महान् विनाश को प्राप्त होगे। चिडीमार को अवसर मिल जायगा। मैं अब यहाँ नही रह सकता।" (यह सोच) वह अपनी परिषद् (=जमात) को ले दूसरी जगह चला गया। चिड़ीमार ने भी कुछ दिन के बाद आ, बटेरो की बोली बोल, उनके एकत्र होने पर, उन पर जाल फेंका। तब एक बटेर ने दूसरे को कहा, 'जाल ही उठाते उठाते तेरे सिर के बाल गिर पडे, ले, अब तो उठा।' दूसरे ने कहा—"जाल ही उठाते उठाते तेरे पखो की पखडियाँ गिर पडी। ले, अब तो उठा।" सो उनके 'तू उठा', 'तू उठा', विवाद करते करते ही, चिडीमार जाल को उठा, उन सब को एकत्रित कर, पेटी भर भार्य्या को प्रसन्न करता हुआ, घर लौटा।

बुद्ध ने, 'सो हे महाराजाओ! ज्ञाति-सम्बन्धियो का कलह उचित नही है। कलह विनाश का ही कारण होता है'; यह धर्म-देशना लाकर, मेल मिला, जातक का साराश निकाल दिखाया। उस समय का मूर्ख (=अपण्डित) बटेर (अब का) देवदत्त था। और पण्डित-बटेर तो मैं ही था।

३४. मच्छ जातक

"न मं सीतं न मं उण्हं..." यह गाथा, बुद्ध ने जेतवन में विहार करते समय, पूर्व-भार्य्या के लुभाने के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

उस समय बुद्ध ने उस भिक्षु से पूछा—"भिक्षु! क्या तू सचमुच उत्कण्ठित है?"

"भगवान्! सचमुच।"

"तुझे किसने उत्कण्ठित किया?"

"भन्ते! मेरी पूर्व-भार्य्या के हाथो में माधुर्य्य है। उसे नही छोड सकता हूँ।"

तब बुद्ध ने, "हे भिक्षु! यह स्त्री तेरा अनर्थ करने वाली है। पूर्व-जन्म में भी तू इसके कारण मरते मरते, शरण आने से, मरने से बचा" (कह) पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे वाराणसी मे (राजा) ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय, बोधिसत्त्व उनके पुरोहित थे। मछुओ ने नदी में जाल फेका। एक महामत्स्य अपनी मछली के साथ रति-क्रीडा करता हुआ आ रहा था। उसके आगे आगे जाती वह मछली जाल-गन्ध सूंघ कर जाल से हट कर निकल गई। लेकिन वह कामासक्त, लोभी मत्स्य जाल के भीतर ही जा फँसा। मछुओ ने उसे जाल में प्रविष्ट हुआ जान, जाल को उठा, मत्स्य को विना मारे ही ले जा बालू के ऊपर डाल दिया। (उन्होंने) सोचा इसे अङ्गारो पर पका कर खायेंगे। इसलिए अङ्गार बनाने लगे और सलाई (=काँटे) को छीलने लगे। मत्स्य ने, 'अङ्गार पर तपने का, काँटे से बिधने का या अन्य कोई दु ख मुझे पीडा नही देता, लेकिन वह जो मछली सोचेगी कि वह किसी दूसरी मछली के पास चला गया, उसीसे मुझे दु ख होता है, उसीसे मुझे बाधा होती है', (कह) रोते पीटते यह गाथा कही—

न मं सीतं न मं उण्ह न मं जालस्मि बाधनं,
य च म मञ्ञते मच्छी, अञ्ञ सो रतिया गतो॥

[न मुझे शीत की पीडा है, न ऊष्णता की पीडा है, न जाल मे बँधने की पीडा है। (मुझे दु ख है तो यह है) कि मेरी मछली, मेरे बारे में समझेगी कि वह रति के मारे किसी दूसरी मछली के पास चला गया।]

'न मं सीतं न मं उण्हं...' मत्स्यो को पानी से बाहर निकालने के समय शीत लगता है, पानी में जाने पर गरमी लगती है। सो दोनो के बारे में 'न तो मुझे शीत ही पीडा देता है, न गरमी' (कह) रोता है। (और) जो अङ्गार मे पकने का दु ख होगा, उसके बारे में भी 'न मुझे गरमी पीडा देती है' (कह) रोता ही है। न म जालस्मि बाधन, और जो मेरा जाल मे बँधना हुआ, वह भी मुझे पीडा नही देता (कह) रोता है। यं च म आदि का सक्षेपार्थ यह है—वह मछली मेरे

जाल में फँसने और इन मछुओ द्वारा पकड लिये जाने की बात न जानकर, मुझे न देखती हुई सोचेंगी कि वह मत्स्य कामरति के मारे अब दूसरी मछली के पास चला गया होगा—यह उसका मेरे प्रति बुरा-भाव होना मुझे पीड़ा देता है (कह) बालू के ऊपर पडा पडा रोता पीटता है।

उस समय दासो से घिरा हुआ पुरोहित, स्नान करने के लिए नदी के किनारे आया। उसे सब प्राणियो की बोली समझ में आती थी। सो, इस मत्स्य का रोना पीटना सुन कर, उसके मन में यह (विचार उत्पन्न) हुआ—"यह मत्स्य कामासक्ति के दु ख से पीड़ित होकर रोता है। इस प्रकार आतुर (=दु खित) चित्त होकर मरने पर भी, यह नरक में ही उत्पन्न होगा। मै इसका उद्धार करने वाला होऊँगा।" (यह सोच) मछुओ के पास जाकर कहा— "भो! तुमने हमें एक दिन भी सालन (=व्यञ्जन) के लिए मछली नही दी?"

मछुओ ने कहा—"स्वामी क्या कहते है? आपको जो मछली अच्छी लगे, उसे ले जाइये।"

"हमें और किसी मछली से काम नही, यही (मत्स्य) दे दो।"

"स्वामी! ले जायें।"

बोधिसत्त्व, उसे दोनो हाथो से ले, नदी के किनारे बैठे "भो! मत्स्य! यदि मै आज तुझे न देखता, तो तेरे प्राण जाते रहते। अब से क्लेश (=कामासक्ति) के वशीभूत न होना"—यह उपदेश कर, पानी मे छोड, नगर मे प्रविष्ट हुए।

बुद्ध ने उस धर्म-देशना को कह (आर्य-)सत्यो को प्रकाशित किया। (आर्य-)सत्यो का प्रकाशन समाप्त होने पर उत्कण्ठित भिक्षु श्रोतापत्ति-फल में प्रतिष्ठित हुआ। बुद्ध ने भी मेल मिला, जातक का साराश निकाल दिखाया। उस समय की मच्छी (अब की) पुरानी भार्य्या थी। मत्स्य (अब का) उत्कण्ठित भिक्षु। (और) पुरोहित तो मै ही था।

३५. वट्टक जातक

"सन्ति पक्खा . . ." यह गाथा, बुद्ध ने मगध में चारिका करते समय, दावाग्नि के बुझने के सम्बन्ध में कही।

क. वर्तमान कथा

एक समय बुद्ध ने मगध मे चारिका करते हुए मगध के गामडे में भिक्षाटन कर, भिक्षाटन से लौटकर, भोजनोपरान्त भिक्षुगण सहित रास्ता लिया। उस समय महादावाग्नि उठी। (शास्ता के) आगे पीछे बहुत भिक्षु थे। वह आग भी एक धुआँ, एक ज्वाला हो फैलती ही चली आ रही थी। कुछ मरने से भयभीत अज्ञ (=पृथज्जन) भिक्षु 'हम प्रति-अग्नि जलायेंगे, जिससे जले स्थान पर दूसरी आग न फैल सकेगी' (सोच) अरणि निकाल कर आग जलाने लगे। दूसरो ने कहा—"आवुसो! तुम क्या करते हो? गगनमध्य स्थित चन्द्रमा को (न देखते हुए की तरह), पूर्व दिशा मे उगने वाले, सहस्र रश्मिधारी सूर्य्यमण्डल को (न देखते हुए की तरह), समुद्र के तट पर खडे होकर समुद्र को (न देखते हुए की तरह), सुमेरु पर्वत के पास खडे होकर सुमेरु पर्वत को (न देखते हुए की तरह) क्या तुम लोक मे सदैव अग्र व्यक्ति, सम्यक् सम्बुद्ध को अपने साथ न जाते देखकर ही कहते हो कि हम प्रतिअग्नि देंगे (=जलायेंगे)? क्या तुम बुद्ध-बल को नही जानते? (चलो) बुद्ध के पास चलेंगे।" आगे पीछे जाते हुए वे सभी इकट्ठे होकर दसबल (-धारी) के पास गये।

महाभिक्षुसघ को साथ लिये बुद्ध एक जगह खडे थे। दावाग्नि (सब को) परास्त करती हुई की भाँति, घोषणा करती आ रही थी।

जिस स्थान पर तथागत खडे थे, वहाँ पहुँच, उस स्थान से चारो ओर सोलह करीस[1] भर दूरी के स्थान पर, वह वैसे ही बुझ गई, जैसे तिनको की मशाल (=उल्का) पानी में डुबोने पर। (बुद्ध के) आसपास से बत्तीस करीस की दूरी में (वह आग) न फैल सकी।

भिक्षु बुद्ध का गुणानुवाद करने लगे—"अहो! बुद्धो का सामर्थ्य (=गुण)! यह अचेतन आग भी बुद्धो के खडे होने की जगह पर न फैल सकी, (और) पानी में तिनको की मशाल की तरह बुझ गई। अहो! बुद्धो का प्रताप!"

शास्ता ने उनकी बात-चीत सुनकर कहा—"भिक्षुओ! यह मेरा अब का बल नही है, जिसके कारण यह आग इस भूमि-प्रदेश में पहुँच कर बुझ गई है। किन्तु यह मेरी पुरानी सत्य-क्रिया का बल है। इस प्रदेश में इस सारे कल्प भर आग न जलेगी। यह कल्प भर स्थिर रहने वाली प्रातिहार्य (=अलौकिक क्रिया) है।" आयुष्मान् आनन्द ने शास्ता के बैठने के लिए चौतही संघाटी बिछा दी। शास्ता पल्थी मारकर बैठ गये। भिक्षुसंघ भी तथागत को प्रणाम कर तथा घेरकर बैठ गया। तब बुद्ध ने भिक्षुओ के यह याचना करने पर कि 'भन्ते! यह जो (अब की बात) है, सो तो हमें प्रगट है। अतीत की जो बात छिपी हुई है, उसे प्रगट करें' पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में, मगध राष्ट्र के उसी प्रदेश में, बोधिसत्त्व, बटेर की जून में जन्म ग्रहण कर, माता की कोख से निकल, अण्डे को फोड, निकलते समय ही, एक गेंद जितना (बडा) बटेर हुआ। सो (उसके) माता पिता उसे घोसले में लिटा, चोंच से चोगा ला, उसे पालते थे। उसमें, न तो पर फैला कर आकाश में उडनेका सामर्थ्य था, न टाँग उठा कर पृथ्वी पर चलने का सामर्थ्य। उस प्रदेश में प्रति वर्ष दावाग्नि लग जाती। (आग लग जाने के) समय भी, वह चिल्लाता हुआ, उसी स्थान (=प्रदेश) पर रहा। पक्षी-गण अपने अपने घोसले से निकल, मरने से भयभीत, चिल्लाते हुए भागे। बोधिसत्त्व के माता पिता भी मरने से भयभीत (हो) बोधिसत्त्व को छोड (अपने) भाग गये। बोधिसत्त्व ने घोसले में पडे पडे, गर्दन उठा

[1] उतना रकबा जिसमें एक करीस बीज (=चार अम्मन) बोया जा सके।

कर, फैलती आती आग को देख, सोचा—"यदि मुझ में परो को फैला कर आकाश-मार्ग से जाने का सामर्थ्य हो, तो उडकर दूसरी जगह चला जाऊँ, यदि पैरो पर खडे होकर जाने का सामर्थ्य हो, तो पैदल दूसरी जगह चला जाऊँ। मेरे माता-पिता भी मरने से भयभीत (हो) मुझे अकेला छोडकर, अपने प्राण लेकर भाग गये। अ। मुझे किसी की शरण नही। मै त्राण-रहित हूँ, शरण-रहित हूँ। मुझे आज क्या करना चाहिए ?" तव उसके (मन में) यह हुआ—"इस लोक में सदाचार (=शीलगुण) है, सत्य है, पूर्व समय में पारमिताओ को पूरा कर बोधिवृक्ष के नीचे बैठ अभि-सम्बुद्धत्व प्राप्त कर, शील-समाधि-प्रज्ञा-विमुक्ति—विमुक्ति-ज्ञान-दर्शन से युक्त सत्य-दया-करुणा-शान्ति से समन्वित, सव सत्वो के प्रति समान मैत्री-भावना रखने वाले, सर्वज्ञ बुद्ध है, उनके द्वारा साक्षात् किये गये धर्म-तत्व (=गुण) हैं, मुझ में भी एक सत्य है (अर्थात्) (मुझ मे भी) एक विद्यमान् स्वाभाविक धर्म दिखाई देता है। इसलिए मुझे चाहिए कि मै पूर्व समय के बुद्धो, और उनके द्वारा साक्षात् किये गये धर्म-तत्वो का विचार करूँ, और अपने में विद्यमान सत्य-स्वाभाविक धर्म को लेकर सत्यक्रिया कर अग्नि को वापिस लौटा, आज अपना और शेष (सव) पक्षियो का कल्याण करूँ।" इसीलिए कहा गया है—

अत्थि लोके सीलगुणो सच्चं सोचेय्यानुद्दया,
तेन सच्चेन काहामि सच्चकिरियमनुत्तमं,
आवज्जित्वा धम्मबलं सरित्वा पुब्बके जिने,
सच्च वलमपस्साय सच्चकिरिय अकासह ॥[1]

[लोक में सदाचार (=शील गुण) है, सत्य (है), शौच (है), दया (है), —मै उस सत्य से उत्तमतम सत्य-क्रिया को करता हूँ। धर्म-बल तथा पूर्व समय के बुद्धो (=जिनो) का स्मरण कर, और सत्य-बल को देखकर, मैंने सत्य-क्रिया की।]

सो वोधिसत्व ने पूर्व समय में परिनिर्वाण को प्राप्त बुद्धो के गुणो का ध्यान धर, अपने में विद्यमान सत्य-स्वभाव के बारे में सत्य-क्रिया करत हुए यह गाथा कही—

---

[1] देखो चरिया-पिटक (वट्टकपोत चरिया)।

सन्ति पक्खा अपतना सन्ति पादा अवञ्चना,
माता पिता च निक्खन्ता जातवेद ! पटिक्कम ॥

[पङ्ख है (लेकिन उनसे) उडा नही जाता, पैर है (लेकिन उनसे) चला नही जाता। मेरे माता-पिता (मुझे छोड) चले गये। इसलिए हे अग्नि पीछे हट जा।]

सन्ति पक्खा अपतना; मेरे पक्ष है; लेकिन इनसे मैं उछल नही सकता=आकाश-मार्ग मे जा नही सकता, इसलिए अपतना। **सन्ति पादा अवञ्चना,** मेरे पाँव भी है, लेकिन मैं उनसे वञ्चना=पाँव से चलना नही कर सकता, इसलिए अवञ्चना। **माता पिता च निक्खन्ता,** जो मुझे अन्यत्र ले जाते, वह माता-पिता भी मरने के डर मे भाग गये। जातवेद ! यह अग्नि का सम्बोधन है। वह जात (=उत्पन्न) होते ही, वेदियति (=प्रगट होती है) इसलिए 'जातवेद' कहलाती है। पटिक्कम, वापिस जा—लौट जा (कह) जातवेद को आज्ञा देता है।

सो (इस प्रकार) महासत्त्व ने 'यदि मेरा पङ्खो-सहित होना सत्य है, और उनको फैलाकर आकाश मे न उड सकने (की बात) सत्य है, यदि मेरा पाँव-सहित होना, और उनको उठाकर न चल सकने की तथा माता-पिता की मुझे घोसले में ही छोड कर चले जाने (की बात) सत्य है, स्वभाव-भूत है, तो हे जातवेद ! इस सत्यता के कारण तू यहाँ से लौट जा' कह घोसले में पडे ही पडे सत्य-क्रिया की। उसकी सत्य-क्रिया (करने) के साथ ही अग्नि १६ करीष भर स्थान से (दूर) हट गई। लौटती हुई और न बुझती हुई (वह) आग (शेष) जगल में चली गई, (लेकिन) उस स्थान पर पानी में डाले मशाल की तरह, बुझ गई—

सह सच्चकते मय्ह महा पज्जलितो सिखी
वज्जेसि सोलस करीसानि उदकं पत्वा यथा सिखी[1] ॥

---

[1] देखो चरिया-पिटक, (वट्टकपोत चरिया)।

[मेरे सत्य (-क्रिया) के साथ ही, महाप्रज्वलित आग ने, सोलह करीप (भूमि) को वैसे ही छोड दिया, जैसे पानी में पडने पर आग ।]

सो यह स्थान इस सारे कल्प के लिए अग्नि से सुरक्षित हो गया; यह कल्प भर स्थिर रहनेवाली प्राति-हार्य हुई। इस प्रकार बोधिसत्त्व सत्य-क्रिया करके जीवन की समाप्ति पर, कर्मानुसार (परलोक) गये।

बुद्ध ने "भिक्षुओ! यह जो इस जंगल का अग्नि से न जलना है, यह मेरा अब का बल नही, किन्तु यह पूर्व-जन्म में बटेर-बच्चा होने के समय का मेरा सत्य-बल है"—यह धर्म-देशना कह (आर्य-) सत्यो को प्रकाशित किया। सत्यो के अन्त मे कोई **श्रोतापन्न** हुए, कोई **सकृदागामी** हुए, कोई **अनागामी** हुए, कोई **अर्हत्** हुए। बुद्ध ने भी मेल मिला, जातक का साराश निकाल दिखाया। उस समय के माता-पिता (अब के) माता-पिता ही थे। बटेर राज तो मै ही था।

३६. सकुण जातक

"**यं निस्सिता. . .**" यह गाथा, बुद्ध ने जेतवन मे विहार करते समय, दग्ध-पर्णशाला (=जिसकी पर्णशाला जल गई थी) भिक्षु के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

एक भिक्षु, शास्ता के पास से **कर्मस्थान** ग्रहण कर, जेतवन से निकल, कोशल (जनपद) के एक सीमान्त-ग्राम के समीप, एक अरण्य में रहता था। (वर्षा-वास) के पहले ही महीने में उसकी पर्णशाला जल गई। उसने मनुष्यो से कहा—"मेरी पर्णशाला जल गई। मै कष्ट-पूर्वक रहता हूँ।" मनुष्यो ने कहा—"अभी हमारे खेत सूखे है, उन्हें पानी देकर (पर्णशाला) बनायेंगे।" पानी दे चुकने पर, "बीज

बोकर', बीज बो चुकने पर, "मेंढ बाँधकर", मेंढ बाँध चुकने पर, "गुडाई करके" (गुडाई कर चुकने पर), "काट कर", (काट चुकने पर), दौरी करके—इस प्रकार, यह वह काम दिखाते हुए, उन्होंने तीन महीने गुज़ार दिये। वह भिक्षु तीन महीने तक खुले में कष्ट से रहने के कारण **कर्मस्थान** के अभ्यास में उन्नति न कर, अर्हत्व (=विशेष) न प्राप्त कर सका। **पवारणा**[1] के पश्चात् वह, बुद्ध के पास पहुँच, प्रणाम कर, एक ओर बैठा। शास्ता ने उससे बात-चीत करते हुए पूछा—"भिक्षु! क्या वर्षा-वास सुख-पूर्वक व्यतीत किया? क्या कर्मस्थान सफल हुआ?" उसने वह समाचार कह, उत्तर दिया कि निवास-स्थान के अनुकूल न होने से मेरा कर्मस्थान सफल नही हुआ। बुद्ध ने "भिक्षु! पहले समय में तिरश्चीन प्राणी भी अपनी अनुकूलता, अननुकूलता पहचानते थे, तूने क्यो नही पहचानी?" कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में, वाराणसी में (राजा) ब्रह्मदत्त के राज्य करते समय, बोधिसत्त्व पक्षी-योनि मे उत्पन्न हो, पक्षी-गण सहित, अरण्य में, शाखा-टहनियो से युक्त (एक) बडे वृक्ष के आश्रय में रहते थे। एक दिन उस वृक्ष की एक दूसरे से रगड़ खाती हुई शाखाओं से चूर्ण (सा) गिरने (तथा) धुआँ उठने लगा? इसे देख, बोधिसत्त्व ने सोचा—"यह इस प्रकार रगड खाती हुई दो शाखाये आग पैदा करेंगी (=फेकेंगी), जो गिर कर पुराने पत्तो में लग जायगी, (और) फिर इस वृक्ष को भी जला देगी। हम यहाँ नही रह सकते। हमें यहाँ से भाग कर, अन्यत्र जाना चाहिए।" (यह सोच) उसने पक्षी-गण को यह गाथा कही—

> य निस्सिता जगति रुह विहङ्गमा स्वायं अग्गि पमुञ्चति,
> दिसा भजय वक्कङ्गा। जात सरणतो भयं॥

[जिस वृक्ष का पक्षियो ने आश्रय लिया है, सो यह वृक्ष आग छोडता है। (इसलिए) हे पक्षियो! (अन्य अन्य) दिशाओ को जाओ। (हमारे) शरण (-गत) स्थान से ही भय उत्पन्न हो गया।]

---

[1] वर्षावास समाप्त कर।

जगति रुहं; जगति कहते है पृथ्वी को। वहाँ उत्पन्न होने वाला रुक्ख, जगति-रुह। विहङ्गमा, विह कहते है आकाश को, वहाँ (=आकाश में) गमन करने से पक्षी को विहङ्गम कहते है। दिसा भजथ; इस वृक्ष को छोड, अन्यत्र भाग कर चारो दिशाओ में विचरो। वक्कङ्गा—पक्षियो का सम्बोधन। वे (अपने) उत्तमाङ्ग को गले को कभी कभी वक (=टेढा) करते है, इसलिए 'वक्कङ्गा' कहलाते है, अथवा उनके दोनो ओर पङ्ख वक होने से भी, वह 'वक्कङ्गा' कहलाते है। जात सरणतो भयं हमारे आश्रय-स्थान वृक्ष से ही भय पैदा हो गया। आओ! अन्यत्र चलें।



बोधिसत्त्व की बात मानने वाले बुद्धिमान् पक्षी, उसके साथ एक ही उडान में उडकर अन्यत्र चले गये। लेकिन जो मूर्ख थे वे 'यह ऐसे ही एक बूद पानी में मगर-मच्छ देखा करता है' (सोच) उसकी बात न मान वही रहे। उसके थोडे ही काल बाद, जैसे बोधिसत्त्व ने सोचा था, वैसे ही आग पैदा होकर, उस वृक्ष में लग गई। धुएँ और ज्वालाओ के उठने पर, धुएँ से अन्धे पक्षी अन्यत्र न जा सके। (वही) आग मे गिर कर विनाश को प्राप्त हुए।

बुद्ध ने "भिक्षु! पहले समयमे तिरश्चीन योनि में पैदा हुए भी, वृक्षके ऊपर रहते हुए, अपनी अनुकूलता, अननुकूलता को जानते थे। तूने क्यो न पहचानी?" —यह धर्म-देशना कह, (आर्य-) सत्यो को प्रकाशित किया। (आर्य-) सत्यो का प्रकाशन समाप्त होने पर, वह भिक्षु स्रोतापत्ति फल में प्रतिष्ठित हुआ। बुद्ध ने भी मेल मिला कर, जातक का साराश निकाल दिखाया। उस समय बोधिसत्त्व की बात मानने वाले पक्षी (अब) बुद्ध-परिषद् हुए। (और) बुद्धिमान-पक्षी तो मै ही था।

३७. तित्तिर जातक

"ये वद्धमपचायन्ति . . ." यह गाथा बुद्ध ने श्रावस्ती को जाते समय सारिपुत्र स्थविर के लिए शयनासन (=निवास-स्थान) न मिलने के सम्बन्ध मे कही।

क. वर्तमान कथा

अनाथपिण्डिक के विहार बनवा कर, दूत भेजने पर, बुद्ध राजगृह से निकल वैशाली पहुँच वहाँ इच्छानुसार विहार कर, श्रावस्ती जाने के विचार से चारिका के लिये निकले। उस समय छ-वर्गीय भिक्षुओ के शिष्य आगे आगे जाकर स्थविरो के शयनासन न ग्रहण किये रहने पर भी, 'यह शयनासन हमारे उपाध्याय के लिए होगा, यह हमारे आचार्य के लिए होगा, यह हमारे लिए होगा' (कह) शयनासन दखल कर लेते थे। पीछे आने वाले स्थविरो को शयनासन न मिलते। सारिपुत्र के शिष्यो को भी स्थविर के लिए शयनासन ढूढने पर शयनासन न मिला। स्थविर ने शयनासन न मिलने से, बुद्ध के शयनासन से कुछ ही दूर, एक वृक्ष के नीचे, बैठ कर और चल-फिर कर (रात) बिताई। बुद्ध ने तडके ही निकल कर खाँसा। स्थविर ने भी खाँसा। "यह कौन है?" "भन्ते! मै सारिपुत्र हूँ।" "सारिपुत्र! तू इस समय यहाँ क्या कर रहा है?" उसने वह (सब) हाल कह दिया। बुद्ध को स्थविर की बात सुन, यह सोचते सोचते कि, 'जब मेरे जीते जी ही भिक्षु एक दूसरे के प्रति गौरव तथा सम्मान पूर्वक नही विचरते, तो मेरे परिनिर्वाण प्राप्त कर लेने पर यह क्या करेंगे' धर्म-सवेग उत्पन्न हुआ। उन्होने प्रभात होने पर, भिक्षुसघ को इकट्ठा करवा भिक्षुओ से पूछा—"भिक्षुओ! क्या सचमुच छ-वर्गीय भिक्षु आगे आगे जा कर स्थविरो के शयनासन दखल कर लेते है?"

"भगवान्! सचमुच।"

तव (भगवान् ने) छ.-वर्गीय भिक्षुओ को धिक्कार, धार्मिक कथा कह (सव) भिक्षुओ को सम्बोधित किया—"भिक्षुओ! प्रथम आसन, प्रथम जल, और प्रथम परोसे के योग्य कौन है?"

कुछ भिक्षुओं ने कहा—"जो क्षत्रिय कुल से प्रव्रजित हुआ हो।" कुछ ने, "जो ब्राह्मण-कुल से, जो गृहपति-कुल (=वैश्य-कुल) से।" औरो ने, "विनय-धर, धर्म-कथित, प्रथम ध्यान के लाभी, द्वितीय-तृतीय-चतुर्थ ध्यान के लाभी।" औरों ने कहा—"श्रोतापन्न, सकृदागामी, अनागामी, अर्हत, त्रिविद्याओ का ज्ञाता छ अभिज्ञा-प्राप्त।"

इस प्रकार उन भिक्षुओ के अपनी अपनी रुचि के अनुसार अग्र-आसन आदि के योग्यो के कहने के समय, बुद्ध ने कहा—"भिक्षुओ! मेरे शासन में अग्रासन आदि प्राप्त करने के लिए न क्षत्रिय-कुल से प्रव्रजित होना प्रमाण है, न ब्राह्मण-कुल से, न वैश्य-कुल से प्रव्रजित होना प्रमाण है, न विनयधर (होना), न सूत्र-धर (होना), न अभिधर्म का ज्ञाता (होना), न प्रथम ध्यान आदि का लाभी (होना), न श्रोतापन्न आदि (होना)। हे भिक्षुओ! इस शासन में प्रणाम, सेवा, हाथ जोडना और अन्य उचित क्रिया—यह सव वडप्पन के क्रम से किया जाना चाहिए। अग्रा-सन, अग्र-जल और अग्र-परोसा इस 'वडप्पन' के ही क्रम से मिलना चाहिए। यही यहां प्रमाण है। इस लिए इन सव मे से जो सवसे वडा[1] है, वही यहाँ योग्य है। हे भिक्षुओ! अव इस समय सारिपुत्र मेरा अग्र-श्रावक है, मेरे वाद धर्म-चक्रप्रवर्तित करने वाला है, मेरे वाद वही शयनासन पाने का अधिकारी है। सो, उसीने शयना-सन न मिलने के कारण आज की रात वृक्ष के नीचे विताई। जब तुम अभी से इस प्रकार अगौरव-युक्त तथा असम्मान-युक्त हो, तो समय वीतने पर क्या करके विच-रोगे?" फिर उनको उपदेश देने के लिए वुद्ध ने, "भिक्षुओ! पूर्व समय मे तिरश्चीन योनि मे उत्पन्न हुओ ने भी हमारे लिए यह उचित नही है कि हम एक दूसरे का आदर न कर, सत्कार न कर, अनुचित ढंग से विचरते रहे। हम अपने में से जो वडा है, उसे जानकर, उसे प्रणाम (=अभिवादन) आदि करेंगे। सो उन्होने अच्छी प्रकार परीक्षा कर, यह मालूम किया कि उनमें कौन बडा है। उसे प्रणाम आदि करते हुए, देव-पथ को भरते हुए (परलोक) गये" कह, पूर्व-जन्म की कथा कही—

---

[1] भिक्षुओ में पूर्व-प्रव्रजित ही बड़ा होता है।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में हिमालय के पास एक वडा वर्गद था। उसको आश्रय कर, तित्तिर, वानर और हाथी—तीन मित्र विहार करते थे। वे तीनो एक दूसरे का आदर न करने वाले, सत्कार न करने वाले, साथ जीविका न करने वाले थे। तव उनके मन में यह (विचार) हुआ—हमारे लिए इस प्रकार रहना उचित नही। जो हम लोगो में वडा है, उसे प्रणाम आदि करते हुए रहें '(फिर) हम में कौन जेठा है?' इसे सोचते हुए, एक दिन 'एक ऐसा उपाय है (जिससे मालूम हो सके कि कौन जेठा है), सोच, तीनो जने वड के नीचे वैठे।

वहाँ वैठने पर तित्तिर और वन्दर ने हाथी से पूछा—"सौम्य हाथी! तू इस वृक्ष को किस समय से जानता है?"

उसने उत्तर दिया—"सौम्यो! जव मै वच्चा था, तो इस वर्गदके वृक्ष को मै जाँघ के वीच करके लाघ जाता था। वीच करके खडे होने के समय, इसकी फुनगी मेरे पेट को छूती थी। सो, मै इसे, इसके गाछ होने के समय से जानता हूँ।" फिर दोनो जनो ने पूर्व प्रकार मे वन्दर से पूछा।

वह वोला—"सौम्यो! जव मै वच्चा था, तो भूमि पर वैठ कर, विना गर्दन उठाये, इस वर्गद के पौवे के फुनगी के अकुरो को खाता था। सो मैं इसे छोटा होने के समय से जानता हूँ।" शेप दोनो ने पूर्व प्रकार से ही तित्तिर से पूछा। वह वोला—"सौम्यो! पहले अमुक स्थान पर एक वडा वर्गद का पेड था। मैंने उसके फल खाकर इस स्थान पर वीट की। उससे यह वृक्ष पैदा हुआ। सो मै इसे इसके अनुत्पन्न-काल से जानता हूँ। इसलिए, मै तुम (दोनो) से जन्म मे जेठा हूँ।"

ऐसा कहने पर वन्दर और हाथी ने तित्तिर पण्डित को कहा—"सौम्य! तू हम में जेठा है। इसलिए अव से हम तेरा सत्कार करेंगे, गौरव करेंगे, मानेंगे, वन्दना करेंगे, पूजा करेंगे, अभिवादन करेंगे, सेवा करेंगे, हाथ जोडेंगे और भी सव उचित कर्म करेंगे, तथा तेरे उपदेशानुसार चलेंगे। (इसलिए) अवसे तू हमें उपदेश देना और अनुशासन करना।" उस समय से तित्तिर उन्हें उपदेश देने लगा। (उसने) उन्हें (पाँच) शीलो मे प्रतिष्ठित किया। अपने आप भी उसने शील ग्रहण किये। वे तीनो जने पाँच शीलो में प्रतिष्ठित हो, एक दूसरे का आदर करते, सत्कार करते, साथ जीविका करते हुए रह कर, जीवन के अन्त में देव-लोक गामी हुए।

उन तीनो का यह समझौता तैत्तिरीय-ब्रह्मचर्य्य कहलाया। भिक्षुओ! वह तिर्यग् योनि के प्राणी थे। (तो भो)वे, एक दूसरे का गौरव करते, सत्कार करते विहरते थे। तुम इस प्रकार के सु-आख्यात धर्म-विनय मे प्रव्रजित हो कर भी किस लिए एक दूसरे का गौरव न करते, सत्कार न करते विहरते हो ?

भिक्षुओ! अव से तुम्हें वृद्ध-पन(=जेठे-पन) के अनुसार अभिवादन प्रत्युत्थान,(वडे के सामने खडे होना) हाथ जोडना, कुशल-प्रश्न, प्रथम आसन, प्रथम-जल, प्रथम-परोसा देने को अनुज्ञा करता हूँ। अव से कनिष्ठतर भिक्षु द्वारा ज्येष्ठतर का शयनासन दखल नही किया जाना चाहिए। जो दखल करेगा, उसे 'दुष्कृत' की आपत्ति (होगी)। इस प्रकार शास्ता ने इस धर्म-देशना को ला, अभिसम्बुद्ध हो कर (हो) यह गाथा कही—

ये वद्धमपचायन्ति नरा धम्मस्स कोविदा,
दिट्ठेव धम्मे पाससा सम्पराये च सुग्गति॥

[जो धर्म के ज्ञाता नर, वडो की पूजा करते हैं, वे इसी जन्म में प्रशसा के भागी तथा पर-लोक मे सुगति के भागी होते है।]

ये वद्धमपचायन्ति; जाति-वृद्ध, वयो-वृद्ध, गुण-वृद्ध—तीन प्रकार के बडे होते है। उनमें (ऊँची) जाति वाला जाति-वृद्ध, (अधिक) आयु वला वयो-वृद्ध, गुण (विशेष) से युक्त गुण-वृद्ध। उनमें से यहाँ 'वृद्ध' शब्द से गुण-सम्पन्न और वयो-वृद्ध का ही मतलव है। **अपचायन्ति,** वडो के सत्कार करने के कर्म से पूजते है। **धम्मस्स कोविदा,** वडो की पूजा के काम में दक्ष=हुशियार। **दिट्ठेव धम्मे,** इसी जन्म में। **पासंसा,** प्रशसा के अधिकारी। **सम्पराये च सुग्गति,** इस लोक को छोडकर जो गन्तव्य पर-लोक है, वहाँ भी उनकी सुगति ही होती है। साराश यह है—कि हे भिक्षुओ! चाहे क्षत्रिय हो, चाहे ब्राह्मण, चाहे वैश्य हो, चाहे शूद्र, चाहे गृहस्थ हो, वा प्रव्रजित, चाहे तिर्यग् योनि के ही प्राणी हो—जो कोई भी प्राणी, अपने से वडो की पूजा करने के कर्म में दक्ष, हुशियार होते है, गुण सम्पन्नो की, वयो-वृद्धो की पूजा करते है, वे इस जन्म मे 'बडो का आदर करने वाला है'—इस प्रकार की प्रशसा स्तुति को प्राप्त करते है, और शरीर-भेद होने पर स्वर्ग-लोक में उत्पन्न होते है।

इस प्रकार बुद्ध ने 'ज्येष्ठों के सत्कार' करने के कर्म की प्रशंसा कर, मेल मिला, जातक का सारांश निकाल दिखाया। उस समय का हस्ति-नाग (अब का) मोग्गलान (स्थविर) था। वानर सारिपुत्र था। तित्तिर-पण्डित तो मैं ही था।

३८. बक जातक

"नाच्चन्त निकतिप्पञ्ञो ..." यह गाथा, शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय चीवर बनाने (=बटाने) वाले भिक्षु के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

एक जेतवन-वासी भिक्षु, चीवर सम्बन्धी काटना, रफु करना, बिठाना तथा सीना आदि जो जो कृत्य हैं, उन सब के करने में दक्ष था। अपने इस दक्ष-पन से वह चीवर बनाता था। इस लिए वह चीवर-वर्द्धक नाम से प्रसिद्ध हुआ। लेकिन वह क्या करता था? पुराने चिथड़ो मे, हुशियारी का हाथ लगा, उनके मृदु सुन्दर चीवर बना, रँगने के बाद, उन्हे कफ दे (=आटे वाले पानी से रंग कर) शङ्ख से रगड, उज्ज्वल, मनोज्ञ करके रखता था। जो चीवर बनाना नही जानते, वह भिक्षु नया कपडा लेकर, उसके पास आते और कहते—"हम चीवर बनाना नहीं जानते। हमें चीवर बना दें।" वह "आवुसो! चीवर बना कर समाप्त करने में बहुत चिर लगता है। मेरे पास बना बनाया चीवर पडा है। इस कपडे को रख कर (इन बने बनाये) चीवर को ले जाओ" (कह चीवर) लाकर दिखाता। वह उसके रंग की तडक भडक देख, अन्दर के बारे में कुछ न जानते हुए, (कपडा) पक्का है, मान, वह चीवर ले, और चीवर-वर्द्धक को नया कपडा दे कर चले जाते। थोडा मैला होने पर, गरम पानी मे धोया जाने पर, वह चीवर अपनी असलियत दिखा देता। जहाँ तहाँ पुराना-पन दिखाई देने लग जाता। वे (भिक्षु) पछताते थे। इस प्रकार आने वालों को पुराने चिथडों से ठगने के कारण, वह भिक्षु सर्वत्र

प्रसिद्ध हो गया। जैसे यह **जेतवन** में वैसे ही एक गाँव मे भी एक (और) चीवर वर्द्धक भिक्षु ससार को ठगता था। उसे मिलने वाले भिक्षुओ ने कहा—"भन्ते ! जेतवन में एक चीवर-वर्द्धक भिक्षु इस प्रकार ससार को ठगता है।"

उस भिक्षु के मन में हुआ—"मै उस जेतवन-वासी भिक्षु को ठगू।" सो वह चीथडो का अच्छा चीवर बना कर, सुन्दर रग से रग कर, उसे पहन जेतवन गया। दूसरे ने उसे देखते ही (चित्तमें) लोभ उत्पन्न कर पूछा—"भन्ते ! क्या यह चीवर आपने बनाया है ?"

"आवुसो ! हाँ (मैंने बनाया है)।"

"भन्ते ! यह चीवर मुझे दे दें। आपको दूसरा मिलेगा।"

"आवुसो ! हम ग्रामवासी है। हमें प्रत्यय (=चीवर आदि आवश्यकतायें) आसानी से नही मिलते। मै यह चीवर तुझे देकर, स्वय क्या पहनूगा ?"

"भन्ते ! मेरे पास नया वस्त्र है। उसे ले जाकर आप अपना चीवर बना ले।" "आवुसो ! मैंने इसमें हाथ की मेहनत (=काम) की है, लेकिन तुम्हारे ऐसा कहने पर, मै क्या कर सकता हूँ ? ले ले।" (कह) वह चीथडो का चीवर उसे दे, (उससे) नया कपडा ले, उसे ठग चल दिया। जेतवनवासी (भिक्षु) को वह चीवर पहन, कुछ दिन के बाद गरम पानी से धोने से पता लगा कि वह चीथडो का चीवर है। उसे देखकर वह लज्जित हुआ कि ग्रामवासी चीवर-वाले ने जेतवन-वासी चीवर-वाले को ठग लिया। उसका ठगा जाना (भिक्षु-) सघ में प्रगट हो गया।

एक दिन धर्म-सभा मे बैठे भिक्षु, उस कथा को कह रहे थे। बुद्ध ने आकर पूछा—"भिक्षुओ ! अब बैठे क्या बातचीत कर रहे हो ?" उन्होने वह बात कही।

बुद्ध ने "भिक्षुओ ! न केवल अभी जेतवन वासी चीवर वाला औरो को ठगता (रहा) है, पहले भी ठगता रहा है, और न केवल अभी ग्रामवासी (चीवर वाले) ने, इस जेतवनवासी चीवर वाले को ठगा है, पहले भी ठगा है" कह, पूर्व-जन्म की कथा आरम्भ की—

ख. अतीत कथा

पूर्व सनय मे बोधिसत्त्व, एक जगल में एक कमल के तालके पास खडे वृक्ष पर एक वृक्ष-देवता की योनि में उत्पन्न हुए। तब गर्मी के मौसम मे एक दूसरे छोटे

तालाब में पानी की कमी हो गई। इस तालाब में बहुत सी मछलियाँ रहती थी। एक बगुला 'एक तरीके से इन मछलियो को ठग कर खाऊँगा' सोच, जाकर, पानी के किनारे चिन्तित सा (मुह बनाकर) बैठ गया। उसे देख मछलियो ने पूछा—"आर्य! चिन्तित क्यो बैठे हो?"

"बैठा, तुम्हारे लिये चिन्ता कर रहा हूँ।"

"आर्य! हमारे लिए क्या चिन्ता कर रहे हो?"

"इस तालाब में पानी नपा-तुला है, भोजन की कमी है, गरमी की अधिकता है, मै बैठा तुम्हारे लिए सोच रहा हूँ कि अब यह मछलियाँ क्या करेंगी?"

"तो आर्य! (हम) क्या करें?"

"यदि तुम मेरा कहना करो, तो मै तुम्हें एक एक करके चोच से पकड पच-वर्ण के कमलो से आच्छन्न, एक महातालाब में ले जाकर छोड आऊँ।"

"आर्य! प्रथम कल्प से लेकर (आज तक) मछलियो की चिन्ता (=हित) करने वाला (कोई) बगुला नही हुआ। क्या तू हमें एक एक करके खाना चाहता है?"

"मै अपने पर विश्वास करने वालो को—तुम्हें—नही खाऊँगा। लेकिन यदि मेरी तालाब के होने की बात पर विश्वास न हो, तो मेरे साथ एक मछली को (पहले) तालाब देखने के लिए भेजो।"

मछलियो ने उसकी बात पर विश्वास कर, यह जल और स्थल दोनो जगहो पर समर्थ है (सोच) एक काणी महामछली दी, और कहा इसे ले जाओ। उसने उसे ले जाकर, तालाब में छोड दिया, और सब तालाब को दिखा कर, फिर (वापिस) लाकर उन मछलियो के पास छोड दिया। उसने उन मछलियो से तालाब के सौन्दर्य (सम्पत्ति) की प्रशंसा की। उन्होंने उसकी बात सुन, जाने की इच्छुक हो, (बगुले से) कहा—"अच्छा! आर्य! हमें लेकर चलो।"

बगुला पहले उस काणे महामत्स्य को तालाब के किनारे ले जाकर, तालाब दिखा कर, तालाब के किनारे उत्पन्न वरुण-वृक्ष पर जा बैठा। फिर उस (मछली) को शाखाओ के बीच में डाल, चोच से कोच कोच कर मारा, और मास खा (मछली के) काटो को वृक्ष की जड मे डाल दिया। फिर जाकर 'उस मछली को मै छोड़ आया। अब दूसरी आये' (कह), इस उपाय से एक एक को ले जा, सब को खाकर, आकर देखा तो वहाँ एक भी बाकी न थी।

केवल एक केकडा वहाँ वाकी रह गया था। वगुले ने उसे भी खाने की इच्छा से कहा—"भो कर्कटक! मै उन सब मछलियो को ले जाकर महातालाब में छोड आया। आ तुझे भी ले चलूगा।"

"ले कर जाते हुए, मुझे कैसे पकडोगे ?"

"डस कर (=चोच मे पकड कर) लेकर जाऊँगा।"

"तू इस प्रकार ले जाते हुए, मुझे गिरा देगा। मै तेरे साथ न जाऊँगा।"

"डर मत! मैं तुझे अच्छी प्रकार पकड कर ले जाऊँगा।"

केकडे ने सोचा—"इसने मछलियो को (तो) तालाव में ले जाकर नही छोडा है। यदि मुझे तालाव में ले जाकर छोड देगा, तो इसमें इसकी कुशल है, यदि नही छोडेगा, तो इसकी गर्दन छेद कर, इसका प्राण हर लूगा।"

सो उसने कहा—"सौम्य वगुले! तू ठीक से न पकड सकेगा। लेकिन हमारा जो पकडना होता है, वह पक्का होता है। इसलिए यदि मुझे अपने डक से तू अपनी गर्दन पकडने दे, तो तेरी गर्दन को अच्छी तरह पकडे, मै तेरे साथ चलूँगा। उसने उसकी ठगने की इच्छा को, 'न जानते हुए' 'अच्छा' कह, स्वीकार किया। केकडे ने अपने डक से, लोहार की सडासी की तरह, उसकी गर्दन को अच्छी तरह पकड कर कहा—"अव चल।" वह उसे ले जाकर, तालाब दिखाकर वरुण-वृक्ष की ओर उड़ा।

केकडे ने कहा—"मामा! तालाव तो यहाँ है, लेकिन तू यहाँ से ले जा रहा है।" वगुले ने कहा—"मालूम होता है कि तू समझता है कि 'मै प्यारा मामा और तू मेरी वहन का प्रिय-पुत्र है' कह उठाए फिरते हुए मैं तेरा दास हूँ। देख इस वरुण-वृक्ष के नीचे पडे (मछलियो के) काँटो के ढेर को। जैसे मै इन सब मछलियो को खा गया, वैसे ही तुझे भी खाऊँगा।"

केकडे ने उत्तर दिया—"यह मछलियाँ अपनी मूर्खता से तेरा आहार हुई। मै तुझे अपने को खाने न दूगा। किन्तु तेरा ही विनाश करूँगा। तू अपनी मूर्खता के कारण नही जानता कि तू मुझसे ठगा गया। मरना होगा तो दोनो मरेंगे। देख, मैं तेरे सिर को काट कर भूमि पर फेक दूगा।" (कह) उसने सडासी की तरह अपने डक से उसकी गर्दन भीची। वगुले ने चौडे मुह, आँखो से आँसू गिराते हुए मरने से भयभीत हो कहा—"स्वामी! मुझे जीवन दे। मै तुझे नही खाऊँगा।"

"यदि ऐसा है, तो उतर कर मुझे तालाव में छोड।"

उसने रुक कर, तालाव पर ही उतर, केकडे को तालाव के किनारे कीचड पर रक्खा। केकडा, कैंची से कुमुद की डंठल काटने की तरह, उसकी गर्दन काट कर पानी में घुस गया। वरुण-वृक्ष के देवता ने उस आश्चर्य को देख, साधुकार देते हुए, (तथा) वन को उन्नादित करते हुए, मधुर स्वर से यह गाथा कही—

नाच्चन्त निकतिप्पञ्ञो निकत्या सुखमेधति,
आरावेति निकतिप्पञ्ञो वको कक्कटकामिव॥

[धूर्त-बुद्धि (आदमी) अपनी अधिक धूर्तता से सदैव सुख नहीं पा सकता। धूर्त-बुद्धि (अपने किये का फल) भोगता है, जैसे बगुले ने केकडे (के द्वारा)।]

नाच्चन्त निकतिप्पञ्ञो निकत्या सुखमेधति, निकति कहते हैं ठगी को। निकतिप्पञ्जो, ठगने वाला आदमी (=धूर्त) उस धूर्तता से (=उस ठगी से); न अच्चनत सुखमेधति, सदैव सुख में प्रतिष्ठित नहीं रह सकता, अवश्य ही विनाश को प्राप्त होता है। आरावेति=प्राप्त करता है। निकतिप्पञ्ञो, धूर्तता सीखा हुआ आदमी—पापी आदमी, अपने किये पाप-कर्म का फल पाता है, भोगता है।' कैसे ? वको कक्कटकामिव, जैसे बगुले ने केकडे से गर्दन छिदवाई ; इसी प्रकार पापी पुरुष इस जन्म में , वा अगले जन्म में, अपने किये पाप के फलस्वरूप, भय का भागी होता है। इस अर्थ को प्रकाशित करते हुए, महासत्त्व ने वन को उन्नादित करते हुए धर्मोपदेश किया।

शास्ता ने 'भिक्षुओ ! न केवल अभी ग्रामवासी चीवर वाले (भिक्षु) ने इसे ठगा, पूर्व जन्म में भी ठगा है' कह, इस धर्म-देशना को ला, मेल मिला, जातक का सारांश निकाल दिखाया। उस समय का वह बगुला (अब का) जेतवन वासी चीवर-वाला हुआ। केकडा (अब का) ग्रामवासी चीवर-वाला। वृक्ष-देवता तो मैं ही था।

३९. नन्द जातक

"**मञ्ञे सोवण्णयो रासि...**" यह गाथा, शास्ता ने **जेतवन** में विहार करते समय, **सारिपुत्र** स्थविर के शिष्य के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

वह भिक्षु सुभाषी था, बात सह लेने वाला था, और बड़े उत्साह से स्थविर की सेवा करता था। एक समय (सारिपुत्र) स्थविर, शास्ता की आज्ञा ले, चारिका करते हुए, **दक्षिणागिरि**[1] जनपद पहुँचे। वहाँ पहुँच कर वह भिक्षु अभिमानी हो गया। स्थविर का कहना नही मानता था। 'आवुस! यह कर' कहने पर स्थविर का विरोधी हो जाता था। स्थविर उसका आशय (=चित्त की बात) न समझते (=जानते)। वह वहाँ चारिका कर, फिर (वापिस) जेतवन लौट आये। स्थविर के जेतवन-विहार पहुँचने के समय से वह भिक्षु फिर पूर्ववत् हो गया। स्थविर ने शास्ता से निवेदन किया—"भन्ते। मेरा एक शिष्य एक स्थान पर (रहते समय) सौ (मुद्रा) के खरीदे हुए गुलाम की तरह रहता है, दूसरे स्थान पर (रहते हुए) अभिमानी हो, 'यह कर' कहने पर विरोधी हो जाता है।" शास्ता ने कहा—"सारिपुत्र! इस भिक्षु का यह स्वभाव अब ही नही है, यह पहले भी एक स्थान पर तो सौ (मुद्रा) से खरीदे गुलाम की तरह रहता था, दूसरे स्थान पर प्रतिपक्षी, (प्रति-)शत्रु हो जाता था।" यह कह स्थविर के याचना करने पर पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में (राजा) ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय, बोधिसत्त्व ने एक कुटुम्ब में जन्म लिया। एक गृहस्थ उसका मित्र था। गृहस्थ अपने

---

[1] राजगृह के आस-पास।

वृद्धा था, लेकिन उसकी स्त्री तरुण थी। उसको स्त्री से एक पुत्र पैदा हुआ। उसने सोचा—"(कदाचित्)यह तरुण स्त्री, मेरी मृत्यु के बाद किसी दूसरे पुरुष को लेकर, इस धन को नष्ट कर दे। मेरे पुत्र को न दे। सो, मैं इस धन को पृथ्वी में गाड दू।" (यह सोच) घर के नन्द नामक नौकर को ले, जगल में जा, एक स्थान पर धन को गाड, उसको बता कर कहा—"तात! नन्द! मेरे मरने पर, मेरे पुत्र को यह धन बता देना। उसकी ओर से लापरवाह न होना।" (इस प्रकार) उपदेश दे कर मर गया।

क्रम से उसका पुत्र बडा हो गया। माता ने कहा—"तात! तेरे पिता ने नन्द को ले जाकर धन गाडा था। सो, उसे मँगवाकर कुटुम्ब को पाल!" उसने एक दिन नन्द से पूछा—"मामा! क्या मेरे पिता ने कुछ धन गाडा है?"

"स्वामी! हाँ!"

"वह कहाँ गडा है?"

"स्वामी! जगल में।"

"तो चलें" कह, कुदाल टोकरी ले, जहाँ धन गडा था, वहाँ पहुँच कर पूछा—"मामा! धन कहाँ है?"

नन्द ने धन के ऊपर जाकर, उस पर खड़े हो, धन के कारण अभिमानी हो कुमार को गाली दी—"अरे! दासीपुत्र! चेटक! यहाँ तेरा धन कहाँ से आया?"

कुमार ने उसके कठोर वचन को सुन कर, अनसुने की तरह कहा—"तो चलें।"

उसको साथ ले, लौट कर, फिर दो तीन दिन गुजरने पर गया। नन्द ने वैसे ही गाली दी।

कुमार ने उसके साथ कठोर बात न बोल लौट कर सोचा—"यह दास, 'इस बार धन बता दूगा' कह कर जाता है। लेकिन (वहाँ) जाकर गाली देता है। न मालूम, इसका क्या कारण है? मेरे पिता का एक कुटुम्बिक मित्र है। उसे पूछ कर, (इसका कारण) मालूम करूँगा।" (यह सोच) बोधिसत्त्व के पास जा, सब हाल कह पूछा—"तात! क्या कारण है?

बोधिसत्त्व ने, "तात! जिस स्थान पर खड़ा होकर नन्द गाली बकता है, उसी स्थान पर तेरे पिता का धन है। इसलिए जब नन्द तुझे गाली दे, तो 'आ रे! दास! क्या गाली बकता है' कह, उसे खैंच, कुदाली ले, उस स्थान को खोद

कुल स प्राप्त धन को निकाल, दास से उठवा कर, "(घर) ले जाना" कह, यह गाथा कही—

मञ्ञे सोवण्णयो रासि सोवण्णमाला च नन्दको,
यत्थ दासो आमजातो ठितो थल्लानि गज्जति ॥

[जहाँ पर आम दासी-पुत्र नन्दक खडा हो कर कठोर शब्दो की गर्जना करता है, मै समझता हूँ (वही) स्वर्णमय (आभरणो) का ढेर है, वही सोने की माला (है) ।]

मञ्ञे ऐसा मै मानता हूँ। **सोवण्णयो,** सुन्दर वर्ण होने से सोवण्ण (वस्तुये)। वह कौन कौन सी ? चाँदी, मणि, सोना, मूगा आदि रत्न। इस स्थान में 'सोवण्ण' से इन सव का मतलव है। उनका ढेर, सोवण्ण का ढेर। **सोवण्णमालाच,** तेरे पिता के पास, जो सुवर्ण माला थी, वह भी मै मानता हूँ कि यही है। **नन्दको, यत्थ दासो** जिस स्थान पर दास नन्दक खडा है, **आमजातो,** हाँ (=आम) मै दासी हूँ, इस प्रकार दासत्व के भाव को प्रगट करने वाली दासी का पुत्र। **ठितो थुल्लानि गज्जति,** वह जिस स्थान पर खडा हो कर स्थूल (वचन)=कठोर वचन बोलता है, वही, मै समझता हूँ कि तेरा कुल-धन है।

वोधिसत्त्व ने कुमार को धन लाने का उपाय वताया। कुमार वोधिसत्त्व को प्रणाम कर घर गये, और फिर नन्द को ले, धन के गडे होने की जगह गये। और जैसे कहा था, वैसे ही किया। फिर उस धन को ला, कुटुम्व को पाला। वह वोधिसत्त्व के उपदेशानुसार दान आदि पुण्य करके, जीवन की समाप्ति पर, यथाकर्म (परलोक) सिधारा।

वुद्ध ने, 'पहले भी इस (भिक्षु) का यही स्वाभाव था' कह, यह धर्मदेशना ला, मेल मिला, जातक का साराश निकाल दिखाया। उस समय का नन्द (अब का) सारिपुत्र का शिष्य था। लेकिन पण्डित-कुटुम्बिक तो मै ही था।

४०. खदिरंगार जातक

"कामं पतामि निरयं. " यह गाथा शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय, अनाथपिण्डिक के सम्बन्ध में कही।

क. वर्तमान कथा

अनाथपिण्डिक ने केवल विहार बनवाने के लिए ही चौवन करोड धन, बुद्धशासन के निमित्त त्याग दिया=बिखेर दिया। वह तीन रत्नो (=बुद्ध, धर्म, सघ) को रत्न समझ, और किसी (रत्न) को रत्न ही न समझ, शास्ता के जेतवन में विहार करने के समय, प्रति दिन तीन बार दर्शनार्थ जाता था। एक बार प्रातःकाल ही जाता, दूसरी बार जलपान करके जाता, तीसरी बार शाम को जाता। और भी बीच बीच में जाता ही था। जाते समय 'सामणेर'[1] वा अन्य बच्चे मेरे हाथ की ओर देखेंगे कि क्या ले कर आया है' सोच वह कभी खाली हाथ नही गया। प्रातःकाल जाते समय यवागु लिवा कर जाता, जलपान करके जाते समय घी, मक्खन, मधु, गुड आदि और शाम को जाते समय गन्ध, माला, वस्त्र आदि ले कर जाता। इस प्रकार प्रतिदिन परित्याग करते करते इसने कितना परित्याग किया, उसका (कोई) माप नही। बहुत से व्यापारियो ने भी, हाथ की लिखित देकर, उससे अट्ठारह करोड धन ऋण लिया था। महासेट्ठी उनसे वह धन नही मँगवाता था। और भी, इसका कुलायत अट्ठारह करोड धन नदी के किनारे गाडा हुआ था। जल-वायु ने नदी के कूल के टूटने से वह समुद्र मे वह गया। वहाँ वे लोहे की गागरें, जैसी की तैसी मुहर लगी हुई, समुद्र में बहती घूमती थी। और, इसके घर में पाँच सौ भिक्षुओं को नित्यभात बँधा ही था। सेठ का घर भिक्षुसघ के लिए चौरस्ते पर खोदी गई पुष्करिणी की तरह था। वह सब भिक्षुओं के लिए माता-पिता तुल्य

---

[1] भिक्षु बनने से पूर्व 'ब्रह्मचारी' की अवस्था।

था। सो, उसके घर, सम्यक् सम्बुद्ध भी जाते, अस्सी महास्थविर भी जाते, शेष जाने वाले भिक्षुओ की तो गणना ही न थी। वह घर सात तल्लो का और सात ड्योढ़ियो वाला था। उसकी चौथी ड्योढी में एक मिथ्या-धारणा वाली देवी रहती थी। सम्यक् सम्बुद्ध के घर मे प्रवेश करते समय वह अपने कोठे (=विमान) पर बैठी न रह सकती थी। बच्चो को साथ ले उतर कर, वह जमीन पर खडी होती। अस्सी महास्थविर तथा अन्य स्थविरो के भी प्रविष्ट होते, तथा निकलते समय उसे वैसा ही करना पडता। उसने सोचा : जब तक श्रमण गौतम, अथवा उनके श्रावक इस घर मे आते-जाते रहेंगे, तब तक मुझे सुख नही। मै नित्य-प्रति उतर उतर कर जमीन पर नही खडी हो सकती, सो मुझे ऐसा (प्रबन्ध) करना चाहिए, जिसमें ये (लोग) इस घर मे प्रवेश न करे।

सो एक दिन वह लेटे हुए महाकर्मचारी के पास जाकर, (अपना) प्रकाश फैला कर खडी हो गई। "यहाँ कौन है ?" पूछने पर उत्तर दिया, "मै चौथी ड्योढी मे रहने वाली देवी हूँ।"

"किस लिए आई है ?"

"क्या तुम सेठ की करनी को नही देखते ? वह अपने भविष्य का कुछ भी ख्याल न कर, धन ले जा कर, केवल श्रमण गौतम की पूजा करता है। धन को न व्यापार मे लगाता है, न कर्मान्त (=खेती) में। तुम सेठ को उपदेश दो, जिससे वह अपने काम में लगें, जिससे श्रावको सहित श्रमण गौतम, इस घर में प्रवेश न किया करें।"

उस (=महाकर्मचारी) ने उत्तर दिया—"मूर्ख देवी! सेठ जो धन खर्च करता है, वह कल्याणकारी बुद्ध-शासन के लिए खर्च करता है। यदि वह मेरी चोटी पकड कर मुझे बेच भी देगा, तो भी मै कुछ न कहूँगा। तू जा।"

इसी तरह, एक दिन, उसने सेठ के पुत्र को जाकर उपदेश दिया। सेठ के पुत्र ने भी उसे पूर्वोक्त प्रकार से झाड बताई। सेठ को तो वह जाकर, कुछ कह ही न सकती थी।

सेठ के निरन्तर दान देते रहने से, व्यापार न करने के कारण आमदनी कम हो जाने से, धन में बहुत न्यूनता आ गई। (और) ऐसे ही क्रम से होते रहने से, उसके दरिद्र हो जाने पर, उसके पहनने के वस्त्र, बिस्तर, भोजन आदि भी पूर्व-सदृश न रहे। ऐसा होने पर भी, वह भिक्षुसघ को दान देता, लेकिन हा, अब प्रणीत

(आहार) न दे सकता। एक दिन वन्दना करके बैठे उसे, शास्ता ने पूछा— "गृहपति! तुम्हारे घर से दान दिया जाता है?"

"भन्ते! दिया जाता है, लेकिन वह होता है (केवल) कणी का चावल और मट्ठा।"

गृहपति! 'मै रूखा-सूखा दान दे रहा हूँ' सोच सकुचित न हो, प्रसन्न (=पवित्र) चित्त मे बुद्धों, प्रत्येक-बुद्धों तथा बुद्ध-श्रावको को दिया हुआ दान रूखा-सूखा दान नही होता, क्यो? (उसका) बडा फल होने से। चित्त प्रसन्न (=पवित्र) रख सकने वाले का दान 'रूखा-सूखा-दान' नही होता— यह इस प्रकार जानना चाहिए—

नत्थि चित्ते पसन्नम्हि अप्पिका नाम दक्खिणा,
तथागते वा सम्बुद्धे अथवा तस्स सावके॥
न किरत्थि अनोमदस्सिसु पारिचरिया बुद्धेसु अप्पिका,
सुक्खाय अलोणिकाय च पस्स फलं कुम्मासपिण्डिया॥

[चित्त प्रसन्न हो, तो तथागत=सम्बुद्ध अथवा उसके श्रावक को दी गई दक्षिणा 'थोडी' नही होती। और न ही अनोमदर्शी आदि बुद्धो की हुई सेवा (=पारिचरिया) "थोडी" होती है। सूखे, अलूणे, कुलमाश-पिण्ड के (ही दान के) फल को देख।]

उसे और भी कहा कि हे गृहपति! तू अपना 'रूखा-सूखा' दान देता हुआ भी आठ आर्य पुद्गलो को दे रहा है,—लेकिन वेलाम (ब्राह्मण) के जन्म में उत्पन्न होने के समय, सारे जम्बुद्वीप के हलो को रुकवा कर सात रत्न देते हुए, पाच महा नदियो को एक साथ, एक प्रवाह करने की तरह (चित्त को प्रसन्नता से भरकर) महादान देने के समय, कोई त्रिशरण-गत वा पञ्च-शील रक्षक (=सदाचारी) न मिला। इस प्रकार दान का अधिकारी पुद्गल मिलना भी दुर्लभ है। सो "मेरा दान रूखा-सूखा है" समझ, तू सकुचित मत हो। यह कह वेलामसुत्त[1] कहा।

सो वह देवी (यद्यपि) पहले सेठ के साथ बात भी न कर सकती थी, (तो भी) अब सेठ के दुर्गति-प्राप्त होने से, '(शायद) वह मेरी बात मान ले' सोच, आधी रात

[1] यह सूत्र त्रिपिटक में नहीं मिला।

के समय, (सेठ के) शयनागार में प्रविष्ट हो, (अपना) प्रकाश फैला आकाश में खडी हुई।

सेठ ने उसे देख कर पूछा—"यह कौन है ?"

"सेठ ! मैं चौथी ड्योढी में रहने वाली देवी।"

"किस लिए आई है ?"

"तुझे नेक-सलाह देने की इच्छा से।"

"अच्छा ! तो कह।"

"वडे सेठ ! तू भविष्य की चिन्ता नही करता। बेटे-बेटी की ओर नही देखता। तूने श्रमण गौतम के शासन के लिए बहुत धन खर्च कर दिया। सो, तू चिरकाल तक धन खर्च करते रहने से तथा (खेती आदि) नवीन कर्मान्तो के न करने से, श्रमण गौतम के कारण निर्धन हो गया। ऐसा होने पर भी तू श्रमण गौतम (का पीछा) नही छोडता। आज भी श्रमण तेरे घर में आते ही है। जो कुछ वह ले गये, सो अव वापिस नही मँगवाया जा सकता, वह ले जायें। लेकिन अब से, तू श्रमण गौतम के पास जाना, और उसके श्रावको को इस घर में आने देना—बन्द कर दे। (चलते चलते जरा) रुक कर भी, श्रमण गौतम को बिना देखे, (अपने व्यापार और वाणिज्य को करते हुए, (अपने) कुटुम्ब को पाल।"

उसने उसे पूछा—"जो नेक-सलाह तू मुझे देना चाहती है, वह यही है ?"

"हाँ ! यही है।"

"तुझ जैसे (=वैसे) सौ, हजार (और) लाख देवताओ (के उपदेश) से भी मैं हिलने वाला नही। दस-बल (-धारी) के प्रति मेरी श्रद्धा सुमेरु पर्वत की तरह अचल (है), सुप्रतिष्ठित (है)। मैंने कल्याण-कारी (त्रि-) रत्न-शासन के लिए जो धन खर्च किया है, उसे तूने 'अनुचित' कहा। तूने बुद्ध-शासन को दोष दिया। इस प्रकार की अनाचारिणी, दुश्शीला और मनहूस के साथ मैं एक घर में नही रह सकता। निकल, मेरे घर से, शीघ्र निकल और (किसी) दूसरी जगह जा।"

श्रोतापन्न, आर्य-श्रावक (अनाथपिण्डिक) की बात सुन कर, न ठहर सकने के कारण, वह अपने निवास-स्थान पर गई और बच्चो को हाथ से पकडे हुए, (वहाँ से) निकल आई। (लेकिन) निकल कर, अन्य निवास-स्थान न मिलने के कारण, 'सेठ से क्षमा माँग, वही रहूँगी' सोच, नगर-रक्षक देवपुत्र के पास जा, उसे प्रणाम कर, खडी हुई।

'किस लिए आई ?' पूछने पर, वह बोली—"स्वामी! मैंने बिना सोचे समझे, सेठ को (कुछ) कह दिया। उसने क्रुद्ध हो, मुझे निवास-स्थान से निकाल दिया। सेठ के पास ले जा, उससे क्षमा दिलवा मुझे रहने के लिए स्थान दिलवाइए (=दीजिए)।"

"तूने सेठ को क्या कहा?"

"स्वामी! मैंने सेठ को कहा कि अब से बुद्ध-उपस्थान (=सेवा), सघ-उपस्थान मत करो। श्रमण गौतम को घर में मत आने दो।"

"तूने अनुचित कहा। (बुद्ध-) शासन की निन्दा की। मैं तुझे लेकर सेठ के पास जाने की हिम्मत नही कर सकता।"

वह, उससे कुछ सहायता न पा, चारो महाराजाओ के पास गई। उनसे भी वैसा ही इनकार मिलने पर शक्र देवेन्द्र के पास जा, वह हाल कह, बडी नम्रता से याचना करने लगी—"हे देव! निवास-स्थान न मिलने से, मैं बच्चो को हाथ से पकडे पकडे, अशरणा हो घूमती हूँ। अपनी कृपा से, मुझे निवास-स्थान दिलवाइये।"

उसने भी कहा—"तूने अनुचित किया जो बुद्ध-शासन की निन्दा की! मै भी तेरे पक्ष में सेठ के साथ बातचीत तो नही कर सकता, लेकिन एक ऐसा उपाय बताता हूँ कि जिससे सेठ क्षमा कर दे।"

"अच्छा! देव! कहें।"

"मनुष्यो ने तमस्सुक देकर सेठ के हाथ से अट्ठारह करोड (की) सख्या में धन लिया है। तू सेठ के मुनीम (=आयुत्तक) का भेष बना, किसी को बिना जनाये, उन लेखो को ले, कुछ यक्ष तरुणो के साथ, एक हाथ में लेख और एक हाथ में कलम लेकर, उन (आदमियो) के घर जा, और घर के बीच में खडी हो, अपने यक्ष-बल (=आनुभाव) से उन्हें डरा, 'यह तुम्हारे लेख हैं। हमारे सेठ ने अपने ऐश्वर्य के समय में तुम्हें कुछ नही कहा, लेकिन अब वह निर्धन (दुर्गति-प्राप्त) हो गया है। तुमने जो कार्षापण लिए हैं सो दो' (कह) अपनी यक्ष-पन की सामर्थ्य दिखा कर, वह सब अट्ठारह करोड सोना वसूल (=साध) कर सेठ के खाली कोठे को भर। दूसरे अचिरवती[1] नदी के किनारे गडा धन, नदी-कूल के टूट जाने से समुद्र में वह

---

[1] रापती।

गया है, उसे भी अपने सामर्थ्य से लाकर, खाली कोठे भर। और भी, अमुक स्थान पर विना मलकीयत का अट्ठारह ही करोड धन है, उसे भी ला कर खाली कोठे भर। इस चौवन करोड धन से इन खाली कोठो को भरने से दण्ड-कर्म कर के, महासेठ से क्षमा माँगना।"

वह 'देव! अच्छा' कह, उसके कथन को स्वीकार कर, तदनुसार सब धन लाकर, आधी रात के समय, सेठ के शयनागार में प्रविष्ट हो, (अपना) प्रकाश फैला, आकाश मे खडी हुई।

"यह कौन है?" पूछने पर वोली—"सेठ जी! मै तुम्हारी चौथी डयोढी में रहने वाली अधी-मूर्ख देवी हूँ। मैंने अपनी महामोह (भरी) मूढता के कारण, बुद्ध-गुणो को न जानकर, पिछले दिनो में आपसे (जो) कुछ कहा, मेरे उस दोप को क्षमा करे। मैंने देवेन्द्र शक्र के कथनानुसार आपका ऋण वसूल (=साध) कर अट्ठारह करोड, समुद्र में वहा हुआ अट्ठारह करोड, जिस किसी स्थान में बिना मलकीयत का अट्ठारह करोड,—इस प्रकार चौवन करोड लाकर, खाली कोठो को भरने से, दण्ड चुका दिया, जेतवन विहार के (निर्माण) में जितना धन खर्च हुआ, उतना एकत्र कर दिया। निवास-स्थान न मिलने से मै कष्ट पा रही हूँ। सेठ जी! मैंने अज्ञान से जो (भूल) कर दी, उसे क्षमा करे।"

अनाथपिण्डिक ने, उसकी वात सुन, यह कहती है—'मैंने दण्ड भुगत लिया, और अपने दोप को स्वीकार करती हूँ' सोच विचार किया कि इसे सम्यक् सम्बुद्ध के पास ले चलना चाहिए, इसका ख्याल कर तथागत अपने गुणो को जनायेंगे। सो उसे कहा, "अम्म! देवी! यदि तू मुझसे क्षमा प्रार्थना करना चाहती है, तो शास्ता के सम्मुख क्षमा-प्रार्थना करना।"

"अच्छा! ऐसा करूँगी, लेकिन मुझे शास्ता के पास ले चलना।" उसने अच्छा' कह, रात्रि समाप्त होने पर प्रात काल ही उसे ले, शास्ता के पास जा, शास्ता को उसका सव किया-कराया कह सुनाया। शास्ता ने, "हे गृहपति! जब तक पाप-कर्म करने वाले का पाप पकता नही है, तब तक वह सुख भोगता है, लेकिन जव उसका पाप-कर्म पकता है (=फल देता है), तब से वह दु ख ही दु ख भोगता है। (इसी प्रकार) जव तक पुण्य-कर्म (=भद्र) करने वाले का पुण्य पकता नही, तव तक वह दु ख भोगता है, लेकिन जब उसका पुण्य-कर्म पकता है, तब से वह सुख ही सुख भोगता है" कह, धम्मपद की इन दो गाथाओ को कहा—

पापोपि पस्सति भद्रं याव पापं न पच्चति,
यदा च पच्चति पापं अथ पापो पापानि पस्सति ॥
भद्रोपि पस्सति पापं याव भद्रं न पच्चति,
यदा च पच्चति भद्रं अथ भद्रो भद्रानि पस्सति ॥

इन गाथाओं के (कहे जाने के) अन्त में, वह देवी श्रोतापत्ति-फल में प्रतिष्ठित हुई। उसने शास्ता के चक्रांकित चरणों में गिर कर कहा—"भन्ते! मैंने राग में अनुरक्त हो, दोष (=क्रोध) से दूषित हो, मोह से मूढ हो, अविद्या से अंधी हो, आपके गुणों को न जानने के कारण अप-शब्दों का प्रयोग किया, सो वह मुझे क्षमा करें।" शास्ता से क्षमा माँग, उसने सेठ से क्षमा माँगी।

उस समय अनाथपिण्डिक ने शास्ता के सम्मुख अपना गुण वर्णन किया—"भन्ते! यह देवी 'बुद्ध-सेवा आदि मत कर' (कह) मना करने पर भी, मुझे रोक नहीं सकी, 'दान नहीं देना चाहिए' कह रोकने पर भी, मैंने दान दिया ही। भन्ते! क्या यह मेरा गुण नहीं?"

शास्ता ने, "हे गृहपति! तू श्रोतापन्न (है), आर्य-श्रावक (है), अचल श्रद्धा वाला (है), विशुद्ध-दृष्टि (=विचार) है, यदि यह अल्प-शाक्य देवी तुझे (दान देने से) रोकने पर भी, नहीं रोक सकी, तो यह आश्चर्य (की बात) नहीं। आश्चर्य तो यह है कि बुद्ध के अनुत्पन्न हुए रहने पर (भी), (उनके) (ज्ञान) के अपरिपक्व रहने पर भी, पूर्व समय में पण्डितों ने, कामावचर-लोक के स्वामी मार (=शैतान) के आकाश में खड़े हो कर 'यदि दान दोगे, तो इस नरक में पकोगे' (कहते हुए) अस्सी हाथ गहरा अङ्गारों का ढेर दिखा कर 'दान मत दो' मना करने पर भी, पद्म की कर्णिका के बीच में खड़े हो कर दान दिया।" यह कह, अनाथपिण्डिक के याचना करने पर पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में (राजा) ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय, बोधिसत्व वाराणसी सेठ के घर में उत्पन्न हो, नाना प्रकार की सुख-सामग्री (=भोगों) में देव-कुमार की तरह परवरिश पा, क्रम से ज्ञान प्राप्त कर, सोलह वर्ष की ही आयु में सब शिल्पों में दक्ष हो गये। वे, पिता के मरने पर, सेठ का स्थान ग्रहण कर, नगर

के चार द्वारो पर चार दान-शालायें, नगर के बीच मे एक, अपने निवासस्थान के द्वार पर एक—छ: दान-शालाये वनवा कर महादान देते, सदाचार की रक्षा करते तथा व्रत (=उपोसथ कर्म) रखते थे। सो एक दिन, प्रात काल का जल-पान करने के समय, वोधिसत्त्व के लिए नाना प्रकार के अग्र रसो से युक्त, मनोज्ञ भोजन लाने जाने पर, एक सप्ताह के वाद ध्यान से उठ कर, एक प्रत्येक-बुद्ध, भिक्षा माँगने के समय का ख्याल कर, 'आज मुझे (भिक्षा के लिए) वाराणसी सेठ के गृह-द्वार पर जाना चाहिए' (सोच,) नाग-लता की दातुन कर, अनोतप्त-दह (झील) पर मुह धो, मनोशिला तल पर खडे हो (चीवर) पहन, काय-बन्धन (=पट्टी) बाँध, चीवर धारण कर, ऋद्धिमय-मिट्टी का वर्तन (=पात्र) ले आकाश से आकर, वोधिसत्त्व का भोजन लाये जाने के ठीक समय, (उसके) गृहद्वार पर आकर खडे हुए।

वोधिसत्त्व ने उसे देखते ही, आसन से उठ, सत्कार कर सेवक की ओर देखा। (उसको) "स्वामी क्या करूँ?" पूछने पर कहा—"आर्य्य का पात्र लाओ।" उसी क्षण पापी मार ने थर्राते हुए उठ कर 'इस प्रत्येक-युद्ध को आज से सात दिन पहले आहार मिला है, आज न मिलने पर, इसका विनाश हो जायगा सो, मैं इसका विनाश करूँगा और सेठ के दान देने मे रुकावट डालूगा' (सोच), उसी क्षण आकर देहली के वीच में अस्सी हाथ गहरा अङ्गारो से भरा गढा बनाया। वह खदिर अङ्गारो से परिपूर्ण, प्रज्वलित, ज्योतिमान् गढा, अवीची महा-नरक सदृश प्रतीत होता था। उसे वना कर, अपने आप आकाश में ठहरा। पात्र लेने के लिए जाने वाला आदमी उसे देखते ही भयभीत हो कर लौटा। बोधिसत्त्व ने पूछा—"तात! लौट क्यो आया?"

"स्वामी! आङ्गन (देहली) में जलते हुए, दहकते हुए अङ्गारो का वडा भारी गढा है।" दूसरा, तदनन्तर तीसरा—इस प्रकार जितने आये, सभी भयभीत हो कर भाग गये।

वोधिसत्त्व ने सोचा—"आज वशवर्ती मार मेरे दान में रुकावंट डालने के लिए उद्यत हुआ होगा। यह नही जानता कि मुझे सौ मार, हज़ार मार भी (मिल कर) नही हिला सकते। आज मालूम करूँगा कि मार में और मुझमें—हम दोनो में—कौन अधिक शक्तिशाली है, कौन अधिक प्रतापवान् है?" सो उसने जैसी की तैसी परोसी हुई थाली को अपने (सिर पर) ले, घर से निकल, अङ्गारो के गढे के

किनारे पर खड़े हो, आकाश की ओर देखते हुए, मार को देख कर पूछा—"तू कौन है?"

"मैं मार हूँ।"

"यह अङ्गारो का गढ़ा तूने बनाया है?"

"हाँ, मैंने।"

"किस लिए?"

"तेरे दान देने में रुकावट डालने के लिए, तथा प्रत्येक-बुद्ध का जीवन विनाश करने के लिए।"

बोधिसत्त्व ने, "न तो मैं तुझे अपने दान में रुकावट डालने दूगा, और न मैं तुझे प्रत्येक-बुद्ध का जीवन विनाश करने दूगा। मुझमें और तुझमें—दोनों में—कौन अधिक शक्तिशाली है, उसकी आज परीक्षा करूँगा" (कह) अङ्गारो के ढेर के किनारे खड़े हो, "भन्ते प्रत्येक-बर-बुद्ध! मैं इस अङ्गारो के गढ़े में मुह के बल (=सिर नीचे) गिरने पर भी, नही रुकूगा, आप केवल मेरे दिए हुए भोजन को स्वीकार करें।" (कह) यह गाथा कही—

कामं पतामि निरयं उद्धपादो अवंसिरो,
नानरियं करिस्सामि हन्द पिण्ड पटिग्गह॥

[भले ही मैं, सिर नीचे, पैर ऊपर (होकर) इस नरक में क्यो न गिरूँ, लेकिन मैं अनार्य (कर्म) न करूँगा। हन्त! आप मेरे पिण्ड-पात (=भिक्षान्न) को स्वीकार करें।]

गाथा का साराश यह है—भन्ते प्रत्येक-बर-बुद्ध! यदि मैं तुम्हें पिण्डपात (=भिक्षा) देते हुए, निश्चित रूप से भी इस नरक में पैर-ऊपर सिर नीचे (=**निरयं उद्धपादो अवंसिरो**) होकर गिरूँ (=**पतामि**); तो भी यह जो अदान है, अशील है, आर्यों (=श्रेष्ठ) का अकृत्य तथा अनार्यो का कृत्य होने से, अनार्य कहलाता (=वुच्चति) है, उस अनार्य (-कर्म) को नही करूँगा (=**न तं अनरियंकरिस्सामि**) हन्त (=हन्द)! तुम मेरी दी भिक्षा को ग्रहण करें (=**पिण्डं पटिग्गह**)। **हन्त** (=हन्द) केवल निपात है।

यह कह दृढ-निश्चय पूर्वक बोधिसत्त्व, भोजन की थाली को ले, अङ्गारो के गढे के ऊपर से चले। उसी समय, अङ्गारो के अस्सी हाथ गहरे गढे के तल के ऊपर ही ऊपर, (छ पद्मो के अतिरिक्त) एक सातवें महापद्म ने उत्पन्न हो कर, बोधिसत्त्व के पैरो को स्पर्श किया। फिर एक महा-तूम्बा भर रेणु उठी। और उसने महासत्व के सिर पर से गिर कर, उसके सारे शरीर को स्वर्ण-चूर्ण से आकीर्ण की तरह कर दिया। उसने पद्म की कली में खडे हो कर नाना (प्रकार के) अग्र रसो (से युक्त) भोजन, प्रत्येक-बुद्ध के पात्र में रक्खा। प्रत्येक-बुद्ध, उसे स्वीकार कर, (दान-) अनुमोदन कर, पात्र को आकाश में फेंक, जन (-समूह) के देखते ही देखते अपने आप भी ऊपर जाकर, नाना प्रकार की बादलो की पक्तियो को मर्दित करते हुए, से, हिमवन्त को चले गये। मार भी पराजित हो, दु खित-चित्त अपने निवास-स्थान को चला गया। बोधिसत्त्व पद्म की कली मे खडे ही खडे, जन (-समूह) को दान-शील आदि की बडाई कर के, धर्मोपदेश दे, जनसमूह के साथ ही, अपने निवास-स्थान मे प्रविष्ट हो जीवित रहते, दानादि पुण्य-कर्म करते हुए, कर्मानुसार (पर-लोक) गए।

बुद्ध ने, 'गृहपति! यह आश्चर्य (की बात) नही कि तू दृष्टि (=विचार) सम्पन्न होकर, उस देवी (के उपदेश) से चञ्चल (=कम्पित) नही हुआ, पूर्व पण्डितो का कृत्य ही आश्चर्य-कारक है' (कह), इस धर्मदेशना को ला मेल मिला, जातक का साराश निकाल दिखाया। उस समय के प्रत्येक-बुद्ध तो वही परिनिर्वाण को प्राप्त हुए। मार को पराजित कर, पद्म-कली में खडे हो प्रत्येक-बुद्ध को भिक्षा देने वाला वाराणसी सेठ तो मै ही था।



पहला परिच्छेद

५. अत्थकाम वर्ग

४१. लोसक जातक

"यो अत्थकामस्स. " यह गाथा, शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय, लोसकतिस्स नामक स्थविर के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

यह लोसकतिस्स नामक स्थविर कौन था? कोशल राष्ट्र में एक स्वकीय कुलनाशक, अलाभी (=जिसे कुछ न मिले), मछुआ-पुत्र भिक्षु। उसने (अपने) पूर्व-जन्म के स्थान से च्युत हो कोशल राष्ट्र में सहस्र घरो वाले मछुओ के एक गाँव में, एक मछुवे की स्त्री की कोख में प्रवेश किया। उसके गर्भ में आने के दिन वे सहस्र परिवार जाल-हाथ में लेकर (मछली) ढूढने के लिए गए। उन हजार कुलो को नदी और तालाव आदि में एक छोटी सी मछली भी न मिली। उस समय से उन मछुओ की अवनति ही होती रही। उसी के गर्भ प्रवेश करने के समय से लेकर, वह गाँव, सात वार आग से जला, सात वार राजा से दण्डित हुआ। इस प्रकार दिन प्रति दिन (=क्रम से) दुर्गति को प्राप्त हो, उन्होने सोचा—"पूर्व समय में हमें ऐसा नही (होता) था। लेकिन अव प्रति दिन अवनत हो रहे है। हमारे अन्दर कोई (एक) मनहूस (हो गया) होगा। हम दो भागो (=वर्गों) में वँट जायें।" सो, पाँच पाँच सौ कुल एक एक जगह हो गए। तव से, जिस हिस्से में उसके माता पिता थे, उसी की अवनति होने लगी, दूसरे की उन्नति। उन्होने फिर उस कुल को भी दो में वांट, और फिर उस (से अगले कुल) को भी दो में वाँट, इस प्रकार जव तक वह एक (मनहूस) कुल ही अकेला रह गया, तव तक वाँट, "वही कुल मनहूस है"—ऐसा मालूम कर, उसे थपेड कर निकाल दिया।

सो उसकी माँ ने बडी कठिनाई से दिन काटते हुए गर्भ के परिपक्व होने पर, एक स्थान पर प्रसव किया। अन्तिम शरीर-धारी (व्यक्ति) को नष्ट नही किया जा सकता। उसके हृदय में अर्हत्व का उपनिश्रय (=कारण) वैसे ही प्रकाशित रहता है, जैसे घडे में दीपक। वह उस बालक को पाल, उसके भाग दौड कर चल सकने के समय, उसके हाथ में एक खोपडी दे 'पुत्र! एक घर में प्रवेश कर' (कह) उसके एक घर में प्रवेश करने पर, अपने भाग गई। वह उस दिन से, वहाँ अकेला ही भीख माँग, एक स्थान में पडा रहता था। न नहाता, न शरीर साफ करता, धूलि-पिशाच की तरह बडी कठिनाई से जीवन बिताता। इसी प्रकार, क्रम से सात वर्ष का होकर वह एक गृह-द्वार पर उक्खलि-धोवन फेंकने के स्थान पर पडे हुए चावल के दानो को, कौए की तरह एक एक चुग कर खाता था।

श्रावस्ती में भिक्षा-चार करते समय धर्मसेनापति (=सारिपुत्र) ने, उसे देख 'इस प्राणी की दशा अत्यन्त करुणाजनक है, यह किस गाँव का रहने वाला है?' सोच, उसके प्रति मैत्री-भाव की वृद्धि कर, उसे बुलाया—"अरे! आ।" वह जाकर, स्थविर को प्रणाम कर, खडा हो गया। स्थविर ने उसे पूछा—"तू किस गाँव का रहने वाला है? तेरे माता-पिता कहाँ हैं?"

"भन्ते! मैं प्रत्यय (=आवश्यक वस्तु)-रहित हूँ। मेरे माता-पिता 'हम इसके कारण कष्ट पाते हैं' (सोच), मुझे छोड भाग गये।"

"तू प्रव्रजित होगा?"

"भन्ते! मैं तो प्रव्रजित हो जाऊँ, लेकिन मुझ दरिद्र (=कृपण) को कौन प्रव्रजित करेगा?"

"मै प्रव्रजित करूँगा।"

"अच्छा! तो प्रव्रजित कर ले।"

स्थविर ने उसे खाद्य-भोज्य दे, विहार ले जा, अपने ही हाथ से नहला, प्रव्रजित कर, वर्ष सम्पूर्ण होने पर[1] उपसम्पन्न किया। वृद्ध होने पर, वह लोसकतिस्स स्थविर कहलाया—अपुण्यवान् तथा अल्पलाभी हुआ। असाधारण दान में भी उसे पेट भर खाने को न मिला, उतना ही मिला, जितना जीवित रहने भर के लिए पर्य्याप्त हो। उसके पात्र में एक ही कडछी यवागू डालने पर भी, उसका पात्र लबालब भरा

---

[1] बीस वर्ष से कम आयु रहने पर कोई उपसम्पन्न नहीं हो सकता।

प्रतीत होता। सो, मनुष्य 'उसका पात्र भर गया' सोच, उससे आगे यवागू बाँटते। ऐसा भी कहते हैं कि उसके पात्र में यवागू डालने के समय, मनुष्यो के (ही) पात्र से यवागू अन्तर्ध्यान हो जाता। खाद्य आदि के सम्बन्ध मे भी ऐसा ही (होता)। आगे चल कर, विदर्शना-भावना (=योग) की वृद्धि कर के अर्हत्व (नामक) अग्रफल मे प्रतिष्ठित हो कर भी वह अल्पलाभी ही रहा। इस प्रकार क्रम से, उसके आयुसंस्कारो के नाश होने पर, उसका **परिनिर्वाणदिवस**[1] भी आ गया।

धर्मसेनापति ने ध्यान लगा कर, उसके परिनिर्वृत्त होने की बात जान, 'यह लोसकतिस्स स्थविर आज परिनिर्वाण को प्राप्त होंगे, इसलिए मुझे चाहिए कि मैं इन्हे आज यथावश्यकता भोजन दूं' सोच, उसे साथ लेकर, **श्रावस्ती** में पिण्डपात के लिए प्रवेश किया। उस (लोसकतिस्स) स्थविर के साथ होने के कारण, इतने अधिक मनुष्यो की श्रावस्ती मे, स्थविर को किसी ने हाथ पसार कर, प्रणाम तक न किया। स्थविर ने उसे, 'आयुष्मान्! जा कर आसनशाला मे बैठें' (कह) भेज, अपने को जो आहार मिला था, उसे 'इसे लोसक को दो' कह कर भेजा। ले जाने वाले (आदमी) लोसक स्थविर को भूल (उस आहार को) अपने ही खा गये।

स्थविर के उठ कर विहार को जाते समय, **लोसकतिस्स** स्थविर ने जाकर, स्थविर की वन्दना की। स्थविर ने रुक कर खडे ही खडे पूछा—"आयुष्मान् तुम्हें भोजन मिला?" "भन्ते! नही मिला।" स्थविर ने संवेग-प्राप्त हो समय की ओर देखा। (भोजन कर सकने) का समय बीत चुका था। स्थविर 'आयुष्मान्! यही बैठें' कह लोसक स्थविर को आसनशाला मे बिठा (अपने) **कोशल नरेश** के घर गये। राजा ने स्थविर का पात्र लिवा, भोजन का असमय देख, पात्र को चार-मधुर पदार्थों[2] से भरवा (स्थविर को) दिलवाया।

स्थविर, उसे ले जाकर, 'आयुष्मान् तिस्स! आओ, इन चतु-मधुरो का भोजन करो' कह, पात्र को (अपने ही हाथ मे) लिए खडे रहे। लोसक स्थविर के गौरव से, शर्म के मारे नही खाते थे। स्थविर ने कहा—"आयुष्मान् तिस्स! आओ, मैं इस पात्र को लेकर खडा रहूँगा। तुम बैठ कर भोजन करो। यदि मैंने इस पात्र को हाथ से छोड दिया, तो (कदाचित्) इसमें कुछ न रहे।" सो आयुष्मान्

---

[1] क्षीणास्रवो के मरने को परिनिर्वृत्त होना कहते है।
[2] घी, मक्खन, शक्कर तथा मधु।

लोसकतिस्स स्थविर ने अग्रेश्वर धर्मसेनापति के हाथ मे पात्र लिए खडे रहते चारो प्रकार के माधुर्य का भोजन किया। स्थविर के ऋद्धिबल के कारण, वह भोजन समाप्त नही हुआ। उस समय लोसकतिस्स स्थविर ने, जितना चाहिए था, उतना पेट भर भोजन किया। और उसी दिन वह उपाधि-रहित निर्वाण-धातु को प्राप्त हुए। सम्यक् सम्बुद्ध ने पास खडे होकर शरीर की दाह-क्रिया करवाई। (शरीर-) धातु लेकर चैत्य बनाया गया।

उस समय धर्म-सभा मे एकत्रित हुए भिक्षु, (आपस में) बैठे बैठे कहने लगे—"आयुष्मानो! लोसकतिस्स स्थविर अपुण्यवान् (थे), अल्प-लाभी (थे), इस प्रकार अपुण्यवान् अल्पलाभी ने किस प्रकार आर्य-धर्म (=अर्हत्व) प्राप्त कर लिया?" बुद्ध ने धर्म-सभा मे जाकर पूछा—"भिक्षुओ! बैठे क्या बातचीत कर रहे हो?" उन्होने कहा "भन्ते! यह बातचीत।" बुद्ध ने, "भिक्षुओ! इस भिक्षु ने अपने आपको स्वय ही अल्प-लाभी बनाया, और स्वय ही अर्हत्। पूर्व-जन्म में औरो की प्राप्ति मे बाधक होने के कारण, यह अल्प-लाभी हुआ, और अनित्य, दु ख, अनात्म—की विदर्शना युक्त भावना (=योगाभ्यास) के फल-स्वरूप आर्यधर्म-लाभी (=अर्हत्) हुआ" कह, पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व-काल मे काश्यप सम्यक् सम्बुद्ध के समय मे, एक भिक्षु एक गृहस्थ पर विशेष रूप मे निर्भर हो, एक गाँव के निवासस्थान मे रहता था। वह स्वभाव से ही सदाचारी (=शीलवान्) था, और योगाभ्यास (=विदर्शना) मे लगा रहता था। (उसी समय) एक क्षीणाश्रव स्थविर, अपने कर्तव्यो की अवहेलना न कर, एक एक स्थान मे ठहरते हुए, क्रम से उस भिक्षु के उपस्थापक गृहस्थ के ही गाँव मे पहुँचे। गृहस्थ ने स्थविर के उठने बैठने (=इर्या-पथ) पर ही प्रसन्न हो, (उनका) पात्र ले (उन्हे) घर मे प्रवेश करा, अच्छी प्रकार भोजन खिला, कुछ धर्म-कथा सुन, स्थविर को प्रणाम कर कहा—"भन्ते! हमारे समीप के विहार को जायें, हम शाम को आपके दर्शनार्थ आयेंगे।" स्थविर विहार मे जा, उसमे रहने वाले स्थविर को प्रणाम कर और (उनसे कुशल क्षेम) पूछ कर एक ओर बैठे। उस (स्थविर) ने भी उनसे कुशल-क्षेम सम्बन्धी बातचीत कर, पूछा—"आयुष्मान्! आज आपको भोजन मिला?" "हाँ मिला।" "कहाँ मिला?" "आपके ग्राम के गृहस्थी के घर

में।" यह कह कर, अपना शयनासन पूछ, (उसे) झाड सँवार कर, पात्र चीवर को ठीक से रख कर, ध्यान-सुख तथा फल-सुख से (समय) बिताते हुए बैठे।

उस गृहस्थ ने शाम को गन्ध-माला, (तथा) तेल-प्रदीप लिवा कर, विहार जाकर, निवासिक स्थविर को प्रणाम कर, पूछा—"भन्ते! यहाँ एक आगन्तुक स्थविर आया है?"

"हाँ! आया है।"

"इस समय कहाँ है?"

"अमुक शयनासन पर।"

वह उनके पास जाकर, प्रणाम कर, एक ओर बैठ, धर्म-कथा सुन, ठण्डा हो जाने पर, चैत्य और बोधि (-वृक्ष) की पूजा कर, दिये जला कर, दोनो स्थविरो को (भोजन के लिये) निमन्त्रित कर, लौट आया। स्थानीय स्थविर ने सोचा—"यह गृहस्थ बदल रहा है। यदि यह भिक्षु इस विहार में रहेगा, तो यह (गृहस्थ) मेरी कुछ गिनती न करेगा।" (उसने) स्थविर के प्रति मन में असन्तोष उत्पन्न कर, "मुझे ऐसा करना चाहिए, जिसमे यह इस विहार में न वस सके"—इस विचार से उपस्थान-वेला (=सेवा के कृत्य करने) के समय, उनके आने पर, उनसे कुछ बात-चीत न की। क्षीणाश्रव स्थविर ने उनके मन का विचार जान कर 'यह स्थविर नही जानते कि मेरी न तो (भिक्षु-) गण में आसक्ति है, न (गृहस्थ-) कुल में' सोचते हुए, अपने स्थान पर जाकर, ध्यान-सुख और फल-सुख में समय बिताया।

अगले दिन स्थानीय भिक्षु अपने नाखून से (हलके से) घटी वजा और नाखून से ही (आगन्तुक भिक्षु) के द्वार पर टक टक कर, (उस) गृहस्थ के घर गया। उसने उनका पात्र ले उसे बिछे आसन पर बिठा पूछा—"भन्ते! आगन्तुक स्थविर कहाँ है?"

"मुझे नहीं मालूम! तेरे उस कुलूपक[1] का हाल, घटी बजाते, द्वार खट-खटाने भी मै उसे नही जगा सका। कल तेरे यहाँ का प्रणीत-भोजन खाकर, हजम न कर सकने के कारण पडा सोता होगा, तेरी भी, जब श्रद्धा होती है, तो ऐसों पर ही होती है।"

क्षीणाश्रव स्थविर अपना भिक्षा माँगने का समय (आया) देख, शरीर

---

[1] कुलूपक=कुल में आने जाने वाला

(पर के चीवर) को सँवार, पात्र चीवर ले, आकाश में उड कर अन्यत्र चले गये।

उस गृहस्थ ने स्थानीय स्थविर को घी, मधु तथा शक्कर मिली खीर पिला कर, पात्र पर सुगन्धित-चूर्ण लगाकर, (उसे) फिर भर कर 'भन्ते! वह स्थविर मार्ग चलने के कारण थके होगे। यह (उनके लिए) ले जायें' कह दिया। दूसरे ने विना अस्वीकार किये, लेकर जाते हुए सोचा, "यदि वह भिक्षु इस खीर को पीयेगा, तो गर्दन से पकड कर निकालने पर भी न जायेगा, यदि मैं इस खीर को (किसी) आदमी को दूगा, तो मेरा यह कर्म प्रगट हो जायगा, यदि पानी में उँडेलूगा, तो पानी के ऊपर घी तैरेगा, यदि भूमि पर फेकूगा, तो कौओ के इकट्ठे होने से पता लग जायगा। इसे कहाँ फेंकू?" सोचते हुए, उसने एक आग जलते खेत को देख, अङ्गारो को हटा कर, (खीर को) वहाँ डाल, ऊपर अङ्गारो से ढक दिया, और विहार को चला गया। (विहार पहुँच कर), उस भिक्षु को न देख, सोचने लगा—"निश्चय से, वह क्षीणाश्रव भिक्षु मेरे अभिप्राय को जान कर किसी दूसरी जगह चले गये होगे। अहो! मैंने इस पेट के कारण अनुचित किया।" (यह सोचने से) उसी समय, उसे वडा भारी पश्चात्ताप हुआ। तभी से वह मनुष्य प्रेत होकर, थोडे ही समय वाद मर कर नरक में पैदा हुआ।

लाखो वर्ष नरक की आग में जल कर, वचे कर्म का फल भुगतने के लिए, उसने क्रम से पाँच सौ यक्ष योनियो में उत्पन्न होकर, एक दिन भी पेट भर कर भोजन न पाया। हाँ! एक दिन गर्भ-मैल (=गर्भ से निकला मैल) पेट भर कर मिला। फिर पाँच-सौ जन्मो में कुत्ता हुआ। तव भी एक दिन (किसी की) उल्टी (वमन) पेट भर कर मिली। वाकी समय में उसको कभी भी पेट भर कर खाने को न मिला। कुत्ते की योनि से च्युत होकर, काशी राष्ट्र में एक ग्राम में एक दरिद्र-कुल में उत्पन्न हुआ। उसकी उत्पत्ति के वाद से वह कुल अत्यन्त दरिद्र हो गया। वहाँ, उसे नाभी से ऊपर (पेट भरने के लिए) काञ्जी का पानी भी नही मिला। (उस समय) उसका नाम **मित्तविन्दक** था। माता पिता ने सतान-दुःख को न सह सकने के कारण, 'निकल मनहूस' कह, उसे धौले मार कर निकाल दिया। वह अशरण हो, घूमता हुआ, वाराणसी पहुँचा।

उस समय वोधिसत्त्व, **बाराणसी** में लोक-प्रसिद्ध आचार्य्य हो कर, पाँच सौ शिष्यो को शिल्प सिखाते थे। तव वाराणसी-निवासी, दरिद्र छात्रो को छे

अजिया पादमोलुब्भ
मित्तको विय सोचति ॥

[जो (अपना) भला चाहने वाले, हितैषी, के उपदेश देने पर, उस उपदेश के अनुसार आचरण नही करता, वह बकरी के पैर पकडने वाले मित्र (-विन्दक) की तरह शोक को प्राप्त होता है।]

अत्थकामस्स उन्नति की इच्छा करने वाले का। **हितानुकम्पिनो**=हित से अनुकम्पा (=दया) करने वाले का। **ओवज्जमानो** मृदु, हितैषी चित्त से उपदेश दिये जाने पर। **न करोति सासनं,** अनुसार आचरण नही करता, वचन =उपदेश न मानने वाला होता है। **मित्तको विय सोचति** जिस प्रकार यह मित्रविन्दक बकरी के पैर पकड़ कर सोचता है, कष्ट पाता है, इसी प्रकार सदैव सोचता है। इस गाथा से बोधिसत्त्व ने धर्मोपदेश दिया।

इस प्रकार उस स्थविर को इतने समय में, केवल तीन ही जन्मो में पेट भर खाने को मिला। यक्ष होने की अवस्था में एक दिन गर्भ-मैल मिला, कुत्ते के जन्म में एक दिन खाये हुए की उल्टी, और परिनिर्वाण के दिन धर्मसेनापति के प्रताप (=आनुभाव) से चार-प्रकार का मधुर मिला। सो इससे जानना चाहिए कि दूसरे के लाभ (=मिलने की वस्तु) को रोकने में बडा दोष है।

उस समय वह आचार्य्य और मित्रविन्दक भी—दोनो (अपने अपने) कर्मानुसार (परलोक) गये। बुद्ध ने, 'सो हे भिक्षुओ! इसने अपना अल्पलाभी-पन और अर्हत्व-प्राप्ति—दोनो अपने ही कीं' कह, इस धर्म-देशना को ला, मेल मिला कर, जातक का सारांश निकाल दिखाया। उस समय का मित्रविन्दक (अब का) लोसक-तिस्स स्थविर था। लोक-प्रसिद्ध (दिशा-प्रमुख) आचार्य्य तो मैं ही था।

४२. कपोत जातक

"यो अत्थकामस्स   "यह गाथा, शास्ता ने जेतवन में विहरते समय, एक लोभी भिक्षु के सम्बन्ध में कही। उसके लोभ-पन (की कथा) नौवें परिच्छेद में, काक जातक[1] में आयेगी। उस समय भिक्षुओ ने बुद्ध से कहा—"भन्ते ! यह भिक्षु लोभी है।" तब बुद्ध ने उसे पूछा—"हे भिक्षु ! क्या तू सचमुच लोभी है?" "भन्ते ! हाँ।" बुद्ध ने, "हे भिक्षु ! तू पूर्व-जन्म में भी लोभी था। लोभ के कारण (तूने) जान गँवाई और तेरे कारण पण्डितो को भी अपने निवासस्थान से वञ्चित होना पडा" कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

अतीत कथा

पूर्व समय में बाराणसी में (राजा) ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय, बोधिसत्त्व कबूतर की योनि में पैदा हुए। उस समय वाराणसी निवासी पुण्येच्छा से, स्थान स्थान पर पक्षियो के सुख-पूर्वक वास करने के लिए छीके लटकाते थे। बाराणसी के सेठ के रसोइये ने भी अपने रसोई-घर में एक छीका लटका रक्खा था। बोधिसत्त्व वही रहता था। वह प्रात काल ही निकल, चुगने की जगहो पर चुग, शाम को वहाँ आ कर, रहते हुए समय बिताता था। एक दिन एक कौवे ने बडे ज़ोर से (उडते) जाते हुए, खट्टे-मीठे मत्स्य-मास के छौंक की गन्ध सूघ कर, उसमें लोभ उत्पन्न कर, सोचा "मुझे यह मत्स्य-मास कैसे मिलेगा?" कुछ दूर पर बैठ कर विचारते हुए, उसने शाम को बोधिसत्त्व को आकर रसोई में प्रवेश करते देख, सोचा—"इस कबूतर के ज़रिये (मुझे) मत्स्य-मास मिलेगा।" अगले दिन प्रात काल ही बोधिसत्त्व के निकल कर चुगने के लिए जाने के समय (उसके) पीछे पीछे हो लिया।

---

[1] काक जातक १४०, १४६, ३९५; नौवें परिच्छेद में कोई काक जातक नहीं

तव वोधिसत्त्व ने उससे पूछा—"सौम्य! तू किस लिए हमारे साथ साथ फिरता है?"

"स्वामी! मुझे आपकी (जीवन-) चर्य्या अच्छी लगती है। अब से मैं आपकी सेवा मे रहूँगा।"

"सौम्य! तुम्हारा चुगना दूसरा होता है, हमारा दूसरा, तुम्हारा हमारी सेवा मे रहना कठिन है।"

"स्वामी! तुम्हारे चोगा लेने के समय, मैं भी चोगा लेकर, तुम्हारे साथ ही (वापिस) लौटूगा।"

"अच्छा! तुझे केवल प्रमाद-रहित रहना चाहिए"—वोधिसत्त्व ने कौवे को उपदेश दिया।

उसे उपदेश दे वोधिसत्त्व चुगने के समय चुगने जाते, तृण-वीज आदि खाते, और कौआ उसी समय मे जा, गोवर का पिंड ले, उसमें से कीडे खा, पेट भर वोधिसत्त्व के पास आकर कहता—"स्वामी! तुम देर तक चुगते हो। अधिक खाना उचित नही।" वह, वोधिसत्त्व के चोगा ले, शाम को वापिस लौटने पर, उसके साथ ही रसोई मे प्रवेश करता। रसोइये ने यह देख कि हमारा कवूतर (एक) दूसरे साथी को भी लाया है, उस कौवे के लिए भी छीका टाँग दिया। उस समय से दोनो जने (वही) रहने लगे।

एक दिन सेठ के लिए वहुत सा मत्स्य-मास लाया गया। रसोइये ने उसे लेकर, रसोईघर मे जहाँ तहाँ लटका दिया। कौवा उसे देख, (मन में) लोभ पैदा कर, और 'कल चुगने न जाकर, मुझे यह (मत्स्य-मास) ही खाना चाहिए' सोच, रात को छटपटाता हुआ लेट रहा। अगले दिन वोधिसत्त्वने चुगने के लिए जाते समय कहा—"सौम्य! काक! आ।"

"स्वामी! आप जायें। मुझे पेट में दर्द है।"

"सौम्य! कौओ को, पहले कभी पेट-दर्द नही हुआ है। वे (भूख के मारे) रात्रि के तीन पहरो मे से एक एक पहर मूर्च्छित रहते हैं। केवल दीपक की वत्ती निगलने पर, उन्हें मुहूर्त्त भर के लिए तृप्ति होती है। तू इस मत्स्य-मास को खाना चाहता होगा। आ, जो मनुष्य के खाने की चीज़ है, उसका खाना तेरे लिए अनुचित है। ऐसा मत कर, मेरे साथ चुगने के ही लिए चल।"

"स्वामी! (चल) नही सकता।"

"अच्छा ! तो तू अपने कर्म को प्रगट करेगा। लोभ के वशीभूत मत हो, प्रमाद-रहित रह।" उसे उपदेश दे, वोधिसत्त्व चुगने के लिए गया। रसोइया नाना प्रकार की मत्स्य-मास की चीजें वना, भाप निकलने के लिए वरतनो को थोडा खोल, कड़छी को वरतनो पर रख, पसीना पोछता हुआ, (अपने) वाहर जाकर खडा हो गया।

उसी समय कौवे ने, छीके मे से सिर निकाल, रसोई-घर को देखते हुए, रसोइए को वाहर निकला जान, सोचा—"अव, यह मेरे लिए मन भर कर मास खाने का समय है। मै वड़ा वडा मास खाऊँ, या मास का चूरा ? मास का चूरा खाने से पेट जल्दी नही भरा जा सकता। (इसलिए) एक बडे (से) मास के टुकड़े को, छीके पर ले जाकर, वहाँ रख, पडा पडा खाऊँगा।" (यह सोच)छीके मे से उड, उस कडछी पर जा लगा। कडछी ने 'किली किली' शब्द किया। रसोइये ने उस शब्द को सुन, 'यह क्या है ?' (करके) प्रविष्ट हो, उस कौवे को देख, 'यह दुष्ट-कौआ सेठ के लिए वनाया मेरा, मास खाना चाहता है। मै सेट्ठ की नौकरी करके, जीता हूँ, इस मूर्ख की नही। मुझे इससे क्या ?" (कह) दरवाजा वन्द कर, कौवे को पकड, (उसके) सारे शरीर से पर नोच, कच्चे अदरक, निमक तथा जीरे को कूट, (उसे) खट्टे मट्ठे मे मिला, (उससे) उसके सारे वदन को चोपड, उस छीके मे फेंक दिया। वह अत्यन्त पीडा अनुभव करता हुआ, छटपटाता पडा रहा। वोधिसत्त्व ने शाम को आ, उसे पीडा-ग्रस्त देख, 'लोभी कौवे ! मेरी वात न मान, अपने लोभ के कारण तू इस दु ख मे पडा' कह यह गाथा कही—

> **यो अत्यकामस्स हितानुकम्पिनो**
> **आवज्जमानो न करोति सासनं,**
> **कपोतकस्स वचनं अकत्वा**
> **अमतहत्थत्यगतोव सेति**

[जो भला चाहने वाले, हितैपी, के उपदेश देने पर, उस उपदेश के अनुसार आचरण नही करता, वह कवूतर का वचन न मान कर अमित्र के हाथ में पड कर (दु ख भोगने वाले) की तरह, (दु खित हो) सोता है।]

कपोतकस्स वचनं अकत्वा=कबूतर की हित की बात न मान कर। अमत्त-हत्यत्यगतो व सेति, अमित्रो के=अनर्थ करने वालो के=दु ख उत्पादन करने वाले आदमियो के, हाथ में पड कर, इस कौवे की तरह, (वह) आदमी, महान् दु ख को प्राप्त हो, चिन्ता करता हुआ सोता है।

बोधिसत्त्व, यह गाथा कह कर, 'अब मैं इस जगह नहीं रह सकता' सोच, अन्यत्र चला गया। कौवा वही मर गया। रसोइए ने उसे छीके सहित, उठा कर कूडे पर फेंक दिया।

बुद्ध ने भी, "भिक्षु! तू अब ही लोभी नहीं है, पूर्व-जन्म में भी लोभी रहा है। (और) तेरे उस लोभ के कारण, पण्डितो को अपना घर छोड़ना पड़ा है"—इस धर्म-देशना को ला, (आर्य-) सत्यों को प्रकाशित किया। (आर्य-) सत्यो के (प्रकाशित होने के) अन्त में, उस भिक्षु ने अनागामी फल प्राप्त किया। शास्ता ने मेल मिला कर, जातक का साराश निकाला। उस समय का कौआ, (अब का) लोभी भिक्षु था। (और) कबूतर तो मैं ही था।

४३. वेळुक जातक

"यो अत्यकामस्स ." यह गाथा शास्ता ने जेतवन में विहरते समय एक भी बात न मानने वाले भिक्षु के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

सो भगवान् ने उस भिक्षु से, "भिक्षु! क्या तू सचमुच बात न मानने वाला है?" पूछ, उसके 'भन्ते! सचमुच' कहने पर, 'भिक्षु! तू केवल अब ही बात न मानने वाला नहीं है, पूर्व-जन्म में भी बात न मानने वाला ही रहा है। और

बात न मानने के स्वभाव के ही कारण, (तूने) पण्डितो की बात न मान, सर्प के मुह में पड कर, जीवन गँवाया' कह, पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे बाराणसी में (राजा) ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय, बोधिसत्त्व ने, काशी राष्ट्र में एक महा-सम्पत्तिशाली कुल में उत्पन्न हो, जब होश सँभाला, तो काम-भोगो में हानियाँ देख, और नैष्क्रम्य में लाभ देख, काम भोगो को छोड, हिमवन्त में प्रविष्ट हो, (वह) ऋषि-प्रव्रज्या के अनुसार प्रव्रजित हुआ। (प्रव्रजित हो) योगाभ्यास कर, **पाँच अभिज्ञा तथा आठ समापत्तियाँ** प्राप्त कर, (वह) ध्यान-सुख में समय बिताने लगा। आगे चल कर, पाँच सौ तपस्वियो का नेता बन, गण का शास्ता होकर रहने लगा।

(एक दिन) एक विषैले साँप का बच्चा, अपने स्वभाव से घूमता घूमता उस तपस्वी के आश्रम के पास आया। तपस्वी ने, उस (सर्प के बच्चे) में पुत्र-स्नेह उत्पन्न कर, उसे एक बाँस की फोफी में सुला, पालना शुरू किया। बाँस (वेळु) की पोरी में सोने के कारण, उसका नाम वेळुक, और वेळुक को पुत्र-स्नेह से पालने के कारण, उस तपस्वी का नाम वेळुक-पिता ही पड गया। तब बोधिसत्त्व ने यह सुन कि एक तपस्वी विषैले सर्प को पालता है,उसे बुला, "क्या तू सचमुच विषैले सर्प को पालता है?" पूछ, उसके "हाँ सचमुच" कहने पर, उससे कहा—"विषैले सर्प का विश्वास नही किया जा सकता। उसे मत पाल।"

तपस्वी ने कहा—"आचार्य! वह मेरा पुत्र है। मैं उसके बिना नही रह सकता।"

"अच्छा! तो इसीसे तेरे प्राणो का नाश होगा।" तपस्वी ने न बोधिसत्त्व की बात मानी, (और) न ही विषैले-सर्प को छोडा।

उसके कुछ ही दिन बाद सभी तपस्वी फल-फूल (ढूढने) के लिए गये। वहाँ फल-मूल की सुलभता देख, दो तीन दिन वही रह गये। वेळुक-पिता भी उन्ही के साथ जाते समय, विषैले सर्प को बाँस की पोरी में सुला, ढक कर गया। दो तीन दिन के बाद तपस्वियो के साथ लौट कर, उसने 'वेळुक को खाद्य दूगा' (सोच), बाँस की पोरी को उघाड 'आ पुत्र! क्या तू भूखा है'? (कह) हाथ पसारा। विषैले सर्प ने तीन दिन आहार न मिलने से क्रुद्ध हो, तपस्वी को हाथ पर डँसा,

जिससे तपस्वी वहीं मर गया। तपस्वी को मार, विषैला सर्प जगल में चला गया। (अन्य) तपस्वियो ने उसे देख, बोधिसत्त्व को सूचना दी। बोधिसत्त्व ने उसका शरीर-कृत्य करवा, ऋपिगण के मध्य बैठ ऋपियो को उपदेश देते हुए यह गाथा कही—

यो अत्थकामस्स हितानुकम्पिनो,
ओवज्जमानो न करोति सासन।
एवं सो निहतो सेति,
वेळुकस्स यथा पिता॥

[जो (अपना) भला चाहने वाले, हितैपी के उपदेश देने पर, उस उपदेश के अनुसार आचरण नही करता, वह वेळुक के पिता की तरह नाश को प्राप्त होता है।]

एवं सो निहतो सेति, जो ऋपियो के उपदेश को ग्रहण करता, वह, जैसे यह तपस्वी विपैले सर्प के मुह में पड, विकृत-भाव को प्राप्त हो, विनप्ट हो सोता है, वैसे ही महाविनाश को प्राप्त हो, नप्ट हो सोता है। यही अर्थ है। इस प्रकार बोधि-सत्त्व, ऋपि-गण को उपदेश दे. चारो ब्रह्मविहारो की भावना कर, आयु का अन्त होने पर, ब्रह्मलोक में उत्पन्न हुआ।

बुद्ध ने भी, 'भिक्षु! तू केवल अब ही बात न मानने वाला नही है, पूर्व-जन्म में भी तू बात न मानने वाला ही था। और बात न मानने के स्वभाव के ही कारण, तू विपैले-सर्प के मुह मे पड गया, विकृत-भाव को प्राप्त हुआ'—यह धर्म-देशना ला,मेल मिला कर, जातक का साराश निकाला। उस समय का वेळुक-पिता (अब का) बात न मानने वाला भिक्षु था। शेप परिपद (अब की) बुद्ध परिपद् थी। गण का शास्ता तो मैं ही था।

४४. मकस जातक

"सेय्यो अमित्तो " यह गाथा, शास्ता ने मगध (देश) मे विचरते समय, एक ग्राम के मूर्ख, गँवार मनुष्यो के सम्बन्ध मे कही।

क. वर्तमान कथा

एक समय, तथागत **श्रावस्ती** से **मगध** राष्ट्र जाकर, वहाँ विचरते हुए, एक ग्राम मे पहुँचे। वह गाँव अधिकतर अत्यन्त मूर्ख मनुष्यो से ही भरा पडा था। सो एक दिन उन अत्यन्त मूर्ख मनुष्यो ने इकट्ठे हो कर (आपस में) सलाह की— "भो! जगल मे जाकर काम करते समय, हमे मच्छर काटते हैं। उससे हमारे काम में विघ्न पडता है। हम सब, धनुप और आयुध लेकर चले। चलकर, मच्छरो से युद्ध कर, सब मच्छरो को वेध कर, छेद कर मार डाले।" यह सलाह कर, जगल मे जा, वहाँ मच्छरो को वेधने के ख्याल से एक दूसरे को बेध कर, प्रहार कर, दुखी हो, आकर, गाँव के अन्दर, मध्य मे, तथा वाहर—सभी जगह—पड रहे।

भिक्षुसघ सहित शास्ता ने उस गाँव मे भिक्षा के लिए प्रवेश किया। अवशिष्ट पण्डित (=वुद्धिमान्) मनुष्य भगवान् को देख, ग्राम-द्वार पर मण्डप बना, वुद्ध-सहित भिक्षुसघ को महादान दे, शास्ता को प्रणाम कर बैठे। शास्ता ने जहाँ-तहाँ पडे हुए मनुष्यो को देखकर, उन उपासको से पूछा—"यह वहुत से मनुष्य रोगी (जख्मी) हैं। इन्होने क्या किया है?"

"भन्ते! यह मनुष्य "मच्छरो से युद्ध करेगे" (विचार) जाकर, एक दूसरे को आहत कर अपने ही जख्मी हो गये।" शास्ता ने, 'न केवल अभी अत्यन्त मूर्ख मनुष्यो ने मच्छरो को मारने के लिए जाकर अपने को घायल किया है, पूर्व समय में भी 'मच्छर को मारेगे' सोच, यह एक दूसरे को मार देने वाले मनुष्य थे' कह, उन मनुष्यो के याचना करने पर पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में (राजा) ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय, बोधिसत्त्व व्यापार करके (अपनी) रोजी चलाते थे। उस समय काशी देश के एक सीमान्त के ग्राम में बहुत से बढई रहते थे। वहाँ एक बूढा बढई वृक्ष छीलता था। उसकी ताँबे की थाली के तल सदृश खोपडी पर, एक मच्छर ने बैठ कर, उसके सिर को अपने डक से ऐसे बीधा, जैसे कोई शक्ति(-आयुध) से चोट करता हो। उसने अपने पास बैठे हुए पुत्र को कहा—"तात! मेरे सिर को एक मच्छर, शक्ति से चोट करने की तरह काट रहा है।"

"तात! सबर करें। एक (ही) प्रहार से उसे मारूँगा।" उस समय बोधिसत्त्व भी अपने लिए सौदा ढूढते हुए, उस गाँव में पहुँच, उस बढई-शाला में बैठे थे। सो, उस बढई ने पुत्र को कहा—"तात! इस मच्छर को हटा।" उसने 'तात! हटाता हूँ' कह, तेज कुल्हाडे को उठा, पिता की पीठ की ओर खडे हो, "मच्छर को मारूँगा" (सोच) पिता के सिर के दो टुकडे कर दिए। बढई वही मर गया। बोधिसत्त्व ने उसके उस कर्म को देखकर सोचा—"बुद्धिमान् शत्रु भी अच्छा है। वह दण्ड से भयभीत हो कर भी मनुष्यो को नही मारेगा।" यह सोच, यह गाथा कही—

> सेय्यो अमित्तो मतिया उपेतो,
> नत्वेव मित्तो मतिवि-पहीनो,
> मकस वधिस्सन्ति हि एळमूगो
> पुत्तो पितु अब्भिदा उत्तमङ्ग॥

[बुद्धिमान् शत्रु (=अमित्र) भी अच्छा है। मूर्ख मित्र अच्छा नही। जड-मति पुत्र ने "मच्छर को मारूँगा" सोच पिता के सिर को फाड दिया।]

सेय्यो=प्रवर=उत्तम। मतियाउपेतो=प्रज्ञा से युक्त। एळमूगो=लार-मुग-मूर्ख। पुत्तो पितु अब्भिदा उत्तमङ्ग अपनी मूर्खता के कारण पुत्र हो कर भी, "मच्छर को मारूँगा" (करके) पिता के सिर के दो टुकडे कर दिये। इसलिए मूर्ख-मित्र की अपेक्षा बुद्धिमान् शत्रु भी अच्छा है।

यह गाथा कह, बोधिसत्त्व, उठ कर, यथा-कर्म गये। बढई के रिश्तेदारो ने उसका शरीर-कृत्य किया।

शास्ता ने, 'उपासको! पूर्व समय में भी मच्छर को मारेंगे' (कर के) एक दूसरे को मार डालने वाले मनुष्य थे—यह धर्म-देशना लाकर, मेल मिला कर, जातक का साराश निकाला। उस समय गाथा कह कर चले जाने वाला व्यापारी तो मैं ही था।

४५. रोहिणी जातक

"मेय्यो अमित्तो . . ." यह गाथा शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय, अनाथपिण्डिक सेठ की एक दासी के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

अनाथपिण्डिक की एक रोहिणी नाम की दासी थी। (एक दिन) उसकी वृद्धा माता, उस (दासी) के धान कूटने के स्थान पर आकर लेट गई। मक्खियाँ, उसे घेर कर, सूई के बीधने की तरह काटने लगी। उसने लडकी (=दासी) को कहा—"अम्म! मुझे मक्खियाँ काटती हैं। इन्हें हटा।" उसने "अम्म! हटाती हूँ" कह, 'मूसल उठा कर माता के शरीर पर (बैठी) मक्खियो को मार कर नष्ट करूँगी' (सोच) माता को मूसल का प्रहार दे, (उसे) मार डाला। उसे (मरा) देख, 'माता मर गई' (सोच) रोना आरम्भ किया। वह बात सेठ को कही गई। सेठ ने उसका शरीर-कृत्य करवा, विहार जा कर, वह सब बात शास्ता को कही। शास्ता ने, गृहपति! न केवल अभी इसने, 'माता के शरीर की मक्खियो को मारूँगी' (सोच) उसे, मूसल से मार डाला है, पूर्व (-जन्म) में भी मार डाला है कह, सेठ के याचना करने पर, पूर्वजन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में (राजा) **ब्रह्मदत्त** के राज्य करने के समय, बोधिसत्त्व (एक) सेठ के कुल में उत्पन्न हुए थे। पिता की मृत्यु पर वह श्रेष्ठी के पद पर आरूढ़ हुए। उसकी भी रोहिणी नाम की दासी थी। उसने भी अपने धान कूटने के स्थान पर, आकर लेटी माता के, 'अम्म! मेरी मक्खियाँ हटा' कहने पर, इसी प्रकार मूसल का प्रहार दे, माता के जीवन का नाश कर, रोना शुरू किया। बोधिसत्त्व ने इस वृत्तान्त को सुन, 'बुद्धिमान शत्रु भी अच्छा है' सोच, यह गाथा कही—

सेय्यो अमित्तो मेधावी यञ्च बालानुकम्पको,
पस्स रोहिणिकं जम्मिं मातरं हन्त्वान सोचती ॥

[मूर्ख दयालु (=मित्र) की अपेक्षा बुद्धिमान शत्रु अच्छा है। मूर्ख रोहिणी को देखो। माता को मार कर (अब) सोचती है।]

मेधावी=पण्डित=ज्ञानी=बुद्धिमान्। **यञ्च बालानुकम्पको**—इसमे '**य**' में लिङ्ग-परिवर्तन कर दिया। '**च**' निपात है। अर्थ यही है कि जो मूर्ख मित्र है, उसकी अपेक्षा बुद्धिमान (आदमी) शत्रु होने पर भी, सौ गुना, हजार गुना अच्छा है। अथवा '**य**', प्रतिषेधार्थ निपात है, तो इसका अर्थ हुआ कि मूर्ख मित्र नही। **जम्मि**=जड-बुद्धि। **मातरं हन्त्वान सोचति**, 'मक्खियो को मारूँगी' कर के माता को मार, अब यह मूर्खा, अपने आप ही रोती है, पीटती है। इस कारण से, 'इस लोक मे बुद्धिमान् शत्रु भी अच्छा है' कह, बोधिसत्त्व ने बुद्धिमान की प्रशसा करते हुए, इन गाथा मे धर्मोपदेश किया।

शास्ता ने, 'गृहपति! न केवल अभी इसने 'मक्खियो को मारूँगी' (सोच), माता को मार डाला है, पहले भी मारा था'—यह धर्म-देशना लाकर, मेल मिला कर, जातक का साराश निकाला। उस समय, माता ही माता थी, लडकी ही लड़की, और महाश्रेष्ठी तो मैं ही था।

४६. आरामदूसक जातक

"न वे अनत्थकुसलेन " यह गाथा शास्ता ने कोसल (देश) के एक गामडे के वाग-विगाडने वाले के वारे मे कही।

क. वर्तमान कथा

शास्ता कोसल मे विचरते हुए एक गाँव में पहुँचे। वहाँ एक गृहस्थ ने भगवान् को निमन्त्रित कर, अपने उद्यान मे विठा, वुद्ध-सहित भिक्षु-सघ को (भोजन-) दान देकर कहा—"भन्ते! इस उद्यान में यथारुचि विहार करे।"

भिक्षुओ ने उठ कर, माली को (साथ) ले, उद्यान में घूमते हुए एक आँगन जैसी जगह को देख कर माली से पूछा—"उपासक! इस उद्यान में और (सब) जगह घनी छाया है। लेकिन इस जगह कोई वृक्ष वा गाछ नही है। इसका क्या कारण है?"

"भन्ते! इस वाग के लगाने के समय, एक गँवार लडका पानी सीचते हुए, इस जगह के पौदो को उखाड उखाड कर उनकी जडो की गहराई के अनुसार पानी सीचता था। सो वह पौदे कुम्हला कर मर गये। इसी कारण से यह स्थान आँगन (सा) हो गया।"

भिक्षुओ ने शास्ता से जाकर, यह बात कही। शास्ता ने, "भिक्षुओ! न केवल अभी वह गँवार लडका वाग-विगाडने वाला है, पहले भी वह बाग-बिगाडने वाला था" कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे **बाराणसी** में (राजा) **ब्रह्मदत्त** के राज्य करते समय, वाराणसी मे उत्सव (=नक्षत्र) की घोषणा की गई। उत्सव-भेरी के शब्द सुनने के वादसे, सभी नगर निवासी उत्सव की मस्ती मे घूमने लगे। उस समय राजा के उद्यान मे

बहुत से बन्दर रहते थे। माली ने सोचा—"नगर में उत्सव की घोषणा हुई है। इन वानरो को 'पानी सीचो' कह कर, मैं उत्सव में खेलने जाऊँगा।" उसने ज्येष्ठ वानरो के सर्दार के पास जाकर पूछा—"सौम्य वानर-राज! इस उद्यान से तुम्हें भी बहुत फायदा है। तुम इसके फल-फूल-पत्ते खाते हो। नगर में उत्सव उद्घोषित हुआ है। मै उत्सव में खेलने जाना चाहता हूँ। जब तक मैं लौट कर आऊँ, क्या तुम तब तक इस उद्यान के पौदो मे पानी सीच सकते हो?"

"अच्छा! सीचेंगे।"

"तो आलस्य-रहित रहना", (कह) वह (उन्हें) पानी सीचने के लिए चरसा और लकडी के बरतन देकर चला गया। चरसा और लकडी के बरतन लेकर, वानर पौदो मे पानी सीचने लगे। तब उन्हें वानरो के सर्दार ने कहा—"वानरो! जल रक्षणीय है। तुम पौदो में पानी सीचते समय (उन्हें) उखाड उखाड कर, (उनकी) जड़ें देख कर, गहरी जड वाले पौदो मे बहुत पानी सीचो, जिनकी जड़ें गहरी नही है, उनमें थोडा। पीछे हमें पानी मिलना दुर्लभ हो जायगा।"

उन्होने 'अच्छा' कह स्वीकार कर, वैसा ही किया। उस समय एक बुद्धिमान् आदमी ने उन वानरो को राजोद्यान में वैसा करते देख, पूछा—"वानरो! तुम किस लिए पौदो को उखाड उखाड, उनकी जड (की गहराई) के अनुसार पानी सीच रहे हो?"

उन्होने जवाब दिया—"हमारे सर्दार ने हमें, ऐसा ही करने को कहा है।" उसने उन (वानरो) की बात सुन, 'अहो! मूर्ख (लोग) उपकार करने का मन करके, अपकार ही करते हैं' (सोच) यह गाथा कही—

न वे अनत्थकुसलेन अत्थचरिया सुखावहा,
हापेति अत्थं दुम्मेधो कपि आरामिको यथा॥

[उपकार (=अर्थ) करने में अचतुर आदमी का उपकार (=अर्थ) करना भी सुखदायक नही होता। माली-बन्दर की तरह, मूर्ख आदमी, काम की हानि ही करता है।]

वे, निपात मात्र है। अनत्थकुसलेन, अनर्थ=अनायतन में दक्ष, अथवा आयतन=कारण (=मतलब की बात) में अदक्ष। अत्थचरिया (=उन्नति)

वृद्धि-क्रिया। **सुखावहा,** इस प्रकार के अनर्थ करने में दक्ष (आदमी) से शारीरिक-मानसिक सुख नामक अर्थ की चरिया सुख-कारक नही होती, मतलब है कि प्राप्त नही की जा सकती। किस वजह से ? सर्व प्रकार से ही **हापेति अत्थं दुम्मेघो,** मूर्ख आदमी, उपकार करूँगा (कर के) उपकार का नाश कर, अपकार ही करता है। **कपि आरामिको यथा,** आराम (=बाग) में नियुक्त, बाग का रक्षक बन्दर, उपकार करूँगा (करके) अपकार ही करता है। इस प्रकार जो अर्थ-कुशल नही है, वह भलाई का काम (=अत्थचरिया) नही कर सकता, वह निश्चय से अपकार ही करता है।

इस प्रकार, उस बुद्धिमान् आदमी ने, इस गाथा से, ज्येष्ठ बानरो के सर्दार की निन्दा की (और) अपनी परिषद् को लेकर उद्यान से निकल आया। शास्ता ने, "भिक्षुओ ! न केवल अभी यह गँवार लडका बाग-बिगाडने वाला हुआ है, पहले भी बाग-बिगाडने वाला ही हुआ है" (कह) इस धर्म-देशना को लाकर, मेल मिला, जातक का साराश निकाल दिखाया। उस समय का बानरो का सर्दार (अब का) बाग-बिगाडने वाला लडका था, और बुद्धिमान् आदमी तो मैं ही था।

४७. वारुणी जातक

"**न वे अनत्थकुसलेन** " यह गाथा शास्ता ने **जेतवन** में विहार करते समय, एक शराब विगाड देने वाले के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

एक शराब का व्यापारी अनाथपिण्डिक का मित्र तेज शराब बना कर, हिरण्य, सोना आदि लेकर बेचता था। (एक दिन) वह बेचते बेचते, बहुत ग्राहकों के इकट्ठे हुए रहने के समय, अपने शिष्य को, "तात ! तू (इनसे) मूल्य ले ले कर

शराब दे" कह, (अपने) नहाने चला गया। शागिर्द ने लोगों को शराब देते हुए देखा कि (लोग) बीच बीच में नमक की डली मँगवा कर, खाते हैं। यह देख, उसने 'शराब अलूनी होगी' (सोच) 'इसमें निमक डालूँगा' (कर के) शराब की चाटी में नालिका[1] भर कर निमक डाल, लोगों को शराब दी। उन्होंने मुह भर कर थूक, (कर) पूछा—"यह तूने क्या किया?"

"तुम्हें शराब पीते पीते निमक मँगवाते देखकर, (इसमें) निमक मिला दिया।"

"ऐसी अच्छी शराब को खराब कर दिया। मूर्ख कहीं का" कह, उसकी निन्दा करते, उठ कर चले गये।

शराब के व्यापारी ने आकर, एक को भी न देख, पूछा—"शराब के पीने वाले कहाँ चले गये?"

शागिर्द ने सब हाल कहा। उसके मालिक ने, 'मूर्ख! तूने इतनी अच्छी शराब बिगाड दी' कह, उसकी निन्दा कर, यह वृत्तान्त अनाथपिण्डिक से कहा। **अनाथ-पिण्डिक** ने 'कहने के लिए बात है' सोच, जेतवन जा, शास्ता को प्रणाम कर, यह बात कही। शास्ता ने, 'गृहपति! न केवल अभी यह शराब बिगाड़ने वाला हुआ है, पहले भी यह शराब बिगाडने वाला था' (कह) उसके प्रार्थना करने पर पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में **बाराणसी** में (राजा) **ब्रह्मदत्त** के राज्य करने के समय, बोधिसत्त्व, बाराणसी के सेठ थे। उनके आश्रित एक शराब का व्यापारी जीविका करता था। वह तेज़ शराब बनाकर शागिर्द को 'इसे बेच' कह कर, (अपने) नहाने चला गया। उसके जाते ही शागिर्द ने शराब में निमक डाल कर, इसी प्रकार शराब खराब कर डाली। सो उसके गुरु ने आकर, वह हाल मालूम कर श्रेष्ठी को कहा। श्रेष्ठी ने उपकार करने में अदक्ष मूर्ख (लोग) उपकार करेंगे (करके) अपकार ही करते हैं, (कह) यह गाथा कही—

न वे अनत्थकुसलेन अत्थचरिया सुखावहा,
हापेति अत्थं दुम्मेधो कोण्डञ्ञो वारुणिं यथा॥

---

[1] अनाज का एक नाप

[उपकार (=अर्थ) करने में अदक्ष आदमी का उपकार (=अर्थ) करना भी सुखदायक नही होता। कोण्डञ्ञ (नामक) अन्तेवासिक के शराब बिगाड देने की तरह, मूर्ख आदमी अर्थ (=काम) की हानि कर डालता है।]

कोण्डञ्ञो वारुणि यथा, जैसे इस कोण्डञ्ञ नामक अन्तेवासिक ने 'अच्छा करता हूँ' (कर के) निमक डाल कर, शराब विगाड दी, खराब कर दी, विनाश कर दी। इस प्रकार सभी अनर्थ-कुशल अर्थ (=काम) को बिगाड डालते हैं। बोधिसत्त्व ने इस गाथा से धर्मोपदेश दिया।

शास्ता ने भी, "गृहपति! न केवल अभी यह शराब बिगाडने वाला हुआ है, पहले भी यह शराब बिगाडने वाला ही था" कह, मेल मिला, जातक का साराश निकाल दिया। उस समय का शराव-बिगाड़ने वाला, अब का भी शराव-बिगाडने वाला हुआ। लेकिन वाराणसी का श्रेष्ठी तो मैं ही था।

४८. वेदब्भ जातक

"अनुपायेन यो अत्थं ..." यह गाथा, शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय (एक) वात न मानने वाले भिक्षु के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

उस भिक्षु को, शास्ता ने, "भिक्षु! न केवल अभी तू बात न मानने वाला है, पहले भी तू वात न मानने वाला ही था। उसी कारण से, बुद्धिमानो की वात न मान, तेज तलवार से दो टूक हो रास्ते पर गिरा। और तेरे एक के कारण एक हजार आदसियो के प्राण की हानि हुई" कह, पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में (राजा) ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय, एक गाँव में, एक ब्राह्मण वैदर्भ नामक मन्त्र जानता था। वह मन्त्र वेश-कीमत था, महामूल्यवान् था। नक्षत्रो का योग होने पर, उस मन्त्र का जप कर, आकाश की ओर देखने से सात रत्नो की वर्षा होती थी। उस समय बोधिसत्त्व उस ब्राह्मण के पास विद्या सीखते थे। सो एक दिन वह ब्राह्मण किसी भी काम से, बोधिसत्त्व को (साथ) लेकर, अपने ग्राम से निकल चेतिय राष्ट्र[1] (की ओर) गया। रास्ते में, एक जगल की जगह में, पाँच सौ 'पेसनक चोर' मुसाफिरो पर डाका डालते थे। उन्होने बोधिसत्त्व और वैदर्भ ब्राह्मण को पकड लिया। यह चोर, 'पेसनक चोर' क्यो कहलाते थे? वह दो जनो को पकड कर, उनमें से एक को धन लाने के लिए भेजते थे, इसलिए पेसनक (=प्रेपनक=भेजने वाले) चोर कहलाते थे। वे, पिता-पुत्र को पकड कर, पिता को कहते, तू हमारे लिए धन लाकर, पुत्र को ले जाना, इसी प्रकार माँ-बेटी को पकड कर, माँ को भेजते, ज्येष्ठ-कनिष्ठ भाइयो को पकड ज्येष्ठ भाई को भेजते (और) गुरु-शिष्य को पकड कर शिष्य को भेजते। सो, उस समय भी, उन्होने वैदर्भ-ब्राह्मण को पकडे रखकर, बोधिसत्त्व को भेजा।

बोधिसत्त्व ने आचार्य्य को प्रणाम कर, कहा—"मै एक दो दिन में आ जाऊँगा। आप डरियेगा नही। और मेरा कहना करना। आज धन बरसाने का नक्षत्रयोग होगा। आप दु ख को न सह सकने के कारण, मन्त्र का जाप कर, धन मत बरसाना। यदि बरसाओगे, तो तुम और यह पाँच सौ चोर—सभी—नाश को प्राप्त होगे।" इस प्रकार आचार्य्य को उपदेश (=सलाह) देकर, वे धन लाने के लिए चले गये। चोरो ने सूर्यास्त होने पर ब्राह्मण को बाँध कर डाल दिया। उसी समय पूर्व दिशा की ओर से परिपूर्ण चन्द्रमण्डल उगा। ब्राह्मण ने तारो की ओर देखते हुए धन बरसाने के नक्षत्रयोग को देख, सोचा—"मै किस लिए दु ख का अनुभव करूँ? क्यो न मन्त्र का जाप करूँ और रत्नो की वर्षा कर चोरो को धन देकर, सुख पूर्वक चला जाऊँ।" उसने चोरो को सम्बोधित किया—"चोरो! तुमने मुझे किस लिए पकड रक्खा है?"

---

[1] वर्तमान पूर्वी बुन्देलखण्ड।

"आर्य ! धन के लिए।"

"यदि, धन की आवश्यकता है, तो शीघ्र ही मुझे बन्धन से खोल, सिर से नहला, नवीन वस्त्र पहना, सुगन्धियो का लेप कर, फूल-मालायें पहिना कर, बिठाओ।" चोरो ने उसकी बात सुन, वैसा ही किया।

ब्राह्मण ने नक्षत्र-योग जान, मन्त्र जाप कर आकाश की ओर देखा। उसी समय आकाश से रत्न गिरे। चोर उस धन को इकट्ठा कर, (अपने अपने) उत्तरीय में गठरी बाँध, भागे। ब्राह्मण भी उनके पीछे ही पीछे गया। तब उन चोरो को दूसरे पाँच सौ चोरो ने पकड लिया।

"हमें किस लिए पकडा है?" पूछने पर, उत्तर मिला, "धन के लिए पकडा है।" "यदि धन की आवश्यकता है, तो इस ब्राह्मण को पकडो। यह, आकाश की ओर देख कर धन वर्षावेगा। हमें भी यह धन इसी ने दिया है।"

चोरो ने उन चोरो को छोड कर ब्राह्मण को पकडा, और कहा—"हमें भी धन दो।" ब्राह्मण ने कहा—"मै तुम्हें धन दू, लेकिन धन बरसाने का नक्षत्र योग (अब) एक वर्ष बाद होगा। यदि धन से मतलब है, तो सबर करो, मै तब धन की वर्षा बरसाऊँगा।" चोरो ने क्रुद्ध होकर, 'अरे दुष्ट ब्राह्मण ! औरो के लिए अभी धन वर्षा कर, हमें अगले वर्ष तक प्रतीक्षा कराता है' कह, (वही) तेज़ तलवार से ब्राह्मण के दो टुकडे कर, (उसे) रास्ते पर डाल दिया। (फिर) जल्दी से उन चोरो का पीछा कर, उनके साथ युद्ध किया, और उन सब को मार कर, धन ले फिर (आपस में) दो हिस्से हो, एक दूसरे से युद्ध किया, और ढाई सौ जनो को मारा। इस प्रकार जब तक (केवल) दो जने बाकी रह गये, तब तक एक दूसरे को मारते रहे।

इस प्रकार उन (एक) सहस्र आदमियो के विनष्ट होने पर, उन दोनो जनो ने उपाय से धन को लाकर, एक ग्राम के समीप, जगल में छिपाया। (उन दोनो मे से) एक खड्ग लेकर धन की हिफाज़त करने लगा। दूसरा, चावल लेकर, भात पकवाने के लिए गाँव में गया। लोभ विनाश का मूल ही है। धन के पास बैठे हुए ने सोचा—"उसके आने पर धन के दो हिस्से करने होगे। क्यो न मैं, उसे आते ही खड्ग के प्रहार से मार दू।" सो वह खड्ग को तैयार कर, बैठा, और उसके आने की प्रतीक्षा करने लगा। दूसरे ने भी सोचा—"उस धन के दो हिस्से (करने) होगे। सो, मैं, भात मे विष मिला कर, उस आदमी को खिलाऊँ, इस प्रकार उसका प्राण

नाश कर, सारे धन को अकेला ही ले लू ।" उसने भात के तैयार हो जाने पर, अपने खा, शेष भात में विष मिला, (उसे) लेकर वहाँ गया। उसके भात उतार कर रखते ही, दूसरे ने खड्ग से दो टुकडे कर के, उसे छिपी जगह मे छोड, अपने भी उस भात को खा, वही प्राण गँवाये।

इस प्रकार, उस धन के कारण सभी विनाश को प्राप्त हुए। बोधिसत्त्व भी एक दो दिन में धन लेकर आ गये। (उन्होने) वहाँ आचार्य्य को न पा, और बिखरे धन को देख (सोचा)—'आचार्य्य ने मेरी बात न मान धन बरसाया होगा। और सब विनाश को प्राप्त हुए होगे।' (यह सोच) महा-मार्ग से चले। चलते चलते आचार्य्य को, सडक पर दो टुकडे हुए पडा देख, 'मेरा कहना न मान कर मरा' (सोच) लकडियाँ चुन, चिता बना, आचार्य्य का दाह-कर्म किया और उसे वन-पुष्पो से पूजा। आगे चल कर, पाँच सौ मरे हुए, उससे आगे ढाई सौ, इसी प्रकार क्रम से आखीर में दो जनो को मरा देख कर, सोचा—"यह दो कम एक हज़ार (जने) विनाश को प्राप्त हुए। दूसरे दो जने (भी) चोर होगे, और वे भी सँभल न सके होगे। वे कहाँ गये ?" सोचते हुए उनके धन लेकर जगल मे घुसने के मार्ग को देख, जाकर, गठरी बँधी धन की राशि को देखा। वहाँ एक को भात की थाली को परोस कर, मरा पाया। तब इन्होने 'यह यह किया होगा'—यह सब जान, 'वह (दूसरा) आदमी कहाँ है ?' सोचते हुए उसे भी जगल में फेका पडा देख, सोचा—हमारे आचार्य्य ने मेरी बात न मान, अपने बात न मानने के स्वभाव के कारण, अपने भी प्राण गँवाये, और दूसरे हज़ार जनो का भी नाश किया। अनुचित मार्ग से अपनी उन्नति चाहने वाला, हमारे आचार्य्य की तरह महाविनाश को ही प्राप्त होता है। यह सोच, यह गाथा कही—

अनुपायेन यो अत्थ इच्छति सो विहञ्ञति,
चेता हनिंसु वेदब्भं सब्बे ते व्यसनमज्झगु॥

[जो अनुचित मार्ग से अर्थ (=धन) चाहता है, वह विनाश को प्राप्त होता है। चेतिय-देश के चोरो ने वैदर्भ ब्राह्मण को मार डाला। (और) वे सब भी मरण को प्राप्त हुए।]

सो विहञ्ञति, अनुचित रीति से, अपना अर्थ, वृद्धि, सुख चाहता है (करके) अनुचित समय पर प्रयत्न करने वाला आदमी मरता है, दु ख पाता है, महाविनाश को प्राप्त होता है। **चेता**, चेतिय-राष्ट्र वासी चोर। **हनिंसु वेदब्भ**, वैदर्भ मन्त्र वाला होने के कारण, वैदर्भ नाम पड जाने वाले ब्राह्मण को मार दिया। **सब्बे तेव्यसनमज्झगु** वे भी सारे के सारे, एक दूसरे को मार कर दु ख (=व्यसन) को प्राप्त हुए।

इस प्रकार बोधिसत्त्व ने 'जैसे हमारे आचार्य्य अनुचित स्थान में प्रयत्न करके, धन वर्षा कर अपने प्राण नाश को प्राप्त हुए, और दूसरो के भी विनाश के कारण हुए, इसी प्रकार और भी जो कोई अनुचित रीति से अपनी उन्नति की इच्छा करके, प्रयत्न करेंगे, वे सब के सब अपने विनाश को प्राप्त होगे, तथा औरो के विनाश के कारण बनेंगे' (कह) वन को उन्नादित कर देवताओ के "साधु-साधु" कहते समय, इस गाथा से धर्मोपदेश कर, उस धन को उपाय से अपने घर मँगवा लिया। (फिर) वे दानादि पुण्य करते हुए, जितनी आयु थी, उतने समय तक जीवित रह कर, जीवन के अन्त मे, स्वर्ग-मार्ग को पूर्ण करते (परलोक) गये।

शास्ता ने भी, 'भिक्षु ! न केवल अभी तू बात न मानने वाला है, पहले भी तू बात न मानने वाला ही रहा है, और (अपने) बात न मानने के स्वभाव के कारण महाविनाश को प्राप्त हुआ है' (कह) यह धर्म-देशना ला, जातक का साराश निकाला। "उस समय का वैदर्भ ब्राह्मण (अब का) बात न मानने वाला भिक्षु था। शिष्य तो मै ही था।"

४९. नक्खत्त जातक

"नक्खत्तं पतिमानेन्तं　" यह गाथा, शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय, एक आजीवक[1] के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

श्रावस्ती की एक लडकी, देहात (=जनपद) के एक कुल-पुत्र ने अपने पुत्र के लिए पक्की की। 'अमुक-दिवस (आकर) ले जाऊँगा'—इस प्रकार दिन का निश्चय कर, उस दिन के आने पर, उसने अपने कुल-विश्वासी आजीवक[1] से पूछा—"भन्ते! आज हम एक मङ्गल करेंगे। क्या नक्षत्र अच्छा है?"

उसने 'यह मुझे विना पूछे, पहले दिन निश्चय करके, अव मुझे पूछता है' (सोच) क्रुद्ध हो, 'अच्छा, इसे सवक सिखाऊँगा' (करके) कहा—"आज नक्षत्र अच्छा नही। आज मङ्गल-कर्म मत करना। यदि आज मङ्गल-कर्म करोगे, तो महाविनाश होगा।"

उस कुल के आदमी, उस (आजीवक) की वात पर विश्वास कर, उस दिन न गये। नगर-वासियो ने सब मङ्गल-क्रिया (समाप्त) कर, उनको न आते देख, 'उन्होंने आज का दिन निश्चय किया, और वे नही आये। हमारा वहुत खर्चा हुआ। हमें उनसे क्या? हम अपनी लडकी (किसी) दूसरे को दे देंगे' (सोच) उस किए कराये मङ्गल-कर्म से लडकी दूसरे को दे दी।

अव पहले के लोगो ने अगले दिन आकर कहा—हमें लडकी दें। उन श्रावस्ती-वासियों ने, 'तुम देहाती गृहस्थी पापी-मनुष्य हो। दिन का निश्चय कर (हमारा) अनादर कर नही आये। जिस रास्ते से आये हो, उसी रास्ते से चले जाओ। हमने,

---

[1] उस समय के नगे साधुओका एक सम्प्रदाय।

लडकी, दूसरो को दे दी है' (कह) उनका मखौल उडाया। वे, उनके साथ झगडा करके, जिस रास्ते आये थे, उसी रास्ते लौट गये।

उस आजीवक द्वारा, उन मनुष्यो के मङ्गल-कर्म में बाधा डाल दी जाने की वात भिक्षुओ को मालूम हुई। वे भिक्षु धर्म-सभा में बैठे बातचीत कर रहे थे—"आवुसो! (उस) आजीवक ने (अमुक) कुल के मङ्गल-कर्म में बाधा डाल दी।" शास्ता ने आकर पूछा—"भिक्षुओ! बैठे क्या बातचीत कर रहे थे?"

उन्होने कहा—"यह (बातचीत)।"

(शास्ता ने) "भिक्षुओ! न केवल अभी वह आजीवक उस कुल के मङ्गल-कर्म मे विघ्न डालने वाला है, पूर्व समय में भी इसने उन पर क्रुद्ध होकर, उनके मङ्गल-कर्म मे बाधा डाली थी"—कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे वाराणसी मे (राजा) ब्रह्मदत्त के राज्य करते समय, देहातियो (=जनपदवासियो) ने नगरवासियो की लडकी पक्की करके, दिन का निश्चय कर, अपने कुल के विश्वासी आजीवक से पूछा—"भन्ते! आज हमारी एक मङ्गल-क्रिया है। क्या नक्षत्र अच्छा है?" उसने, 'यह अपनी रुचि अनुसार दिन निश्चित करके, अब मुझे पूछते हैं' (सोच) क्रुद्ध हो 'आज इनके मङ्गल-कर्म मे बाधा डालूगा' (निश्चय कर) कहा—"आज नक्षत्र अच्छा नही। यदि (मङ्गल-कर्म) करोगे, तो महाविनाश को प्राप्त होगे।"

वे उसकी बात पर विश्वास कर, न गये। जनपदवासियो ने उनको न आता देख, 'वे आज दिन निश्चित कर के नही आये। हमें उनसे क्या?' (सोच) औरो को लडकी दे दी। नगरवासियो ने अगले दिन आकर लडकी माँगी। जनपदवासियो ने (उत्तर दिया)—"तुम नगरनिवासी निर्लज्ज गृहस्थ हो। दिन निश्चित करके (भी) लडकी को नही लेते। तुम्हें न आता देख, हमने (लडकी) दूसरो को दे दी।"

"हम आजीवक को पूछ कर, उसके नक्षत्र अच्छा नही है, कहने के कारण नही आये। (अब) हमें लडकी दो।"

"हमने तुम्हारे न आने के कारण, लडकी दूसरो को दे दी। हम दी हुई लडकी को वापिस कैसे लें?" इस प्रकार उनके आपस में एक दूसरे के साथ कलह करते समय, एक नगरनिवासी बुद्धिमान् आदमी किसी काम से देहात (=जन-पद)

में आया। उन नगरनिवासियो को 'हम आजीवक को पूछ कर, (उसके) 'नक्षत्र अच्छा नही है' कहने के कारण, नही आये' कहते सुन 'नक्षत्र से क्या प्रयोजन? क्या लडकी का मिलना ही नक्षत्र नही है?' कह, (उसने) यह गाथा कही—

नक्खत्त पतिमानेन्तं अत्थो बालं उपच्चगा,
अत्थो अत्थस्स नक्खत्तं किं करिस्सन्ति तारका॥

[नक्षत्र देखते रहने वाले मूर्ख आदमी का काम नष्ट हो जाता है (=जाता रहता है)। मतलब की सिद्धि (=अर्थ) ही मतलब का नक्षत्र है। तारे क्या करेंगे?]

पतिमन्नन्त, देखते हुए के, अब नक्षत्र होगा, अब नक्षत्र होगा, इस प्रकार प्रतीक्षा करते हुए के। **अत्थो बालं उपच्चगा,** इस नगरनिवासी मूर्ख ने लडकी की प्राप्ति नामक मतलब की बात (=अर्थ) गँवा दी। **अत्थो अत्थस्स नक्खत्तं,** जिस मतलब को खोजता है, उसकी प्राप्ति ही, उस मतलब का नक्षत्र है। **किंकरिस्सन्ति तारका**—दूसरे आकाश के तारे क्या करेंगे? मतलब, किस अर्थ को साधेंगे? नगरवासी झगडा करके लडकी को बिना पाये ही चले गये।

शास्ता ने भी, भिक्षुओ! न केवल अभी, यह आजीवक इस कुल के मङ्गल-कार्य्य में बाधा डालता है, (इसने) पहले भी बाधा की थी—यह धर्म-देशना लाकर मेल मिला जातक का साराश निकाला। उस समय का आजीवक अब का आजीवक ही था। उस समय के कुल भी, अब के यह कुल ही थे। उस समय गाथा कह कर खड़ा होने वाला बुद्धिमान् आदमी तो मैं ही था।

५०. दुम्मेध जातक

"दुम्मेधान " यह गाथा, बुद्ध ने जेतवन मे विहार करते समय, लोकोपकार के बारे मे कही।

क. वर्तमान कथा

वह (कथा) बारहवे परिच्छेद की महाकण्ह जातक[1] में आयेगी।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे बाराणसी मे (राजा) ब्रह्मदत्त के राज्य करते समय, बोधिसत्त्व ने उस राजा की पटरानी की कोख मे जन्म ग्रहण किया। माता की कोख से निकलने पर, नाम ग्रहण के दिन (उसका) नाम ब्रह्मदत्त कुमार रक्खा गया। जब वह (कुमार) सोलह वर्ष का हो गया, तो तक्षिला जा विद्या सीख कर, तीनो वेदों तथा अट्ठारह विद्याओं[2] में पूर्णता प्राप्त की। तब उसके पिता ने उसे उप-राज (युवराज) बना दिया।

उस समय बाराणसी-निवासी देवताओ के भक्त थे। (वे) देवताओ को नमस्कार करते थे और बहुत सी भेड, बकरी, मुर्गे, सूअर आदि को मार, नाना प्रकार के पुष्प-गन्धो तथा रक्त-मास के साथ बलिकर्म करते थे।

---

[1] जातक (४६९)

[2] (१ ऋक्वेद, यजुर्वेद, सामवेद,) २ स्मृति, ३ व्याकरण, ४ छन्दोविचिति, ५ निरुक्त, ६ ज्योतिष, ७ शिक्षा, ८ मोक्ष-ज्ञान, ९ क्रियाविधि, १० धनुर्वेद, ११ हस्तिशिक्षा, १२ कामतन्त्र, १३ लक्षण, १४ पुराण, १५ इतिहास, १६ नीति, १७ तर्क तथा १८ वैद्यक—यह अट्ठारह विद्यायें हैं।

बोधिसत्त्व ने सोचा—"इस समय लोग देवताओ की भक्ति में बहुत प्राण-वध करते है। साधारण लोग अधिकाश तौर पर, अधर्म में ही नियुक्त है। मैं पिता के मरने पर, राज्य प्राप्त कर किसी को भी बिना कष्ट दिये, ढग (=उपाय) से ही किसी को प्राण-वध न करने दूगा।" उसने एक दिन रथ पर चढ़ नगर से निकल कर देखा कि एक बड़े भारी बरगद के वृक्ष के नीचे बहुत से लोग एकत्रित हुए है, और उस वृक्ष में रहने वाले देवता से, पुत्र, पुत्री, यश, धन आदि जो जो चाहते है, सो सो माँगते है। वह रथ से उतर कर उस वृक्ष के पास गया। गन्धपुष्प से उसकी पूजा की। जल से उसका अभिषेक किया। और उसकी प्रदक्षिणा की। इस प्रकार उस देवता का भक्त बन, उसे नमस्कार किया। (फिर) रथ पर चढ नगर में प्रविष्ट हुआ।

उस समय से, इसी प्रकार, बीच बीच में वहाँ जाकर देवता के भक्त की तरह पूजा करता। कुछ समय के बाद पिता की मृत्यु होने पर, उसने राज्य-पद पर प्रतिष्ठित हो, चार अगतियो से बच, दस राज-धर्मों के विरुद्ध न जा, धर्मपूर्वक राज्य करते हुए सोचा—"मेरी इच्छा पूरी हुई। मै राज्य पर प्रतिष्ठित हुआ। अब मैने, जो पहले एक बात सोची थी, उसे पूरा करूँगा।" (यह सोच) अमात्यो, तथा ब्राह्मण गृहपति आदि को एकत्रित करवा, (उन्हें) सम्बोधित किया—"भो! क्या आप जानते है कि मुझे राज्य क्यो मिला?"

"देव! नही जानते हैं।"

"क्या मुझे, (कभी) अमुक बड वृक्ष को, गन्ध आदि से पूजते तथा हाथ जोड़ कर नमस्कार करते हुए देखा है?"

"देव! हाँ (देखा) है।" "उस समय मैने मिन्नत मानी थी कि यदि मुझे राज्य मिलेगा, तो मै तुम्हारे (निमित्त) बलि-कर्म करूँगा। मुझे यह राज्य, इन्ही देवता के प्रताप से मिला है। सो मै अब इनका बलि-कर्म करूँगा। तुम देर न करो, शीघ्र ही देवता के बलि-कर्म की तैयारी करो।"

"देव! क्या क्या (चीजें) लें?"

मैने देवता की प्रार्थना करते हुए, यह मिन्नत मानी थी कि जो मेरे राज्य में हिंसा (=प्राण-घात) आदि पाँच दुःशीलकर्म तथा दश अकुशल कर्म करने मे लगे रहते है, उन्हे मार कर, उनकी आँत की वत्ति, रक्त-मास आदि से बलि-कर्म करूँगा। सो तुम यह मुनादी करवा दो—"हमारे राजा ने उप-राज रहते

ही यह मिन्नत मानी थी, कि यदि मुझे राज्य मिलेगा, तो जो मेरे राज्य में दु शील होंगे, उन सब को मार वलि-कर्म करूँगा। सो, नगरवासी जान लें कि अव वह पाँच प्रकार, तथा दस प्रकार के दु शील कर्म करने वाले एक हज़ार जनो को मरवा कर, उनके हृदय मांस आदि लिवा कर, उमसे देवता का वलि-कर्म करने का इच्छुक है। (यह कहकर) जो अव से लगा कर दु शील कर्मों मे अनुरक्त रहेंगे, उनके एक सहस्र जने मार कर, यज्ञ करके मिन्नत से मुक्त होऊँगा।" इस अर्थ का प्रकाश करते हुए यह गाथा कही—

> दुम्मेधानं सहस्सेन यञ्ञो मे उपयाचितो,
> इदानि सो हं यजिस्सामि वहू अधम्मिको जनो ॥

[मैंने एक सहस्र दुर्बुद्धि (मनुष्यों) की (वलि देकर), यज्ञ करने की मिन्नत मानी थी। सो अव मैं यज्ञ करूँगा, (क्योंकि) अधार्मिक जन (तो) वहुत हैं।]

"दुम्मेधानं सहस्सेन . . ." यह काम करना चाहिए, यह नही करना चाहिए, (यह) न जानने से, अथवा दस प्रकार के अकुशल कर्मों में लगे रहने से, दुष्ट-मेधा वाले=दुर्मेधा, उन दुर्बुद्धि=प्रज्ञा-रहित=मूर्ख मनुष्यो को गिन कर, एक हज़ार यञ्ञो मे उपयाचितो, मैंने देवता के पास जाकर मिन्नत मानी कि इस प्रकार यज्ञ करूँगा। इदानि सोहं यजिस्सामि, सो मैं मिन्नत (के प्रताप) से राज्य प्राप्त कर लेने के कारण अव यज्ञ करूँगा। क्यो? क्योंकि अभी वहुत अधार्मिक जन है। इसलिए अभी उनका वलि-कर्म करूँगा।"

अमात्यों ने वोधिसत्त्व का वचन सुन, "देव! अच्छा" कह, वारह योजन के वाराणसी नगर मे मुनादी फिरवा दी। मुनादी की आज्ञा सुनकर, एक भी दु शील कर्म (= कुकर्म) करने वाला आदमी न रहा। सो जव तक वोधिसत्त्व राज्य करते रहे, तव तक एक आदमी भी पाँच वा दस प्रकार के कुकर्मों में से किसी एक कर्म को भी करता न दिखाई दिया। इस प्रकार वोधिसत्त्व किसी एक भी आदमी को कष्ट न दे, सकल राष्ट्रवासियो से सदाचार की रक्षा करवाते हुए, अपने आप भी दान आदि पुण्य करते हुए, जीवन के अन्त में अपनी परिषद् को ले देव-नगर की पूर्ति करते हुए (परलोक को) गये।

शास्ता ने भी, "भिक्षुओ ! न केवल अभी तथागत लोक का उपकार करते हैं, पहले भी किया ही है" (कह) इस धर्म-देशना को ला, मेल मिला जातक का साराश निकाल दिया। उस समय की परिषद् (अब की) बुद्धपरिषद् थी। बाराणसी-राजा तो मैं ही था।

पहला परिच्छेद

६. आसिंस वर्ग

५१. महासीलव जातक

"आसिसेथेव पुरिसो. . . ." यह गाथा, बुद्ध ने जेतवन में विहार करते समय, (एक) हिम्मत-हार भिक्षु के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

बुद्ध ने उसे पूछा—भिक्षु! क्या तूने सचमुच हिम्मत हार दी?

"भन्ते! हाँ" कहने पर "हे भिक्षु! तूने इस प्रकार के कल्याणकारी शासन में प्रव्रजित होकर, किस लिए हिम्मत हार दी? पूर्व समय में बुद्धिमानो ने राज्य गँवा कर भी, अपने वीर्य्य (=प्रयत्न) में स्थित रह, (अपने) नष्ट हुए यश को भी फिर पैदा कर लिया" (कह) पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व-समय में वाराणसी में (राजा) ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय, बोधिसत्त्व (उस) राजा की पटरानी की कोख से उत्पन्न हुए। उसके नामकरण के दिन, (उसका) नाम सीलव कुमार रक्खा गया। सोलह वर्ष की आयु होने पर (वह) सब शिल्पो में पारङ्गत हो गया। पिता के मरने के बाद राज्य पर प्रतिष्ठित हो, महासीलव नामक राजा हुआ। वह अत्यन्त धार्मिक राजा था। नगर के चार द्वारो पर चार (दानशालायें), बीच में एक, प्रवेश-द्वार पर एक, इस प्रकार छः दान-शालायें बनवाकर वह दरिद्र यात्रियो को दान देता हुआ सदाचार की रक्षा करता था। उपोसथ (=व्रत) रखता। शान्ति, मैत्री और दया से युक्त, (वह) गोद में बैठे पुत्र को सन्तुष्ट करने की तरह सभी प्राणियो को सन्तुष्ट करता हुआ,

धर्म-पूर्वक राज्य करता। उसके एक अमात्य ने अन्त पुर में दूषित कर्म किया। आगे चलकर, उसका पता लग गया। अमात्यो ने राजा से कहा। राजा ने ख्याल रखते हुए, अपने आप प्रत्यक्ष रूप से मालूम करके, उस अमात्य को बुलवाकर कहा—"हे अन्ध मूर्ख! तूने अनुचित किया है। अब तू मेरे राज्य में रहने योग्य नही है। अपने धन और स्त्री-पुत्र को लेकर दूसरी जगह चला जा।" यह कह, उसे देश से निकाल दिया।

वह काशी राज्य (राष्ट्र) को पार कर, कोशल नरेश की सेवा में रहता हुआ, क्रम से राजा का आतरिक विश्वासपात्र हो गया। उसने एक दिन कोशल-नरेश को कहा—"देव! वाराणसी का राज्य मक्खी-रहित शहद के छत्ते जैसा है। राजा, अत्यन्त कोमल स्वभाव है। थोडी सी ही सेना से वाराणसी राज्य जीता जा सकता है।"

राजा ने उसकी बात सुन सोचा—"वाराणसी राज्य महान् है। यह कहता है कि थोडी ही सेना से जीता जा सकता है। कही यह चर-पुरुष[1] तो नही?" यह सोच कर उसे कहा—"मालूम होता है, तू चर-पुरुष है?"

"देव! मै चर-पुरुष नही हूँ। यदि मेरा विश्वास न हो, तो मनुष्यों को भेज कर (काशी-नरेश के) प्रत्यन्त-ग्रामो को नाश करवाओ। (गाव वालो) के उन आदमियो को पकड कर, अपने पास लाने पर, (वह राजा) उन आदमियो को धन देकर छोड देगा।"

राजा ने, "यह बडी निर्भीकता के साथ बोल रहा है, अच्छा, परीक्षा करूँगा" सोच, अपने आदमियो को भेज कर प्रत्यन्त के ग्रामो को नाश करवाया। लोगो ने चोरो को पकड कर वाराणसी-नरेश को दिखाया। राजा ने उन्हें देख पूछा—"तात! किस लिए गाँव का नाश करते हो?"

"देव! जीविका का कोई उपाय न होने से।"

"तो तुम मेरे पास क्यो नही आये? अब आगे से ऐसा मत करना" कह, उन्हें धन देकर विदा किया। उन्होने जाकर कोशल-नरेश को वह समाचार कहा। इतने से भी आक्रमण करने की हिम्मत न होने के कारण, उसने फिर मध्य-जनपद का नाश करवाया। उन चोरो को भी राजा ने वैसे ही धन देकर छोड दिया।

---

[1] सी० आई० डी०।

इतने पर भी उसने न जाकर, फिर (आदमियो को) भेज कर अन्दर-शहर लुटवाया। राजा ने उन चोरो को भी धन देकर ही लौटा दिया। तव कोशल-नरेश यह जान, कि वाराणसी का राजा अत्यन्त धार्मिक है, वाराणसी राज्य को लेने के लिये सेना लेकर निकला।

उस समय वाराणसी-नरेश सीलव महाराज के पास एक हजार अभेद्य—शूरवीर—महायोधा ऐसे थे, जो सामने से मस्त हाथी के आने पर भी (पीछे) न लौटने वाले थे, सिर पर बिजली के गिरने पर भी न डरने वाले थे, सीलव महाराज की मर्जी होने पर सारे जम्बूद्वीप का राज्य जीत सकते थे। उन्होने 'कोशल-नरेश आता है', सुन कर, राजा के पास आकर कहा—"देव! कोशल-नरेश वाराणसी लेने के इरादे से आ रहा है। हम जायें, और अपने राज्य की सीमा लाँघते ही, उसे पीट कर पकड लाये।"

'तात! मेरे कारण दूसरो को कष्ट न होना चाहिए। जिन्हें राज्य लेना हो, वह राज्य लेलें। मत जाओ।' (कह) उन्हे रोक दिया।

कोशल-राजा ने सीमा लाँघ, जनपद के बीच में प्रवेश किया। अमात्यो ने फिर भी जा कर राजा को वैसे ही कहा। राजा ने पहले ही की तरह मना किया। कोशल-राजा ने नगर के बाहर खडे होकर सीलव महाराज के पास सन्देश भेजा कि 'या तो राज्य दे, अथवा युद्ध करे।'

राजा ने उसे सुन प्रत्युत्तर भेजा—"मेरे साथ युद्ध (करने की आवश्यकता) नही। राज्य ले लें।"

फिर भी अमात्यो ने राजा के पास आकर कहा—"देव! हम कोशल-नरेश को नगर में प्रविष्ट न होने दे? उसे नगर के वाहर ही पीट कर पकड ले?"

राजा ने पहले की ही तरह उन्हे मना किया। (फिर) नगर-द्वारो को खुलवा कर, हजार अमात्यो सहित (अपने) महातल पर सिंहासन के बीच में बैठा।

कोशल-नरेश वडी सेना-सवारी के साथ वाराणसी में प्रविष्ट हुआ। उसने एक भी विरोधी-शत्रु को न देख, राजा के निवास (-स्थान) के द्वार पर जा, अमात्यो से घिरे हुए, खुले द्वार वाले राज-महल में अलकृत-सजे महातल पर चढ कर बैठे निरपराध सीलव महाराजा को उसके सहस्र मन्त्रियो सहित पकडवा कर (अपने आदमियो को) कहा—"जाओ, अमात्यो सहित इस राजा को, (इनके) हाथ पीछे कस करके बाध कर, कच्चे श्मशान में ले जाओ। (हाँ ले जाकर) गले तक गहरे

गढे खोद कर, जिसमें एक भी हाथ न हिलाया जा सके, वैसे रेत भर कर गाड़ो। रात को शृगाल आकर, जो इनके साथ करना योग्य है, सो करेंगे।"

मनुष्य चोर-राजा की आज्ञा सुन, अमात्यो सहित राजा को, पीछे बाहें कडी करके बाँध, कैद कर ले गये। उस समय भी सीलव महाराज ने चोरराजा के प्रति द्वेप-भाव तक नही किया। उन बाँध कर लिए जाते अमात्यो में से, राजा की बात के विरुद्ध जाने वाला, एक भी (अमात्य) न था। इतनी सुविनीत थी वह राजा की परिषद्। सो वह राजपुरुप अमात्यो सहित सीलव राजा को कच्चे श्मशान में ले गये। (वहाँ) ले जा, गले तक गढे खोद, सीलव महाराज को बीच में (और उसके) दोनो ओर शेप अमात्यो को, इस प्रकार सब को गढो में उतार, रेत से भर, ऊपर से घन से कूट कर चले गये। सीलव महाराज ने अमात्यो को सम्बोधित करके उपदेश दिया—"तात! चोर-राजा के प्रति क्रोध न कर मैत्री-भावना ही करो।"

सो आधी रात के समय, मनुष्य मास खाने के लिए शृगाल आ गये। उन्हें देख, राजा और अमात्यो ने, सब ने एक साथ ही शोर मचाया। शृगाल डर के मारे भाग गये। (लेकिन) ठहर कर, उन्होने पीछे किसी को न आते देखा। सो वह फिर लौट आये। इन्होंने भी वैसे ही शोर मचाया। इस प्रकार तीन बार भाग कर, फिर देखते हुए, उनमें से किसी एक को भी पीछे न आते देख, 'यह दण्डित होंगे' (सोच), धीर बन कर लौटे। फिर उनके शोर मचाते रहने पर भी नही भागे। स्यारो का सर्दार (ज्येष्ठ शृगाल) राजा के पास पहुँचा, और बाकी दूसरो के पास। होशियार राजा ने उसे अपने समीप आने दिया, और (गीदड को) काटने का मौका देते हुए की तरह, गरदन को उठाया। जब स्यार गरदन काटने आया, तो उसको ठोडी की हड्डी से खीच कर यन्त्र मे फँसाये की तरह, जोर से पकड लिया। हाथी के बल समान बलशाली राजा की ठोडी की हड्डी द्वारा खीच कर गरदन से पकडे जाने पर, स्यार (जब) अपने को छुडा न सका, तो वह मरने से भयभीत होकर, जोर से चिल्ला उठा। बाकी स्यार उसकी उस चिल्लाहट को सुन कर 'उसे किसी आदमी ने पकड लिया होगा' समझ अमात्यो के पास न फटक सकने के कारण सब के सब भाग गये। राजा की ठोडी मे अच्छी तरह करके पकडे स्यार के इधर उधर झटके मारने से, रेत ढीली हो गई। उस शृगाल ने भी मरने से भयभीत हो चारो पाँव से राजा के ऊपर रेत उछाली। राजा ने रेत ढीली हुई जान, शृगाल

को छोड दिया। (फिर वह) हाथी के समान शक्तिशाली (राजा) इधर उधर हिलते डोलते, दोनो हाथो को निकाल, गढे के मुह की मुडेर पर लटक, वायु से छिन्न हुए वादल की तरह (बाहर) निकल आया। निकल कर, (उसने) अमात्यो को आश्वासन दे, रेत हटा, सब को निकाला। (अब) अमात्यो सहित वह कच्चे-श्मशान में खडा हुआ।

उस समय मनुष्य एक मृत-मनुष्य को कच्चे श्मशान में छोडने आकर, उसे दो यक्षो की सीमा के वीच में छोड गये। उन यक्षो ने उस मृत-मनुष्य को (आपस मे) न बाँट सकने पर सोचा—"इसे हम नही बाँट सकते। यह सीलव राजा धार्मिक है। यह इसे हमें बाँट कर देगा। इसके पास चलें।" (सो उन्होने) उस मृत-मनुष्य को पाँव से पकड घसीटते घसीटते राजा के पास ले जा कर कहा—देव! इसे हमें बाँट कर दें।

"यक्षो! मै इसे तुम्हें बाँट कर तो दे दू, लेकिन मैं अपरिशुद्ध हूँ। पहले, नहाऊँगा।"

यक्षो ने अपने वल से चोर-राजा के लिए रक्खा हुआ, सुगन्धित जल, लाकर, राजा को नहाने के लिए दिया। नहा कर खडे हुए को, सँभाल कर रक्खे हुए चोर-राजा के वस्त्र लाकर दिये। उन वस्त्रो को पहने खडे हुए को, चार प्रकार की सुगन्धि की पेटिका लाकर दी। सुगन्धि का लेप करके खडे हुए को, सोने की पेटिका में, मणि-निर्मित पखी में, रक्खे हुए नाना प्रकार के फूल लाकर दिये। फूलो को पहन कर खडे होने पर पूछा—"और क्या करें?" राजा ने कहा कि भूख लगी है। उन्होने जाकर चोर-राजा के लिए सम्पादित नाना प्रकार के अग्ररस भोजन लाकर दिये। नहाकर, (सुगन्धि से) अनुलिप्त, अलकृत, प्रसन्न-चित्त, राजा ने नाना प्रकार के भोजन खाये। यक्ष, चोर-राजा के लिए रक्खा हुआ सुगन्धित जल, सोने की सुराही और सोने के कसोरे सहित ले आये। फिर इस के पानी पी, कुल्ला कर, हाथ धोने पर उन्होने चोर-राजा के लिए तैयार किया, पाँच प्रकार की सुगन्धियो से सुगन्धित पान लाकर दिया। उसको खा चुकने पर पूछा—"अब क्या करें?" "जाकर चोर-राजा के सिरहाने रक्खा माङ्गलिक-खड्ग लाओ।" वह भी जाकर ले आये। राजा ने तलवार ले, उस मृत-मनुष्य को सीधा खडा रखवा, माथे के बीच में तलवार से प्रहार कर, दो टुकडे कर, दोनो यक्षो को बराबर बराबर बाँट दिया। (उन्हें) दे, तलवार धो, तैयार हो खडा हुआ। उन यक्षो ने मनुष्य-मास खा कर

प्रसन्न हो, सतुष्ट-चित्त हो, राजा से पूछा—"महाराज ! तेरे लिए और क्या करें ?"

"तुम अपने प्रताप से मुझे तो चोर-राजा के शयनागार में उतार दो, और इन अमात्यो को इनके अपने अपने घर पहुँचा दो।" उन्होने देव ! अच्छा' (कह) स्वीकार कर, वैसा ही किया।

उस समय चोर-राजा (अपने) शयनागार में शय्या पर पडा सो रहा था। राजा ने उस सोते हुए प्रमादी के पेट में तलवार की नोक चुभोई। उसने डर के मारे उठ, दीपक के प्रकाश में सीलव महाराज को पहचान, शय्या से उठ, होश सँभाल, खडे हो राजा से पूछा—'महाराज ! इस प्रकार की रात्रि में, पहरे से युक्त, वन्द दरवाजो वाले भवन में, पहरेदारो की आज्ञा के विना तुम इस प्रकार तलवार बाँध अलंकृत-सज कर, इस शयनागार मे कैसे आये ?' राजा ने, जैसे आया था, सव विस्तार से कहा। चोर-राजा ने पुलकित-चित्त हो, "महाराज ! मैं मनुष्य होकर भी आपके गुणो को नही जानता, और यह दूसरो का रक्त-मास खाने वाले, अति कठोर यक्ष आपके गुण जानते है। हे नरेन्द्र ! मै अव से आप ऐसे शीलवान् (=सदाचारी) के प्रति द्वेष न रक्खूगा" (कह) तलवार ले कर शपथ ली। (फिर) राजा से क्षमा माँग उसे महाशय्या पर सुलाया। अपने आप छोटी चारपाई पर लेटा। उसने सुवह होने पर, सूर्य के उदय होने के वक्त, मुनादी फिरवाई और सव सैनिको तथा अमात्य-ब्राह्मण-गृहपतियो को एकत्रित करवा, उनके सम्मुख, आकाश में पूर्ण चन्द्र को उठा कर (दिखाने की) तरह सीलव-राजा के गुणो को कहा। (फिर) सभा के बीच में राजा से क्षमा माग, (उसे) राज्य सौप, 'अव से आपके (राज्य) में चोरो की गडवडी (की देख भाल करने) का भार मुझ पर रहा। मै पहरेदारी करूँगा। आप राज्य करें' (कह) चुगल-खोर को दण्ड दे कर, अपनी सेना-सवारी ले, अपने ही देश को चला गया।

सीलव महाराजा ने भी, अलकृत-सजे हुए (हो), श्वेतछत्र के नीचे, सरभ मृग के पैरो सदृश पैरो वाले सोने के सिंहासन पर वैठ अपनी सम्पत्ति को देखते हुए सोचा—"यह इस प्रकार की सम्पत्ति, हजार अमात्यो का जीवन प्रतिलाभ, यदि मै प्रयत्न (वीर्य) न करता, तो यह कुछ भी न होता। प्रयत्न के वल से, मैंने इस नष्ट हुए यश को प्राप्त किया, सहस्र अमात्यो को जीवन-दान दिया। (इसलिए) विना निराश हुए प्रयत्न ही करना चाहिए। किया गया प्रयत्न इसी प्रकार फल दायक होता है।" यह सोच उदान (=हर्ष वाक्य) स्वरूप नीचे की गाथा कही—

आसिसेथेव पुरिसो न निब्बिन्देय्य पण्डितो,
पस्सामि वोहं अत्तानं यथा इच्छि तथा अहू ॥

[पुरुप आशा लगाये रक्खे। बुद्धिमान् आमदी निराश न हो। मैं अपने को ही देखता हूँ। जैसी इच्छा की थी, वैसा ही हुआ।]

आसिसेथेव, मै इस प्रकार प्रयत्न करके इस दुःख से मुक्त हो जाऊँगा, अपने प्रयत्न से ऐसी आशा लगाये ही रक्खे। **न निब्बिदेय्य पण्डितो,** बुद्धिमान्=उपाय करने मे दक्ष (आदमी) उचित स्थान पर प्रयत्न करता हुआ, "मै इस प्रयत्न का फल नही पाऊँगा" इस प्रकार की उत्कण्ठा न करे, आशा-छेद-कर्म न करे, यही अर्थ है। **पस्सामि वोहं अत्तानं,** इसमें 'वो' निपात मात्र है, मैं आज अपने को देखता हूँ। **यथा इच्छि तथा अहू,** मैंने गढे में गडे हुए इच्छा की कि मै उस दुःख से मुक्त होकर फिर राज्य लाभ करूँ। सो मैंने यह सम्पत्ति प्राप्त कर ली। जैसी मैंने इच्छा की थी, वैसा ही मुझे हो गया। इस प्रकार बोधिसत्त्व 'अहो! बत! भो! सदाचारियो का प्रयत्न फल लाता है' (कह) इस गाथा से हर्प-वाक्य कह, जीवन रहते पुण्य कर, यथा-कर्म (परलोक) गये।

बुद्ध ने भी इस धर्म-देशना को लाकर, (आर्य-)सत्यो को प्रकाशित किया। सत्यो (के प्रकाशन) के अन्त में (वह) हिम्मत-हार भिक्षु अर्हत्व में प्रतिष्ठित हुआ। शास्ता ने मेल मिला जातक का साराश निकाल दिया। उस समय का दुष्ट अमात्य (अब का) देवदत्त था। सहस्र अमात्य (अब की) बुद्ध परिषद् थी। सीलव महाराज तो मै ही था।

५२. चूल जनक जातक

"वायमेयेव पुरिसो . . ." यह गाथा (भी) शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय, हिम्मत-हार भिक्षु के ही बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

सो, उसके विषय में जो कथनीय है, वह सब महाजनक जातक[1] में आयेगा।

ख. अतीत कथा

जनक राजा ने श्वेत-छत्र के नीचे बैठे यह गाथा कही—

> वायमेयेव पुरिसो न निब्बिन्देय्य पण्डितो,
> पस्सामि वोहं अत्तानं उदका थलमुब्भतं॥

[पुरुष प्रयत्न करे। बुद्धिमान् आदमी निराश न हो। मैं अपने को ही देखता हूँ कि मैं जल से स्थल पर आ गया।]

वायमेयेव, प्रयत्न करे ही। उदका थलमुब्भतं जल से स्थल पर उत्तीर्ण (हुआ), अपने को स्थल पर प्रतिष्ठित देखता हूँ।

उस अवसर पर भी हिम्मत-हार भिक्षु ने अर्हत्व प्राप्त किया। जनक राजा, सम्यक्-सम्बुद्ध ही थे।

---

[1] महा जातक (५३९)

५३. पुण्णपाति जातक

"तयेत्र पुण्णापातियो . . . ." यह गाथा, शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय जहरीली शराब के सम्बन्ध में कही।

क. वर्तमान कथा

एक समय श्रावस्ती में शराबियो (=सुराधूर्तों) ने इकट्ठे होकर आपस में सलाह की—"हमारे पास शराब के लिए पैसा नही रहा। अब (पैसा) कहाँ से मिले ?" एक अत्यन्त धूर्त ने कहा—"चिन्ता मत करो। एक उपाय है। कौन सा उपाय ? अनाथपिण्डिक अँगुली में अँगूठी पहनता है। बारीक वस्त्र धारण करता है। तब राजा की सेवा में जाता है। हम शराब की बाटी में बेहोशी की दवा मिला, (शराब की) दूकान लगा कर बैठ, अनाथपिण्डिक के आने के समय 'महाश्रेष्ठी, इधर पधारें' (कह) उसे बुलावेंगे, (और) उसको शराब पिला, उसके बेहोश हो जाने पर, उसकी अँगुली की अँगूठी और वस्त्र उतार, उससे शराब पीने के लिए पैसे जुटावेंगे।" उन्होने 'अच्छा' कह स्वीकार कर, वैसा कर चुकने पर, श्रेष्ठी के आने के समय, उसके रास्ते पर जाकर कहा—"स्वामी ! ज़रा इधर आयें, हमारे पास अत्यन्त सुन्दर शराब है। (उसमें से) थोडी पी जायें।" श्रोतापन्न आर्य-श्रावक (अनाथपिण्डिक) क्या शराब पीता ? आवश्यकता न रहने पर भी, उसने इन धूर्तों की परीक्षा करूँगा (सोच) उनकी दूकान पर जा, उनकी क्रिया देख, 'इन्होने यह शराब इस मतलब से बनाई है' जान, 'अब से, इन्हें यहाँ से भगाऊँगा' विचार कर, कहा—"अरे ! दुष्ट धूर्तो ! तुम शराब की बाटी में दवाई मिलाकर, आने वालो को पिला कर, बेहोश करके उन्हें लूटने के विचार से दूकान सजा कर बैठे हो। खाली इस शराब की प्रशसा भर करते हो। किसी एक की भी, उठा कर पीने की हिम्मत नही होती। यदि यह बिना-मिलाई (शराब) होती, तो (पहले)

५२. चूल जनक जातक

"वायमेयेव पूरिसो . . ." यह गाथा (भी) शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय, हिम्मत-हार भिक्षु के ही बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

सो, उसके विषय में जो कथनीय है, वह सब महाजनक जातक[1] में आयेगा।

ख. अतीत कथा

जनक राजा ने श्वेत-छत्र के नीचे बैठे यह गाथा कही—

वायमेयेव पुरिसो न निब्बिन्देठय पण्डितो,
पस्सामि वोहं अत्तानं उदका थलमुब्भतं॥

[पुरुष प्रयत्न करे। बुद्धिमान् आदमी निराश न हो। मैं अपने को ही देखता हूँ कि मैं जल से स्थल पर आ गया।]

वायमेयेव, प्रयत्न करे ही। उदका थलमुब्भतं जल से स्थल पर उत्तीर्ण (हुआ), अपने को स्थल पर प्रतिष्ठित देखता हूँ।

इस अवसर पर भी हिम्मत-हार भिक्षु ने अर्हत्व प्राप्त किया। जनक राजा, सम्यक्-सम्बुद्ध ही थे।

---

[1] महा जातक (५३९)

५३. पुण्णपाति जातक

"तयेव पुण्णपातियो . . . ." यह गाथा, शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय जहरीली शराब के सम्बन्ध में कही।

क. वर्तमान कथा

एक समय श्रावस्ती में शराबियो (=सुराधूर्तों) ने इकट्ठे होकर आपस में सलाह की—"हमारे पास शराब के लिए पैसा नही रहा। अब (पैसा) कहाँ से मिले?" एक अत्यन्त धूर्त ने कहा—"चिन्ता मत करो। एक उपाय है। कौन सा उपाय? अनाथपिण्डिक अँगुली में अँगूठी पहनता है। बारीक वस्त्र धारण करता है। तब राजा की सेवा में जाता है। हम शराब की बाटी में बेहोशी की दवा मिला, (शराब की) दूकान लगा कर बैठ, अनाथपिण्डिक के आने के समय 'महाश्रेष्ठी, इधर पधारें' (कह) उसे बुलावेंगे, (और) उसको शराब पिला, उसके बेहोश हो जाने पर, उसकी अँगुली की अँगूठी और वस्त्र उतार, उससे शराब पीने के लिए पैसे जुटावेंगे।" उन्होने 'अच्छा' कह स्वीकार कर, वैसा कर चुकने पर, श्रेष्ठी के आने के समय, उसके रास्ते पर जाकर कहा—"स्वामी! ज़रा इधर आयें, हमारे पास अत्यन्त सुन्दर शराब है। (उसमे से) थोडी पी जायें।" श्रोतापन्न आर्य-श्रावक (अनाथपिण्डिक) क्या शराब पीता? आवश्यकता न रहने पर भी, उसने इन धूर्तों की परीक्षा करूँगा (सोच) उनकी दूकान पर जा, उनकी क्रिया देख, 'इन्होने यह शराब इस मतलब से बनाई है' जान, 'अब से, इन्हें यहाँ से भगाऊँगा' विचार कर, कहा—"अरे! दुष्ट धूर्तो! तुम शराब की बाटी में दवाई मिलाकर, आने वालो को पिला कर, बेहोश करके उन्हें लूटने के विचार से दूकान सजा कर बैठे हो। खाली इस शराब की प्रशसा भर करते हो। किसी एक की भी, उठा कर पीने की हिम्मत नही होती। यदि यह बिना-मिलाई (शराब) होती, तो (पहले)

तुम ही पीते।" धूर्तों को लताड़, अपने घर जा, 'धूर्तों की करनी तथागत से कहूँगा' (सोच), जेतवन जाकर, (तथागत से) निवेदन की। बुद्ध ने 'हे गृहपति! अब तो वह धूर्त तुझे ठगना चाहते थे, पूर्व समय में पण्डितो को भी ठगना चाहते थे' कह, उसके याचना करने पर, पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में (राजा) ब्रह्मदत्त के राज्य करते समय, बोधिसत्त्व वाराणसी के श्रेष्ठी हुए। उस समय भी इन धूर्तों ने, इसी प्रकार सलाह कर, शराब में मिलावट मिला, वाराणसी श्रेष्ठी के आने के समय, रास्ते पर जाकर, इसी प्रकार कहा। एक ने आवश्यकता न रहने पर भी, उनकी परीक्षा करने की इच्छा से, जाकर उनकी करनी देख, 'यह ऐसा करना चाहते हैं' जान 'यहाँ से इन्हें भगाऊँगा' सोच कहा—"धूर्तो! शराब पीकर राज-कुल जाना अनुचित है। राजा को देखकर, लौटते समय (शराब)को जानूँगा। तुम यही बैठे रहना।" राजा की सेवा में जाकर लौट आया। धूर्तों ने कहा—"स्वामी! इधर आयें।" उसने वहाँ जाकर, दवाई मिलाई हुई (शराब की) बाटियो को देख, कहा—"अरे! धूर्तो! तुम्हारी करनी मुझे अच्छी नही लगती। तुम्हारी शराब की बाटियो जैसी की तैसी भरी ही रक्खी है। तुम केवल शराब की प्रशसा भर करते हो, लेकिन पीते नही। यदि यह अच्छी (शराब) होती, तो तुम भी पीते। लेकिन इसमें विष मिला होगा" इस प्रकार उनके मनोरथ को, छिन्न-भिन्न करते हुए यह गाथा कही—

> तथेव पुण्णापातियो अञ्ञायं वत्तते कथा,
> आकारकेन जानामि न चायं भद्दिका सुरा॥

[(शराब की) बाटियाँ, वैसी ही भरी है (जैसी पहले थी)। सो यह शराब की प्रशसा (=कथा) दूसरे ही मतलब से है। मै रग-ढग से जानता हूँ कि यह शराब अच्छी नहीं है।]

तथेव, मैने इन्हें जैसा जाते समय देखा, यह शराब की बाटियाँ, अब भी वैसी ही भरी है। अञ्ञाय वत्तते कथा, यह जो तुम्हारी शराब की प्रशसा की बात है, वह अन्य है—असत्य है—झूठ है। यदि यह शराब अच्छी होती, तो तुम पीते भी,

(केवल) आधी बाटियें बाकी बचती। लेकिन तुम में से किसी एक ने भी शराब नही पी। आकारकेन जानामि, सो मैं इस बात से जानता हूँ। न चायंभद्दिका सुरा, यह शराब अच्छी नही, इसमे विष मिला हुआ होगा।

इस प्रकार धूर्तो को ले, जिसमे वह फिर वैसा न करें, उनको लताड, छोड दिया। वह जीवन रहते, दानादि पुण्य करके यथा-कर्म (परलोक) गया।

बुद्ध ने यह धर्म-देशना कह, जातक का साराश निकाल दिया। उस समय के धूर्त (अब के) धूर्त थे। लेकिन उस समय वाराणसी का सेठ मैं ही था।

५४. फल जातक

"**नायं रुक्खो दुरारूहो . . . .**"यह गाथा, बुद्ध ने जेतवन में विहार करते समय, एक फल (पहचानने में) हुशियार उपासक के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

एक श्रावस्ती-वासी गृहस्थ ने, बुद्ध-प्रमुख भिक्षु-संघ को निमन्त्रित कर, अपने आराम में बिठा, यवागु-खाजा दे, (अपने) माली को आज्ञा दी, कि वह भिक्षुओ के साथ बाग में घूम, उन आर्य्यों को आम आदि नाना प्रकार के फल दे। वह 'अच्छा' (कह) स्वीकार कर, भिक्षु-सघ को साथ ले, उद्यान मे फिरते हुए, वृक्ष को देख कर ही जान लेता कि यह कच्चा फल है, यह अच्छी तरह पका नही, यह अच्छी तरह पका है। जिसे वह जैसा कहता, वह वैसा ही निकलता। भिक्षुओ ने जाकर तथागत से निवेदन किया—"भन्ते! यह माली फल (पहचानने में) दक्ष है। पृथ्वी पर खडे ही खडे वृक्ष को देख कर ही, जान लेता है, 'यह फल कच्चा है, यह अच्छी तरह पका नही, यह अच्छी तरह पका है।' जिसे, वह जैसा कहता है, वह वैसा ही निकलता है।" बुद्ध ने, 'हे भिक्षुओ! केवल यह माली ही फल (पहचानने में)

दक्ष नही, पूर्व समय में पण्डित (जन) भी फल (पहचानने में) दक्ष थे' कह, पूर्व जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में (राजा) ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय, बोधिसत्त्व (एक) श्रेष्ठी-कुल में उत्पन्न हुए। उन्होने आयु-प्राप्त होने पर, पाँच सौ गाडियाँ ले, वाणिज्य करते हुए, एक समय जगल में से गुजरने वाले महामार्ग से, जगल के मुख-द्वार पर खडे हो, सभी मनुष्यो को एकत्रित करवा कहा—"इस जगल में विष-वृक्ष होते हैं; विष-पुष्प, विष-फल तथा विष-मधु होते हैं। यदि कोई ऐसा पत्र, फूल या फल हो, जिसे तुमने पहले न खाया हो, उसे बिना मुझे पूछे मत खाना।" वह 'अच्छा' (कह) स्वीकार कर जंगल में प्रविष्ट हुए। जगल में प्रविष्ट होते ही, एक ग्राम-द्वार पर एक किम्फल नामक वृक्ष था। उस (वृक्ष) के तने, शाखा, पत्ते, फूल, फल, सब आम की तरह के थे। न केवल रंग और आकार मे, किन्तु गन्ध और रस में भी। (इस वृक्ष के) कच्चे पक्के फल, आम के फल के सदृश ही थे। लेकिन खाने पर हलाहल विष की तरह, उसी समय प्राणो का नाश कर देते थे। आगे आगे जाने वाले कुछ लोभी आदमियो ने 'यह आम के वृक्ष हैं' समझ, फल खाये। कुछ ने 'कारवान के सरदार को पूछ कर खायेंगे' हाथ में लिये खडे रहे। उन्होंने सार्त्थवाह (कारवान के सरदार) के आने पर पूछा—"आर्य! इन आम के फलो को खायें?" बोधिसत्त्व ने यह जान कि यह आम का वृक्ष नहीं है, 'यह आम्र-वृक्ष नहीं, यह किम्फल वृक्ष है, मत खाओ' (कह) मना किया। जिन्होने खाये थे, उनकी भी उल्टी करा, उन्हें चतु-मधुर पिला अच्छा किया। (इससे) पहले, मनुष्य उस वृक्ष के नीचे निवास कर, 'यह आम्रफल हैं' (करके) उन विष-फलो को खा, (अपने) प्राण गँवाते। अगले दिन ग्रामवासी निकल, मृत मनुष्यो को देख, उन्हें पाँव से पकड, छिपे हुए स्थान पर फेंक, गाड़ियों सहित, जो कुछ उनके पास होता, सब ले जाते।

उस दिन भी उन्होंने अरुणोदय के समय ही निकल "बैल मेरे होंगे, गाडी मेरी होगी, सामान मेरा होगा' (करके) जल्दी मे उस वृक्ष के नीचे पहुँच मनुष्यों को निरोगी देख पूछा—'तुम्हें कैसे मालूम हुआ कि यह वृक्ष आम्र-वृक्ष नही है?' उन्होंने कहा—'हम नहीं जानते। हमारा ज्येष्ठ सार्त्थवाह जानता है!' मनुष्यों

ने वोधिसत्त्व से पूछा—"हे पण्डित ! तूने कैसे जाना कि यह वृक्ष आम का वृक्ष नही है ?" उसने दो बातो से जाना कह, यह गाथा कही—

नायं रुक्खो दुरारूहो न पि गामतो आरका,
आकारकेन जानामि नायं सादुफलो दुमो ॥

[न तो यह वृक्ष चढने में दुष्कर है, न ही गाँव से दूर है। इन दो बातो से मैं जानता हूँ कि यह स्वादु फलो का वृक्ष नही ।]



नायं रुक्खो दुरारूहो, यह विप-वृक्ष चढने में दुष्कर नही है, उछल कर, जैसे सीढी रक्खी हो, वैसे चढा जा सकता है । **न पि गामतो आरका**, ग्राम से दूर भी नही है, अर्थात् ग्राम के समीप ही है। **आकारकेन जानामि**, इस दो प्रकार की बात से मै इस वृक्ष को पहचानता हूँ कि **नायं सादुफलो दुमो**, यदि यह मधुरफल आम्र-वृक्ष हो, तो इस प्रकार आसानी से चढ सकने योग्य (तथा) ग्र.म के पास ही लगे इस (वृक्ष) पर एक भी फल न रहे। फल खाने वाले मनुष्य, इसे नित्य ही घेरे रहें। इस प्रकार मैंने अपने ज्ञान से परीक्षा करके जाना कि यह विष-वृक्ष है। इस प्रकार जन (-समूह) को धर्मोपदेश कर, उसने सकुशल मार्ग ग्रहण किया।



बुद्ध ने भी, "हे भिक्षुओ ! इस प्रकार पहले भी पण्डित (-जन) फल (पहचानने में) दक्ष हुए हैं" (कह) इस धर्म-देशना को कह, मेल मिला, जातक का साराश निकाल दिया। उस समय की परिषद् (अब की) बुद्ध-परिषद् ही थी। लेकिन सार्थवाह मैं ही था।

५५. पंचावुध जातक

"यो अलीनेन चित्तेन ..." यह (गाथा) बुद्ध ने जेतवन में विहार करते समय (एक) हिम्मत-हार भिक्षु के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

उस भिक्षु को बुद्ध ने बुलाकर, पूछा—'हे भिक्षु! क्या तू सचमुच हिम्मत-हार बैठा?' उसके 'भगवान्! सचमुच' कहने पर, 'हे भिक्षु! पूर्व समय में बुद्धिमान् लोग हिम्मत करने की जगह हिम्मत करके राज-सम्पत्ति के लाभी हुए।' कह (शास्ता ने) पूर्व जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में (राजा) ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय, बोधिसत्त्व, उसकी पटरानी की कोख से उत्पन्न हुए। उसके नामकरण के दिन, एक सौ आठ ब्राह्मणों की सब कामनायें पूरी कर, उनसे उसके लक्षण (=चिन्ह) पूछे गये। चिन्ह (देखने में) दक्ष ब्राह्मणों ने, उसकी चिन्ह-सम्पत्ति को देख कहा—"महाराज! कुमार पुण्यवान् है। तुम्हारे बाद राज्य प्राप्त करेगा। पाँच शस्त्रों के चलाने में प्रसिद्ध हो, जम्बुद्वीप में अग्र-पुरुष होगा।" ब्राह्मणों की बात सुन, कुमार का नाम रखने वालों ने, उसका नाम पञ्चावुधकुमार रक्खा। सो उसके होश सँभालने पर, सोलह वर्ष का होने पर, राजा ने बुलाकर, कहा—तात! शिल्प सीख।

"देव! किस के पास सीखूँ?"

"तात! जा, गान्धार देश के तक्षशिला नगर में लोक-प्रसिद्ध आचार्य्य के पास जाकर सीख। यह उस आचार्य्य का भाग (=फीस) देना" (कह) हज़ार (मुद्रा) देकर भेजा।

उसने वहाँ जाकर शिल्प सीख, आचार्य्य के दिये हुए पाँच शस्त्र ले, आचार्य्य को प्रणाम कर, तक्षशिला[1] नगर से निकल, पच हथियार वद (हो) बाराणसी का रास्ता लिया। मार्ग मे वह, श्लेषलोम यक्ष से अधिकृत एक जङ्गल (के द्वार) पर पहुँचा। सो उसे जङ्गल के द्वार पर देख, मनुष्यो ने रोका—"भो! माणवक! इस जगल मे मत प्रविष्ट हो। इस जगल में श्लेपलोम (नामक) यक्ष है। वह जिस किसी मनुष्य को देखता है, उसे मार डालता है।"

बोधिसत्त्व अपने को जाँचते हुए, निर्भीत केशरसिंह की तरह, जगल में घुस ही गया। उसके जगल मे प्रवेश करने पर, उस यक्षने (अपने) ताड जितना (ऊँचा) हो, घर जितना (वडा) सिर, वरतनो जितनी (बडी बडी) आँखें, और कन्दल की कली जितने वडे दाँत वना, श्वेतमुख, चितकबरे पेट और नीले हाथ पाँव वाला हो, अपने आपको बोधिसत्त्व को दिखाकर कहा—"कहाँ जाता है? ठहर, तू मेरा आहार है।" बोधिसत्त्व ने, "यक्ष! मैंने (अपने सामर्थ्य का) अन्दाजा लगा कर यहाँ प्रवेश किया है। तू सँभल कर मेरे समीप आना, मैं तुझे विष में वुझे हुए तीर से वीध कर यही गिरा दूँगा" (कह) धमका हलाहल विष से बुझा हुआ तीर चढा कर छोडा। वह (जाकर) यक्ष के रोमो में ही चिपक गया। उसके बाद दूसरा . इस प्रकार पचास तीर छोडे। सब, उसके रोमो में ही चिपक रहे। यक्ष, उन सभी तीरो को तोड-मरोड, अपने पैरो के नीचे गिरा, बोधिसत्त्व के समीप आया।

बोधिसत्त्व ने फिर भी, उसे डरा कर खड्ग निकाल कर प्रहार किया। तेंतिस अंगुल लम्बी तलवार रोमो में ही चिपक रही। तब उस पर बरछी से प्रहार किया। वह भी रोमो में ही चिपक रही। उसका भी 'चिपक-रहना' जान मुद्गर से प्रहार किया। वह भी रोमो में चिपक रहा। उसका भी चिपक रहना जान, "हे यक्ष! क्या तूने मुझ पञ्चावुध-कुमार का नाम पहले नही सुना? मैंने तेरे अधिकृत जगल में प्रवेश करते हुए धनुष आदि का भरोसा कर प्रवेश नही किया, मैंने अपना ही भरोसा कर प्रवेश किया है। सो आज मैं तुझे मार कर चूर्ण-विचूर्ण करूँगा।" यह निश्चय प्रगट कर, ऊँचा शब्द करते हुए, दाहिने हाथ से यक्ष पर प्रहार किया। हाथ (भी) रोमो में चिपक गया। बायें हाथ से प्रहार किया। वह भी चिपक गया।

---

[1] वर्त्तमान शाहजी की ढेरी, जिला रावलपिंडी (पाकिस्तान)।

दायें पैर से प्रहार किया। वह भी चिपक गया। बायें पैर से प्रहार किया, वह भी चिपक गया। 'सिर से टक्कर मार कर, उसे चूर्ण-विचूर्ण करूँगा' (सोच) सिर से प्रहार किया। वह सिर भी रोमो मे चिपक गया।

वह पाँच जगह चिपका हुआ, पाँच जगह बँधा हुआ, लटकता हुआ भी, निर्भय ही रहा। यक्ष ने सोचा—'यह एक पुरुष-सिह है, पुरुष-आजानीय है, साधारण आदमी नहीं। मेरे सदृश नाम वाले यक्षके पकडने पर भी डरता तक नही। मैंने इस मार्ग पर हत्या करते हुए, इससे पहले, एक भी ऐसा आदमी नही देखा। यह क्यो नहीं डरता?" सो उसने, उसे खाने की रुचि न होने के कारण, उससे पूछा—"माणवक! तू मरने से किस लिए नही डरता?" "यक्ष! मैं क्यो डरूँगा? एक जन्म में एक बार मरना तो निश्चित ही है। और मेरी कोख में (एक) वज्र-आयुध है। यदि मुझे खायेगा, तो तू उस आयुध को न पचा सकेगा। वह आयुध, तेरी आँतो के टुकड़े टुकडे कर, तुझे मार डालेगा। इस प्रकार (यदि मरेंगे) तो दोनो मरेंगे। इस कारण से (भी) मैं नही डरता हूँ।" यह बोधिसत्त्व ने अपने अन्तर के ज्ञान-आयुध के बारे में कहा।

यह सुन यक्ष ने सोचा—"यह माणवक सत्य कहता है। मेरी कुक्षि इसके शरीर का मूंगे के बीज जितना मास का टुकडा भी हजम न कर सकेगी। मैं इसे छोड दू।" (यह सोच) मरने के भय से भयभीत उसने बोधिसत्त्व को छोडते हुए कहा—"माणवक! तू पुरुष-सिह है। मै तेरा मास नही खाऊँगा। आज तू राहु-मुख से मुक्त चन्द्रमा की तरह मेरे हाथ से छूट कर, जाति-सुहृद-मण्डल को प्रसन्न करता हुआ जा।"

बोधिसत्त्व ने कहा—'यक्ष! मै तो जाऊँगा ही, लेकिन तू पूर्व जन्म में भी कुकर्म करके, क्रूर, रक्त-पाणी, दूसरो का रक्त-मास खाने वाला होकर उत्पन्न हुआ, यदि इस जन्म में भी कुकर्म ही करेगा, तो अन्धकार से अन्धकार में जायेगा। अब मुझसे भेंट होने के बाद से, तू कुकर्म नही कर सकता। प्राण-घात-कर्म नरक में, पशुयोनि में, प्रेत-योनि में, असुर-योनि में उत्पत्ति का कारण होता है। मनुष्य योनि मे उत्पन्न होने पर आयु कम करने वाला होता है। इस प्रकार पाँचो प्रकार के कुकर्मों के दुष्परिणाम और पाँचो प्रकार के सुकर्मों के शुभ-परिणाम कह, बहुत सी बातो से यक्ष को डरा, धर्मोपदेश कर, दमन कर, विषयो से पृथक् कर, **पाँचों शीलों** मे प्रतिष्ठित कर, उसी को उस जगल का बलि-प्रतिग्राहक देवता बना, प्रमाद रहित

रहने का उपदेश कर, जंगल से निकलते हुए, जगल के द्वार पर रहने वाले मनुष्यो को यह (वृत्तान्त) कह, पाँचो हथियार बाँध बाराणसी गया। वहाँ माता पिता को देख, आगे चल कर राज्य पर प्रतिष्ठित हो, धर्मानुसार राज्य करते हुए, दानादि पुण्य करते हुए, यथा-कर्म (परलोक) गया।

शास्ता ने भी इस धर्म-देशना को ला अभिसम्बुद्ध होने की अवस्था में यह गाथा कही—

यो अलीनेन चित्तेन अलीनमनसो नरो,
भावेति कुसल धम्म योगक्खेमस्स पत्तिया;
पापुणे अनुपुब्बेन सब्बसयोजनक्खय॥

[जो कोई उत्साही पुरुष योगक्षेम (=अर्हत्व[1] निर्वाण) की प्राप्ति के लिए उत्साह-युक्त चित्त से, शुभ कर्म करता है, वह क्रमानुसार सर्व **संयोजनो** के क्षय को प्राप्त होता है।]

सो इसका सक्षेपार्थ यह है जो कोई आदमी **अलीनेन,** उत्साह-युक्त **चित्तेन** स्वभाव से ही उत्साही होकर, (और भी) उत्साही हो, दोष-रहित होने से कुशल (=शुभ)—**सैंतिस बोधिपाक्षिक**[1]—धर्मों की भावना करता है, चारो योगो से क्षेमकर निर्वाण की प्राप्ति के लिए, विशाल चित्त से विदर्शना में अनुयुक्त होता है, वह इस प्रकार सब सस्कारो मे अनित्यता, अनात्मता, तथा दु खपन को मान

---

[1] चार स्मृति-उपस्थान (१कायानुपस्सना, २ वेदनानुपस्सना, ३ चित्तानुपस्सना, ४ धम्मानुपस्सना) २. चार सम्यक् प्रयत्न (१संवरप्पधान, २पहानप्पधान, ३भावनप्पधान, ४अनुरक्खणप्पधान), ३. चार ऋद्धिपाद (१ छन्द, २ वीर्य्य, ३ चित्त, ४ वीमसा), ४. पाँच बल तथा पाँच इन्द्रियाँ (१श्रद्धा, २वीर्य्य, ३ स्मृति, ४ समाधि, ५ प्रज्ञा), ५. सात बोधि-अङ्ग (१ स्मृति, २ धर्म-विचय, ३वीर्य्य, ४ प्रीति, ५ प्रश्रब्धि, ६. समाधि, ७ उपेक्षा), ६. आर्य अष्टांगिक मार्ग (१ सम्यक् दृष्टि, २ सम्यक् संकल्प, ३ सम्यक् वाचा, ४ सम्यक् कर्मान्त, ५ सम्यक् व्यायाम, ६ सम्यक् आजीविका, ७ सम्यक् स्मृति ८ सम्यक् समाधि।)

नई विदर्शना से आरम्भ करके, उत्पन्न बोधिपाक्षिक धर्मों की भावना (=अभ्यास) करते हुए, क्रमानुसार एक भी संयोजन बाकी न छोड, सब संयोजनो[1] का क्षय करने वाले, चतुर्थ मार्ग के अन्त में उत्पन्न होने के कारण, 'सब संयोजनो के क्षय' कहे जाने वाले, अर्हत्व को प्राप्त होते हैं।

इस प्रकार बुद्ध ने अर्हत्व को धर्म-देशना में प्रधान स्थान दे, आगे चार आर्य-सत्यो को प्रकाशित किया। सत्यो (के प्रकाशन) के अन्त में, वह भिक्षु अर्हत्व को प्राप्त हुआ। शास्ता ने भी मेल मिला, जातक का साराश निकाल दिया। उस समय का यक्ष (अब का) अंगुलिमाल था। पञ्चावुधकुमार नाम वाला (तो) मैं ही था।

५६. कंचनक्खन्ध जातक

"यो पहट्ठेन चित्तेन . . ." यह गाथा, शास्ता ने श्रावस्ती में विचरते हुए, एक भिक्षु के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

एक श्रावस्तीवासी कुल-पुत्र शास्ता की धर्म-देशना सुन (त्रि-) रत्न शासन में अत्यन्त श्रद्धा से प्रव्रजित हुआ। उसके आचार्य्य उपाध्यायो ने कहा—"हे आयुष्मान्! शील (=सदाचार) एक प्रकार का होता है, दो प्रकार का, तीन प्रकार का, चार प्रकार का, पाँच प्रकार का, छ प्रकार का, सात प्रकार का, आठ प्रकार का, नौ प्रकार का, दस प्रकार का, इस तरह कई प्रकार का होता है। यह गौण-शील है, यह मध्यम-शील है, यह महा-शील है, यह प्रातिमोक्ष-संवर-शील है,

---

[1] संयोजन दस हैं

यह इन्द्रिय-सवर-शील है, यह आजीविका-परिशुद्ध-शील है, यह प्रत्यय-प्रतिसेवन-शील है, इसे शील कहते हैं।" उसने सोचा 'यह बहुत से शील हैं। मैं इतने शीलो को अपने ऊपर ले, उनके अनुसार आचारण न कर सकूगा। यदि शीलो के अनुसार आचारण न करूँ, तो प्रव्रजित होने का ही क्या फल? मैं गृहस्थ होकर दानादि पुण्य कर्म करूँगा, स्त्री-बच्चो का पालन करूँगा।' यह सोच उसने कहा—"भन्ते! मैं शील न रख सकूगा। शील न रख सकने वाले के लिए प्रव्रज्या का क्या अर्थ? मैं गृहस्थ होऊँगा। अपना पात्र चीवर ले ले।"

उन्होने कहा—"आयुष्मान्! यदि ऐसा है, तो बुद्ध को प्रणाम करके जाओ।" (यह कह) वे, उसे धर्म-सभा में बुद्ध के पास ले गये। बुद्ध ने देखते ही पूछा—"भिक्षुओ! क्यो इस अनिच्छुक भिक्षु को लेकर आये हो?"

"भन्ते! यह भिक्षु, 'मै शील नही रख सकूगा' (कह) पात्र-चीवर लौटाता है। सो हम इसे लेकर आये हैं।"

"भिक्षुओ! तुम किस लिए इस भिक्षु को बहुत से शील कहते हो? यह जितने रख सकेगा, उतने रखेगा। अब से तुम इसको कुछ न कहो। इसमें जो करना उचित है, उसे मैं देखूगा।" (यह कह) "हे भिक्षु! आ, तुझे बहुत से शीलो से क्या? तू केवल तीन शील रख सकेगा?" "भन्ते! रख सकूगा।" "तो तू, अब से काय-द्वार (=शारीरिक), वची-द्वार (=वाणी के), मनो-द्वार (=चित्त के)—इन तीन द्वारो की रक्षा कर। शरीर से, वाणी से, मन से पाप-कर्म मत कर। जा, गृहस्थ मत बन। इन तीन ही शीलो को रख।" इतने से वह भिक्षु सन्तुष्ट-चित्त हो, "भन्ते! अच्छा, मैं तीनो शीलो की रक्षा करूँगा" (कह) शास्ता को प्रणाम कर, आचार्य्य उपाध्याय के साथ ही चला गया।

उसे उन तीन शीलो की पूर्ति करते ही मालूम हो गया कि आचार्य्य, उपाध्यायो का बताया हुआ भी शील इतना ही था, लेकिन वह अपने बुद्ध न होने के कारण मुझे समझा न सके। सम्यक्-सम्बुद्ध ने अपने सुबुद्ध होने के कारण, धर्म-राजा होने के कारण, उतना ही शील, तीन ही द्वारो में डाल कर, मुझे स्वीकार करा दिया। शास्ता ने मेरी बाँह पकड ली। (इस प्रकार) विदर्शना (भावना) की वृद्धि कर, कुछ ही दिनो में अर्हत्व को प्राप्त हुआ।

उस समाचार को सुन धर्म-सभा में बैठे भिक्षु (आपस में) बातचीत करने लगे—"आयुष्मानो! 'शील न रख सकूगा' करके गृहस्थ होने के लिए तैयार भिक्षु

को, शास्ता ने सब शीलो को तीन ही हिस्सो में बाँट, वे शील उससे स्वीकार करा, उसे अर्हत्व-पद लाभ करा दिया।" (यह कह) 'अहो! बुद्ध आश्चर्य्य-कारक मनुष्य होते है' कहते हुए बुद्ध-गुणो की प्रशसा करने लगे। शास्ता ने आकर पूछा—"भिक्षुओ! यहाँ बैठे क्या बात-चीत कर रहे थे?" "यह बात-चीत" कहने पर, "भिक्षुओ! बहुत भारी वजन भी हिस्से करके देने पर, हलका प्रतीत होता है, पूर्व समय में भी बुद्धिमान् बडा सा सोने का ढेर पाकर, उठाने में असमर्थ हो, बाँट कर उठा कर ले गये" कह, पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में (राजा) ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय, बोधिसत्त्व एक गाँव में कृषक हुए। वह एक दिन एक ऐसे खेत में, जहाँ पहले ग्राम बसा हुआ था, खेती करते थे। पूर्व समय में, उस गाँव में एक धनी श्रेष्ठी, जाँघ तक गहरे, चार हाथ चौडे (गडे) में सोने का ढेर गाड कर मर गया था। उससे बोधिसत्वका हल टकरा कर रुक गया। उसने 'जडें होगी' समझ, रेत को हटा कर उसे देखा। उसे फिर भी रेत से ढक, दिन भर हल चलाता रहा। सूर्यास्त होने पर, हल, जोत आदि को एक ओर रख, 'सोने के ढेर को ले जाऊँगा' सोच, उसे उठा कर न ले जा सका। तब, उसने एक ओर बैठ 'इतना पेट भरने के लिए होगा', 'इतना गाड कर रक्खूगा' 'इतना कर्मान्त (=व्यापारादि) मे लगाऊँगा' 'इतना दानादि पुण्य कर्मों के लिए होगा'—इस प्रकार चार हिस्से किये। उसके इस प्रकार बाँटने पर, वह सोने का ढेर हल्का सा हो गया। वह उसे उठा कर, घर ले जा कर, चार हिस्सो मे बाँट कर, दान आदि पुण्य-कर्म करके यथा-कर्म (परलोक) गया। भगवान् ने इस धर्म-देशना को कह, अभिसम्बुद्ध हुए रहने के समय, यह गाथा कही—

> यो पहट्ठेन चित्तेन पहट्ठमनसो नरो
> भावेति कुसल धम्म योगक्खेमस्स पत्तिया,
> पापुणे अनुपुब्बेन सब्बसयोजनक्खय॥

[जो प्रसन्न-चित्त नर, सन्तुष्ट चित्त से योग-क्षेम (=निर्वाण) की प्राप्ति के

लिए शुभ-धर्म की भावना करता है, वह क्रम से सब संयोजनों के क्षय को प्राप्त होता है।]



पहट्ठेन, नीवरण (चित्तमैल) रहित होने से, पहट्ठमनसो, उसी नीवरण-रहित होने से, प्रसन्न-चित्त होने की वजह से चमक कर समुज्ज्वलित=प्रभा-युक्त चित्त होकर—यही अर्थ है।



इस प्रकार बुद्ध ने अर्हत्व को सिरे पर रख, देशना को समाप्त कर, मेल मिला, जातक का सारांश निकाल दिया। उस समय सोने का ढेर प्राप्त करने वाला मनुष्य मैं ही था।

५७. वानरिन्द जातक

"यस्सेते चतुरो धम्मा..." यह गाथा, बुद्ध ने वेळुवन में विहार करते समय देवदत्त द्वारा किये गये वध करने के प्रयत्न के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

उसी समय बुद्ध ने 'देवदत्त वध करने का प्रयत्न करता है' सुन 'हे भिक्षुओ! न केवल अभी देवदत्त मेरे वध करने का प्रयत्न करता है, (उसने) पहले भी किया था, लेकिन त्रास मात्र भी उत्पन्न नहीं कर सका' कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में (राजा) ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व वानर योनि में उत्पन्न हो, बड़ा हो, घोड़े के बच्चे जितना (बड़ा) हुआ। वह

शक्ति-सम्पन्न हो, अकेला घूमता हुआ, नदी के किनारे रहने लगा। उस नदी के बीच में एक द्वीप था, जिसमें आम, पनस आदि नाना प्रकार के फलो के वृक्ष लगे हुए थे। बोधिसत्त्व हाथी की तरह शक्तिशाली होने से, नदी के इस किनारे से उछल कर, द्वीप के इस ओर, नदी के बीच में पडे एक पत्थर पर जाकर गिरता, वहाँ से उछल कर, उस द्वीप में जाकर गिरता। वहाँ, नाना प्रकार के फल खाकर, शाम को उसी ढग से वापिस लौट कर, अपने निवास-स्थान पर रह कर, अगले दिन फिर वैसा ही करता। इसी प्रकार वहाँ रहता था।

उस समय स्त्री सहित एक मगरमच्छ, उसी नदी में रहता था। उसकी स्त्री ने, बोधिसत्त्व को आरपार जाते देख, बोधिसत्त्व के हृदय-मास में दोहद उत्पन्न कर, मगरमच्छ से कहा—"आर्य! इस वानरेन्द्र के हृदय-मास में दोहद (=खाने की बलवती इच्छा) उत्पन्न हुआ है।"

मगरमच्छ 'अरी! अच्छा, मिलेगा' कह 'आज शाम को उसे द्वीप से लौटते ही पकड़ूँगा' (सोच) पाषाण के ऊपर जाकर पड रहा।

बोधिसत्त्व ने दिन भर चर कर शाम को द्वीप में खडे ही खडे, पत्थर को देख सोचा—"क्या कारण है? आज पत्थर कुछ ऊँचा दिखाई दे रहा है?" उसने पहले ही पानी और पत्थर का अन्दाज़ अच्छी तरह लगा लिया था। सो उसके मन में यह विचार उत्पन्न हुआ—"आज इस नदी का पानी घट रहा है, न बढ रहा है, लेकिन यह पत्थर बढा हुआ दिखाई दे रहा है। कही (आज) यहाँ मेरे पकडने के लिये मगरमच्छ तो नही पडा है?" "अच्छा! उसकी परीक्षा करूँगा' सोच, उसने, वहीं खडे ही खडे, पत्थर के साथ बात-चीत करनेकी भाँति, 'अरे! पाषण!' पुकार कर, उत्तर न मिलने पर तीन बार 'अरे! पाषाण!' पुकारा। पाषाण क्या उत्तर देता? लेकिन फिर भी उस वानर ने पूछा—"अरे! पाषाण! क्या आज मुझे उत्तर न देगा?"

मगरमच्छ ने सोचा—'और दिनो यह पत्थर निश्चय से इस वानरेन्द्र को प्रत्युत्तर देता रहा है। आज मैं इसे उत्तर दूँगा' सोच, पूछा "अरे वानर! क्या है?"

"तू कौन है?"

"मैं मगरमच्छ हूँ।"

"यहाँ तू किस लिए लेटा है?"

"तेरे हृदय-मास की इच्छा से।"

बोधिसत्त्व ने, 'और मेरे लिए जाने का रास्ता नही है, आज मुझे इस मगरमच्छ को धोखा देना चाहिए' सोच उसे कहा—"सौम्य! मगरमच्छ! मै अपने को तुझे समर्पित करूँगा। तू मुख खोल कर, अपने समीप आने के समय मुझे ग्रहण करना।" मगरमच्छ के मुह खोलने के समय, उसकी आँखें बन्द हो जाती है। उसने उस बात का ख्याल न कर, मुह खोला। उसकी आँखें मुद गईं। वह मुह खोल कर, आँखें मीच कर पड रहा। बोधिसत्त्व वैसा जान, द्वीप से उछल, जाकर मगरमच्छ के मस्तक पर गिर, वहाँ से उछल, बिजली की तरह चमकता हुआ, दूसरे किनारे जा खडा हुआ। मगरमच्छ ने वह आश्चर्य देख, 'इस वानरेन्द्र ने अतीव आश्चर्य किया' सोच, कहा—"अरे! वानरेन्द्र! इस लोक मे जिस आदमी मे चार बातें होती है, वह अपने शत्रु को जीत लेता है, वह चारो बाते तेरे अन्दर है।" कह यह गाथा कही—

यस्सेते चतुरो धम्मा वानरिन्द! यथा तव,
सच्चं धम्मो धिती चागो दिट्ठं सो अतिवत्तति॥

[वानरेश्वर! जैसे यह तुझ में है, वैसे जिस आदमी में यह चार बातें होती है—सत्य, धर्म, धृति और त्याग—वह शत्रु को जीत लेता है।]

यस्स, जिस किसी आदमी को, एते, अब कहे जाने वाले, प्रत्यक्ष ही निर्देश किये गये। **चतुरो धम्मा,** चार गुण, **सच्च,** सत्य-वाणी, 'तेरे पास आऊँगा' कह कर, उसे असत्य (=मृषा) न कर, जो तू आया, वह तेरी सत्य-वाणी है। **धम्मो,** विचार-बुद्धि, ऐसा करने पर, ऐसा होगा, यह तेरी विचार-बुद्धि। **धृति,** कहते है अखण्ड प्रयत्न को, सो वह भी तुझ में है। **चागो,** आत्म-परित्याग, तू तो अपना आत्मसमर्पण कर, मेरे पास आया, यदि मै तुझे ग्रहण न कर सका, तो उसमें मेरा ही दोप है **दिट्ठं** शत्रु। सो **अतिवत्तति,** जिस आदमी में, जैसे यह तुझमें है, उसी प्रकार चारो धर्म (=गुण) विद्यमान होते है, वह आदमी जैसे तू आज मुझे लाँघ कर चला गया, उसी प्रकार, अपने शत्रु को लाँघ जाता है, जीत लेता है।

इस प्रकार मगरमच्छ बोधिसत्त्व की प्रशसा कर, अपने निवास-स्थान को गया। शास्ता ने, 'हे भिक्षुओ! न केवल अभी देवदत्त मेरे बधके लिए प्रयत्नशील हुआ,

पहले भी हुआ, कह, यह धर्म-देशना ला, मेल मिला, जातक का सारांश निकाल दिया। उस समय का मगरमच्छ (अब का) देवदत्त था। उसकी भार्य्या (अब की) चिञ्चा माणविका; और वानरेन्द्र तो मैं ही था।

५८. तयोधम्म जातक

"यस्सेते . . ."यह गाथा भी, बुद्ध ने वेळुवन में विहार करते समय, वध करने का प्रयत्न करने वाले के ही बारे में कही।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे वाराणसी में (राजा) ब्रह्मदत्त के राज्य करते समय, देवदत्त वानर योनि में उत्पन्न होकर, हिमवन्त प्रदेश में वानरो के समूह का नायक होने की अवस्था में, अपने (वीर्य्य) से उत्पन्न वानर-पोतको को, दाँत से काट कर खस्सी कर डालता, ताकि कही वह समूह का नायकत्व न करें। उस समय बोधिसत्त्व ने, उसी (के वीर्य्य) से एक वन्दरी की कोख में गर्भ धारण किया। वह वन्दरी 'गर्भ हुआ' जान, गर्भ की रक्षा के लिए एक दूसरे पर्वत पर चली गई। गर्भ परिपक्व होने पर, उसने बोधिसत्त्व को जन्म दिया। वह बडा होने पर, होश आने पर शक्तिधारी हुआ।

उसने एक दिन माँ से पूछा—"माँ! मेरा पिता कहाँ है ?"

"तात! अमुक पर्वत पर वानरो के समूह का नेतृत्व करता हुआ रहता है।"

"माँ! मुझे उसके पास ले चल।"

"तात! तू पिता के पास नहीं जा सकता, क्योंकि तेरा पिता इस डर से कि कहीं यह समूह का नेतृत्व न करे, अपने (वीर्य्य) से उत्पन्न हुए वानर-पोतको को, दाँत से काट कर, खस्सी कर डालता है।"

"माँ! मुझे, उसके पास ले चल, मैं देखूँगा।"

वह पुत्र को ले कर, उसके पास गई। उस वानर ने अपने पुत्र को देख, सोचा—वडा हो कर यह मुझे नेतृत्व न करने देगा, अभी इसे नष्ट करना योग्य है। सो गले मिलने के वहाने से, इसे ज़ोर से भीच कर मार डालूगा। यह सोच 'तात! आ, इतने समय तक कहाँ रहा ?' कह, वोधिसत्त्व को गले लगाते हुए की तरह दवाया। वोधिसत्त्व, हाथी के सदृश वल वाला था। उसने भी उसे दबाया। सो उसकी हड्डियाँ टूटने वाली सी हो गईं। तव उसने सोचा—यह वडा हो, मुझे मार डालेगा, किस उपाय से इसे, उससे पहले ही मार डालू ? तव उसे ख्याल आया—"यह पास ही राक्षस-गृहीत तालाव है। वहाँ इसे राक्षस को खिलवा दू।" सो उसने उसे कहा—"तात! मै वूढा हो गया। यह वानर-समूह तुझे सौंपूगा। आज ही तुझे राजा वनाऊँगा। अमुक स्थान पर एक तालाव है, उसमें दो कुमुदिनियाँ है, तीस उत्पल है, पाँच पद्म है। जा, वहाँ से फूल ले आ।" उसने 'तात! अच्छा लाऊँगा' कह, जाकर, सहसा (तालाव मे) उतरे बिना चारो ओर पैरो के चिह्नो को देखते हुए, केवल उतरते पैरो के चिह्नो को देखा, चढ़ते पैरो के चिह्नो को नही।

'यह तालाव राक्षस-गृहीत तालाव होगा, मेरा पिता अपने असमर्थ होने के कारण, राक्षस से मुझे मरवा देना चाहता होगा, मै इस तालाब में बिना उतरे ही फूल ले जाऊँगा।' वह सूखी जगह पर जा, वहाँ से दौड कर आ, छलाँग मार कर दूसरी ओर जाते हुए, पानी के ऊपर ही ऊपर से दो फूलो को तोड कर ले, दूसरी ओर जा गिरा। दूसरी ओर से इस ओर आते हुए, उसी उपाय से दो (और) फूल ले लिये। इस प्रकार दोनो ओर ढेर लगाते हुए, फूल तो ले लिये, लेकिन (वह) राक्षस की सीमा के भीतर नही उतरा। तव 'अब इससे अधिक न उछल सकूगा' सोच उसने उन फूलो को लेकर एक स्थान पर एकत्रित करना आरम्भ किया। उसे देख, उस राक्षस ने सोचा 'मैंने इतने समय तक इससे पूर्व ऐसा बुद्धिमान्, आश्चर्य्यकर मनुष्य नही देखा। (इसने) जितनी आवश्यकता थी, उतने फूल भी ले लिये, और मेरी सीमा के भीतर भी नही आया।' उसने पानी को दो ओर फाड कर, पानी में से ऊपर निकल, वोधिसत्त्व के पास आ, 'हे वानरेन्द्र! इस लोक में जिस आदमी में यह तीन गुण होते हैं, वह अपने शत्रु को जीत लेता है, वह तीनो गुण तुझ में है' (कह) वोधिसत्त्व की प्रशसा करते हुए यह गाथा कही—

यस्स एते तयो धम्मा वानरिन्द! यथा तव,
दक्खियं सूरियं पञ्ञा दिट्ठं सो अतिवत्तति॥

[वानरेश्वर! जैसे यह तुझ में हैं, वैसे जिस आदमी में यह तीन बातें होती हैं—दक्षता, शौर्य्य, और प्रज्ञा—वह शत्रु को जीत लेता है।]

दक्खिय दक्षता=भय आने पर उसके नाश करने के उपाय के ज्ञान से युक्त पराक्रम। सूरिय, शौर्य्य, निर्भयता का पर्य्यायवाची। प्रज्ञा, प्रज्ञापन-प्रस्थापन=उपाय—प्रज्ञा का पर्य्यायवाची।

इस प्रकार उस उदक-राक्षस ने, इस गाथा से बोधिसत्त्व की स्तुति कर, (उसे) पूछा—"यह फूल किस लिए ले जा रहा है?"

"मेरे पिता मुझे राजा बनाना चाहते हैं, सो उसके लिए ले जा रहा हूँ।" "तेरे जैसे उत्तम आदमी को (अपने से) फूल उठा कर ले जाना शोभा नहीं देता। मैं ले चलूंगा" कह, उछल कर, (वह) उसके पीछे पीछे हो लिया।

उसके पिता ने दूर से ही उसे देख सोचा—"मैंने इसे भेजा था कि यह राक्षस का भोजन बनेगा, लेकिन यह राक्षस से फूल उठवा कर ला रहा है। अब मैं नष्ट हुआ।" यह सोच, हृदय के सात टुकड़े हो वह वहीं मर गया। शेष वानरों ने एकत्र हो बोधिसत्त्व को राजा चुन लिया।

शास्ता ने इस धर्म-देशना को ला, मेल मिला जातक का सारांश निकाल दिया। उस समय का यूथ (=वानर-समूह)-पति (अब का) देवदत्त था। यूथपति का पुत्र तो मैं ही था।

५९. भेरिवाद जातक

"धमे धमे . . ." यह गाथा, शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय (एक) बात न मानने वाले भिक्षु के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

शास्ता ने उस भिक्षु को पूछा कि हे भिक्षु! क्या तू सचमुच (किसी का) कहना

नही मानता है, उसके 'भगवान् ! सचमुच' कहने पर, उसे 'हे भिक्षु ! न केवल अब ही तू बात नही मानता है, (किन्तु) पहले भी तू बात न मानने वाला ही था', कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में **बाराणसी** में (राजा) ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय, बोधिसत्त्व (एक) भेरी बजाने वाले के कुल में उत्पन्न हो, एक गाँव में रहते थे। उसने '**बाराणसी** मे नक्षत्र (=उत्सव) की घोपणा हुई है' सुन, 'समज्ज-मण्डल (=नृत्य-मण्डली) में भेरी बजा कर धन (कमा कर) लाऊँगा' (सोच) पुत्र के साथ, वहाँ गया, और भेरी बजा कर, बहुत धन प्राप्त किया। उसे ले, अपने ग्राम को (वापिस) लौटते समय, चोर-जगल में पहुँच, (उसने) पुत्र को निरन्तर भेरी बजानेसे मना किया— "तात ! निरन्तर न बजा कर, ऐश्वर्य्य-शालियो के रास्ता चलने के समय, बीच बीच में भेरी बजाने की तरह भेरी बजा। वह पिता के मना करने पर भी, 'भेरी शब्द से ही चोरो को भगाऊँगा' (कह) निरन्तर ही बजाता रहा। चोरो ने पहले तो भेरी का शब्द सुन 'ऐश्वर्य्य-शालियो की भेरी होगी' समझ, भाग गये। लेकिन लगातार भेरी का शब्द सुन 'यह ऐश्वर्य्य-शालियो की भेरी नही हो सकती' (सोच) आकर, उन दो ही जनो को देख लूट लिया। बोधिसत्त्व ने 'कठिनाई से मिला हुआ धन, लगातार (भेरी) बजाने वाले ने नष्ट कर दिया' कह, यह गाथा कही—

धमे धमे नातिधमे अतिधन्तं ही पापक,
धन्तेन सत लद्ध अतिधन्तेन नासित॥

[(भेरी) बजाये, लेकिन बहुत न बजाये। लगातार (भेरी) बजाना बुरा है। (भेरी) बजाने से सौ (मुद्रायें) मिली, बहुत बजाने से वह नष्ट हो गईं।[

धमे धमे, ध्वनि करे, न ध्वनि न करे, भेरी बजाये, न बजाना न करे। **नाति-धमे,** सीमा का उल्लघन कर, निरन्तर ही न बजाये, किस लिए? **अति धन्तं ही पापक** निरन्तर भेरी बजाना अब हमारे लिए बुरा सिद्ध हुआ। **धन्तेन सतं लद्धं,**

नगर में भेरी बजाने से भी कार्षापण मिला। अतिधन्तेन नासितं, लेकिन अब मेरे पुत्र ने मेरी बात न मान, जो जगल में लगातार बजाया, उससे सब नष्ट हो गया।

शास्ता ने यह धर्मदेशना कह, मेल मिला, जातक का साराश निकाल दिया। उस समय का पुत्र (अब का) बात न मानने वाला भिक्षु था, लेकिन पिता मैं ही था।

६०. संखधमन जातक

"धमे धमे . .." यह गाथा, शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय, (एक) बात न मानने वाले के ही बारे में कही।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में (राजा) ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व ने (एक) शङ्ख बजाने वाले कुल में उत्पन्न हो, वाराणसी में नक्षत्र की घोषणा होने पर, पिता को (साथ) ले, शङ्ख बजा कर, धन कमा, (वापिस) आने के समय, नोर-जगन में पिता को निरन्तर शङ्ख बजाने से मना किया। वह 'शङ्ख-शब्द से चोरों को भगाऊँगा' सोच, निरन्तर ही उसे फूकता रहा। चोरो ने पहली तरह ही, आकर (उन्हें) लूट लिया। बोधिसत्त्व ने भी पहली ही तरह गाथा कही—

धमे धमे नातिधमे अति धन्त हि पापक,
धन्तेनाधिगता भोगा ते तातो विधमी धमं॥

[(शङ्ख) बजाये, लेकिन बहुत न बजाये। लगातार (शङ्ख) बजाना बुरा है। (शङ्ख) बजाने से जो भोग प्राप्त किये, उन्हें तात ने अधिक बजा बजा कर विध्वंस कर दिया।]

ते तातो विधमी धमं वे शङ्ख बजाने से जो भोग मिले थे, उन्हें मेरे पिता ने फिर फिर (शङ्ख) फूकने से **विधमि**, विध्वस कर दिया, नष्ट कर दिया ।

शास्ता ने इस धर्म-देशना को कह, मेल मिला, जातक का सारांश निकाल दिया। उस समय का पिता (अब का) बात न मानने वाला भिक्षु था (और) पुत्र तो मै ही था।

पहला परिच्छेद

७. इत्थि वर्ग

६१. असातमन्त जातक

"असा लोकित्थियो नाम . . ." यह गाथा शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय (एक) आसक्त-चित्त भिक्षु के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

उस (भिक्षु) की कथा उम्मदन्ति जातक[1] में आयेगी। बुद्ध ने उस भिक्षु को, "हे भिक्षु! स्त्रियाँ, असाध्वी, असती, पापी, निकृष्ट होती है, तू इस प्रकार की पापी स्त्री (-जाति) के प्रति क्यो आसक्त हुआ है?" कह, पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में बाराणसी में (राजा) ब्रह्मदत्त के राज्य करनेके समय, वोधिसत्त्व गान्धार देश (=राष्ट्र) में, तक्षशिला में ब्राह्मण कुल में जन्म ग्रहण कर, बालिग होने पर तीनो वेदो तथा सब शिल्पो में सम्पूर्णता प्राप्त कर, लोक-प्रसिद्ध आचार्य्य हुआ। उस समय बाराणसी में एक ब्राह्मण कुल में, पुत्र की उत्पत्ति के दिन, निरन्तर प्रज्वलित आग रक्खी गई। जब वह ब्राह्मण-कुमार १६ वर्ष का हुआ, तब उसके माता-पिता ने कहा—"पुत्र! हमने तेरी उत्पत्ति के दिन, आग जलाकर रख दी थी। यदि ब्रह्म-लोक जाने की इच्छा है, तो उस आग को लेकर, जगल में जा, अग्नि-देवता को नमस्कार करता हुआ ब्रह्म-लोक-परायण हो। यदि गृहस्थ होना चाहता है, तो तक्षशिला जाकर वहाँ लोक-प्रसिद्ध आचार्य्य से शिल्प सीख

---

[1] उम्मदन्ति जातक (५२७)

(घर आ) कुटुम्ब का पालन-पोषण कर।" माणवक (=ब्रह्मचारी) ने 'मै जगल मे प्रविष्ट हो, अग्नि की परिचर्य्या न कर सकूगा, मै कुटुम्ब ही पालूगा' विचारा। माता-पिता को नमस्कार कर, आचार्य्य की एक हजार की फीस[1] के साथ वह तक्षशिला गया, और शिल्प सीख कर वापिस लौट आया। उसके माता-पिता को उसके गृहस्थ होने की इच्छा नही थी। वह चाहते थे कि वह बन मे (जाकर) अग्नि (-देवता) की परिचर्य्या करे। सो, उसकी माता ने उसे स्त्रियो के दोष दिखा कर, जगल को भेजने की इच्छा से सोचा—"वह आचार्य्य पण्डित है, व्यक्त है। वह मेरे पुत्र को स्त्रियो के दोष बता सकेगा।" (यह सोच) पूछा—"तात! तू ने शिल्प सीखा?"

"अम्मा! हाँ।"

"असात-मन्त्र भी तूने सीखे?"

"अम्मा! नही सीखे।"

"तात! यदि तूने 'असात-मन्त्र' नही सीखे, तो तूने क्या सीखा? जा, सीख कर आ।"

वह 'अच्छा' कह, फिर तक्षशिला की ओर चल दिया।

उस आचार्य्य की भी, एक सौ वीस वर्ष की बूढी माता थी। वह, उसे अपने हाथ से नहला, खिला, पिला, उसकी सेवा करता था। अन्य मनुष्य उसे वैसा करते देख, घृणा करते। उसने सोचा—"मै जगल मे प्रवेश कर, वहाँ माता की सेवा करता रहूँ।" सो, उसने, एक एकान्त जगल मे, पानी मिलने की जगह पर, पर्णशाला बनवाई। वहाँ घी चावल आदि मँगवा कर अपनी माता को ले आया, और उसकी सेवा करता हुआ रहने लगा।

उस माणवक ने भी तक्षशिला पहुँच, वहाँ आचार्य्य को न देख 'आचार्य्य! कहाँ है?' पूछा। उस समाचार को सुन कर वहाँ गया, और (आचार्य्य) को प्रणाम कर खडा हुआ। उस आचार्य्य ने (पूछा)—"तात! किस लिए बहुत जल्दी (लौट) आया?"

"आपने मुझे 'असात-मन्त्र' नही सिखाया न?"

---

[1] फीस (आचार्य्य-भाग)।

"तुझे किस ने कहा कि 'असात-मन्त्र' सीखना चाहिए?"

"आचार्य्य! मेरी माता ने।"

बोधिसत्त्व ने सोचा—"असात-मन्त्र तो कोई मन्त्र नही है। इसकी माता, इसे स्त्रियो के दोषो को विदित करा देना चाहती होगी।"

"सो, अच्छा तात! तुझे असात-मन्त्र दूगा" (कह) उसने कहा—"आज से आरम्भ कर के, तू मेरे स्थान पर, मेरी माता को नहलाते, खिलाते, पिलाते, उसकी सेवा करना। हाथ, पैर, सिर और पीठ दबाते (=मलते) हुए, 'आर्ये! बूढी होने पर भी तेरा शरीर ऐसा है, तो जवानी में (यह शरीर) कैसा रहा होगा?' (कह) शरीर दबाने के समय, हाथ पैर आदि के वर्ण की प्रशसा करना। और, जो कुछ तुझे मेरी माता कहे, वह बिना लज्जा के, बिना छिपाये, मुझे कहना। ऐसा करने से असात-मन्त्रो की प्राप्ति होगी, न करने से नही होगी।" उसने 'आचार्य्य अच्छा' कह, उसकी बात मान, उस समय से आरम्भ करके, जैसा जैसा कहा था, वैसा वैसा किया।

उस माणवक के बार बार प्रशसा करने पर, उस अन्धी, जराजीर्ण के मन में काम उत्पन्न हो गया—"यह माणवक मेरे साथ रमण करना चाहता होगा।" उसने एक दिन अपने शरीर-वर्ण की प्रशसा करने वाले माणवक से पूछा—"मेरे साथ रमण करना चाहता है?"

"आर्ये! मैं रमण करने की इच्छा तो करूँ, लेकिन आचार्य्य का भय है।"

"यदि, मुझे चाहता है, तो मेरे पुत्र को मार डाल।"

"मैने आचार्य्य के पास इतना शिल्प सीखा, कैसे, मैं केवल कामासक्ति के कारण उनको मारूँगा?"

"अच्छा, तो यदि तू मेरा परित्याग न करे, तो मैं ही उसे मार दूगी।"

सो स्त्रियाँ, ऐसी असाध्वी, पापी, निकृष्ट होती है। वैसी उमर में भी चित्त में रागोत्पत्ति के कारण, काम का अनुकरण करती हुई, ऐसे उपकारी पुत्र को मारने को तैयार हो गई। माणवक ने बोधिसत्त्व को वह सब बात कह दी। 'माणवक! तूने अच्छा किया, जो मुझे बता दिया' (कह) माता का आयु-सस्कार देख, वह 'आज ही मर जायगी' जान, (माणवक को) कहा—"माणवक! आ, उसकी परीक्षा करें।" (वह गए) उसने एक गूलर का वृक्ष छील कर, अपने जितना (बडा) काठ का पुतला बनाया। उसे सिर सहित ढक कर, अपने सोने की जगह पर लम्बा लिटा

दिया, और रस्सी बाँध कर, अपने शिष्य को कहा—'तात ! कुल्हाड़ा ले जा कर, मेरी माता को इशारा कर।'

माणवक ने जाकर कहा—"आर्ये ! आचार्य्य, पर्णशाला में अपनी शय्या पर सोये है, मैंने रस्सी की निशानी बाँध दी है। यदि सामर्थ्य हो, तो इस कुल्हाडे को ले जाकर मार।"

"तू मुझे छोडेगा नही न ?"

"किस लिए छोड़ूगा ?"

उसने कुल्हाडे को ले, काँपती हुई उठ कर, रस्सी के साथ साथ जा, हाथ से छू कर, 'यह मेरा पुत्र है' करके, काठ के पुतले के मुह पर से कपड़े हटा, कुल्हाडे को ले, 'एक ही प्रहार से मारूँगी' सोच, गरदन पर ही मारा। 'टन' कर के शब्द हुआ। उसे पता लग गया कि लकडी है।

बोधिसत्त्व के, 'माँ ! क्या करती है ?' पूछने पर, 'मै ठगी गई' जान वह वहीं गिर कर मर गई। अपनी पर्ण-शाला में पडी रहने पर भी, उस क्षण, उसको मरना ही था। बोधिसत्त्व ने उसका मृत होना जान, शरीर-कृत्य कर, आदाहन (=आग) बुझा, वन-पुष्पो से पूजा कर, माणवक सहित पर्णशाला के द्वार पर बैठ, (माणवक) को कहा—"तात ! असात-मन्त्र कोई पृथक मन्त्र नही है। स्त्रियाँ असाध्वी (=असाता) होती है। तेरी माता ने तुझे असात-मन्त्र सीख कर आ, (करके) जो मेरे पास भेजा है, वह स्त्रियो के दोष जानने के ही लिए भेजा है। सो तूने अब प्रत्यक्ष ही, मेरी माता के दोष देख लिए हैं। इसलिए तू जान ले कि स्त्रियाँ असाध्वी, पापिनी होती हैं।" इस प्रकार उपदेश कर, उसे बिदा किया। वह माणवक भी आचार्य्य को प्रणाम कर, माता-पिता के पास गया। उसकी माता ने पूछा—"असात-मन्त्र सीखे ?"

"अम्म ! हाँ।"

"तो अब क्या करेगा ? प्रव्रजित हो, अग्नि-परिचर्य्या करेगा, वा गृहस्थ में रहेगा ?"

"माता ! मैंने प्रत्यक्षत. स्त्रियो के दोष देख लिए, मुझे अब गृहस्थी बनने से काम नही, मै प्रव्रजित होऊँगा" (कह) माणवक ने अपने अभिप्राय को प्रकाशित करते हुए, यह गाथा कही—

> असा लोकित्थियो नाम वेला तासं न विज्जति,
> सारत्ता च पगब्भा च सिखी सब्बघसो यथा,
> ता हित्वा पब्बजिस्सामि विवेकमनुब्रूहयं ॥

[लोक में स्त्रियाँ असाध्वी होती हैं। उनका कोई समय नही होता। जैसे दीपक की शिखा सब को जला देने (=खा लेने) वाली होती है, वैसी ही वह रागानुरक्त तथा प्रगल्भ होती हैं। मैं उन्हे छोड, अपनी शान्ति (=विवेक) की वृद्धि करता हुआ प्रव्रजित होऊँगा।]

असा, असतियाँ—पापिनियाँ, अथवा 'सात' कहते हैं सुख को, सो वह उनमें नही। जो उनमें अनुरक्त हो, उसे वह सुख नही देती, इसलिए भी असाता, दु ख-दायिनी, यह अर्थ है। इस अर्थ की प्रामाणिकता के लिए यह सूक्त उद्धृत करना चाहिए—

> "माया चेसा मरीचो च सोको रोगो चुपद्दवो,
> खरा च बन्धना चेता मच्चुपासो गुहासयो
> तासु यो विस्ससे पोसो सो नरेसु नराधमो ॥"

[वे माया हैं, मरीचि है, शोक हैं, रोग हैं, उपद्रव हैं, कठोर हैं, बन्धन हैं, मृत्यु-पाश हैं, गुह्य-आशय हैं। जो मनुष्य उनका विश्वास करे, वह नरो में अधम नर है।]

लोकित्थियो, लोक (=ससार) में स्त्रियाँ। वेला तासं न विज्जति, अम्मा! उन स्त्रियो को कामासक्ति होने पर, वेला (=समय), सवर (=सयम), मर्य्यादा, सन्तुष्टि नहीं। सारत्ता च पगब्भा च, पञ्चकामो में अनुरक्त होने पर, एक तो उनको कोई वेला नही होती, वैसे ही काय-प्रगल्भता, वाक्-प्रगल्भता, और मन की प्रगल्भता—इन तीन से युक्त होने के कारण प्रगल्भ। इनमें काय-सयम, वाक्-संयम अथवा मन का सयम नहीं। लोभी, (तो यह) कौवो के समान होती है। सिखी सब्बघसो यथा, अम्म! जैसे ज्वाला-शिखा वा 'शिखी' कहलाने वाली अग्नि, मल (मल) आदि गन्दगी भी, घी, शहद, शक्कर आदि शुद्ध चीज़ भी, इष्ट भी तथा अनिष्ट भी, जो जो पाती है, सभी खा लेती है, और इस लिए सब्बघसो (=सब को

खाने वाली) कहलाती है, उसी प्रकार यह स्त्रियाँ भी, चाहे हथवान्, ग्वाले आदि हीन जाति, हीन पेशे के लोग हो, चाहे क्षत्रिय आदि उत्तम-पेशे वाले लोग हो, ऊँच-नीच का विचार किये बिना, जिसे दुनिया में 'मजा' कहते हैं, उस कामाचार की इच्छा होने पर, जिस किसी को पाती हैं, उसी का सेवन करती हैं। इसलिए वह सर्वभक्षक अग्नि-शिखा के समान होती हैं। इसलिए जैसे सर्व-भक्षक अग्नि-शिखा है वैसा ही इन्हें जानना चाहिए। **ता हित्वा पब्बजिस्सामि,** मैं उन पापिनी, दु ख की कारण स्त्रियो को छोड, अरण्य मे प्रविष्ट हो, ऋषियो की रीति से प्रव्रज्या लूगा। **विवेकमनुब्रूहयं,** शारीरिक-शान्ति (=एकान्त), मानसिक शान्ति (=एकान्त) और चित्त के मैल (=उपाधियो) से मुक्ति—यह तीन प्रकार का एकान्त कहा गया है। सो यहाँ शारीरिक-एकान्त और मानसिक एकान्त से अभिप्राय है।

माँ! मैं प्रव्रजित होकर **कसिण-कर्म** (=योगाभ्यास) करके, आठ समापत्तियाँ और पाँच अभिज्ञायें प्राप्त कर, (जन-) समूह से शरीर को पृथक् कर, और चित्त के मैलो (=क्लेशो) से चित्त को पृथक् कर, इस एकान्तता (=विवेक) को बढाते हुए ब्रह्म-लोक-परायण होऊँगा। बस, मुझे गृहस्थी नही चाहिए।

इस प्रकार स्त्रियो की निन्दा कर, माता-पिता को प्रणाम कर, प्रव्रजित हो, उक्त प्रकार से एकान्त (=विवेक) की वृद्धि करते हुए ब्रह्म-लोक-गामी हुआ।

बुद्ध ने भी भिक्षुओ! इस प्रकार स्त्रियाँ, असाध्वी, पापिनी, दु खदायिनी होती हैं, (कह) स्त्रियो के दोषो (=अगुण) का वर्णन कर, (आर्य-) सत्यो को प्रकाशित किया। (आर्य-) सत्यो के प्रकाशन के अन्त में वह भिक्षु श्रोता-पत्ति-फल मे प्रतिष्ठित हुआ। शास्ता ने मेल मिला, जातक का साराश दिखाया। उस समय की माता (अब की) **कापिलानी,** पिता (अब के) महाकाश्यप थे, शिष्य (अब के) आनन्द, (और) आचार्य्य तो मैं ही था।

६२. अंडभूत जातक

'यं ब्राह्मणोति. ' यह गाथा (भी) जेतवन में विहार करते समय (एक) आसक्त चित्त भिक्षु के ही बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

शास्ता ने उसे 'भिक्षु! क्या तू सचमुच आसक्त है?' पूछा। 'सचमुच' कहने पर 'भिक्षु! स्त्रियाँ (सँभाल कर) रक्खी नहीं जा सकती। पूर्व समय में पण्डित लोग (=बुद्धिमान्) स्त्रियों को (उनके) गर्भ से ही सँभाल कर रखने की कोशिश करते हुए भी, न रख सके' कह, पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में (राजा) ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय, बोधिसत्त्व, उसकी अग्र पटरानी की कोख से जन्म ग्रहण कर, वयस्क होने पर, सभी शिल्पों में सम्पूर्णता प्राप्त कर, पिता के मरने पर, राज्य पर प्रतिष्ठित हो, धर्म पूर्वक राज्य करने लगा। वह पुरोहित के साथ जूआ खेला करता था, और खेलते समय इस द्यूत-गीत (जुये के गीत) को कह कर चाँदी के तखते पर सोने के पासे फेंकता था—

सब्बा नदी वङ्कगता, सब्बे कट्ठमया वना,
सब्बित्थियो करे पापं, लभमाना निवातके॥

[सभी नदियाँ टेढ़ी हैं, सभी वनों में लकड़ी है। मौका मिलने पर सभी स्त्रियाँ पाप-कर्म करती हैं।]

इस प्रकार खेलते हुए राजा सदैव जीतता, पुरोहित की हार होती। क्रम से घर की सम्पत्ति नाश होती देख, पुरोहित सोचने लगा—"इस प्रकार तो इस घर का सब धन नष्ट हो जायगा, मैं एक ऐसी स्त्री को ढूंढ कर घर में रक्खू, जो दूसरे पुरुष के पास न जाये।" फिर उसे यह ख्याल आया—"मैं किसी ऐसी स्त्री को,

जिसने पहले किसी दूसरे पुरुष को देखा हो, (सँभाल कर) न रख सकूगा। इस लिए मैं एक स्त्री को उसके गर्भ से आरम्भ कर के, रख कर, उसकी आयु होने पर, उसे अपने वश में कर, (और) उसे एक ही पुरुष वाली रख, उसके गिर्द कडा पहरा लगा, राजा के कुल से धन ले आऊँगा।" वह अंक-विद्या में हुशियार था। सो, उसने एक दरिद्र गर्भिणी स्त्री को देख, 'लडकी उत्पन्न करेगी' जान, उसे बुला, खर्चा दे, घर में रक्खा। फिर उसके प्रसूत होने पर, उसे धन दे, प्रेरित कर, वह लडकी किन्ही दूसरे आदमियो को न देखने दे कर, स्त्रियो के ही हाथ में दे, उसका पालन-पोषण करा, वडी होने पर, उसे अपने वश मे कर लिया। जव तक वह (लडकी) वढती रही, तव तक वह राजा के साथ जूआ नही खेला, लेकिन लडकी को अपने वश में कर लेने पर, पुरोहित ने राजा से कहा—महाराज! जूआ खेलें। राजा ने 'अच्छा' कह, पूर्व प्रकार से ही खेला। पुरोहित ने राजा के गा कर पासा फेंकने के समय कहा—"मेरी माणविका के अतिरिक्त।" उस समय से पुरोहित जीतता, राजा की हार होती।

वोधिसत्त्व ने सोचा 'इसके घर में एक पुरुष-वाली एक स्त्री होनी चाहिए।'

पता लगाने पर 'ऐसी स्त्री है' जान, इसके सदाचार को तुडवाऊँगा, (सोच) एक धूर्त को वुलाकर पूछा—"पुरोहित की स्त्री का शील तोड सकता है?"

"देव! तोड सकता हूँ।" सो राजा ने उसे धन दे 'जल्दी कर' कह, भेजा।

उसने राजा से धन ले, गन्ध, धूप, चूर्ण, कपूर आदि खरीद, उस (पुरोहित) के घर के समीप सव सुगन्धियो की दूकान लगाई। पुरोहित का घर सात तलो का तया सात ड्योढियो वाला था। सभी ड्योढियो पर स्त्रियो का ही पहरा था। ब्राह्मण को छोड कर और कोई आदमी घर मे नही घुस सकता था। कूडा फेंकने की टोकरी भी, देख कर ही अन्दर आने जाने दी जाती। उस माणविका को, केवल वह पुरोहित ही देख सकता था। (हाँ), उसकी एक स्त्री परिचारिका थी। वह परिचारिका गन्ध, पुष्प, खरीद कर ले जाती हुई, उस धूर्त की दूकान के समीप से ही जाती। उस (धूर्त) ने 'यह उसकी परिचारिका है' अच्छी तरह जान, एक दिन उसे आती देख, दूकान से उठ, जा कर, उसके पैरो मे गिर, दोनो हाथो से पैरो को ज़ोर से पकड, 'माँ! इतने समय तक तू कहाँ रही' कह, रोना (आरम्भ) किया।

शेष लगे हुए धूर्तों ने भी एक ओर खडे हो कहा—"हाथ, पैर, मुह की बनावट और रग-ढग (=आकल्प) से माता-पुत्र एक ही जैसे हैं।" उनको कहते सुन, उस

स्त्री ने अपने में अविश्वास कर, 'यह मेरा पुत्र (ही) होगा' (सोच) स्वयं भी रोना शुरू कर दिया। वे दोनो काँद कर, रो कर एक दूसरे को गले लगा कर खड़े हुए। तब उस धूर्त ने पूछा—"माँ! तू कहाँ रहती है?"

"तात! मैं किन्नर-लीला से रहने वाली, श्रेष्ठ-सुन्दरी, पुरोहित की तरुण-स्त्री की सेवा-सुश्रूषा करती हुई रहती हूँ।"

"माँ! अब कहाँ जा रही है?"

"उसके लिए फूल-माला आदि लेने।"

"माँ, तुझे और जगह जाने की क्या जरूरत है? अब से तू मेरे ही पास से ले जाया कर" (कह) बिना मूल्य लिये ही, बहुत से पान-पत्र आदि तथा नाना प्रकार के फूल दिये।

माणविका ने उसे बहुत से गन्ध-पुष्प आदि लाते देख, पूछा—"अम्म! क्या आज हमारा ब्राह्मण प्रसन्न है?"

"ऐसा क्यों कहती है?"

"इनकी अधिकता देख कर।"

"ब्राह्मण ने अधिक मूल्य नहीं दिया, मैं इन्हें अपने पुत्र के पास से लाई हूँ।"

उस समय से, ब्राह्मण का दिया हुआ मूल्य अपने पास रख कर, उसी (पुत्र) के पास से गन्ध फूल आदि ले जाती थी। कुछ दिन व्यतीत होने पर, धूर्त बीमारी का बहाना बना पड रहा। उसने उसकी दूकान के दरवाज़े पर जा, उसे न देख, पूछा—"मेरा पुत्र कहाँ है?"

"तेरे पुत्र को बीमारी हो गई है।"

उसने, जहाँ वह लेटा हुआ था, वहाँ जाकर, उसकी पीठ मलते हुए पूछा—"तात! तुझे क्या बीमारी है?" वह चुप रहा। "बेटा! कहता क्यो नही?"

"माँ! प्राण निकलने को आयें, तो भी तुझे नही कह सकता।"

"तात! यदि मुझसे नही कहेगा, तो किसे कहेगा?"

"माँ! मुझे और कोई रोग नही है। तुझसे उस माणविका (के सौन्दर्य) की प्रशंसा सुन, मैं आसक्त हो गया हूँ। वह मिलेगी, तो जीता रहूँगा, नही मिलेगी, तो यहीं मर जाऊँगा।"

"तात! यह भार मुझ पर रहा। तू, इसके लिये चिन्ता मत कर" (कह) उसे आश्वासन दे, बहुत से गन्ध, फूल आदि ले, माणविका के पास जाकर, उसे

कहा—"अम्म ! मुझसे तेरी प्रशंसा सुन, मेरा पुत्र (तुझ पर) आसक्त हो गया है। इस विषय में क्या करूँ ?"

"यदि (उसे) ला सके, तो मेरी ओर से छुट्टी ही है।"

उसकी वात सुन, वह उस दिन से, उस घर के कोने कोने से बहुत सा कूडा इकट्ठा करके, फूल लाने की टोकरी मे डाल कर ले जाती, और पहरेदार स्त्री के उस टोकरी को देखने लगने पर, (वह कूडा) उसके ऊपर फेंक देती। वह घबरा कर दूर हट जाती। (यदि कोई) दूसरी पहरेदार स्त्री कुछ कहती तो उसके ऊपर भी, वह उसी प्रकार कूडा उलट देती। तव से (चाहे) वह कुछ लाती, वा ले जाती, कोई उसकी तलाशी (=परीक्षा) करने की हिम्मत न करती। सो उस समय, वह उस धूर्त को फूलो की टोकरी मे लिटा, माणविका के पास लिवा ले गई। धूर्त माणविका के सतीत्व का नाश कर, एक दो दिन प्रासाद में ही रहा। पुरोहित के बाहर जाने पर, दोनो रमण करते; उसके आने पर धूर्त छिप रहता। एक दो दिन के वीतने पर उसने कहा—"स्वामी ! अव तुझे जाना चाहिए।"

"मैं ब्राह्मण को, एक थप्पड़ मार कर जाना चाहता हूँ।"

अच्छा ! ऐसा हो, कह, उसने धूर्त को छिपा कर, ब्राह्मण के आने पर कहा—"आर्य ! मैं चाहती हूँ कि तुम वीणा बजाओ, और मैं नाचू।"

"भद्रे ! अच्छा, नाचो" (कह) वह वीणा बजाने लगा।

"तुम्हारे देखते, नाचते लज्जा आती है, तुम्हारा मुह वस्त्र से बाँध (=ढक) कर नाचूगी।"

"यदि लज्जा लगती है, तो वैसा कर ले।"

माणविका ने घना वस्त्र ले, उसकी आँखें ढँकते हुए, मुह पर (कपडा) बाँध दिया। ब्राह्मण मुह बँधवा कर, वीणा बजाने लगा। उसन थोडी देर नाच कर कहा—"आर्य ! जी चाहता है कि तुम्हारे सिर पर एक थप्पड मारूँ।" स्त्री के लोभ में फँसे हुए ब्राह्मण ने, किसी (भीतरी) वात को न जान कहा—"मार।" माणविका ने धूर्त को इशारा किया।

उसने हलके से आ, ब्राह्मण की पीठ के पीछे खडे हो (उसके) सिर पर, कोहनी से प्रहार दिया। ब्राह्मण की आँखें गिरने वाली सी हो गईं। सिर में फोडा पड गया। उसने दर्द से पीडित होकर कहा—"अपना हाथ ला।" ब्राह्मण तरुणी ने अपना हाथ उठा कर, उसके हाथ मे रख दिया। ब्राह्मण वोला—'हाथ तो कोमल है,

लेकिन प्रहार कड़ा है।' ब्राह्मण को मार कर, धूर्त छिप रहा। धूर्त के छिप रहने पर, ब्राह्मण तरुणी ने ब्राह्मण के मुह पर से कपडा खोल, तेल लेकर, सिर में चोट की जगह पर मला। ब्राह्मण के बाहर जाने पर, उस स्त्री ने, फिर, उस धूर्त को टोकरी में लिटाया, और बाहर ले गई। उसने राजा के पास जा, सब हाल कह सुनाया।

राजा ने अपनी सेवा में आये ब्राह्मण को कहा—"(आओ) ब्राह्मण! जुआ खेलें।"

"महाराज! अच्छा।" राजा ने द्यूत-मण्डल तैयार करवा, पहली ही तरह से जुए का गीत गा कर पाँसा फेंका। ब्राह्मण ने माणविका के तप के खण्डन हुए रहने की बात न जानते हुए कहा—"मेरी माणविका के अतिरिक्त।" ऐसा कहने पर भी, वह हार ही गया। राजा ने जान कर कहा—"ब्राह्मण! "अतिरिक्त" क्या कह रहे हो? तुम्हारी माणविका का सतीत्व भ्रष्ट हो गया। तुम समझते थे, कि शुरू गर्भ से (सँभाल) कर, रखने से, सात जगहों पर पहरा लगा कर रखने से, तुम स्त्री को सँभाल कर रख सकोगे? स्त्री को गोद में लेकर, (साथ) लिए फिरने से भी, उसे (सँभाल) कर रक्खा नही जा सकता। ऐसी कोई स्त्री नही है, जो एक ही पुरुष वाली हो। तेरी माणविका ने 'मैं नाचना चाहती हूँ' (कह) वीणा बजाते रहने पर तेरा मुह कपडे से बाँध, अपने जार को तेरे सिर में कोहनी से प्रहार देने के लिए प्रेरित किया। अब क्या "अतिरिक्त" कहते हो?" यह कह, यह गाथा कही—

यं ब्राह्मणो अवादेसी वीणं सम्मुखवेठितो,
अण्डभूता भता भरिया, तासु को जातु विस्ससे॥

[जिनके कारण ब्राह्मण ने मुह पर पट्टी बाँध कर, वीणा बजाई वह गर्भ से आरम्भ करके पाली गई, भार्य्या थी। ऐसी स्त्रियो का कौन विश्वास करे।]

यं ब्राह्मणो अवादेसी वीणं सम्मुखवेठितो, जिस कारण से ब्राह्मण घने कपड़े से मुह बँधवा कर वीणा बजाता था, वह उस कारण को न जानता था। उसे भी ठगने की इच्छा से, उसने ऐसा किया। ब्राह्मण ने उस स्त्री का अत्यन्त मायावी होना न जान, स्त्री का विश्वास कर समझा कि यह मुझसे लजाती है। सो, उस (ब्राह्मण) के अज्ञान को प्रगट करने के लिए राजा ने ऐसा कहा। यही, यहाँ अभिप्राय है। अण्डभूता भता भरिया, अण्ड कहते हैं बीज को। बीजभूता अर्थात्

माता की कोख से निकलते ही लाई गई। भता अथवा पाली गई। वह कौन ? भार्य्या, प्रजापती, पाद-परिचारिका। भोजन, वस्त्रादि भरना पडने से, टूटे सयम वाली होने से, अथवा लोक-धर्मों से भरी होने से भार्य्या। तातु को जातु विस्ससे जातु=सम्पूर्णत , कोख से आरम्भ करके भी पाली गई भार्य्याओ के इस प्रकार विकृत आचरण करने पर, कौन वुद्धिमान् आदमी, उनका सम्पूर्णत विश्वास करे ? अर्थात् 'यह मेरे प्रति निर्विकार है' ऐसा कौन विश्वास करे ? पाप कर्म का आमन्त्रण निमन्त्रण करने वालो के रहने पर, स्त्री की रक्षा नही की जा सकती।

इस प्रकार वोधिसत्त्व ने ब्राह्मण को धर्मोपदेश किया। ब्राह्मण ने वोधिसत्त्व का धर्मोपदेश सुन, घर जाकर, माणविका से पूछा—"तूने इस प्रकार का पाप-कर्म किया ?"

"आर्य ! ऐसा किसने कहा ? नही किया, प्रहार मैंने ही दिया, किसी और ने नही। यदि विश्वास न हो, तो मैं तुम्हें छोड, किसी दूसरे पुरुष के हस्त-स्पर्श को नही जानती"—ऐसी सत्य क्रिया कर अग्नि में प्रविष्ट हो, तुम्हें विश्वास कराऊंगी। ब्राह्मण ने 'ऐसा हो' (कह) लकडी का वडा ढेर लगवा, उसमें आग दे, उसे वुलवा कर कहा—"यदि अपने पर विश्वास है, तो अग्नि में प्रविष्ट हो।"

माणविका ने अपनी परिचारिका को पहले से ही सिखा-पढा रक्खा था—"अम्म ! तू अपने पुत्र से कह, कि वह मेरे अग्नि प्रवेश करने के समय, वहाँ जाकर मेरा हाथ पकड ले।" उसने जाकर वैसा कहा। धूर्त आकर परिषद् के वीच में खडा हो गया। ब्राह्मण को ठगने की इच्छा से माणविका ने जन (-समूह) के वीच मे खड़े होकर कहा—"ब्राह्मण ! मैं तुझे छोड किसी अन्य पुरुष के हस्त-स्पर्श को नही जानती हू। मेरे इस सत्य (के वल) से, यह अग्नि मुझे न जलाये।" यह कह, वह आग में घुसने को तैयार हुई।

उसी क्षण उस धूर्त ने, "देखो ! इस पुरोहित-ब्राह्मण के काम को, इस प्रकार की माणविका को आग में जलाना (=प्रवेश कराना) चाहता है" कहते हुए, उस माणविका को हाथ से पकड लिया। उसने हाथ छुडा पुरोहित से कहा—"आर्य! मेरी सत्य-क्रिया टूट गई। अव मैं आग में प्रवेश नही कर सकती। कैसे ? आज मैंने यह सत्य-क्रिया की कि अपने स्वामी को छोड कर, मैं किसी के हस्त-स्पर्श को नही जानती। और, अव मुझे इस आदमी ने हाथ से पकड लिया।"

ब्राह्मण जान गया कि इसने मुझे धोका दिया है। सो, उसने उसे पीट कर, निकलवा दिया।

यह स्त्रियाँ ऐसी असद्धर्मिणी होती हैं। कितना बडा भी पाप-कर्म हो, उसे करके, अपने स्वामी को ठगने के लिए, 'नही, मैं ऐसा नही करती हूँ' करके प्रति दिन शपथ खाती हैं। (इस प्रकार) यह अनेक चित्तो वाली होती हैं। इसीलिए कहा गया है—

चोरीन बहुबुद्धीनं यासु सच्चं सुदुल्लभं,
थीनं भावो दुराजानो मच्छस्सेवोदके गतं॥
मुसा तासं यथा सच्चं सच्चं तासं यथा मुसा,
गावो बहुतिणस्से ओमसन्ति वरं वरं॥
चोरियो कठिना हेता वाळा चपलसक्खरा,
न ता किञ्चि न जानन्ति य मनुस्सेसु वञ्चनं॥

[ऐसी स्त्रियाँ—जो चोर है, अतिबुद्धि हैं, जिनमें सत्य का मिलना दुर्लभ है,—उनका भाव, जल में गई मछली (के पद-चिन्ह) की तरह दुर्ज्ञेय है। उनको झूठ वैसा ही है, जैसा सत्य (और) उनको सत्य वैसा ही है, जैसा झूठ। वह बहुत तृण के होने पर, गौवो के अच्छा ही अच्छा (खाने की तरह), नये नये (आदमी) के साथ रमती है। यह चोर, कठोर, हिंसाप्राणी सदृश, चपलता में ककर सदृश (स्त्रियाँ) मनुष्यो के ठगने (की सब विधियो) को जानती है।]

शास्ता ने 'इस प्रकार स्त्रियाँ सभाल कर नही रक्खी जा सकती'—यह धर्म देशना ला, (आर्य) सत्यो का प्रकाश किया। सत्यो (के प्रकाशन) के अन्त में उत्सुक-चित्त (=उत्कण्ठित) भिक्षु स्रोतापत्ति फल में प्रतिष्ठित हुआ। शास्ता ने ने भी मेल मिला जातक का साराश निकाल दिया। उस समय वाराणसी-नरेश मैं ही था।

६३. तक्क जातक

"कोधना अकतञ्ञू च . . ." यह गाथा (भी) शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय, (एक) आसक्त-चित्त भिक्षु के ही सम्बन्ध में कही।

क. वर्तमान कथा

शास्ता ने उसे, 'भिक्षु! क्या तू सचमुच उत्कण्ठित है' पूछा। उसके 'हाँ! सचमुच' कहने पर 'स्त्रियाँ अकृतज्ञ होती है, मित्रो मे फूट डालने वाली होती है, तू किस लिए उनके प्रति चञ्चल हुआ है?' कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी मे (राजा) ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय, बोधिसत्त्व ऋषि-प्रव्रज्या के अनुसार प्रव्रजित हो, गङ्गा के किनारे आश्रम बना, समापत्तियाँ और अभिञ्ञा की प्राप्ति कर, ध्यान मे रत हो, सुख पूर्वक रहते थे। उस समय वाराणसी के श्रेष्ठी की (एक) दुष्ट-कुमारी नामक चण्ड (-स्वभाव) की, कठोर (स्वभाव) की लडकी थी। वह दासो को, नौकरो को गाली देती थी, मारती थी। एक दिन, उसे लेकर, (वे) गङ्गा पर खेलने के लिये गये। उनके खेलते ही खेलते सूर्य्यास्त का समय हो गया। बादल आ गये। आदमी, बादलो को देखकर, इधर उधर भाग गये। श्रेष्ठी की लडकी के दासो, नौकरो ने सोचा—"आज हमें इससे छुट्टी पानी चाहिए (=इसकी पीठ देखनी चाहिए)।" (यह सोच) वह, उसे जल के भीतर ही छोड, स्थल पर चले आये। वर्षा (=देव) बरसी। सूर्य्य भी अस्त हो गया। अंधेरा छा गया। उन्होंने उस (लडकी) के बिना ही घर लौट कर, "वह कहाँ है?" पूछने पर कहा—"गङ्गा से तो पार हो गई थी, फिर हम नही जानते कि कहाँ चली गई।" रिश्तेदारो को ढूंढने पर भी पता नही लगा।

वह चीखती-चिल्लाती, पानी में बहती बोधिसत्त्व की पर्णशाला के समीप पहुँची। उसने उसका शब्द सुन सोचा—"यह स्त्री का शब्द है, मैं इसे बचाऊँगा।"

(और) उसने तिनको की मशाल ले, नदी के किनारे जा, उसे देख, 'डर मत, डर मत' (कहा)। तब आश्वासन दे, (अपने) हाथी सदृश बल से, नदी को तैरते हुए जाकर उसे उठा लाया; और आग बना कर दी। शीत दूर हो जाने पर मधुर फल-फूल लाकर दिये। उनके खा चुकने पर पूछा—"कहाँ की रहने वाली है? कैसे गङ्गा में गिर पड़ी?" उसने वह हाल कह दिया। उसे 'तू यहीं रह' (कह) दो तीन दिन पर्णशाला में रखा; और स्वय खुले में रहे। दो तीन दिन के बाद कहा—"अब जा।" वह 'इस तपस्वी का ब्रह्मचर्य्य तोड, इसे साथ लेकर जाऊँगी' (सोच) न गई। समय बीतते बीतते स्त्रीमाया और स्त्रीलीला दिखा, उसने, उस तपस्वी का ब्रह्मचर्य्य नष्ट कर, उसके 'ध्यान' का लोप कर दिया। वह उसे लेकर जगल में ही रहने लगा। तब उसने उसे कहा—"आर्य! हमें जगल में रहने से क्या (लाभ)? आबादी की जगह पर चलें।" वह उसे लेकर एक सीमान्त के ग्राम में गया। और वहाँ मट्ठा बेच कर जीविका कमा, उसे पालने लगा। तक्र बेच कर जीविका करने से, उसका नाम तक्र-पण्डित पड गया. ग्रामवासियो ने उसे खर्चा दे, 'हमें उचित अनुचित बताते हुए यहाँ रहें' (कह) ग्राम-द्वार पर एक कुटिया बनवा, उसमें बसाया।

उस समय चोर पर्वत से उतर कर, आस-पास लूटमार किया करते थे। एक दिन उन्होंने उस गाँव को लूटा, और ग्रामवासियो से ही उनका सामान उठवा कर, जाते समय, उस श्रेष्ठी की लडकी को भी अपने निवास-स्थान को ले गये। (वहाँ जा) बाकी सब जनों को तो छोड दिया; लेकिन चोरो के सरदार ने उसके रूप पर मुग्ध हो, उसे अपनी भार्य्या बना लिया। बोधिसत्त्व ने पूछा—"अमुक नामक कहाँ रही?"

"चोरों के सरदार ने पकड कर, अपनी भार्य्या बना ली।" यह सुन कर भी बोधिसत्त्व 'वह मेरे बिना वहाँ नही रहेगी, भाग कर आ जायगी' (सोच) उसकी प्रतीक्षा करता रहा। श्रेष्ठी की लडकी ने भी सोचा—"मैं यहाँ सुख से रह रही हूँ। कहीं तक्र-पण्डित किसी काम से यहाँ आकर, मुझे यहाँ से ले न जाये, और मैं इस सुख से वञ्चित हो जाऊँ। सो मैं उसे चाहती हूँ (करके) उसे बुलवा कर, मरवा दूँ।" (यह सोच) उसने एक आदमी को बुला कर सदेशा भेजा—"मैं यहाँ दुःखी हूँ। तक्र-पण्डित आकर मुझे ले जायें।"

उसने उस सदेश को सुन, उस पर विश्वास कर लिया, और जाकर ग्राम

के द्वार पर पहुँच खबर भेजी। उसने बाहर आ, उसे देख, कहा—"आर्य्य ! यदि हम इस समय भगेंगे, तो चोरो का सरदार हमारा पीछा कर, हम दोनों को मार देगा। इस लिए रात को भागेंगे।" (यह कह) उसे लिवा, खिला कर कमरे में बिठाया। शाम को चोरो के सरदार के आकर, शराब पी कर मस्त होने पर पूछा—"स्वामी ! यदि इस समय अपने प्रतिद्वन्दी को देख पाओ, तो क्या करो ?"

"यह करूँगा—यह करूँगा।"

"तो वह क्या दूर है ? क्या वह कमरे में नही बैठा है ?" चोरो के सरदार ने मशाल ले, वहाँ जा कर, उसे देख, पकड घर के बीच में गिरा कर, कुहनी आदि से यथेच्छ पीटा। वह पिटते समय, और कुछ न कह कर, केवल इतना ही कहता—कोधना, अकतञ्ञू च पिसुणा मित्तदूभिका (=क्रोधी, अकृतज्ञ, चुगल खोर, मित्रो में फूट डालने वाली)। चोर ने उसे पीटा, बाँध कर डाल दिया, और अपने खा कर सो रहा। उठने पर, शराब का नशा उतरने पर, फिर उसे पीटना शुरू कर दिया।

वह भी केवल वह चार शब्द ही कहता रहा। चोर ने सोचा—"यह इस प्रकार पीटे जाने पर भी, और कुछ न कह कर, केवल वह चार शब्द ही कहता है। मैं इसे पूछू ?" उसने उस (लडकी) को सोया जान, उससे पूछा—"भो ! तू इस प्रकार पीटे जाने पर भी किस लिए केवल यह चार शब्द ही कहता है ?"

तक्क-पण्डित ने 'तो सुन' (कह) वह सब बात शुरू से कही। "मैं पहले वन में रहने वाला एक ध्यानी, तपस्वी था। सो मैंने इसे गङ्गा में बही जाती हुई को निकाल कर, पाला। इसने मुझे प्रलोभन दे, ध्यान से च्युत किया। मैं जगल छोड, इसका पालन-पोषण करता हुआ सीमान्त के ग्राम में रहने लगा। सो इसने चोरो द्वारा यहाँ लाने पर 'मै दुख से रह रही हूँ, मुझे आकर ले जाओ' मेरे पास सदेश भेज, (मुझे यहाँ बुला) अब तुम्हारे हाथ में सौंप दिया। इस वजह (=कारण) से, मैं ऐसा कहता हूँ।"

चोर सोचने लगा—"जिसने इस प्रकार के गुणवान् उपकारी (आदमी) के साथ इस प्रकार का वर्ताव किया, वह मेरे साथ क्या उपद्रव न करेगी ? इसे हटाना चाहिए।" उसने तक्क-पण्डित को आश्वासन दे, उसे जगा, तलवार ले 'चल, इस पुरुष को ग्राम द्वार पर मारूँगा' कह, उसके साथ ग्राम से बाहर जा, 'इसे हाथ से पकड़' (कह) उस (पुरुष) को, उसके हाथ में पकडाते हुए, तलवार लेकर

तक्र-पण्डित को मारते हुए की तरह, उसी के दो टुकडे कर दिये। (फिर) सिर से नहा कर, कुछ दिन तक तक्र-पण्डित को प्रणीत भोजन से सर्तापित कर पूछा—"अब कहाँ जायेगा?"

तक्र-पण्डित ने कहा—"मुझे गृहस्थ से मतलब नही। ऋषि-प्रव्रज्या के अनुसार प्रव्रजित हो, उसी जगल मे रहूँगा।"

"तो मै भी प्रव्रजित होऊँगा।" दोनो जने प्रव्रजित हो, उस अरण्य मे जा कर, पांच अभिञ्ञा और आठ समापत्तियाँ प्राप्त कर, जीवन के अन्त मे ब्रह्मलोकगामी हुए। शास्ता ने यह दो कथायें कह, मेल मिला, अभिसम्बुद्ध होने की अवस्था मे यह गाथा कही—

> कोधना अकतञ्ञू च पिसुणा च विभेदिका,
> ब्रह्मचरियं चर भिक्खू! सो सुखं न विहाहिसि

["भिक्षु! (जिस पर तू आसक्त है) वह क्रोधी है, अकृतज्ञ है, चुगलखोर है, (मित्रो में) फूट डालनेवाली है। भिक्षु! तू ब्रह्मचर्य्य पालन कर। इससे तेरे (ध्यान) सुख का नाश न होगा।"]

भिक्षु! यह स्त्रियाँ **कोधना** आये क्रोध को रोक नही सकती। **अकतञ्ञू च**, बडे से बडे उपकार को भी भूल जाती हैं (=नही जानती)। **पिसुणा च**, प्रेम को शून्य करने वाली ही बात-चीत करती हैं। **विभेदिका**, मित्रो में फूट डालती है, भेद उत्पन्न करने वाली बात-चीत ही करना इनका स्वभाव है। यह ऐसे दुर्गुणो (=पापकर्मो) से युक्त हैं। तुझे इनसे क्या? **ब्रह्मचरियं चर भिक्खु!** यह जो मैथुन-रहित परिशुद्ध ब्रह्मचर्य है, उसे चर (=पालन कर)। **सो सुखं न विहाहिसि**, सो, तू उस ब्रह्मचर्य वास करते हुए, अपने ध्यान-सुख, मार्ग-सुख, फल-सुख से च्युत न होगा। उन सुख को नहीं छोडेगा। इस सुख से हीन न होगा (=परिहायिस्ससि) न परिहाहिसि, यह भी पाठ है, अर्थ वही है।

शास्ता ने इस धर्मदेशना को ला (आर्य-) सत्यो का प्रकाशन किया। सत्यो के (प्रकाशन के) अन्त में आसक्त (=उत्कण्ठित) भिक्षु श्रोतापत्ति फल में प्रति-

ष्ठित हुआ। शास्ता ने जातक का सारांश निकाल दिया। उस समय का चोरों का सरदार (अब का) आनन्द (स्थविर) था। तक्क-पण्डित तो मैं ही था।

६४. दुराजान जातक

"मासु नन्दि इच्छति म . . . "यह (गाथा) शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय, एक उपासक के सम्बन्ध में कही।

क. वर्तमान कथा

एक श्रावस्ती-वासी उपासक त्रिशरण तथा पाँच शील में प्रतिष्ठित था। उसकी बुद्ध में, धर्म में, तथा संघ में श्रद्धा थी। लेकिन उसकी भार्य्या दुश्शीला पापिन थी। जिस दिन मिथ्या-आचार (=पर पुरुष का सेवन) करती, उस दिन सौ (मुद्रा) से खरीदी हुई दासी की तरह रहती, जिस दिन मिथ्याचार न करती उस दिन स्वामिनी की तरह चण्ड, कठोर (स्वभाव की) होती। वह (पुरुष) उसका कारण न समझ सकता था। उससे अत्यन्त तग आकर वह (कभी कभी) बुद्ध की सेवा में न जाता। सो एक दिन, वह गन्धपुष्प आदि ले, आकर, वन्दना करके बैठा। शास्ता ने पूछा—"उपासक! तू सात आठ दिन से बुद्ध की सेवा मे क्यो नही आता ?"

"भन्ते! मेरी घरवाली एक दिन सौ (मुद्रा) से खरीदी दासी की तरह रहती है, एक दिन स्वामिनी की तरह चण्ड, कठोर (स्वभाव वाली)। मैं उसके मन की बात (=भाव) नही जान सकता। सो मैं उससे तग आ कर बुद्ध की सेवा में नही आता।"

उसकी बात सुन, शास्ता ने "उपासक! स्त्रियो के मन की बात दुर्ज्ञेय होती है। पूर्वजन्म में भी पण्डितो ने तुझे यह बात कही है, लेकिन वह जन्मान्तर की बात होने से, तू उसे नही जान सकता" (कह) उसके प्रार्थना करने पर पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे वाराणसी मे (राजा) ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय, बोधि-सत्त्व लोक-प्रसिद्ध आचार्य्य होकर पाँच सौ ब्रह्मचारियो (=माणवको) को विद्या पढाते थे। सो एक दूर देश का ब्राह्मण तरुण उसके पास विद्या सीखने के लिए आया। वह एक स्त्री पर आसक्त हो, उसे भार्य्या बना, वही वाराणसी में रहते समय ही, दो तीन दिन आचार्य्य की सेवा मे नही गया। उसकी वह भार्य्या दु शीला पापिन थी। मिथ्याचार करने के दिन दासी की तरह रहती और न करने के दिन स्वामिनी की तरह चण्ड कठोर (स्वभाव) की। वह उसके मन की बात न जानने के कारण, उससे परेशान हो, व्याकुल-चित्त हो आचार्य्य की सेवा मे न गया। सात आठ दिन के बाद उसके आने पर आचार्य्य ने पूछा—"माणवक! क्यो, दिखाई नही देते?" उसने उत्तर दिया—"आचार्य्य! मेरी भार्य्या एक दिन (तो मुझे) चाहती है, दासी की तरह नम्र होती है, लेकिन दूसरे दिन स्वामिनी की तरह चण्ड, कठोर (स्वभाव की) होती है। मैं उसके मन की बात नही जान सकता। उससे तग परेशान हो, व्याकुल चित्त (हो) मैं आपकी सेवा मे नही आया।"

आचार्य्य ने—"माणवक! यह ऐसा ही है। स्त्रियाँ अनाचार करने के दिन तो स्वामी का अनुकरण करती हैं, दासी की तरह नम्र होती है, न करने के दिन अभिमान के मारे, स्वामी की कद्र (=गिनती) नही करती। इस प्रकार, यह स्त्रियाँ अनाचारिणी, दु शीला होती हैं। उनके मन की बात जाननी दुष्कर है। उनके चाहने वाली होने पर भी, और न चाहने वाली होने पर भी, आदमी को उनके साथ उपेक्षा का ही व्यवहार करना चाहिए" (कह) उसे उपदेश स्वरूप यह गाथा कही—

> मा सु नन्दि इच्छति म मा सु सोचि न इच्छति,
> थीनं भावो दुराजानो मच्छस्सेवोदके गत ॥

['मुझे चाहती है' (सोच) प्रसन्न न हो, 'मुझे नही चाहती है' (सोच) शोक न करे। पानी में मछलियो की चाल की भाँति स्त्रियो के मन की बात जाननी दुष्कर है।]

मासु नन्दि इच्छति मं 'सु' निपात-मात्र है। 'यह स्त्री मुझे चाहती है, मेरी कामना करती है, मुझसे स्नेह करती है' सोच सन्तुष्ट न हो। **मा सु सोचि न इच्छति,** 'यह मेरी चाह नही करती' सोच कर, शोक न करे, उसके इच्छा करने पर प्रसन्नता न इच्छा करने पर शोक--दोनो में न पड कर, बीच का ही वर्ताव रक्खे। यही स्पष्ट किया गया है। **थीनं भावो दुराजनो,** स्त्रियो का भाव (=मन की बात) स्त्री-माया मे छिपा रहने के कारण दुर्ज्ञेय होता है। जैसे क्या? **मच्छस्सेवोदके गतं,** जिस प्रकार पानी से ढँका रहने के कारण मछली का गमन दुर्ज्ञेय होता है, जिससे वह मछुओ के आने पर, पानी से अपने गमन को छिपा कर भाग जाती है, अपने को पकड़ने नही देती, इसी प्रकार स्त्रियाँ बडे बडे दु शील-कर्म करके भी 'हम ऐसा नही करती' (कह) अपने किये कर्मो को स्त्री-माया से ढँक स्वामियो को ठगती है। इस प्रकार यह स्त्रियाँ पापिन, दुराचारिणी होती है। उनके प्रति बीच का भाव (=मध्यस्थ भाव) रखने वाला ही सुखी रहता है।

इस प्रकार बोधिसत्त्व ने शिष्य को उपदेश दिया। उस समय से वह उसके प्रति मध्यस्थ-भाव रखने लगा। उसकी भार्य्या भी, यह जान कि आचार्य्य ने मेरे दु.शील भाव को जान लिया, उस समय से अनाचार-विरत हो गई। उस उपासक की उस स्त्री ने भी यह समझ कि सम्यक् सम्बुद्ध ने मेरा दुराचारभाव जान लिया, उस समय से पाप-कर्म नही किया।

शास्ता ने भी इस धर्म-देशना को ला (आर्य-) सत्यो को प्रकाशित किया। सत्यो (के प्रकाशन) के अन्त में, (वह) उपासक स्रोतापत्ति-फल मे प्रतिष्ठित हुआ। शास्ता ने मेल मिला, जातक का साराश निकाल दिया। उस समय के स्त्री-पुरुष (=पत्नी-पति) ही अब के स्त्री-पुरुष हुए। आचार्य्य तो, मै ही था।

६५. अनभिरत जातक

"यथा नदी च पन्थो च. . ."यह गाथा, शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय, उसी तरह के उपासक के सम्बन्ध में कही।

क. वर्तमान कथा

वह खोज करके, उसकी दु शीलता की बात मालूम कर, झगड कर, चित्त-व्याकुलता के कारण सात आठ दिन तक सेवा में नही गया। एक दिन विहार जाकर तथागतको प्रणाम कर बैठते (तथागत के) "किस लिए सात-आठ दिन तक नही आया" पूछने पर, उसने कहा—"भन्ते! मेरी भार्य्या दु शीला है। उसीसे व्याकुल-चित्त होने के कारण नही आया।"

शास्ता ने 'उपासक! यह स्त्रियाँ अनाचारिनी है' (करके) उन पर क्रोध न कर, उनके प्रति मध्यस्थ-भाव ही रखना चाहिए', यह बात, तुझे पहले भी पण्डितों ने कही। लेकिन तू जन्मान्तर मे छिपे रहने के कारण उस बात को नही देखता' (कह) उसके प्रार्थना करने पर पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में (राजा) ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय, बोधिसत्व पूर्व प्रकार से ही, लोक-प्रसिद्ध आचार्य्य हुए। सो उसके शिष्य ने भार्य्या का दोष देख, व्याकुल चित्त रहने के कारण, कई दिन न जा कर, एक दिन आचार्य्य के पूछने पर, वह बात निवेदन की। आचार्य्य ने, "तात! स्त्रियाँ सब के लिए हैं। 'यह दु शीला है' (करके) पण्डित लोग उन पर क्रोध नही करते" कह, उपदेश-स्वरूप यह गाथा कही—

> यथा नदी च पन्था च पाणागारं सभा पपा,
> एवं लोकित्थियो नाम नाम कुज्झन्ति पण्डिता।

[जैसे नदी, महामार्ग, शराबखाने, धर्मशालायें तथा प्याऊ, सब के लिए आम होते हैं, वैसे ही लोक मे स्त्रियाँ सब के लिए साधारण होती हैं। पण्डित (=बुद्धिमान्) लोग, उनके विषय मे क्रोध नही करते।]

यथा नदी--जैसे अनेक तीर्थों वाली नदी, नहाने के लिए आने वाले चाण्डाल आदि तथा क्षत्रिय आदि—सभी के लिए आम होती है, उसपर सभी को नहाना मिलता है। **पन्थो**, आदि में भी, जैसे महामार्ग सब के लिए आम है। उस पर सभी चल सकते है। **पाणागार**=शराब खाना भी सबके लिए आम होता है, जो जो पीना चाहते है, वह सब उसमें प्रवेश कर सकते हैं। पुण्येच्छुओ द्वारा जहाँ तहाँ बनाई गई धर्म-शालाएँ (=सभा) भी सबके लिए आम होती है, उसमे सभी प्रवेश कर सकते है। महामार्ग पर पानी की चाटियाँ रख कर बनाये प्याऊ भी सबके लिए आम होते है, वहाँ सभी पानी पी सकते है। **एवं लोकित्थियो नाम**, इसी प्रकार हे तात! लोक में स्त्रिया भी सब के लिए आम है। इसी प्रकार आम (=सार्वजनिक) होने से वह नदी, महामार्ग, पाणागार (=शरावघर) सभा (=धर्मशाला) (तथा) प्याऊ के सदृश है। इसलिए **नासं कुज्झन्ति पण्डिता**, सो इन स्त्रियो के प्रति, यह पापिन है, अनाचारिणी है, दुश्शीलिनी है, सबके लिए आम सोचकर, पण्डित लोग, दक्ष लोग, बुद्धिमान् लोग क्रोध नही करते।

इस प्रकार बोधिसत्त्व ने (अपने) शिष्य को उपदेश दिया। वह उस उपदेश को सुन मध्यस्थ (-भावका) हो गया। उसकी भार्य्या ने भी यह जान कि आचार्य्य ने मुझे जान लिया, उस समय से फिर पापकर्म नही किया। उस उपासक की भार्य्या ने भी, 'शास्ता ने मुझे जान लिया' सोच उस समय से फिर पाप-कर्म नही किया।

शास्ता ने इस धर्म-देशना को ला (आर्य-) सत्यो को प्रकाशित किया। सत्यो (के प्रकाशन) के अन्त में (वह) उपासक स्रोतापति-फल में प्रतिष्ठित हुआ? शास्ता ने मेल मिला, जातक का साराश निकाल दिया। उस समय के स्त्री-पुरुष ही अब के स्त्री-पुरुष (=पति-पत्नी) है, लेकिन आचार्य्य-ब्राह्मण तो मै ही था।

६६. मुदुलक्खण जातक

"एका इच्छा पुरे आसि . . ."यह (गाथा) शास्ता ने जेतवन मे विहार करते समय चित्त के विकार के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

श्रावस्ती निवासी एक कुल-पुत्र शास्ता की धर्म-देशना सुन, (त्रि) रत्न शासन में श्रद्धापूर्वक प्रव्रजित हुआ। वह शिक्षाओं को आचरण मे ला, योगाभ्यास करता, कर्मस्थानो मे लगा रहता था। एक दिन श्रावस्ती मे भिक्षा के लिए घूमते हुए एक अलङ्कृत-सजी स्त्री को देख, (उसे) 'सुन्दर' मान, उसकी इन्द्रियाँ चञ्चल हो गईं। उसके दिल में विकार पैदा हो गया, मानो दूध वाले वृक्ष को वसूले से छील दिया गया हो। उस समय से, विकार के वशीभूत हुए उसको न शारीरिक आनन्द था, न मानसिक। उसकी दशा वैसी ही हो गई, जैसे भ्रान्त मृग की। उसका आचरण (बुद्ध-) शासन के अनुकूल न रहा। केश, नाखून, लोम (रोम) लम्बे हो गये, तथा चीवर मैले-कुचैले रहने लगे। उसकी इन्द्रियो (=आकृति) मे विकृति देखकर उसके मित्रों ने पूछा—"आयुष्मान! तुझे क्या है? तेरी आकृति प्रसन्न नहीं है?"

"आयुष्मानो! (शासन मे) मेरी रुचि नही।"

तब, वे उसे शास्ता के पास ले गये।

शास्ता ने पूछा—"भिक्षुओ! इस अनिच्छुक भिक्षु को लेकर क्यो आये?"

"भन्ते! इस भिक्षु की (शासन मे) रुचि नही रही।"

"भिक्षु! क्या सचमुच?"

"भगवान्! सचमुच।"

"तुझे किसने उत्कण्ठित कर दिया?"

"भन्ते! मैंने भिक्षा के लिए घूमते हुए एक स्त्री को (अपनी) इन्द्रियो को

चञ्चल करके देखा। उससे मेरे मन मे विकार पैदा हो गया। उसीसे मै उत्कण्ठित हूँ।"

शास्ता ने, "भिक्षु! इसमे कुछ आश्चर्य नही, यदि तू इन्द्रियो को चञ्चल कर विपक्षी-आलम्बन,[1] को 'सुन्दर' मानकर देखने से चित्त के विकार द्वारा चलायमान हो गया? पूर्व समय मे पाँच अभिज्ञा तथा आठ समापत्ति लाभी, ध्यानबल से चित्त के मैल का नाश कर, विशुद्ध-चित्त, गगन-तल-चारी बोधिसत्त्व भी, इन्द्रियो को चञ्चल कर, अपने से विपक्षी आलम्बन (=स्त्री) को जब देखते थे, ध्यान से गिर, विकार से विकृत होने पर, बडे दु ख के भागी होते। क्या सुमेरुपर्वत को उखाड डालने वाली हवा, हाथी जितने छोटे-पर्वत को, महाजम्बू वृक्ष को उखाड़ देने वाली हवा, टूटे तट के किनारे उगी झाडी को; महासमुद्र को सुखा देने वाली हवा, छोटे से तालाव को कुछ समझती है? इसी प्रकार उत्तम-बुद्धि विशुद्ध-चित्त बोधिसत्त्वो को भी अज्ञानी बना देने वाले चित्त के विकार क्या तुझसे लज्जा करेंगे? विशुद्ध-सत्व भी विकृत हो जाते है। उत्तम यशस्वी लोग भी अयश को प्राप्त होते है" (कह) पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे **वाराणसी** में (राजा) **ब्रह्मदत्त** के राज्य करते समय, बोधिसत्त्व, **काशी** राष्ट्र के एक महाधनी ब्राह्मण के कुल में उत्पन्न हुए थे। विज्ञता प्राप्त कर सब शिल्पो मे पारङ्गत हो, काम-सुख को छोड, ऋषि प्रव्रज्या के अनुसार प्रव्रजित हो, वह योगाभ्यास करने लगा। अभिञ्जा तथा समापत्तियाँ उत्पन्न कर ध्यान-सुख से सुखी (हो) **हिमवन्त** प्रदेश मे रहने लगा। वह एक समय निमक-खटाई खाने के लिए, हिमवन्त से उतर **वाराणसी** मे पहुँच, राज-उद्यान मे ठहरा। अगले दिन शारीरिक कृत्य समाप्त कर, लाल रग के वल्कल के वस्त्र पहन, एक कन्धे पर अजिन-चर्म रख, जटामण्डल बाँध, झोली-बँहगी ले, वाराणसी मे भिक्षा माँगते हुए राजा के गृहद्वार पर पहुँचा। राजा ने उस की चरिया-विहरण से ही प्रसन्न हो, उसे बुलवा महामूल्यवान् आसन पर बिठा, प्रणीत खाद्य-भोज्य से सन्तुष्ट

---

[1] स्त्री के लिए पुरुष, तथा पुरुष के लिए स्त्री विपक्षी-आलम्बन है।

किया, उसके अनुमोदन[1] कर चुकने पर, उस से उद्यान में ही रहने की प्रार्थना की।

उसने स्वीकार कर, राजा के घर से भोजन खा, राज-कुल को उपदेश देते हुए, उस उद्यान में सोलह वर्ष विताये। एक दिन राजा, उपद्रवी सीमान्त देश को शान्त करने के लिए जाते समय, (अपनी) मृदुलक्षणा नामक अग्रमहिषी को 'आर्य्य की सेवा प्रमाद-रहित होकर करना' कह, चला गया। राजा के जाने के बाद से, बोधिसत्त्व अपनी मरजी के समय, घर जाते। सो एक दिन मृदुलक्षणा, बोधिसत्त्व के लिए भोजन तैयार कर 'आज आर्य्य देर कर रहे हैं' (सोच) सुगन्धित जल से नहा, सब अलंकारों से अलंकृत हो, महातल पर छोटी सी शय्या विछवा, बोधिसत्त्व के आगमन की प्रतीक्षा करती हुई लेट रही।

बोधिसत्त्व भी अपना समय हुआ देख, ध्यान से उठ, आकाश मार्ग से ही राजा के घर पहुँचे। मृदुलक्षणा वल्कल-चीर का शब्द सुन 'आर्य आ गये' समझ, जल्दी से उठी। शीघ्रता से उठने के कारण उसका वारीक वस्त्र खसक गया। तपस्वी ने छज्जे पर से आते हुए, देवी का विपक्षी आलम्बन इन्द्रियों को चंचल करके 'सुन्दर' (=शुभ) मानकर देखा। उसके दिल में विकार पैदा हो गया, जैसे दूध-वाले वृक्ष को वसूले से छील दिया गया हो। उसी समय उसके ध्यान का लोप हो गया। उसकी दशा ऐसी हो गई, जैसी विना पर के कौवे की। उसने खड़े ही खड़े आहार ग्रहण किया और विना खाये चित्त के विकार से कम्पित हो, प्रासाद से उतरा; और उद्यान में जा, पर्णशाला में प्रवेश कर, तखते के शयनासन के नीचे आहार को रख, (अपने) असदृश-आलम्वण[2] से बंध कर, राग-अग्नि से जलते हुए, निराहार रहने के कारण सूखते हुए, सात दिन तखते के विछौने पर पड़े ही पड़े (विता दिये)।

सातवें दिन राजा सीमान्त को शान्तकर, लौट आया। नगर की प्रदक्षिणा कर, विना घर गये ही (पहले) 'आर्य को देखूंगा' (सोच) उद्यान में जा, पर्णशाला में प्रवेश कर, उसे लेटे देखा। राजा ने सोचा—"कोई रोग हो गया होगा।"

---

[1] पुण्यानुमोदन।

[2] विपक्षी-आलम्बन (opposite sex)

सो उसने पर्णशाला की सफाई करा, (उसके) पैर दबाते हुए पूछा—"आर्य! क्या तकलीफ है?"

"महाराज! मुझे और कोई रोग नही है, लेकिन चित्त के विकार के कारण मैं आसक्त हो गया हूँ।"

"आर्य! चित्त किस पर आसक्त हो गया है?"

"महाराज! मृदुलक्षणा पर।"

"आर्य! अच्छा, मैं आपको मृदुलक्षणा देता हूँ" कह, तपस्वी को ले जा, घर मे प्रवेश कर, देवी को सब अलकारो से अलकृत कर तपस्वी को दिया। (लेकिन) देते हुए मृदुलक्षणा को इशारा किया, कि तुझे अपने बल से आर्य (के सदाचार) की रक्षा करनी चाहिए।, "अच्छा! देव! रक्षा करूँगी।" देवी को लेकर तपस्वी राज-भवन से उतरा।

उसने महाद्वार मे निकलने के समय (ही) कहा—'आर्य! हमें एक घर लेना चाहिए। जायें राजा से घर माग लें।' तपस्वी ने जाकर (एक) घर मागा। राजा ने एक ऐसा खाली पडा घर—जिसमे लोग आकर पाखाना कर जाते थे—दिलवाया। वह देवी को ले कर, वहाँ चला गया। देवी ने उसमें प्रविष्ट होने की अनिच्छा प्रगट की।

'क्यो नही प्रवेश करती?'

'(स्थान) गन्दा होने से'

'अब क्या करूँ?'

'इसे साफ कर' (कह) 'राजा के पास जा कुदाली ला, टोकरी ला' (कह) भेजा। अशुचि और कूडा फेकवा, फिर गोबर मँगवा कर लिपवाया। तदनन्तर 'जा चारपाई ला, दीपक ला, बिछौना ला, चाटी ला, घडा ला'—इस प्रकार एक एक मँगवा कर, फिर पानी आदि लाने के लिए कहा। उसने घडा ले, पानी ला, चाटी को घर, स्नान करने के लिए पानी रख, बिछौना बिछाया।

बिछौना पर इकट्ठे बैठते समय उसने, उसे दाढी से पकड, घसीट, नीचा दिखा, अपने सामने किया—"तुझे अपने श्रमण होने का, ब्राह्मण होने का ख्याल नही?" तब उसे अक्ल आई? इतनी देर तक वह अज्ञानी ही रहा। चित्त के विकार ऐसा अज्ञान फैलाने वाले है। "भिक्षुओ! कामच्छन्न नीवरण अन्धा बना देने वाला है, अज्ञानी बना देनेवाला है।" आदि (=सूक्त पाठ) यहाँ कहना चाहिए। उसने

अक्ल (=स्मृति) आने पर सोचा—"यह तृष्णा अधिक होने पर, मुझे चारो नरको मे से सिर न उठाने देगी। आज ही इसे राजा को सौंपकर मुझे हिमवन्त मे प्रवेश करना चाहिए।" (यह सोच) उसने, उसे ले, राजा के पास जा, "महाराज! मुझे तेरी देवी से मतलब नही। केवल इसी के कारण मेरी तृष्णा बढी" (कह) यह गाथा कही—

एका इच्छा पुरे आसि अलद्धा मुदुलक्खणं,
यतो लद्धा अळारक्खी इच्छा इच्छं विजायथ ॥

[मृदुलक्षणा मिलने से पहले, केवल एक ही इच्छा थी, लेकिन जबसे यह विशालाक्षी मिली है, तब से (एक) इच्छा से (दूसरी) इच्छा पैदा हो रही है।]

महाराज! इस तेरी मृदुलक्षणा देवी के मिलने से पुरे (=पहले) 'अहो! मुझे यह मिल जाये'—ऐसी एक ही इच्छा थी, एक ही तृष्णा उत्पन्न हुई। यतो, लेकिन जबसे मुझे यह अळारक्खी=विशालनेत्रा=शोभनलोचना लद्धा (=मिली), तब से उस मेरी एक इच्छा ने घर की तृष्णा, सामान की तृष्णा, उपभोग-सामग्री की तृष्णा (करके) और नाना प्रकार की इच्छाये पैदा कर दी, उत्पन्न कर दी। इस प्रकार मेरी यह बढती हुई इच्छा, मुझे अपाय (=नरक) से सिर उठाने न देगी। यह मुझे बस है, तुम ही अपनी देवी को ग्रहण करो, मै तो हिमवन्त को जाऊँगा।

उसी समय उसका खोया ध्यान उत्पन्न हो गया, और वह आकाश मे बैठकर राजा को उपदेश दे, आकाश मार्ग से ही हिमवन्त को चला गया। फिर आबादी की ओर नही आया। (वहाँ) ब्रह्म-विहारो की भावना कर, ध्यान प्राप्त (हो) ब्रह्म-लोक मे उत्पन्न हुआ।

शास्ता ने इस धर्म देशना को ला, (आर्य) सत्यो को प्रकाशित किया। सत्यो (के प्रकाशन) के अन्त मे, वह भिक्षु अर्हत्व मे प्रतिष्ठित हुआ। शास्ता ने भी मेल मिला, जातक का सारांश निकाल दिया। उस समय का राजा (अब का) आनन्द, मृदुलक्षणा (अब की) उत्पलवर्णा और ऋषी तो मैं ही था।

६७. उच्छंग जातक

"उच्छङ्गे देव ! मे पुत्तो. . . ." यह (गाथा) शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय एक देहाती (=जनपदिक) स्त्री के सम्बन्ध मे कही।

क. वर्तमान कथा

एक समय, कोसल देश (=राष्ट्र) मे तीन जने एक जगल के पास, खेती करते थे। उस समय जगल के अन्दर (कुछ) चोर, लोगो को लूट कर भाग गये। (चोर पकडने वालो ने) चोरो को ढूढते हुए उन्हे न पाया। वहाँ आकर, 'तुम जगल मे डाका डालकर, अब यहाँ किसान बने हो' (कह) 'यह चोर हैं' (समझ), उन्हें बाध कर, कोसल-नरेश को दे दिया। उस समय एक स्त्री, 'मुझे वस्त्र (=आच्छादन) दो, मुझे वस्त्र दो' कहती आकर, रोती पीटती बार बार राज-भवनके पास से गुजरती। राजा ने उसका शब्द सुनकर कहा—"दो, इसे कपडा।" (लोग) वस्त्र लेकर गये। वह उसे देख बोली—'मुझे यह चादर (=वस्त्र) नही चाहिए। मुझे स्वामी रूपी चादर चाहिए।' लोगो ने जाकर राजा से निवेदन किया—"यह ऐसी चादर नही चाहती, यह स्वामी रूपी चादर चाहती है।" राजा ने उसे बुलवा कर पूछा—"तू स्वामी रूपी चादर माँगती है?"

"देव ! स्त्री की चादर (उसका) स्वामी ही है। बिना स्वामी के, (हज़ार मुद्रा) के मूल्य की चादर पहनने पर भी स्त्री नगी ही है।" इस अर्थ के समर्थन के लिए यह, सूक्त कहना चाहिए—

नग्गा नदी अनोदिका नग्ग रट्ठ अराजिकं,
इत्थीपि विधवा नग्गा यस्सापि दस भातरो॥

[बिना पानी के नदी नग्न होती है, बिना राजा के राष्ट्र नग्न होता है। विधवा स्त्री नग्न होती है, चाहे उसके दस भाई क्यो न हो।]

राजा ने उसपर प्रसन्न हो पूछा—"यह तीनों जने तेरे क्या लगते हैं ?"

"देव ! एक मेरा स्वामी है, एक भाई है, एक पुत्र है ?"

राजा ने पूछा—"मैं तुझ पर सन्तुष्ट हूँ। इन तीनों में से एक को देता हूँ, किसे चाहती है ?" वह बोली—"देव ! मैं जीती रही, तो मुझे एक स्वामी भी मिल सकेगा, पुत्र भी मिल सकेगा, लेकिन माता-पिता के मर गये होने से भाई का मिलना दुर्लभ है। मुझे भाई (ही) दें।" राजा ने सन्तुष्ट हो, तीनों को छोड़ दिया। 'उस एक के कारण, तीनों जने दुःख से मुक्त हो गये'—यह बात भिक्षु-संघ में प्रगट हो गई। सो एक दिन धर्म-सभा में एकत्रित हुए भिक्षु, उसकी प्रशंसा कर रहे थे—"आवुसो ! इस एक स्त्री के कारण तीन जने दुःख से मुक्त हो गये।" शास्ता ने आकर पूछा—"भिक्षुओ ! इस समय बैठे क्या बातचीत कर रहे थे ?" (भिक्षुओं के) 'यह बात' कहने पर, शास्ता ने 'भिक्षुओ ! न केवल अभी इस स्त्री ने उन तीन जनों को दुःख से छुड़ाया पहले भी छुड़ाया था' कह, पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में (राजा) ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय तीन जने जंगल के किनारे पर खेती करते थे . . . पूर्वोक्त प्रकार ही। तब राजा के यह पूछने पर कि तीनों जनों में से किसे (छुड़ाना) चाहती है, वह बोली, "देव ! क्या तीनों को नहीं (दे) सकते हैं ?"

"हाँ ! नहीं (दे) सकता।"

"यदि तीनों को नहीं दे सकते, तो मुझे (मेरे) भाई को दें।"

"पुत्र या स्वामी को ले, तुझे भाई से क्या ?" कहने पर "देव ! यह (दोनों) सुलभ हैं; लेकिन भाई दुर्लभ है" कह, यह गाथा कही—

> उच्छङ्गे देव ! मे पुत्तो पथे धावन्तिया पति,
> तञ्च देस न पस्सामि यतो सोदरियमानये ॥

[देव ! पुत्र तो गोद में है, और पति रास्ते चलती को मिल सकता है, लेकिन वह देश नहीं दिखाई देता, जहाँ से भाई (=सहोदर) लाया जा सके।]

उच्छङ्गे देव ! मे पुत्तो, देव ! मेरा पुत्र तो मेरे पल्ले मे है, जैसे जंगल में जाकर, पल्ला करके, साग चुन चुन कर, उसमें डालने से पल्ले में साग सुलभ होता है; इसी प्रकार स्त्री के लिए पुत्र भी, पल्ले मे साग की तरह सुलभ ही होता है। इसी से कहा, **उच्छङ्ग देव ! मे पुत्तो; पथे धावन्तिया पति,** रास्ता पकड कर अकेली जाती हुई स्त्री को भी पति सुलभ है, जो जो देखता है, वही बन जाता है। इसी लिए कहा है, **पथे धावन्तिया पति। तञ्च देसं न पस्सामि यतो सोदरियमानये—** क्योंकि (अब) मेरे माता पिता नही है, इसलिए मै माता की कोख नामक वह दूसरा देश नही देखती, जहाँ से समान-उदर में पैदा होने के कारण, सहोदर कहलाने वाला भाई ले आऊँ। इसलिए मुझे भाई ही दो।

राजा ने 'यह सत्य कहती है' सन्तुष्ट चित्त हो, तीनों जनो को बधनागार से मँगवाकर, दे दिया। वह तीनो जनो को ले कर चली गई।

शास्ता ने भी 'भिक्षुओ ! न केवल अभी, पूर्व जन्म में भी इसने इन तीनो जनो को दुख से मुक्त किया था।' (कह) यह धर्म-देशना ला, मेल मिला, जातक का साराश निकाल दिया। पूर्व-जन्म में चारो जने, अबके चारो जने ही (थे)' लेकिन राजा, उस समय मैं था।

६८. साकेत जातक

"**यस्मिं मनो निविसति.** " यह (गाथा) शास्ता ने साकेत के समीप अंजन वन में विहार करते समय, एक ब्राह्मण के सम्बन्ध में कही।

क. वर्तमान कथा

भिक्षुसंघ सहित भगवान् साकेत (समीपवर्ती अंजन बन) में प्रवेश करते थे। उस समय, एक साकेत नगरवासी वृद्ध ब्राह्मण ने नगर से बाहर जाते समय, (नगर-)

द्वार के बाहर बुद्ध को देखा, और (उनके) पाँव में गिर, पैरो को जोर से पकड कर बोला—"तात! क्या माता-पिता के बूढे होने पर, पुत्र को उनकी सेवा नही करनी चाहिए? तो फिर किस लिए इतनी देर तक तूने अपने को हम से छिपाये रक्खा? खैर, मैंने तो देख लिया, आ अब (अपनी) माता को देखने के लिए चल।" यह कह, वह शास्ता को अपने घर ले गया। भिक्षुसघ सहित शास्ता वहाँ जाकर बिछे आसन पर बैठे। ब्राह्मणी भी आकर शास्ता के पैरो में गिर कर रोने लगी—"तात! इतने समय तक कहाँ रहे? क्या माता-पिता के वृद्ध होने पर, उनकी सेवा नहीं करनी चाहिए?" (यह कहकर) उसने (अपने) लडके लडकियो से भी 'आओ! भाई को प्रणाम करो' (कहके) प्रणाम करवाया। दोनो ने सन्तुष्ट चित्त हो बडा दान दिया। शास्ता ने भोजन के बाद, उन दोनो जनो को जरा-सुत्त[1] का उपदेश दिया। सूत्र (के उपदेश) के अन्त में दोनो जने अनागामि-फल मे प्रतिष्ठित हुए। शास्ता, आसन से उठ अञ्जन वन को ही लौट गये। धर्म-सभा में बैठे हुए भिक्षुओ ने बात चलाई—"आवुसो! तथागत के पिता शुद्धोदन (हैं), माता महामाया (हैं) यह जानकर भी, ब्राह्मण और ब्राह्मणी ने 'तथागत हमारे पुत्र हैं' कहा। शास्ता ने भी इसे सहन कर लिया, क्या कारण है?" शास्ता ने उनकी बात सुन, "भिक्षुओ! वे दोनो जने अपने पुत्र को ही पुत्र कहते थे" (कह) पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

भिक्षुओ! पूर्व समय में, यह ब्राह्मण लगातार पाँच सौ जन्मो तक मेरा पिता हुआ, पाँच सौ जन्मो तक चाचा (=चुल्ल पिता), पाँच सौ जन्मो तक ताया (=महापिता), यह ब्राह्मणी भी लगातार पाँच सौ जन्मो तक माता, पाँच सौ जन्मो तक चाची (=चुल्ल-माता), पाँच सौ जन्मो तक ताई (=महामाता) हुई। इस प्रकार मैं डेढ हजार जन्म तो ब्राह्मण के हाथ मे पला, और डेढ हजार ब्राह्मणी के हाथ में। इस प्रकार तीन हजार जन्मो को कह, बुद्ध होने की अवस्था मे, यह गाथा कही—

---

[1] जरासुत्त (सुत्त निपात ४.६)।

यस्मि मनो निविसति चित्तं वापि पसीदति,
अदिट्ठपुब्बके पोसे कामं तस्मिम्पि विस्ससे ॥

[जिस (आदमी) पर मन ठहर जाता है, अथवा चित्त प्रसन्न होता है, पहले न देखा रहने पर भी, उसमे विश्वास कर लिया जाता है ।]

यस्मि मनो निवसति, जिस आदमी को देखते ही, उसपर मन ठहर जाता है, **चित्तं वापि पसीदति,** जिसको देखते ही चित्त प्रसन्न हो जाता है, मृदु हो जाता है। **अदिट्ठपुब्बके पोसे,** साधारणत. जिसे इस जन्म मे नही देखा है, ऐसे आदमी मे **कामं तस्मिम्पि विस्ससे,** अनुभूत-पूर्व स्नेह के कारण, वैसे आदमी मे भी सम्पूर्ण विश्वास हो जाता है ।

इस प्रकार शास्ता ने इस धर्मदेशना को ला, मेल मिला, जातक का साराश निकाल दिया। उस समय ब्राह्मण और ब्राह्मणी, ये दोनो ही थे, और पुत्र भी मैं ही था।

६९. विसवन्त जातक

"**धिरत्थु तं विसं वन्त . . .**" यह (गाथा) शास्ता ने जेतवन में विहार करत समय, धर्मसेनापति सारिपुत्र के सम्बन्ध मे कही।

क. वर्तमान कथा

स्थविर के खाजा खाने के दिनो में, मनुष्य, सघ के लिए बहुत सा खाजा लेकर, विहार आये। भिक्षुसघ के ले लेने पर, बहुत सा (खाजा) बाकी बच गया। लोग कहने लगे, "भन्ते ! जो (भिक्षु) गॉव में गये हुए है, उनका (हिस्सा) भी

ले लें।" उस समय स्थविर का (एक) बालक-शिष्य गाँव में गया था। (लोगो ने) उसका हिस्सा ले, उसके न आने पर, वहुत देर होती है (सोच) वह हिस्सा स्थविर को दे दिया। स्थविर ने जव उसे खा लिया, तो वह लडका आया। सो स्थविर ने उससे कहा—"आयुष्मान्! मैने तेरे लिए रक्खा हुआ खाद्य खा लिया।"

वह वोला—"भन्ते! मधुर (चीज) किसे अप्रिय लगती है?"

महास्थविर को खेद हुआ। उन्होने निश्चय किया कि "अव इस के बाद (कभी) खाजा न खायेंगे।" उसके बाद से सारिपुत्र स्थविर ने कभी खाजा नही खाया। उनके खाजा न खाने की वात भिक्षु-सघ में प्रगट हो गई। धर्म-सभा में बैठे भिक्षु उसकी चर्चा कर रहे थे। शास्ता ने पूछा—"भिक्षुओ! इस समय बैठे क्या वात कर रहे हो?"

"यह (कथा)" कहने पर, (शास्ता ने) "भिक्षुओ! एक वार छोडी हुई चीज को सारिपुत्र, प्राण छोडने पर भी (फिर) ग्रहण नही करता" (कह) पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में (राजा) ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय, वोधिसत्त्व एक विष-वैद्य के कुल में उत्पन्न हो, वैद्यक से जीविका चलाते थे। (एक वार) एक देहाती को साँप ने डँस लिया। उसके रिश्तेदार देर न कर, जल्दी से वैद्य को बुला लाये। वैद्य ने पूछा—दवा के जोर से विष को दूर करूँ? अथवा जिस साँप ने डँसा है, उसे वुलाकर, उसी से डँसे हुए स्थान से विष निकलवाऊँ?

(लोगों ने कहा)—"सर्प को वुलाकर, विष निकलवाओ।"

उसने साँप को वुलाकर पूछा—"इसे तू ने डँसा है?"

"हाँ! मैने।"

"अपने डँसे हुए स्थान से तू विष को निकाल।"

"मैंने एक वार छोडे विष को फिर कभी ग्रहण नही किया; सो मैं अपने छोड़े विष को नही निकालूँगा।"

उसने लकडियाँ मँगवा कर, आग वनाकर कहा—"यदि अपने विष को नही निकालता, तो इस आग में प्रवेश कर।"

सर्प बोला—"आग मे प्रविष्ट हो जाऊँगा, लेकिन एक बार छोडे अपने विष को फिर नही चाटूंगा।" यह कह, उसने यह गाथा कही—

धिरत्थु तं विसं वन्त यमहं जीवितकारणा,
वन्तं पच्चावमिस्सामि मतम्मे जीविता वरं॥

[धिक्कार है, उस विष को, जिसे जीवन की रक्षा के लिए, एक बार उगल कर मैं फिर निगलू। ऐसे जीवन से मरना अच्छा है।]

धिरत्थु, निन्दार्थक निपात है। **तं विसं**, उस विष को। **यमहं जीवित कारणा** (=जिसे मै (अपने) जीवन की रक्षा के लिए) **वन्तं विसं** (=उगले हुए विष को) **पच्चावमिस्सामि** (=निगलूगा), उस उगले हुए विष को धिक्कार है। **मतम्मे जीविता वरं**, उस विष को फिर न निगलने के कारण, जो आग में प्रविष्ट होकर मरना है, वह मेरे जीवित रहने की अपेक्षा अच्छा है।

यह कह, वह अग्नि में प्रविष्ट होने के लिए तैयार हुआ। वैद्य ने उसे रोक, रोगी को औषध तथा दवाई से निरोग कर दिया। फिर सर्प को सदाचारी बना, 'अब से किसी को दुख न देना' (कह) छोड दिया।

शास्ता ने भी "भिक्षुओ! एक बार छोडी हुई (चीज) को **सारिपुत्र**, प्राण छोड़ने पर भी फिर ग्रहण नही करता"—यह धर्मदेशना ला, मेल मिला, जातक का साराश निकाल दिया। उस समय का सर्प (अब का) **सारिपुत्र** था, वैद्य तो मैं ही था।

७०. कुद्दाल जातक

"न तं जितं साधुजितं ..." यह (गाथा) शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय, चित्तहत्थ सारिपुत्र स्थविर के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

वह श्रावस्ती का एक कुल-पुत्र था। उसने एक दिन हल चला कर, लौटते हुए, विहार में एक स्थविर के पात्र में से उत्तम स्निग्ध, मधुर भोजन पाकर सोचा—'हम अपने हाथ से, रात दिन, नाना प्रकार के काम करते हुए भी, इस प्रकार का भोजन नहीं पाते। हमें भी प्रव्रजित होना चाहिए'। (सोच) वह प्रव्रजित हुआ। महीने आध महीने में ही, अनुचित ढंग से विचार करने के कारण, क्लेश (=चित्त विकार) के वशीभूत हो, वह भिक्षु-आश्रम छोड गया। पीछे भोजन के अभाव से कष्ट पा फिर आकर, प्रव्रजित हुआ और अभिधर्म सीखा। इसी प्रकार ६ वार भिक्षु-आश्रम छोड प्रव्रजित हुआ, और सातवी वार प्रव्रजित होने पर (अभिधर्म के) सातो प्रकरणों का ज्ञाता हो, वहुत से भिक्षुओं को धर्म वॅचवाते, (उसने) अर्हत्व पद को प्राप्त किया। तव उसके मित्रो ने उसकी हँसी की—"आयुष्मान्! चित्त! पूर्व की भाँति, अव तेरे चित्त में विकार वृद्धि नही पाता।"

"आवुसो! अव इसके वाद मेरे गृहस्थ होने की सम्भावना नही रही।" सो, उसके अर्हत् होने की वात धर्म-सभा में चली—'आवुसो! इस प्रकार अर्हत् पद की योग्यता रख कर भी, आयुष्मान् चित्तहत्थ सारिपुत्र छ वार गृहस्थ हुए। अहो! पृथग्-जन[1] होने में कितना वडा दोष है!' शास्ता ने आकर 'भिक्षुओ! इस समय बैठे क्या वातचीत कर रहे थे' पूछ 'यह वातचीत' कहने पर, कहा—"भिक्षुओ!

---

[1] जो न मुक्त है, न मुक्ति के मार्ग पर स्थिरता के साथ आरूढ़ है।

पृथक्जन का चित्त हलका (=लघुक) होता है, उसका निग्रह करना दुष्कर होता है, किसी आलम्बन (=विषय) में जाकर आसक्त हो जाता है, एक बार आसक्त होने पर, (उसे) जल्दी छुडाया नही जा सकता। इस प्रकार के चित्त का संयम (=दमन करके) रखना अच्छा है, सयत रहने पर ही वह सुख का कारण होता है।

दुन्निग्गहस्स लहुनो यत्थकामनिपातिनो,
चित्तस्स दमथो साधु चित्तं दन्तं सुखावहं ॥[1]

[निग्रह करने मे दुष्कर, लघुक, जहाँ चाहे वही गिर पडने वाले चित्त को संयत रखना अच्छा है। चित्त का सयम सुख का कारण होता है।]

उसका निग्रह दुष्कर होने के कारण ही, पूर्व समय में एक पण्डित, एक कुदाली के लोभ के मारे उसे न छोड सकने के कारण छ बार गृहस्थ हुए और सातवी बार प्रव्रजित हो, ध्यान उत्पन्न कर, उस लोभ का निग्रह कर सके। यह कह, पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में बाराणसी में (राजा) ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय, बोधिसत्त्व (एक) कुंजडे (तरकारी बेचने वाले) के कुल में उत्पन्न हो, बालिग हुए। उनका नाम हुआ कुदाल-पण्डित। वह कुदाल से जमीन खोद कर, उसमें साग, लौकी, कद्दू (तथा अन्य) सब्जी-तरकारी बोकर, और उन्हें बेच कर भी, दरिद्र जीवन व्यतीत करता था। उसके पास एक कुदाली को छोड कर, धन नाम की, और कोई जीज नही थी। उसने एक दिन सोचा—"मुझे गृहस्थ में रहने से क्या लाभ? (घर से) निकल कर प्रव्रजित हो जाना चाहिए।" तब एक दिन उस कुदाली को एक जगह छिपा कर, वह ऋषि प्रव्रज्या के अनुसार प्रव्रजित हुआ। (पीछे) उस कुदाली की याद आने पर, लोभ को शान्त न कर सकने के कारण, उस खुण्डी कुदाली के लिए (वह फिर) गृहस्थ बन गया। इसी प्रकार दूसरी, तीसरी (बार करके) छ बार उस कुदाली को छिपा, निकल कर प्रव्रजित हो फिर गृहस्थ हुआ। लेकिन सातवी बार उसने सोचा—"मैं इस खुण्डी कुदाली के लिए बार

---

[1] धम्मपद (चित्तवग्ग)।

वार गृहस्थ बना, अब इस वार उसे महानदी में फेंक कर प्रव्रजित होऊँगा।" तब उसने नदी के किनारे जा 'यदि इस के गिरने की जगह देखूगा, तो शायद फिर आकर निकालने का मन हो' (सोच) कुदाल को बेंट से पकड, हाथी समान बल से, सिर के ऊपर तीन बार घुमा, आँखें मीच, नदी के बीच में फेंक दिया, और तीन बार सिंह नाद किया—"मैंने जीत लिया। मैंने जीत लिया।"

उस समय वाराणसी नरेश सीमान्त देश (के उपद्रव) को शान्त कर, लौट रहे थे। उन्होने नदी पर सिर से नहा, सब अलङ्कारो से अलकृत हो, हाथी के कन्धे पर बैठ कर जाते समय, बोधिसत्त्व के उस शब्द को सुनकर (सोचा)—"यह पुरुष कहता है, 'मैंने जीत लिया,' इसने किसे जीत लिया?" 'उसे बुलाओ' (कह) बुलवा कर पूछा—"भो! पुरुष! मैं तो सग्रामविजेता हूँ। अभी विजय करके आ रहा हूँ। तू ने किसे जीता है?"

बोधिसत्त्व ने, "महाराज! तुम्हारा हजार-सग्राम, लाख-सग्राम जीतना भी वास्तविक जीतना नही, क्योकि तुमने चित्त के विकारो को नही जीता। मैंने अपने अन्दर के लोभ का दमन करते हुए चित्त-विकारो को जीता है" कहते हुए महानदी की ओर देखा। उसी समय जल (-कसिण) के ध्यान से उत्पन्न होनेवाला ध्यान उत्पन्न हो गया। योगबल-सम्पन्न हो, उन्होने आकाश में बैठ, राजा को धर्मोपदेश देते हुए यह गाथा कही—

न तं जित साधुजितं यं जितं अवजीयति,
त खो जित साधुजितं य जित नावजीयति॥

[वह जीत अच्छी जीत नही, जिस जीत की फिर हार हो। वही जीत अच्छी जीत है, जिस जीत की फिर हार न हो।]

———

न त जित साधुजितं यं जित अवजीयति, शत्रुओ से जिस देश को जीत लिया हो, यदि शत्रु फिर उस देश को जीत ले, तो वह जीत अच्छी जीत नही। क्योकि उसे फिर (दूसरा) जीत ले जा सकता है। दूसरा अर्थ 'जित' कहते हैं 'जय' को। शत्रुओ के साथ युद्ध करके जो जय प्राप्त की गई है, यदि वह फिर उनके जीतने से पराजय हो जाय, वह (जय) अच्छी नही, शोभा का कारण नही। किस लिए?

क्योकि (वह) फिर पराजय (के रूप मे वदली जा सकती) है। तं खो जित साधु जितं यं जितं नावजीयति, लेकिन जो शत्रुओ को जीतकर, उनसे फिर नही हारता है, अथवा एक वार प्राप्त की गई जो जय फिर पराजय (के रूप में वदल) नही सकती वही जय अच्छी जय है, शोभा का कारण है। क्योकि (वह) फिर हार में नही वदली जा सकती। इसलिए महाराज! हजार वार भी, लाख वार भी सग्राम मे विजयी होने पर, तुम सग्राम-योधा नही हो। क्योकि तुमने अपने चित्त के विकारो को नही जीत पाया। जो एक वार भी अपने अन्दर के चित्त-विकारो को जीत लेता है, वही उत्तम सग्राम-विजयी है। (इस प्रकार) आकाश में बैठे ही वैठे, इस वुद्ध-लीला से राजा को धर्मोपदेश दिया। श्रेष्ठ सग्राम-विजेता का भाव यहाँ दिखाया गया है—

यो सहस्सं सहस्सेन सङ्गामे मानुसे जिने,
एकं च जेय्यमत्तानं स वे सङ्गामजुत्तमो ॥[1]

[जो एक (आदमी) सहस्र जनो को लेकर, सग्राम में सहस्र जनो को जीत लेता है, और एक सिर्फ अपने को जीतता है। तो अपने आप को जीतने वाला ही, उत्तम सग्राम-विजेता है।]

यह सूत्र (उक्त विचार का) समर्थक है। यह धर्म सुनते ही, राजा के चित्त का क्रियात्मक विकार नष्ट हो गया, और उसका चित्त प्रव्रज्या की ओर झुका। राजा की सेना के चित्त का विकार भी, उसी तरह नष्ट हो गया।

राजा ने वोधिसत्त्व से पूछा—'अव आप कहाँ जायेंगे?'

"महाराज! हिमवन्त में जा, ऋषि प्रव्रज्या के अनुसार प्रव्रजित होऊँगा।"

'तो मै भी प्रव्रजित होऊँगा' (कह) वह वोधिसत्त्व के साथ ही निकल पडा। सेना, व्राह्मण गृहपति, सव श्रेणियाँ[2], (तथा) उस स्थान पर एकत्र हुआ सभी जन-समूह, राजा के साथ ही निकल पडा। वाराणसी-वासियो ने सोचा—

"कुद्दाल पण्डित की धर्म-देशना सुन, हमारा राजा, प्रव्रज्या का इच्छुक हो, सेना सहित ही चला गया है, हम यहाँ (रहकर) क्या करेंगे?" (यह सोच)

---

[1] धम्मपाद (सस्स वग्ग ८.३)

[2] भिन्न भिन्न शिल्पियो के समुदाय।

बारह योजन की वाराणसी के सभी निवासी निकल पडे। (उसकी) बारह योजन की परिषद् (=मण्डली) हुई। उसे ले, बोधिसत्व हिमवन्त में प्रविष्ट हुए।

देवेन्द्र शक्र का (सिंह-) आसन गर्म हो गया। उसने ध्यान लगाकर देखा कि कुद्दाल-पण्डित ने महा अभिनिष्क्रमण (गृहत्याग) किया है, और (उसके साथ) बहुत जन-समूह है। फिर (सोचा) कि उन्हें निवास स्थान मिलना चाहिए। उसने विश्वकर्मा को बुला कर कहा—"तात! कुद्दाल-पण्डित ने महाभिनिष्क्रमण किया है। (उन्हें) निवास स्थान मिलना चाहिए। तू हिमवन्त प्रदेश में जाकर समतल भूमि पर तीस योजन लम्बा और पन्द्रह योजन चौडा आश्रम बना।" उसने 'देव! अच्छा' कह, जाकर, वैसा (आश्रम) बना दिया। यहाँ यह संक्षिप्त वृत्तान्त है। विस्तार हत्थिपाल जातक[1] में आयेगा। यहाँ और वहाँ एक ही वर्णन है।

विश्वकर्मा ने आश्रम में पर्णशालायें बनाईं, फिर कुशब्द वाले मृगो, पक्षियों तथा अमनुष्यो (=भूत प्रेत, आदि) को दूर कर, उस उस तरफ एक एक पगडण्डी बना, अपने निवास स्थान को चला गया। कुद्दाल पण्डित भी, उस परिषद् को साथ ले, हिमवन्त में प्रविष्ट हुए, और उन्होने (वहाँ) शक्र के दिये हुए आश्रम पर जा, विश्वकर्मा के बनाये हुए प्रव्रजित परिष्कारो को ग्रहण किया। फिर पहले अपने आपको प्रव्रजित कर, अपने अनुयायियो (=परिषद्) को प्रव्रजित करा, आश्रम (को) उनमें बाँट दिया। (उस समय) सात राज्य खाली हो गये। तीस योजन (की दूरी का) आश्रम भर गया। कुद्दाल पण्डित ने शेष कसिण (योगाभ्यास) का भी अभ्यास किया, ब्रह्मविहारो[2] की भावना की और परिषद् को भी कर्मस्थान (=योगाभ्यास के साधन) बतलाये। सभी (लोग) समापत्ति (समाधि) प्राप्त कर, ब्रह्मविहारो की भावना करके, ब्रह्मलोक परायण हुए। लेकिन जिन्होने उनकी सेवा सुश्रुषा की थी, वे देवलोकगामी हुए।

शास्ता ने, 'भिक्षुओ! इस प्रकार इस चित्त के विकृत हो जाने पर—विकार के उत्पन्न हो जाने पर, उसका मुक्त करना आसान नहीं होता। लोभ का त्याग कठिन होता है, इस प्रकार के पण्डितो को भी (लोभ) अज्ञानी बना देता है' (कह) यह धर्मदेशना ला, (आर्य-) सत्यो को प्रकाशित किया। सत्यो (के प्रकाशन)

---

[1] हत्थिपाल जातक (५०९)

[2] मैत्री, करुणा, मुदिता तथा उपेक्षा-भावना।

के अन्त में, कोई स्रोतापन्न हुए, कोई सकृदागामी हुए, कोई अनागामी हुए, किन्ही ने अर्हत् पद को प्राप्त किया।

शास्ता ने भी मेल मिला, जातक का सारांश निकाल दिया। उस समय का राजा (अब का) आनन्द था। परिषद् (अब की) बुद्ध परिषद्। कुदाल पण्डित तो मैं ही था।

पहला परिच्छेद

८. वरण जातक

७१. वरण जातक

"यो पुब्बे करणीयानि …" यह (गाथा) शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय, कुटुम्बियपुत्र तिस्स स्थविर के सम्बन्ध में कही।

क. वर्तमान कथा

एक दिन परस्पर मित्र तीन कुलपुत्र गन्ध-पुष्प-वस्त्र आदि ले, 'शास्ता की धर्मदेशना सुनेंगे' (करके) बहुत से लोगों सहित, जेतवन गये। (वहाँ) नाग मालक तथा शालमालक आदि (शालाओं) में कुछ देर बैठे। जब शाम के समय शास्ता सुगन्धि-गन्ध से सुवासित-गन्धकुटी से निकल कर, धर्म-सभा में जा, अलङ्कृत बुद्धासन पर बैठे, तब अनुयायियों सहित धर्म-सभा में जा शास्ता की सुगन्धित पुष्पों से पूजा की, तथा चक्र से अङ्कित तल और पुष्पित पद्म से सुशोभित तलवाले चरणों में प्रणाम कर, एक ओर बैठ, धर्मोपदेश सुना। उनको ऐसा विचार हुआ— 'जैसे जैसे हम भगवान् द्वारा उपदिष्ट धर्म को जानते हैं, उससे तो हमें प्रव्रजित होना चाहिए।' फिर उन्होंने तथागत के धर्म-सभा से निकलने के समय, पास जाकर, प्रणाम कर प्रव्रज्या की याचना की। शास्ता ने उनको प्रव्रज्या दी।

उन्होंने आचार्यों उपाध्यायों को सन्तुष्ट कर, (उनसे) उपसम्पदा प्राप्त की, और पाँच वर्ष तक (उनके) पास रह, दोनों मातृका[1] (=शीर्षक) कण्ठस्थ की, कल्प्य अकल्प्य (कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य) को जाना, तीनों प्रकार की अनुमोदनाओं[2] को

---

[1] भिक्षु-प्रातिमोक्ष तथा भिक्षुणी-प्रातिमोक्ष।

[2] माङ्गलिक, अमाङ्गलिक तथा भिक्षा ग्रहण करने के अनन्तर उपदेश।

सीखा। फिर चीवरो को सी, रग कर, योगाभ्यास (=श्रमणधर्म) करने की इच्छा से आचार्य्य उपाध्यायो से आज्ञा ले, शास्ता के पास जा, प्रणाम कर, एक ओर बैठ यह याचना की—"भन्ते! हम ससार (=भव) के प्रति विरक्त है, जाति-जरा-व्याधि तथा मरण से भयभीत है, हमें संसार से मुक्त होने के लिए कर्मस्थान (=योग के साधन) का उपदेश करें।" शास्ता ने उन्हें अडतीस कर्मस्थानो[1] में से, उनके अनुकूल कर्मस्थान चुन कर बतला दिये।

उन्होने शास्ता के पास से कर्मस्थान ले, उनकी वन्दना तथा प्रदक्षिणा कर, परिवेण में जा, आचार्य्य उपाध्याय से भेंट की, फिर पात्र चीवर ले, योगाभ्यास करने निकल पडे।

उनके बीच मे **कुटुम्बियपुत्त** तिस्स स्थविर नाम का एक भिक्षु आलसी, निरुद्योगी तथा जिह्वालोलुप था। वह सोचने लगा—"न तो मै जगल में रह सकता हूँ, न मै योगाभ्यास कर सकता हूँ, न भिक्षा माँग कर निर्वाह कर सकता हूँ, सो मैं जाकर क्या करूँगा? मै यही रुक जाऊँ।" तब वह भिक्षु हिम्मत-हार, (कुछ दूर तक) अन्य भिक्षुओ के साथ जाकर, रुक रहा। अन्य भिक्षु, **कोसल** जनपद मे विचरते हुए, एक सीमान्त ग्राम मे पहुँचे, और उसके समीप के एक जगल में वर्षा-वास करने लगे। तीन महीने के भीतर प्रयत्न करके उन्होने विदर्शना ज्ञान तथा पृथ्वी को उन्नादित करते हुए अर्हत् पद को प्राप्त किया। वर्षावास के बाद, पवारणा कर, (अपने) प्राप्त गुण को शास्ता से कहने की इच्छा से वह वहाँ से निकल, क्रमश: जेतवन पहुँचे, और पात्र-चीवर रख, आचार्य्य उपाध्यायो से भेंट की, फिर तथागत के दर्शन के लिए, शास्ता के पास जा, प्रणाम कर एक ओर बैठे। शास्ता ने उनके साथ मधुर बातचीत की। बातचीत के अनन्तर, उन्होने अपने प्राप्त गुण को तथागत से निवेदन किया। शास्ता ने उन भिक्षुओ की प्रशसा की।

शास्ता को उन भिक्षुओ की प्रशसा करते देख, **कुटुम्बियपुत्त तिस्स** स्थविर की भी योगाभ्यास करने की इच्छा हुई। उन भिक्षुओ ने शास्ता से आज्ञा माँगी—"भन्ते! हम उसी जगल में जाकर रहेंगे।" शास्ता ने 'अच्छा' कह, आज्ञा दी। वे प्रणाम करके परिवेण को चले गये। उस कुटुम्बियपुत्त तिस्स स्थविर ने, रात होने पर, अत्यन्त उत्साहित हो, बडी तेजी से योगाभ्यास करना शुरू किया। आधी

---

[1] सब कर्मस्थान चालीस हैं। अन्तिम दो छोटे होने से गिनती नहीं की जाती।

रात वीतने पर, तख्ते के सहारे खडे ही खडे, ऊँघते उलट कर, गिर पडा, और उसने (अपने) जाँघ की हड्डी तुडा ली। वडी पीडा होने लगी। उसकी सेवा-शुश्रूपा में लग जाने मे उन भिक्षुओ का जाना न हो सका।

उनके सेवा में आने के समय शास्ता ने पूछा—"भिक्षुओ! क्या तुमने कल जाने की आज्ञा नही ली थी?"

"भन्ते! हाँ! लेकिन हमारे साथी कुटुम्बियपुत्त तिस्स स्थविर ने, असमय पर, वडी तेजी के साथ योगाभ्यास करना शुरू किया, और ऊँघते हुए उलट कर गिर पडा, जिससे उसने जाँघ की हड्डी तुडा ली, उसके कारण हमारा जाना न हो सका।"

शास्ता ने 'भिक्षुओ! न केवल अभी इसने अपनी उत्साह-हीनता के कारण, असमय पर वडी तेजी के साथ योगाभ्यास (=वीर्य्य) करते हुए, तुम्हारे जाने में वाधा डाली है, पहले भी इसने तुम्हारे जाने में वाधा डाली थी' कह, उनके प्रार्थना करने पर पूर्व जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में गान्धार देशस्थ तक्षशिला में, वोधिसत्त्व लोकप्रसिद्ध आचार्य हो कर, पाँच सौ माणवको (=शिष्यो) को विद्या (=शिल्प) सिखाते थे। एक दिन वे माणवक लकडी लाने के लिए जगल में जाकर, लकडियाँ चुनने लगे। उनके वीच में एक आलसी माणवक था। उसने एक वडे भारी वरुण-वृक्ष को देख, सोचा—'यह सूखा वृक्ष है, अभी थोडा सोकर, पीछे वृक्ष पर चढ, लकडियाँ तोड़-कर चलूँगा।' वह अपनी चादर विछा, लेटकर गाढी निद्रा में सो गया। वाकी माणवक लकडियो का वोझा वाँध, लेकर जाते समय, उसकी पीठ में पैर से ठोकर लगा, उसे जगा कर चले गये।

आलसी माणवक आँखें मलते मलते उठा; और विना नीद उतरे ही, वृक्ष पर चढ, शाखा को अपनी ओर खीच कर तोडने लगा। उस समय टूटी शाखा के झटके से नोक उछल कर उसकी आँख में लगी। उसने एक हाथ से आँखको दवाया, और दूसरे हाथ से गीली लकडियाँ तोडी। वृक्ष से उतर, लकडियो की गाँठ वाँध, जल्दी से जाकर (उसने उन्हें) औरो की गिराई लकडियो के ऊपर डाल दिया। उस दिन देहात के एक ग्राम के किसी कुल मे आचार्य्य को अगले दिन पाठ

(=ब्राह्मण वाचनकं) करने का निमन्त्रण आया था। आचार्य्य ने विद्यार्थियो को कहा—'तात ! कल एक गाँव में जाना है। तुम खाली पेट न जा सकोगे। (इसलिए) प्रात काल ही यवागु पकवा कर वहाँ जाना, तथा अपना और हमारा हिस्सा, सब लेकर चले आना।'

उन्होने प्रात काल ही यवागु पकाने के लिए, दासी को उठा कर कहा—'हमारे लिए जल्दी से यवागु बना।' उसने लकडी लेते समय, ऊपर रक्खी हुई वरुण की गीली लकडी ले ली। बार बार फूक मार कर भी आग न जल सकी। जिसके कारण, दिन चढ आया। विद्यार्थी, 'बहुत दिन चढ आया, अब जाना नही हो सकेगा' (सोच) आचार्य्य के पास गये। आचार्य्य ने पूछा—"तात ! क्या नही गये ?"

"हाँ आचार्य्य ! नही गये।"

"क्या कारण ?"

"अमुक नाम का आलसी विद्यार्थी हमारे साथ लकडी लेने के लिए जंगल गया था। वह वरुण-वृक्ष के नीचे सो गया। पीछे जल्दी से वृक्ष पर चढ, आँख फुडवा ली, और वरुण की गीली लकडियाँ लाकर, हमारी लाई हुई लकड़ियो के ऊपर डाल दी। यवागु पकाने वाली, उन्हें सूखी लकडियाँ समझ, (जलाने लगी, किन्तु) सूर्य्योदय तक आग न जला सकी। इस कारण से हमारे गमन में बाधा हुई।"

आचार्य्य ने, माणवक की करतूत सुन, 'अन्धे-मूर्खों के काम से इसी प्रकार हानि होती है' (कह) यह गाथा कही—

यो पुब्बे करणीयानि पच्छा सो कातुमिच्छति,
वरणकट्ठभञ्जोव स पच्छा मनुतप्पति॥

[जो पहले करने योग्य है, उसे जो पीछे करना चाहता है; वह वरुण की लकडी तोडने वाले की तरह, पीछे पश्चात्ताप को प्राप्त होता है।]

स पच्छा मनुतप्पति, जो कोई आदमी 'यह पहले करना चाहिए, यह पीछे', इसका बिना विचार किये **पुब्बे करणीयानि,** पहले करने योग्य कार्यों को **पच्छा** (=पीछे) करता है, वह **वरणकट्ठभञ्जो** हमारे माणवक की तरह, मूर्ख आदमी, पीछे पश्चात्ताप करता है, शोक करता है, रोता है।

इस प्रकार बोधिसत्त्व अपने शिष्य को यह बात कह, दान आदि पुण्य-कर्म कर, जीवन की समाप्ति पर, (अपने) कर्मानुसार परलोक गया।

शास्ता ने 'भिक्षुओ! न केवल अभी यह तुम्हारा बाधक हुआ है, पहले भी हुआ था' (कह) यह धर्मदेशना ला, मेल मिला, जातक का सारांश निकाल दिया। (उस समय का) आँख फुड़वा लेने वाला विद्यार्थी, (अब का) जाँघ तोड लेने वाला भिक्षु था, शेप माणवक (अब की) बुद्ध परिषद्, और आचार्य्य ब्राह्मण तो मैं ही था।

७२. सीलवनागराज जातक

"अकतञ्ञुस्स पोसस्स ..." यह (गाथा) शास्ता ने वेळुवन में विहार करते समय देवदत्त के सम्बन्ध में कही।

क. वर्तमान कथा

धर्म सभा में बैठे भिक्षु कह रहे थे—"आवुसो! देवदत्त अकृतज्ञ है, तथागत के गुणों को नही जानता।" शास्ता ने आकर, 'भिक्षुओ! अब बैठे क्या बातचीत कर रहे हो!' पूछ, 'यह बात थी' कहने पर, 'भिक्षुओ! न केवल अभी देवदत्त अकृतज्ञ है, पहले भी अकृतज्ञ ही रहा है। उसने कभी मेरे गुणो को नही जाना' कह उनके प्रार्थना करने पर पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में (राजा) ब्रह्मदत्त के राज्य करते समय बोधिसत्त्व हिमालय प्रदेश में, हाथी की योनि में पैदा हुआ था। वह माता की कोख से निकलते समय चाँदी की राशि सा सर्वश्वेत था, आँखें, मणि की गोलियो के सदृश प्रकाश फैलाने वाली तथा पाँच प्रसन्नताओ से युक्त, मुख, रक्त-वर्ण कम्बल के समान, सूंड, लाल सोने की बूंदो जडी चाँदी की माला के सदृश, चारो पैर लाख से रंगे हुए जैसे थे, इस प्रकार उसका शरीर दस पारमिताओ से अलकृत तथा अति सुन्दर

था। सो, उसके सयाने होने पर, सारे हिमालय के हाथी, इकट्ठे होकर, उसकी सेवा मे रहने लगे। इस प्रकार हिमालय प्रदेश में अस्सी-हज़ार हाथियो के साथ रहते हुए, पीछे, जमात के साथ रहने में दोष देख, और जमात से पृथक्, अकेले रहने में शारीरिक-शान्ति (=विवेक) का लाभ देख, जगल में अकेले ही रहना शुरू किया। शीलवान्, सदाचारी होने के कारण, उसका नाम सीलव नागराज पड गया। (उस समय) वाराणसी-वासी एक वनचर, हिमालय प्रदेश में प्रवेश कर, अपनी आजीविका के लिए चीज़ें (=भाण्ड) खोज रहा था। दिशा भ्रम हो जाने से वह रास्ता भूल कर, मरने के भय से भयभीत हो बाँहो में सिर दे, रोता-काँदता फिरता था।

बोधिसत्त्व उसका रोना पीटना सुन, 'इस आदमी को दु ख से छुडाना चाहिए' —इस करुणा के भाव से प्रेरित हो, उसके पास गया। वह उसे देखते ही, डर के मारे भाग चला। बोधिसत्त्व उसे भागते देख, वही ठहर गया। वह आदमी बोधिसत्त्व को रुका देख, खडा हो गया। बोधिसत्त्व फिर (आगे) गया। वह (आदमी) फिर भागा। उसके ठहरने पर, खडा होकर सोचने लगा—"यह हाथी, मेरे भागने पर खड़ा हो जाता है, खड़े होने पर आता है, यह मुझे हानि नही पहुँचाना चाहता। यह मुझे, इस दु ख से ही छुडाना चाहता होगा।" (यह सोच) वह हिम्मत करके, खडा हो गया। बोधिसत्त्व ने उसके पास जाकर पूछा—'भो! पुरुष! तू किस लिए रोता फिर रहा है?"

"स्वामी! दिशा-भ्रम हो जाने से, मार्ग भूल, मरने के भय से।"

बोधिसत्त्व उसे अपने निवास-स्थान पर ले जा, कुछ दिन तक फल-मूल से सेवा कर 'भो पुरुष! डर मत। मै तुझे बस्ती (=मनुष्य-पथ) में ले जाऊँगा' (कह) उसे अपनी पीठ पर बिठा, बस्ती की ओर ले चला। वह मित्र-द्रोही आदमी 'यदि कोई पूछने वाला होगा तो बताना होगा (सोच) बोधिसत्त्व की पीठ पर बैठा ही बैठा, वृक्षो की, पर्वतो की निशानी करता जाता था। बोधिसत्त्व ने उसे जगल से निकाल, वाराणसी को जाने वाले महामार्ग पर छोड कर कहा "भो पुरुष! इस रास्ते से चला जा। लेकिन मेरा निवास-स्थान, चाहे कोई पूछे, चाहे न पूछे, किसी को न कहना।" (यह कह) उसे बिदा कर, वह अपने निवासस्थान पर चला आया।

वह आदमी वाराणसी पहुँचा। घूमते हुए, हाथी-दाँत-बाज़ार में शिल्पियो को

हाथी-दाँत की चीजें बनाते देख कर उसने पूछा—'भो! यदि जीवित हाथी का दाँत मिले, तो क्या उसे भी खरीदोगे?"

"भो! क्या कहते हो? जीवित हाथी का दाँत, मृत हाथी के दाँत से अधिक मूल्यवान् होता है।"

"तो मैं जीवित हाथी का दाँत लाऊँगा" (कह) रास्ते के लिए आवश्यक (खाने का) सामान तथा तेज़ आरी लेकर, बोधिसत्त्व के निवास स्थान को गया। बोधिसत्त्व ने उसे देख कर पूछा—"किस लिए आया है?"

"स्वामी! मैं निर्धन हूँ, दरिद्र हूँ। जीने का उपाय नही। आप के पास इसलिए आया हूँ, कि यदि आप दें, तो आप से दन्त-खण्ड माँग कर ले जाऊँ, और उन्हें बेच कर, उस धन से निर्वाह करूँ।"

"अच्छा! भो! मै तुझे दन्त-खण्ड दूगा, यदि (तेरे पास) दाँत काटने के लिए आरी हो।"

"स्वामी! मैं आरी लेकर आया हूँ।"

"तो दाँतो को आरी से काट कर ले जा।" बोधिसत्त्व पाँव को सुकेड कर, गौ की तरह बैठ गये। उसने, उसके दोनो अगले दाँत काट लिए। बोधिसत्त्व ने उन दाँतो का सोण्ट में ले, "भो! पुरुष! मैं यह दाँत इसलिए नही दे रहा हूँ कि यह दाँत मुझे अप्रिय है, अच्छे नही लगते, बल्कि, मुझे इनसे हजार दर्जे, लाख दर्जे प्रिय-तर है, सब धर्मों का बोध कराने वाले बुद्धत्व-ज्ञान रूपी दाँत। सो मेरा यह दाँतो का दान, बुद्धज्ञान के बोध का कारण हो।" इस प्रकार (उसने) बुद्ध-ज्ञान का ध्यान धर, वह दाँतो की जोडी दे दी।

वह उन्हें ले गया। उन्हें बेच कर, उस धन के खतम होने पर, फिर बोधिसत्त्व के पास आकर बोला—'स्वामी! तुम्हारे उन दाँतो को बेच कर मै केवल अपना कर्ज़ा उतार सका। शेष दाँत भी दे दें।' बोधिसत्त्व ने 'अच्छा' कह स्वीकार कर, पहली ही तरह से कटवा कर, शेष दाँत भी दे दिये। उसने उन्हें भी बेच कर फिर आकर कहा—"स्वामी! गुजारा नही चलता। मुझे मूल दाढें दे दें।" बोधिसत्त्व 'अच्छा' कह, पूर्व प्रकार से ही बैठ गये। वह पापी पुरुष, महासत्त्व की चाँदी की माला सदृश सूण्ड को मरदन करते हुए, कैलाश-कूट सदृश सिर (=कुम्भ) पर चढ़ कर, दोनो दाँतो की पक्तियों को एडी से प्रहार देते हुए, माँस को हटा कर, सिर पर चढ, तेज आरी से मूल दाढ़ें काट कर ले गया।

उस पापी पुरुष के, बोधिसत्त्व की दृष्टि से ओझल होते ही होते, दो लाख चालीस हज़ार योजन घनी पृथ्वी जो सुमेरु, युगन्धर सदृश (पर्वतो) का महाभार, तथा मल-मूत्र आदि घृणित दुर्गन्धियाँ उठा सकती है उसने भी, उस (की) दुर्गुणराशि को उठाने में असमर्थता प्रकट की, और फट कर (उसे) विवर दे दिया। उसी समय अवीची महानरक ने ज्वाला से निकलकर, उस आदमी को, घर के कम्बल[1] में लपेटने की तरह, घेर कर (अपने में) ले लिया। इस प्रकार उस पापी पुरुष के पृथ्वी में प्रविष्ट होने के समय, उस जगल के अधिकारी वृक्ष देवना ने, उस वन को उन्नादित करते हुए 'अकृतज्ञ, मित्र द्रोही आदमी को चक्रवर्ती राज्य दे कर भी सन्तुष्ट नही किया जा सकता'—इस धर्म का उपदेश कर के, यह गाथा कही—

अकतञ्ञुस्स पोसस्स निच्चं विवरदस्सिनो,
सब्बं चे पठविं दज्जा नेव न अभिराधये ॥

[अकृतज्ञ, सदा दोष ढूंढने वाले आदमी को सारी पृथ्वी देकर भी सन्तुष्ट नही किया जा सकता।]

अकतञ्ञुस्स, जो अपने पर किये उपकार को न जाने, पोसस्स, मनुष्य को, विवरदस्सिनो, जो छिद्र=खाली जगह ही देखता रहे, छिद्रान्वेषी को। सब्बं चे पठविं दज्जा, वैसे आदमी को यदि सारा चक्रवर्ती राज्य अथवा महापृथ्वी को पलट कर, इस पृथ्वी का सार भी दे दिया जाये, नेव नं अभिराधये, ऐसा करने पर भी, इस प्रकार के अकृतज्ञ मनुष्य को कोई सन्तुष्ट वा प्रसन्न नही कर सकता।

इस प्रकार उस देवता ने उस वन को उन्नादित करते हुए धर्मोपदेश दिया। बोधिसत्त्व, जितनी आयु थी, उतने काल तक जीवित रह कर, कर्मानुसार परलोक गया।

---

[1] 'कुलसन्तकेन' तथा 'कुसलन्तकेन' दोनों पाठ सन्तोषजनक नहीं।

शास्ता ने 'भिक्षुओ ! न केवल अभी देवदत्त अकृतज्ञ है, पहले भी अकृतज्ञ रहा है' कह, इस धर्मदेशना को ला, जातक का सारांश निकाल दिया। उस समय का मित्रद्रोही आदमी (अब का) देवदत्त हुआ। वृक्ष देवता (अब के) सारिपुत्र। सीलवनागराज तो मैं ही था।

७३. सच्चंकिर जातक

"सच्चं किरेवमाहंसु. ." यह (गाथा) शास्ता ने वेळुवन में विहार करने के समय, वध करने के प्रयत्न के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

धर्म-सभा में बैठे भिक्षु (-संघ) 'आवुसो ! देवदत्त, शास्ता के गुणों को नहीं जानता, (और उनके) वध करने का ही प्रयत्न करता है' (कह) देवदत्त के अवगुण कह रहे थे। शास्ता ने आकर, 'भिक्षुओ ! इस समय बैठे क्या बातचीत कर रहे थे' पूछ, 'यह बातचीत' कहने पर, 'भिक्षुओ ! न केवल अभी देवदत्त मेरे वध का प्रयत्न करता है, (उसने) पहले भी किया था' कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में, (राजा) ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय, उसका दुष्टकुमार नाम का (एक) पुत्र था—परुष, कठोर, तथा ताडित-विषैले सर्प सदृश। वह बिना गाली दिये, बिना मारे किसी से बात ही न करता था। वह डर का कारण था और अन्दर बाहर के आदमियों को वैसे ही अच्छा न लगता था, जैसे आँख में पड़ा हुआ रज-कण, अथवा खाने के लिए आया पिशाच। एक दिन जल-क्रीडा करने की इच्छा से, वह अनेक अनुयायियों के साथ नदी के तट पर गया। उस समय जोर से बादल आये। चारों ओर अन्धकार छा गया। उसने नौकरों-चाकरों को

कहा—'भणे ! आओ। मुझे नदी के बीच में ले जाकर नहला लाओ।' वे उसे वहाँ ले जाकर, 'राजा हमारा क्या कर लेगा ? हम इसे यही मार डालें' सलाह कर, 'चल रे मनहूस कही के' (कर के) उसे पानी में डुबो, (अपने) ऊपर किनारे पर आ खडे हुए। (लोगो के) 'कुमार कहाँ है ?' पूछने पर, उत्तर दिया—"हम कुमार को नही देखते; बादल आया देख, पानी मे डुबकी लगा (निकल कर) आगे चला आया होगा।"

अमात्य-जन राजा के पास गये। राजा ने पूछा—"मेरा पुत्र कहाँ है ?"

"देव ! हमें मालूम नही, 'बादल आया देख, आगे आगे चला आया होगा' (सोच) हम चले आये।" राजा ने द्वार खुलवा, नदी के किनारे जा, 'खोज करो' कह, जहाँ तहाँ खोज करवाई। किसी ने कुमार को न देखा। उस काली बदली और वर्षा में, नदी में बहता एक लक्कड़ देख, वह उस पर बैठ, मरने से भयभीत हो रोता जा रहा था।

उस समय एक वाराणसी-निवासी सेठ, नदी के किनारे चालीस करोड धन गाड़ कर उस धन के लोभ से, (वही) उस धन के ऊपर, सर्प हो कर उत्पन्न हुआ था। एक और (सेठ) उसी प्रदेश में तीस करोड धन गाड कर, धन-तृष्णा के कारण, वही चूहा होकर उत्पन्न हुआ था। उनके निवासस्थान में भी पानी आ घुसा था, और वे, जिस रास्ते से पानी आया था, उसी रास्ते से निकल, (पानी की) धार को काट कर जिस लक्कड पर वह राजकुमार बैठा था, उसी लक्कड पर पहुँच गये, और उस लक्कड के एक सिरे पर एक, दूसरे सिरे पर दूसरा बैठ रहा। उसी नदी के किनारे एक सेमल वृक्ष था, जिस पर एक तोते का बच्चा रहता था। वह वृक्ष भी, पानी द्वारा जड उखड़ जाने से उसी नदी में गिर पडा। पानी के बरसते रहने के कारण, वह तोते का बच्चा भी न उड़ सकने से, उस लक्कड़ के ही एक ओर जाकर लग रहा। इस प्रकार, वह चारो जने इकट्ठे बहते जा रहे थे।

बोधिसत्त्व भी उस समय काशी राष्ट्र के (एक), उदीच्च[1] ब्राह्मण-कुल में पैदा हो, वडे होने पर ऋषि प्रव्रज्या के अनुसार प्रव्रजित हुए थे, और नदी के मोड़ पर पर्णशाला बना कर रहते थे। उसने आधी रात को टहलते समय, उस राजकुमार का जोर का रोने का शब्द सुना और सोचा—'मेरे सदृश मैत्री और दया से युक्त

---

[1] उदिच्च=उत्तर के

तपस्वी के देखते देखते इस पुरुप का मरना उचित नही। मै पानी मे कूद कर, उसे जीवन-दान दूगा।' उसने 'डर मत। डर मत' का आश्वासन दिया; और पानी के स्रोत को काटते हुए जा कर, उस लक्कड को एक सिरे से पकड, खैंचते हुए, हाथी सदृश वल से, एक ही झटके मे किनारे पर पहुँचा दिया। फिर कुमार को उठाकर, किनारे पर विठाया। पीछे सर्पादि को भी देख, उठा कर आश्रम में ले जा, उनके लिए आग जला दी। उसने 'यह सर्प आदि दुर्वल हैं' (कर के) पहले उनके शरीर को सुखाया, पीछे राजकुमार के शरीर को सुखा, उसे भी आरोग्य प्रदान किया। (फिर) आहार देते समय भी, पहले सर्प आदि को ही देकर, पीछे उसके लिए फल-मूल ला कर दिये।

'यह कूट तपस्वी, मेरे राजकुमार होने का ख्याल न कर, इन पशुओ का सम्मान करता है' (सोच) राजकुमार, वोधिसत्त्व का वैरी वन गया। उसके कुछ दिन वाद, जव उन सव के शरीर मे ताकत आ गई, और नदी की वाढ उतर गई, तो सर्प ने तपस्वी को प्रणाम कर के कहा—"भन्ते! आपने मुझ पर वडा उपकार किया है। मै दरिद्र नही हूँ। अमुक स्थान पर मेरा चालीस करोड (का) सोना गडा हुआ है। यदि आपको धन की आवश्यकता हो तो, मै वह सव धन आपको दे सकता हूँ। उस स्थान पर आकर 'दीर्घ' कह कर पुकारना।" (कह) चला गया। चूहा भी, उसी प्रकार तपस्वी को निमन्त्रित कर 'अमुक स्थान पर खडे हो कर 'उन्दुर' कह कर पुकारना' कह चला गया। लेकिन तोते ने तपस्वी को प्रणाम कर कहा—"भन्ते! मेरे पास धन नही है। लेकिन यदि आपको रक्त वर्ण शाली (=धान) की आवश्यकता हो, तो मै अमुक जगह रहता हूँ, यहाँ आकर 'सुवा' कह कर पुकारना। मैं अपने रिश्तेदारो को कह कर, अनेक गाडी रक्त-वर्ण शाली मँगा कर दे सकता हूँ।" यह कह कर, वह भी चला गया। लेकिन वह जो मित्र-द्रोही वाकी रहा, उसने यथोचित कुछ भी न कह कर 'इसे अपने पास आने पर मरवाऊँगा' (सोच) कहा—"भन्ते! मेरे राजा होने पर, आप आना, मै आपका चारो प्रत्ययो मे सत्कार करूँगा।" यह कह, (वह भी) चला गया।

वह जाकर, कुछ ही समय वाद, राजा हुआ। 'अच्छा! परीक्षा करूँ' (सोच) वोधिसत्त्व ने, पहले, साँप के पास जाकर, नज़दीक खडे हो पुकारा—'दीर्घ!' उसने एक आवाज़ पर ही निकल, वोधिसत्त्व को प्रणाम कर कहा—"भन्ते! इस जगह पर चालीस करोड (का) सोना है, वह सारा का सारा, निकाल कर ले लें।"

"अच्छा! ऐसे ही रहे। आवश्यकता पडने पर देखूगा" (कह) उसे रोक, चूहे के पास जाकर आवाज़ दी। चूहे ने भी वैसे ही किया। बोधिसत्त्व ने, उसे भी रोक, तोते के पास जाकर 'सुवा!' करके आवाज़ दी। उसने एक ही आवाज़ मे वृक्ष पर मे उतर बोधिसत्त्व को प्रणाम करके पूछा—"भन्ते! क्या मै अपने रिश्तेदारो को कह कर, हिमवन्त प्रदेश से आपके लिए, स्वय उत्पन्न हुई शाली मँगवाऊँ?"

बोधिसत्त्व ने 'आवश्यकता होने पर देखूगा' (कह) उसे भी रोका। फिर 'अब राजा की परीक्षा करूँगा' (सोच) जाकर, राजोद्यान मे रह अगले दिन वस्त्र आदि ठीक-ठाक करके, भिक्षा माँगते हुए, नगर मे प्रवेश किया।

उस समय, वह मित्र-द्रोही राजा, अलकृत हाथी के कन्धे पर बैठ, अनेक अनुयायियो के साथ नगर की सैर कर रहा था। उसने दूर से ही बोधिसत्त्व को आते देख, 'यह कूट (=बनावटी) तपस्वी, मेरे पास, (मुफ्त मे) खाते हुए, रहने के लिए आ रहा है। इससे पहले कि यह परिषद् मे, मुझ पर किये अपने उपकार को प्रगट करे, मुझे इसका सिर कटवा देना चाहिए, (सोच) अपने आदमियो की ओर देखा। "देव! क्या करे?"

वह बोला—"मालूम होता है, यह कूट तपस्वी मुझसे कुछ माँगने के लिए आ रहा है। इस कूट तपस्वी को मेरे सामने मत आने दो, और पकड कर, पीछे से बाँहे बाँध कर, चौरस्तो चौरस्तो पर प्रहार देते हुए, नगर से निकालो, तथा मारने के स्थान पर ले जा, इसका सिर काट, शरीर को शूल पर चढा दो।" उन्होने 'अच्छा' कह स्वीकार किया, और जाकर, निरपराध महात्मा को बाँध, चौरस्ते चौरस्ते पर मारते हुए, वध-स्थान की ओर ले जाना शुरू किया। बोधिसत्त्व, जब जब मार पडती 'माँ, बाप' कुछ न चिल्ला कर, निर्विकार रह यह गाथा कहते—

सच्चं किरेवमाहंसु नरा एकच्चिया इध,
कट्ठं विप्लावितं सेय्यो नत्ववेकच्चियो नरो॥

[कुछ (बुद्धिमान्) आदमियो ने सत्य ही कहा कि किन्ही किन्ही आदमियो को पानी से निकालने की अपेक्षा, लकडी का निकालना अच्छा है।]

सच्चं किरेवमाहंसु, यथार्थ ही ऐसा कहते है। **नरा एकच्चिया इध**, कुछ बुद्धिमान् आदमी। **कट्ठं विप्लावितं सेय्यो**, नदी मे बहती जाती सूखी लकडी,

उवारनी=निकाल कर स्थल पर ला रखनी, श्रेय है, सुन्दर तर है; ऐसे कहने वाले वे आदमी सत्य ही कहते है। किस कारण से ? वह यवागु भात आदि पकाने के लिए, शीत से पीडित आदमियो के तापने के लिए तथा औरो की भी आवश्यकताओ की पूर्ति के लिए होती है।

नत्वेव एकच्चियो नरो, लेकिन किसी किसी मित्र-द्रोही, अकृतज्ञ, पानी आदमी को, बाढ मे बहे जाते हुए, हाथ से पकड कर उवारना अच्छा नही, जैसे मैने इस पापी आदमी को उवार कर, अपने ऊपर यह दु ख ले लिया।

इस प्रकार जब जब मार पडती तब तब यह गाथा कहता।

यह सुन उनमे जो पण्डित आदमी थे, उन्होने पूछा—"भो! प्रव्रजित! क्या तूने हमारे राजा का कोई उपकार किया है?"

बोधिसत्त्व ने वह हाल सुना कर कहा—'सो! इसे बाढ से निकाल कर, मैंने स्वय ही अपने लिए दु ख लिया। मैंने पुराने बुद्धिमान् आदमियो के कथनानुकूल आचरण नही किया' याद कर यह (गाथा) कहता हूँ। उसे सुन क्षत्रिय ब्राह्मण आदि नगर निवासियो ने सोचा—"यह मित्र-द्रोही राजा, इस प्रकार के गुणवान्, अपने को प्राणदान देने वाले व्यक्ति का, उपकार मात्र भी नही जानता, इसके कारण हमारी क्या उन्नति होगी?' (यह सोच) 'उसे धरो' कह, क्रोध में चारो ओर से उठ खडे हुए और उन्होने तीर, शक्ति, पत्थर, मुद्गर आदि के प्रहार से, हाथी के कन्धे पर बैठे उसे, मार पकड, पैरो से घसीट, खाई के ऊपर डाल दिया। (फिर) बोधिसत्त्व का अभिषेक कर, उसे राजा बना लिया।

उसने धर्मानुसार राज्य करते हुए, फिर एक दिन सर्प आदि की परीक्षा करने के विचार से, बहुत से अनुयायियो के साथ, सर्प के निवासस्थान पर जाकर आवाज दी—"दीर्घ!" सर्प ने आकर, प्रणाम कर कहा—"स्वामी यह तुम्हारा धन है, लो।" राजा ने चालीस करोड (का) सोना अमात्यो को सौंप कर, चूहे के पास जा 'उन्दुर!' कह आवाज दी। उसने भी आकर, प्रणाम कर, तीस करोड धन लाकर दिया। राजा ने वह भी अमात्यो को सौंप, तोते के निवासस्थान पर जा, 'सुवा' कह आवाज दी। उसने भी आकर, चरणो में प्रणाम कर पूछा—"स्वामी! क्या शाली मँगवाऊँ?" राजा 'शाली की आवश्यकता होने पर, मँगवाना, आओ चलें' कह, सत्तर करोड (के) सोने के साथ, उन तीनो जनो को लिवा कर, नगर में पहुँचा;

और श्रेष्ठ प्रासाद के महातल पर चढ, धन को सुरक्षित रखवा, सर्प के रहने के लिए एक सोने की नाली, चूहे के लिए स्फटिक की गुफा और तोते के लिए सोने का पिजरा वनवाया। वह सर्प और तोते के भोजन के लिए प्रतिदिन, सोने की थाली में, मीठे खील, और चूहे के लिए सुगन्धित धान्य के तण्डुल दिलवाता तथा दान आदि पुण्य करता था। इस प्रकार वह चारो जने, आयु रहते, मिल जुलकर प्रसन्नतापूर्वक रहे, आयु के अन्त मे यथा-कर्म (परलोक) गये।

शास्ता ने भिक्षुओ ! न केवल अभी **देवदत्त** मेरे वध करने के लिए प्रयत्न करता है, (उसने) पहले भी किया है' कह, यह धर्मदेशना ला, मेल मिला, जातक का साराश निकाला। उस समय का दुष्ट राजा (अब का) देवदत्त था। सर्प (अव का) **सारिपुत्र** था। चूहा (अव का) **मौद्गल्यायन** था। तोता (अब का) **आनन्द** था। राज्य-प्राप्त धर्म-राजा तो मै ही था।

७४. रुक्खधम्म जातक

"**साधु सम्बहुला ञाति** . "शास्ता जेतवन मे विहार करते थे, उस समय जाति वालो (शाक्य और कोलियो) का पानी के लिए झगडा हो गया। भगवान् उनका महाविनाश समीप आया जान, आकाश-मार्ग से जाकर, रोहिणी नदी के ऊपर पालथी मार कर बैठे और (शरीर से) नीली रश्मियाँ फैलाते जाति वालो को चकित कर, आकाश से उतर आये। फिर नदी के किनारे बैठ कर उन्होने उस झगडे के वारे में उक्त गाथा कही। यह, यहाँ पर सक्षेप है, विस्तार **कुणाल जातक**[1] मे आयेगा।

क. वर्तमान कथा

उस समय शास्ता ने (अपने) जातियो को सम्वोधित कर, "महाराजाओ !

---

[1] **कुणाल जातक** (५३६)

तुम परस्पर नातेदार हो। नातेदारो को आपस मे मिल कर, प्रसन्नता-पूर्वक रहना चाहिए। जातियो की परस्पर एकता रहने से, शत्रुओ को मौका नही मिलता। मनुष्यो की वात रहने दो, अचेतन वृक्षो को भी परस्पर एकता से रहने की ज़रूरत है। पूर्व समय में हिमवन्त प्रदेश में शालवन पर महा-वायु (=आँधी) ने आक्रमण किया। लेकिन उस शालवन के वृक्ष-गाछ-गुम्फ लता आदि के एक दूसरे से सम्वद्ध रहने के कारण, वह एक वृक्ष को भी न गिरा सका और, ऊपर ही ऊपर चला गया। लेकिन उसने मैदान मे खड़े (एक) शाखा-टहनी आदि से युक्त महा-वृक्ष को, दूसरे वृक्षो से असम्वद्ध होने के कारण, समूल उखाड कर जमीन पर गिरा दिया। इस वजह से तुम्हे भी मिल जुल कर, प्रसन्नता पूर्वक रहना चाहिए' कह, उनके याचना करने पर पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में (राजा) ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय, पहले का कुबेर-राजा मर गया। शक्र (=इन्द्र) ने दूसरा कुबेर स्थापित कर दिया। उस (पहले के) कुबेर के स्थानापन्न होने पर, पीछे के कुबेर ने सब वृक्ष-गाछ-गुम्फ लता आदि को सदेश भेजा कि वह जहाँ जहाँ अच्छा लगे, वहाँ वहाँ अपना अपना निवास-स्थान ग्रहण कर ले।

उस समय बोधिसत्त्व, हिमवन्त प्रदेश के एक शालवन में वृक्ष-देवता होकर, उत्पन्न हुए थे। उन्होंने अपने ज्ञातियो को कहा—"तुम विमान (=वासस्थान) ग्रहण करते हुए, मैदान मे (अकेले) खड़े वृक्षो पर, विमान न ग्रहण करो। इस शालवन मे, जहाँ मै विमान ग्रहण करूँ, उसके इर्द-गिर्द ही (तुम) विमान ग्रहण करो।" सो, बोधिसत्त्व की बात मानने वाले पण्डित (=बुद्धिमान्) देवताओ ने, बोधिसत्त्व के विमान को घेर कर ही, विमान ग्रहण किये। लेकिन मूर्खों ने सोचा—"हमें जगल मे विमान ग्रहण करने से क्या लाभ? हम आवादी मे, ग्राम-निगम-राजधानियो के द्वारों पर विमानो को ग्रहण करेंगे। ग्राम आदि के पास रहने वाले देवताओं को लाभ तथा यश की प्राप्ति होती है।" (यह सोच) उन्होंने आवादी मे खुले स्थानों मे उगे महावृक्षो पर विमान ग्रहण किये।

एक दिन बड़ा आँधी-पानी आया। हवा के बड़ी तेज होने से, जमी हुई जड वाले, जगल के पुराने वृक्ष भी टहनी टूट, समूल गिर पड़े। लेकिन, एक दूसरे के

आश्रित खडे शालवन को इधर उधर से प्रहार देकर भी (आँधी) एक भी वृक्ष न गिरा सकी। जिनके विमान टूट गये, उन देवताओ ने, आश्रयरहित हो, बच्चो को हाथ मे ले, हिमवन्त जा कर, शालवन के देवताओ को अपना हाल कहा। उन्होने उनका आना, बोधिसत्त्व से कहा। बोधिसत्त्व ने 'पण्डितो की बात न मान, अविश्वस्त स्थान पर जाने वालो का यही हाल होता है' कह, धर्मोपदेश करते हुए, यह गाथा कही—

साधु सम्बहुला ञाती अपि रुक्खा अरञ्ञजा,
वातो वहति एकट्ठं ब्रहन्तम्पि वनस्पति॥

[ञातियो का सम्मिलित रहना श्रेयस्कर है, अरण्य मे उत्पन्न होने वाले वृक्षो तक का भी। क्योकि महा-वृक्ष तक को अकेले खडे होने पर, हवा उडा ले जाती है।]

सम्बहुला ञाति, चार से ऊपर. . .एक लाख तक भी जाती (=नातेदार) सम्बहुला ही (कहलाते हैं)। इस प्रकार सम्बहुला का अर्थ है, एक दूसरे के आश्रित बसे हुए जातिगण। **साधु**=शोभायमान=प्रशसित, मतलब, दूसरो से अनिन्दित। **अपि रुक्खा अरञ्ञजा,** मनुष्यो की बात रहे, जगल मे उत्पन्न हुए वृक्ष भी, एक दूसरे के आश्रय से ही अच्छी तरह खडे रहते है: वृक्षो के लिए भी विश्वस्तता आवश्यक है। **वातो वहति एकट्ठं,** पुर्वा आदि हवा चलने पर, मैदान मे स्थित **एकट्ठं,** (=अकेले खडे) **ब्रहन्तम्पि वनस्पति,** शाखा-टहनी से युक्त महावृक्ष को भी, उडा ले जाती है, उखाड कर गिरा देती है।

बोधिसत्त्व यह बात कह, आयु क्षय होने पर, कर्मानुसार, परलोक गये।

शास्ता ने भी, 'महाराजाओ! इस प्रकार जातियो को मिलकर ही रहना चाहिए। सो, आप, मेल से, प्रसन्नचित्त, खुशी से रहे।'—यह धर्म-देशना ला, जातक का साराश निकाल दिया।

उस समय के देवता (अब की) बुद्ध परिषद् हुई। लेकिन पण्डित-देवता मैं ही था।

७५. मच्छ जातक

"अभित्थनय पज्जुन्न..." यह(गाथा) शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय, अपनी बरसाई हुई वर्षा के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

एक समय कोसल देश मे वर्षा न बरसी। खेतियाँ कुम्हला गईं। जहाँ तहाँ स्थित तालाव, पुष्करणियाँ सूख गईं। जेतवन के फाटक (द्वार-कोट्ठ) के पास की जेतवन पुष्करिणी का पानी भी छीज गया। कौए चील आदि (पक्षी) गहरे कीचड में जाकर पडे हुए मछली, कछुओ को तीर की नोक जैसी अपनी तीखी चोच से मार मार कर, ले जाकर, चिल्लाते हुए खाने लगे। मछली कछुओ के उस दुःख को देख, महाकरुणा से बुद्ध का हृदय द्रवीभूत हो गया, और वह सोचने लगे—"आज मुझे वर्षा वरसानी चाहिए।" (यह सोच) रात्रि के प्रभात होने पर, उन्होंने शारीरिक कृत्य समाप्त किया। भिक्षा-चार के समय का ख्याल कर, महान् भिक्षु-सघ को साथ ले, बुद्ध-लीला से उन्होंने श्रावस्ती में भिक्षाटनके लिए प्रवेश किया। भिक्षाटन कर भोजन से निवृत हो लौट, श्रावस्ती से विहार को जाते हुए जेतवन-पुष्करिणी की सीढी पर खडे हो कर आनन्द स्थविर को आमन्त्रित किया—"आनन्द! नहाने का वस्त्र ले आ। जेतवन पुष्करिणी में नहाऊँगा।"

"भन्ते! क्या जेतवन-पुष्करिणी में पानी खतम नही हो गया? क्या केवल कीचड बाक़ी नही रह गया?"

"आनन्द! बुद्ध-बल महान् बल है। जा, तू नहाने का वस्त्र ले आ।"

स्थविर ने (कपडा) लाकर दिया। शास्ता (वस्त्र के) एक सिरे को (कधे पर) रख, दूसरे सिरे को बदन पर पहन, जेतवन-पुष्करिणी में नहाने की इच्छा से सीढी पर खडे हुए।

उसी समय शक्र का पाण्डु कम्बल शिलासन गर्म हुआ। उसने 'क्या कारण है?' सोचते हुए उस कारण को जान प्रजुण्ह[1] (=वर्षा के बादलो के देवता) देव-पुत्र को बुलवा कर कहा—"तात! शास्ता जेतवन-पुष्करिणी में स्नान की इच्छा से सबसे ऊपर की सीढी पर खडे है। तू, जल्दी से वर्षा बरसा कर, सारे कोसल देश को जलमय कर दे।" वह 'अच्छा' कह स्वीकार कर, एक बादल को (कधे पर) रख, एक बादल को पहन, मेघ-गीत गाते हुए, पूर्व दिशा में जा कूदा। पूर्व दिशा में उसने खलियान जितना (बड़ा) एक बादल का टुकडा उठाया, फिर उसे सैकड़ो गुणा, सहस्त्र गुणा कर, फैला बिजली चमकाते हुए, नीचे मुह करके रक्खे घड़े की तरह, बरसते हुए सारे कोसल राष्ट्र को, समुद्र की तरह पानी से सराबोर कर दिया। देव ने मूसलाधार बरसते हुए, ज़रा ही देर मे जेतवन की पुष्करिणी को भर दिया। पानी, ऊपर की सीढी तक चला आया।

शास्ता पुष्करिणी मे स्नान कर, रक्त-वर्ण वस्त्र धारण कर, कमर-पट्टी (=काय-बन्धन,) बाँध, सुगत का महाचीर एक कधे पर रख, भिक्षुसंघ सहित गन्धकुटी परिवेण मे गये, और श्रेष्ठ, बिछे, बुद्धासन पर बैठ, भिक्षुसघ के अपना अपना सम्मान प्रदर्शित करने पर, उठ, मणिमय सीढी के फट्टे पर खडे हो, भिक्षु-सघ को उपदेश दिया, उत्साहित किया, फिर सुगन्धित गन्धकुटी में चले गये। वहाँ, दक्षिण पासे पर, सिंह-शय्या से शयन करके शाम को धर्म सभा में एकत्रित हुए भिक्षुओ के, 'आवुसो! दश-बल की क्षान्ति मैत्री तथा दया (रूपी) सम्पत्ति को देखा। अनेक खेतो के कुम्हलाने पर, नाना जलाशयो के सूख जाने पर, मछलियो-कछुओ के अत्यन्त दुख पाने पर, वह करुणा से प्रेरित हो जन (-समूह) को दुख से मुक्त करने की इच्छा से स्नान-वस्त्र ले, जेतवन की पुष्करिणी की सबसे ऊपर की सीढी पर खड़े हुए और जरा सी देर में, सारे कोसल देश को महा समुद्र में डबोते हुए की तरह वर्षा बरसा कर, जन (-समूह) को शारीरिक तथा मानसिक दुख से मुक्त कर, बिहार मे प्रवेश किया'—यह कथा, कहते समय, (भगवान ने) गन्धकुटी से निकल, धर्म सभा में आकर पूछा—"भिक्षुओ! इस समय बैठे क्या बातचीत कर रहे थे?"

"यह कथा", कहने पर (शास्ता ने) "भिक्षुओ! न केवल अभी तथागत

---

[1] पर्जन्य देवता।

ने जन- (समूह) को दुख पाते देख वर्षा बरसाई। पहले पशु योनि मे उत्पन्न हो, मत्स्य-राजा रहने के समय भी वर्षा बरसाई थी" कह, पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे इसी कोसल देश, मे इसी श्रावस्ती में, इसी जेतवन पुष्करिणी की जगह, घनी लताओ से घिरी हुई एक कन्दरा थी। उस समय बोधिसत्त्व मछली की योनि में उत्पन्न हो, मछली गण से घिरे हुए वही रहते थे। जैसे अब, इसी प्रकार उस समय भी, देश मे वर्षा नही हुई। मनुष्यो के खेत कुम्हला गये। वापी आदि में पानी सूख गया। मछली-कछुवे गाढे कीचड में घुस गये। इस कन्दरा की मछलियाँ भी गहरे कीचड में घुस जहाँ तहाँ छिप गई। कौवे आदि, चोच से उन्हे मार मार कर, ले जा कर खाने लगे।

बोधिसत्त्व ने जाति-सघ (=भाई-बिरादर) का दुख देख, सोचा—"मुझे छोड, और कोई इन्हें दु ख से मुक्त नही कर सकता। सो, मै सच्च-किरिया[1] कर, देव (=वर्षा) को बरसा, ज्ञातियो को मृत्यु-दु ख से मुक्त करूँगा।" (यह सोच) काले काले कीचड को बीच मे से फाड, (बाहर) निकल, (उस) सुरमे के रग के महामत्स्य ने स्वच्छ रक्तवर्ण मणि जैसी आँखो को खोल, आकाश की ओर देख, पर्जन्य देवपुत्र देवेन्द्र को आवाज दी, "भो। पर्जन्य। मै (अपने) भाई-बिरादरो के कारण दुखी हूँ। तू मेरे(सदृश)सदाचारी के दुख पाते हुए भी, किस लिए वर्षा नही बरसाता है। मैं ने आपस में एक दूसरे को खानेवाली योनि मे उत्पन्न होकर भी, चावल भर माँस तक नही खाया, और भी मैने किसी प्राणी की हिंसा नही की। (मेरे इस) सत्य (-बल) से, वर्षा बरसा कर, मेरे भाई-बिरादरी को दुख से मुक्त कर" कह, (अपने) सेवक को आज्ञा देने की तरह आज्ञा देते हुए पर्जन्य देवपुत्र को सम्बोधित कर यह गाथा कही—

अभित्थनय पज्जुन्न ! निधि काकस्स नासय,
काक सोकाय रन्धेहि मञ्च सोका पमोचय॥

---

[1] अपने सचाई की शपथ खाकर किसी की हितकामना करना।

[पर्जन्य ! गर्ज, कौओ की निधि का नाश कर, कौओ को शोक में लपेट और मुझे शोक मे मुक्त कर।]

अभित्थनय पज्जुन्न, 'पज्जुन्न' कहते है मेघ को। मेघ होने से, बरसने वाले बादलो के देवता को इस नाम से सम्बोधित किया गया है। यही इसका अभिप्राय है। बिना गरजे, बिना बिजली चमकाये, केवल बरसने से 'देव' नाम शोभा नही देता, इस लिए तू गरजते हुए, बिजली चमकाते हुए बरस। **निधि काकस्स नासय**, कौऐ, कीचड मे पडी हुई मछलियो को मार मार ले जाकर खाते है, इस लिए कीचड मे पडी मछलियो को उन (कौओ) की निधि (=खजाना) कहा गया है। उस कौओ की निधि को वर्षा बरसा कर, पानी से ढक कर, नाश कर। **काकं सोकाय रन्धेहि**, काक-समूह इस कन्दरा के पानी से भर जाने पर, मछलियो के न मिलने ने शोक को प्राप्त होगा। सो, तू इस कन्दरा को पानी से भर कर, काक-सघ को शोक मे लपेट, शोक-प्राप्त कर। अर्थात् जैसे (वे) भीतर जला देने वाले शोक को प्राप्त हो, वैसा कर। **मञ्च सोका पमोचय**, यहाँ 'च' जोड़ने के लिए है, सो मुझे और मेरे भाई-बिरादरी को इस मृत्यु-भय से मुक्त कर। इस प्रकार बोधिसत्त्व ने (अपने) सेवक को आज्ञा देने की भाँति, पर्जन्य को कह, सारे कोसल देश मे भारी वर्षा बरसवा, जन(-समूह) को मृत्यु-भय से मुक्त किया, और आयु (=जीवन) की समाप्ति पर वह यथा-कर्म (परलोक को) गये।

शास्ता ने, 'भिक्षुओ ! न केवल अभी तथागत ने वर्षा बरसाई है, पूर्व समय मे मत्स्य योनि मे उत्पन्न होकर भी बरसाई थी' कह, इस धर्म-देशना को ला कर, मेल मिला, जातक का साराश निकाल दिया।

उस समय की मत्स्य-मण्डली (अब की) बुद्ध-परिषद् थी। पर्जन्य देवता (अब के) आनन्द स्थविर थे। मत्स्य-राज तो मै ही था।

७६. असंकिय जातक

"असंकियोम्हि गामम्हि" यह (गाथा) शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय, एक श्रावस्ती वासी उपासक के बारे मे कही।

क. वर्तमान कथा

वह (उपासक) स्रोतापन्न, आर्यश्रावक था। (एक बार) बैल गाड़ियों के बंजारों (शकट-सार्थवाह) के साथ वह यात्रा कर रहा था। उस समय, जंगल में बैलों को खोल, तम्बू लगाने पर, वह, कारवाँ से कुछ दूर, एक वृक्ष के नीचे टहलने लगा। अपना मौका देख, पाँच सौ चोरों ने पड़ाव को लूटने की इच्छा से, धनुष, मुद्गर आदि (शस्त्र) हाथ में ले, उस स्थान को घेर लिया। उपासक भी टहल रहा था। चोरों ने उसे देख, सोचा—"यह, अवश्य पड़ाव का पहरेदार होगा। उस के सोने पर लूटेंगे।" (यह सोच) वह लूटने का मौका न पाते हुए जहाँ तहाँ खड़े रहे। वह उपासक, प्रथम याम (=पहर) में, मध्यम याम मे, तथा आखिरी याम में भी टहलता ही रहा। प्रातः हो जाने से, चोर मौका न पा, हाथ के पत्थर, मुद्गर आदि को छोड़ भाग गये। उपासक ने अपना काम समाप्त कर, फिर श्रावस्ती लौटकर, शास्ता को प्रणाम कर पूछा—"भन्ते! क्या अपनी रक्षा करने वाले दूसरों के (भी) रक्षक होते हैं?"

"उपासक! हाँ! अपनी रक्षा करने वाला, दूसरों की रक्षा करता है। दूसरों की रक्षा करने वाला, अपनी रक्षा करता है।'

उसने कहा—"भन्ते! आप का कथन ठीक है। मैं ने एक काफले के साथ रास्ता चलते, वृक्ष के नीचे टहलते हुए, अपनी रक्षा करने के विचार से सारे कारवाँ की रक्षा की।"

शास्ता ने, "उपासक! पूर्व समय में भी, अपनी रक्षा करते हुए पण्डितों ने, दूसरों की रक्षा की है" कह, उसके प्रार्थना करने पर, पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे वाराणसी मे (राजा) ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय, बोधिसत्त्व ब्राह्मण-कुल में उत्पन्न हुए। जवान होने पर, काम-भोग (के जीवन) में दोष देख ऋषी-प्रव्रज्या के अनुसार प्रव्रजित हो वह हिमालय चले गये। वहाँ से खट्टा-नमकीन सेवन करने के लिए बस्ती में आये, और बस्ती में विचरते, एक कारवाँ के साथ साथ मार्ग चलने लगे। कारवाँ के एक जंगल में पड़ाव डालने पर, वह, कारवाँ के समीप, एक वृक्ष के नीचे ध्यान-सुख में समय बिताते हुए टहलने लगे। सो शाम का भोजन खा चुकने के समय, पाँच सौ चोरो ने उस कारवाँ को लूटने की इच्छा से आकर घेर लिया। उस तपस्वी को टलहते देख कर, उन्होने सोचा—"यदि यह हमे देख लेगा, तो कारवाँ को कह देगा। सो इसके सोने के समय लूटेंगे।" (यह सोच) वह वही खडे रहे। तपस्वी सारी रात टहलता ही रहा। चोर मौका न मिलने पर, हाथ मे के मुद्‌गर, पाषाण आदि को छोड़, चले गये; और जाते जाते कह गये—"ओ! काफले वालो! यदि आज यह वृक्ष के नीचे टहलने वाला तपस्वी न रहता, तो (तुम) सब लूट लिये जाते। कल, तपस्वी का महान् सत्कार करना।" उन्होने रात के बाद प्रभात होने पर, चोरो के छोडे हुए मुद्‌गर पाषाण आदि देख, भयभीत हो, बोधिसत्त्व के पास जा, प्रणाम कर, पूछा—"भन्ते! आपने चोरों को देखा?"

"हाँ! आवुसो! देखा।"

"भन्ते! इतने चोरो को देख कर, भय या डर नही लगा?"

बोधिसत्त्व ने कहा—"आवुसो! धनी (आदमी) को चोरो से भय होता है। मै निर्धन हूँ। सो, मैं किस लिए डरूँगा? मुझे, गाँव में रहते हुए, वा जगल में रहते हुए न कोई भय है, न डर है।" यह कह, उन्हें धर्मोपदेश करते हुए, यह गाथा कही—

असङ्कियोम्हि गामम्हि अरञ्ञे नत्थि मे भयं,
उजुमग्गं समारूल्हो मेत्ताय करुणाय च॥

[मै ग्राम मे भय रहित हूँ; जगल मे मुझे भय नही है। मैं मैत्री और करुणा से युक्त, सीधे मार्ग का पथिक हूँ।]

असङ्कियोम्हि गामम्हि, शका मे नियुक्त, प्रतिष्ठित,=शका युक्त (=सकियो) न सकियो—आशका-रहित (=असकियो)', मै ग्राम मे रहता हुआ भी शका में अप्रतिष्ठित होने से, आशका-रहित (असकियो) निर्भय, नि शका हूँ। **अरञ्ञे** ग्रामोपचार से रहित स्थान मे (=जगल मे)। **उजुमग्गं समारूळ्हो मेत्ताय करुणाय च,** मै तृतीय, चतुर्थ ध्यान सम्बन्धी मैत्री, करुणा से युक्त, तथा शारीरिक कुकर्म से विरहित, ऋजु, सीधे, ब्रह्मलोक के मार्ग पर आरुढ हूँ। अथवा शील शुद्ध होने से, शारीरिक, वाचिक तथा मानसिक टेढ़ेपन से रहित, ऋजु, देवलोक-गामी मार्ग पर आरुढ हूँ। और भी, मैत्री तथा करुणा में प्रतिष्ठित होने से ऋजु, ब्रह्मलोक गामी मार्ग पर आरुढ हूँ। ध्यान-प्राप्त (मनुष्य) के निश्चय-पूर्वक ब्रह्मलोक गामी होने के कारण, मैत्री करुणो आदि को ऋजु-मार्ग कहा गया है।

इस प्रकार बोधिसत्त्व ने इस गाथा से धर्मोपदेश कर, उन सतुष्ट-चित्त मनुष्यो से सत्कृत हो, पूजित हो, आयु रहते चारो ब्रह्म-विहारो की भावना कर, ब्रह्मलोक मे जन्म लिया।

शास्ता ने इस धर्मदेशना को ला, मेल मिला, जातक का साराश निकाल दिया। उस समय के कारवाँ-वाले अब की बुद्धि-परिषद् थे। लेकिन तपस्वी मैं ही था।

७७. महासुपिन जातक

"लापूनि सीदन्ति ..." यह (गाथा) शास्ता ने जेतवन मे विहार करते समय, सोलह महास्वप्नो के बारे मे कही।

क. वर्तमान कथा

एक दिन कोसल महाराजा ने सोते समय, (रात्रि के) आखिरी पहर मे सोलह महास्वप्न देखे, जिनसे भय-भीत, चकित हो, जागकर 'इन स्वप्नो को देखने

के कारण मुझे क्या (भुगतना) होगा ?' (सोच), मृत्यु-भय से डर कर शय्या पर बैठे ही बैठे (रात्रि) बिताई। रात्रि का प्रभात होने पर, ब्राह्मण पुरोहितो ने उन के पास आकर पूछा—"महाराज ! सुख से तो सोये ?"

"आचार्य्यो ! मुझे, सुख कहाँ ! आज प्रात काल, मै ने सोलह महास्वप्न देखे। उनके देखने के समय से, मै भय-भीत हूँ। आचार्य्यो ! (कुछ) कहो।" उनके '(स्वप्नो को) सुनकर,वतलायेगे' कहने पर,राजा ने उन देखे स्वप्नो को कह, पूछा—'इन स्वप्नो को देखने के कारण मुझे क्या (भुगतना) होगा ?'

ब्राह्मणो ने हाथ मले।

"आप किसलिए हाथ मल रहे है ?"

"महाराज ! स्वप्न अच्छे नही।"

"तो इनका क्या फल होगा ?"

"राज्य को खतरा, जीवन का खतरा तथा भोग-सम्पत्ति का खतरा— इन तीन खतरो मे से कोई एक होगा।"

"यह स्वप्न स-उपाय (=सपटिकम्म) है, अथवा निरुपाय ?"

"यद्यपि अपनी कठोरता के कारण, यह (स्वप्न) निरुपाय है, तो भी हम इनका उपाय करेगे, यदि हम इनका कुछ उपाय न कर सके, तो हमारी विद्या किस काम आयेगी ?"

"इनका उपाय कैसे करोगे ?"

"महाराज ! चारो (चीजो) से यज्ञ करेगे।"

राजा वोला—"अच्छा ! तो आचार्य्यो, मेरा जीवन तुम्हारे हाथ मे है, शीघ्र ही मुझे निरुपद्रव (=स्वस्थ) करो।"

'वहुत धन मिलेगा, वहुत खाद्य-भोज्य ले जायेगे' सोच प्रसन्न चित्त हो ब्राह्मण, 'महाराज ! चिन्ता न करें' कह, राजा को आश्वासन दे, राज-भवन से निकले। उन्होने नगर के वाहर यज्ञ-कुण्ड वनवा, वहुत से पशुओ को यज्ञयूप से बँधवाया, (तथा) पक्षी-गणो को मँगवा, 'यह चाहिए, यह चाहिए,' करके बार बार, आवा जाही करने लगे। मल्लिका देवी ने उस वात को जान, राजा के पास जाकर पूछा—"महाराज ! ब्राह्मण किस लिए आवा जाही कर रहे है ?"

"तू (अपने) सुख से है। हमारे कान के पास विपैला सर्प घूम रहा है। सो भी नही जानती।"

"महाराज! यह क्या?"

"मैंने ऐसा दुस्स्वप्न देखा है, ब्राह्मणो का कहना है कि तीन खतरो में से एक खतरा दिखाई देता है, सो 'उसे रोकने के लिए यज्ञ करेंगे' (करके) वह वारवार आवा-जाही कर रहे है।"

"महाराज! क्या आपने देवताओ सहित सारे लोक में अग्र-ब्राह्मण से स्वप्न का प्रतिकार पूछा?"

"भद्रे। देवताओ सहित सारे लोक में यह अग्र-ब्राह्मण कौन है?"

'देवता सहित सारे लोक में, पुरुषोत्तम, सर्वज्ञ, विशुद्ध, क्लेश (=विकार) -रहित महा-ब्राह्मण को तुम जानते नही? महाराज! जाओ, वह भगवान् स्वप्नो को जानते है, उन्हें पूछो।"

"देवी! अच्छा" कह, राजा, विहार जा, शास्ता को प्रणाम करके बैठा।

शास्ता ने मधुरवाणी से पूछा—"क्यो महाराज! आज कैसे सवेरे ही आये?"

"भन्ते! मैंने आज ही, तडके ही, सोलह महास्वप्न देखकर, भय-भीत हो ब्राह्मणो से पूछा।" 'महाराज! स्वप्न, अशुभ (=कक्खल) हैं, इनके प्रतिघात के लिए, चारो (चीजो) से यज्ञ करेंगे' (करके) वह यज्ञ की तैयारी कर रहे हैं, वहुत से प्राणी मरने के भय से भयभीत है। आप देवताओ सहित सारे लोक मे सर्वश्रेष्ठ पुरुष है। अतीत-भविष्य-वर्तमान, कोई ऐसी वात नही है, जो आपके ज्ञान से अगोचर हो। भगवान् मुझे इन स्वप्नो का फल कहें।"

"महाराज! ऐसा ही है, मुझे छोड, देवताओ सहित सारे लोक में कोई भी, इन स्वप्नो का भेद या फल नही जान सकता। मै तुझे वताऊँगा, लेकिन (पहले) तू जैसा देखा है, वैसा ही, उन स्वप्नो को वयान कर।" 'भन्ते। 'अच्छा' कह, राजा, ने जैसा जैसा देखा था, वैसे ही कहते हुए, इस प्रकार कहा—

उसभा रुक्खा गावियो गवा च
अस्सो कंसो सिगाली च कुम्भो
पोक्खरणी च अपाकचन्दनं
लापूनि सीदन्ति सिला प्लवन्ति
मण्डूकियो कण्हसप्पे गिलन्ति;
काकं सुवण्णा परिवारयन्ति
तसावका एलकानं भया हि॥

[सांड, वृक्ष, गौवें, बैल, घोड़ा, काँसा, स्यारी, घडा, पुष्करिणी, अपक्व चन्दन, तूवे डूवते है, शिलायें तैरती है, मेंडकियाँ काले सर्पो को निगलती है, राज-हस कौओ के पीछे चलते है, भेडिए बकरियो से डरते है।]

"कैसे ? भन्ते ! एक स्वप्न तो ऐसे देखा—सुरमे जैसे काले चार साँड (= लड़ने की इच्छा से चारो दिशाओ से राजाङ्गण में आये। बैलो की लडाई देखने की इच्छा से, जन-समूह) के एकत्रित होने पर, लडने का ढग दिखा, नाद कर, गर्जना कर, विना लडे ही वह वापिस लौट गये। यह स्वप्न देखा। इसका क्या फल है ?"

"महाराज ! इस स्वप्न का फल न तेरे समय में होगा, न मेरे समय में, किन्तु भविष्य में अधार्मिक, कजूस राजाओ तथा अधार्मिक मनुष्यो के समय मे (होगा)। लोक के वदलने पर, धर्म के घटने पर, अधर्म के वढने पर, लोक की अवनति होने के समय, अच्छी तरह वर्षा नही वरसेगी, वादल फट जायेंगे, खेत कुम्हला जायेंगे, अकाल पडेगा। वादल जैसे वरसने वाले हो, वैसे चारो दिशाओ से उठेंगे। स्त्रियाँ धूप में फैलाये हुए धान्य आदि भीगने के डर से अन्दर ले जाने लगेंगी। आदमी टोकरी-कुदाली हाथ में लेकर मेड वाँधने के लिए निकललेंगे। (फिर वह बादल) वरसने का ढग दिखा गरज कर, विजली चमका कर, उन बैलो की तरह बिना लड़े (अर्थात्) विना वरसे ही भाग जायेंगे। यह इसका फल होगा। लेकिन इसके कारण, तुझे किसी प्रकार का खतरा नही है। यह जो स्वप्न देखा है, सो यह भविष्य सम्वन्धी है। ब्राह्मणो ने जो कहा है, सो अपनी जीविका-वृत्ति के लिए कहा है।"

इस प्रकार शास्ता ने स्वप्न का फल वतला कर कहा—"महाराज ! दूसरा स्वप्न कहें।"

"भन्ते ! दूसरा (स्वप्न) इस प्रकार देखा—"पृथ्वी से निकलते ही गाछ वृक्ष, एक या दो वालिश्त के होने से भी पहले ही फूलने फलने लगे। यह दूसरा स्वप्न देखा, इसका क्या फल है ?"

"महाराज ! इसका भी फल, लोक की अवनति होने तथा मनुष्यो की आयु कम (=परिमित) होने पर होगा। भविष्य के प्राणी वड़े रागी होगे। कुमारियाँ आयु-प्राप्त होने से पहले ही, आदमियो से ससर्ग कर, ऋतुमती तथा गर्भिणी हो, बेटा-वेटी की वृद्धि करेंगी। क्षुद्र वृक्षो के पुष्पित होने की तरह ही, उनका ऋतुमती होना है, और फलित होने की तरह बेटा-वेटी वाली होना है। इसके कारण भी, महाराज ! तुम्हें खतरा नही। तीसरा स्वप्न कहे।"

"भन्ते! उसी दिन उत्पन्न (अपनी) बछडियो का दूध गौवें पी रही थी। यह मेरा तीसरा स्वप्न है। इसका क्या फल है?"

इनका भी फल भविष्य में जब मनुष्य बडो का आदर-सत्कार करना छोड देंगे, तभी होगा। भविष्य में लोक, मातापिता तथा सास ससुर के प्रति निर्लज्ज हो, अपने आप ही कुटुम्ब का पालन करेंगे। बडे बूढो को खाना कपड़ा देने की इच्छा रहेगी देंगे, न देने की इच्छा रहेगी नही देंगे। वृद्ध जन अनाथ हो, पराधीन हो, बच्चो को सतुष्ट करके जीवित रह सकेंगे, जैसे उसी दिन उत्पन्न हुई बछडियों का दूध पीती गौवे। इसके कारण भी, तुम्हें खतरा नही है, चौथा (स्वप्न) कहें।"

"भन्ते! उठाने ढोने की सामर्थ्य रखने वाले, महाबैलो को युग-परम्परा मे न जोत कर, तरुण बछडो के धुरि मे जोते जाते देखा, वे धुर को न खीच सकने के कारण छोडकर खडे हो गये, गाड़ियाँ न चली। यह मैने चौथा स्वप्न देखा। इनका क्या अर्थ है?"

"इनका भी फल, भविष्य मे अधार्मिक राजाओ के ही समय में होगा। भविष्य में, अधार्मिक कृपण राजा, पडितो को, परम्परागत दक्षो को, कार्य्य सम्पादन करने की सामर्थ्य रखने वालो को, महाबुद्धिमानो को यश न देंगे और धर्मसभा तथा न्यायालयो मे भी पडित, व्यवहार कुशल, दक्ष अमात्य को नही रखेंगे, किन्तु इसके विरुद्ध तरुण को यश देंगे, और वैसे को ही न्यायालयो में रक्खेंगे। वे राज कार्य तथा योग्य अयोग्य के न जानने के कारण, न तो उस यश को रख सकेंगे, न ही राज-कार्य का बेडा पार लगा सकेंगे। न कर सकने पर वह कार्य्य (-धुर) को छोड़ देंगे। वृद्ध-पडित अमात्य यश के न मिलने पर, कार्य्य सम्पादन कर सकने की सामर्थ्य रखने पर भी, सोचेंगे—"हमें इससे क्या? हम बाहर के हो गये, अन्दर वाले तरुण लड़के जानें।" (यह सोच) वह, जो जो काम पडेंगे, उन्हें नही करेंगे। इस प्रकार सर्वत्र उन राजाओ की हानि ही होगी। सो यह धुरि खीचने में असमर्थ बछडो को धुरि में जोतने, और धुरे खीचने मे समर्थ महाबैलो को युग परम्परा से न जोतने से जैसा होगा। इसके कारण भी, तुझे कोई खतरा नही। पाँचवा (स्वप्न) कह।"

'भन्ते! एक दोनो ओर मुह वाले घोडे को देखा। उसे दोनो ओर से चारा दिया जाता था, और वह दोनो मुखो से खाता था। यह मेरा पाँचवा स्वप्न है। इसका क्या फल है?'

"इसका भी फल, भविष्य में अधार्मिक राजाओ के ही समय में होगा। भविष्य मे अधार्मिक मूर्ख राजा, अधार्मिक लोभी मनुष्यो को न्यायाधीश बनायेंगे। वे मूर्ख पाप-पुण्य का भेद न कर, सभा मे वैठ न्याय करते हुए, दोनो प्रत्यर्थियो से रिश्वत लेकर खायेंगे, जैसे कि उस घोडे का दोनो मुह मे चारा खाना। इससे भी तुझे खतरा नही है, छठा (स्वप्न) कह।"

"भन्ते! वहुत से आदमी, लाख (मुद्रा) के मूल्य की एक सोने की थाली को माज कर लाये, और उसमे पेशाव करने के लिये एक वूढे गीदड के सामने रक्खा। (मैंने) उसे उसमे पेशाव करते देखा। यह मेरा छठा स्वप्न है। इस का क्या फल है?"

"इसका भी फल, भविष्य मे ही होगा। भविष्य में अधार्मिक, विजातीय राजा, जाति-सम्पन्न कुलपुत्रो पर शका करके, उन्हें यश (=दर्जा) न देंगे, अकुलीनो की ही उन्नति करेंगे। इस प्रकार ऊँचे ऊँचे कुल दुर्गति को प्राप्त होगे और नीच-कुल ऐश्वर्य्य को। वे कुलीन पुरुष उपाय न देख जीविका प्राप्त करने की इच्छा से इन पर निर्भर होकर जीयें, (सोच), अकुलीनो को (अपनी) लडकियाँ देंगे। सो यह उन कुलीन लडकियो का अकुलीनो के साथ सहवास, वृद्ध शृगाल के सोने की थाली मे पेशाव करने के सदृश होगा। इसके कारण भी, तुझे खतरा नही। सातवाँ (स्वप्न) कह।"

"भन्ते! एक आदमी रस्सी वाँट वाँट कर पैरो मे डालता था। वह, जिस पीढे पर वैठा था, उसके नीचे वैठी एक भूखी गीदडी, उस (आदमी) को विना ही पता लगे, उस (रस्सी) को खा रही थी। मैंने ऐसा स्वप्न देखा। यह मेरा सातवाँ स्वप्न था। इसका क्या फल होगा?"

"इसका भी फल, भविष्य मे ही होगा। भविष्य मे स्त्रियाँ, पुरुष-लोभी, शराव (=सुरा) लोभी, आभरण-लोभी, (रात को) वाजारो में घूमने की लोभी लौकिक-चीज़ो की लोभी तथा दुश्शील दुराचारिणी होगी। वे स्वामी के खेती गोरक्षा आदि कर्म से, वडी कठिनाई से कमाये धन को ज़ारो के साथ शराव पीकर, माला-गन्ध-विलेपन लगाकर (नाश कर देंगी। वे घर के अन्दर के अत्यन्त आवश्यक कार्य्य का भी ध्यान न रक्खेगी, और घर की चहार दीवारी के ऊपर से, छिद्रो तक मे से (अपने) जार को देखेंगी। (वे) कल वोने के लिए रक्खे वीज़ को भी कूट कर, उसका यवागु-भत्त-खाजा आदि वना, खाकर उडा देंगी, जैसे कि वह

पीढे के नीचे पडी भूखी गीदडी, बाँट बाँट कर पैरो में रक्खी जाती रस्सी को। इससे भी तुझे खतरा नही। आठवें (स्वप्न) को कह।"

"भन्ते! राज द्वार पर, बहुत से खाली घडो के बीच में रक्खे हुए, एक बडे से भरे हुए घडे को देखा। चारो वर्णों के लोग चारो दिशाओ से तथा चारो अनु-दिशाओ से, घडो में जल ला ला कर, उस भरे हुए, घडे को ही भरते थे। लबालब भरा पानी, किनारो पर से होकर गिरता जाता था, लेकिन फिर भी बार बार उसी में पानी डाल रहे थे। खाली घडो की ओर कोई देखता तक न था। यह मेरा आठवाँ स्वप्न है। इसका क्या फल होगा?"

"इसका फल भी भविष्य में ही होगा। भविष्य में लोक की अवनति होगी। राष्ट्र सार-रहित हो जायेगा। राजा, दुर्गत, कृपण हो जायेंगे। जो ऐश्वर्य शाली होगा, उसके खजाने में केवल एक लाख कार्पापण रहेंगे। इस प्रकार दुर्गति को प्राप्त हो, वह सब जनपद-वासियो से अपना ही काम करवायेंगे। पीडित मनुष्य अपने काम काज छोड कर राजाओ के ही लिए पूर्व-अन्न, अपर-अन्न (आषाढी-श्रावणी) बोते, राखी करते, काटते, दलाई करते, ढुवाते, ऊख की खेती करते, यन्त्र बनाते, यन्त्र चलाते, गुड आदि पकाते पुष्पोद्यान तथा फलोद्यान लगाते, वहाँ वहाँ उत्पन्न पूर्व - अन्न आदि को लेकर राजा के कोठो को ही भरेंगे। अपने घरो के खाली कोठो की ओर देखेंगे तक नही। यह ऐसा ही होगा, जैसे खाली घडो की ओर न देख कर, भरे घडो को ही भरना। इस कारण से भी, तुझे खतरा नही। नवाँ (स्वप्न) कह।"

"भन्ते! पांचो पद्मो से आच्छन्न, गम्भीर सब ओर तीर्थ (पत्तन) वाली, एक पुष्करिणी देखी। चारो ओर से द्विपद-चतुष्पद उतर कर, उसमें पानी पीते थे। उसके बीच में गहराई में (तो) पानी गदला था, (लेकिन) किनारे पर, द्विपद-चतुष्पदो के आने-जाने की जगह मैने उसे शुद्ध, स्वच्छ तथा साफ ही देखा। यह मेरा नौवाँ स्वप्न है। इसका क्या फल है?"

"इसका भी फल, भविष्य में ही होगा। भविष्य में राजा अधार्मिक होगे। पक्षपात पूर्वक राज्य करेंगे। धर्मानुकूल न्याय न करेंगे। रिश्वत लेने वाले होगे। (उन्हें) धन का लोभ (होगा)। प्रजा (=राष्ट्र वासियो) के प्रति, उनकी क्षान्ति मैत्री, करुणा, कुछ न होगी। निर्दयी तथा कठोर होगे, ऊख के यन्त्र में ऊख की गाँठ को पेलने की तरह, मनुष्यो को पेल पेल कर, नाना प्रकार के टैक्स (=बलि)

लगा कर, धन ग्रहण करेंगे। मनुष्य टैक्सो से पीडित हो कर, कुछ भी दे सकने में असमर्थ होने पर, ग्राम निगम आदियो को छोड, सीमान्त (=देश) में जाकर रहने लगेगे। मव्यम-देश (युक्त प्रान्त विहार) सूना हो जायगा, प्रत्यन्त घना-बसा, जैसे पुष्करिणी के वीच मे पानी गँदला है, किनारो पर साफ। इस कारण से भी, तुझे खतरा नही है। दसवाँ (स्वप्न) कह।"

"भन्ते! एक ही देगची मे पके हुए, भात को कच्चा देखा, मानो फाड कर, वाँट कर, तीन तरह पकाया गया हो, एक ओर वहुत कच्चा, एक ओर अध-कच्चा, एक ओर खूव पका हुआ। यह मेरा दसवाँ स्वप्न है। इसका क्या फल है?

"इसका भी फल भविष्य में ही होगा। भविष्य में राजा अधार्मिक होगे। उनके अधार्मिक होने से राजकर्मचारियो, ब्राह्मण-गृहपतियो, निगम तथा जनपद (=दीहात) के रहने वालो से लेकर, श्रमण ब्राह्मणो तक सब मनुष्य अधार्मिक हो जायेगे। उससे उनके आरक्षक-देवता, वलि ग्रहण करने वाले देवता, वृक्षो के देवता, (तथा) आकाश स्थित देवता, इस प्रकार देवता भी आधार्मिक हो जायेंगे। अधार्मिक राजाओ के राज्य मे विपम, कठोर हवाये चलेगी। उनसे आकाश स्थित विमान कम्पित होगे। उनके कम्पित होने से, देवता क्रोधित हो, वर्षा न वरसने देंगे। वरसने पर भी वह सव जगह हल-चलाई (=कृपिकर्म या बुवाई) के लिए उपकारी होकर न वरसेगा, जैसे राष्ट्र में, वैसे ही जनपद में भी, ग्राम में भी, तालाब तथा सरोवर मे भी—हर जगह एक जोर से नही वरसेगा। तालाब के ऊपर के हिस्से मे वरसने पर, निचले हिस्से मे न वरसेगा, निचले हिस्से में वरसने पर, ऊपरके हिस्से मे न वरसेगा। एक हिस्से मे खेती अविक वर्षा मे नष्ट हो जायगी, एक हिस्से में वर्पा के अभाव से कुम्हला जायगी, एक हिस्से मे खूब वर्षा होकर अच्छी खेती होगी। इस प्रकार एक ही राज्य मे बोई खेती तीन प्रकार की होगी जैसे एक देगची का चावल, इस कारण से भी, तुझे खतरा नही। ग्यारहवाँ (स्वप्न) कह।"

"भन्ते! लाख (मुद्रा) की कीमत का चन्दन-सार, सडे हुए मट्ठे के वदले में विकता देखा। यह मेरा ग्यारहवाँ स्वप्न है। इसका क्या फल होगा।"

"इसका फल भी भविष्य में, मेरे शासन (=धर्म) की अवनति होने के समय ही होगा? भविष्य में वस्तु (=प्रत्यय) लोभी, बे-शर्म भिक्षु बहुत होगे, वे उस धर्म का जिसे मैंने प्रत्यक्ष लोभ के नाश करने के लिए उपदेश किया है, चीवर आदि प्रत्ययो की आशा से, औरो को उपदेश करेंगे। (वे) प्रत्यय (की आशा) से मुक्त

हो, (ससार-सागर से) निस्तार के पक्ष मे स्थित हो, निर्वाणाभिमुख धर्म का उपदेश न कर सकेंगे। 'हमारे शब्द तथा मधुर स्वर को सुन कर (लोग) चीवर आदि देंगे या देने की इच्छा करेंगे' (सोच) (वह) उपदेश करेंगे। अन्य (भिक्षु) बाजार, चौरस्तो (तथा) राजद्वार आदि में बैठ, **कार्षापण,' अर्ध-पाद,' मापक'** तथा **'रूपी** आदि तक के लिए उपदेश करेंगे। सो यह धर्म, जिसे मैंने निर्वाण की कीमत करके उपदेश किया है, जब वे चार प्रत्यायो तथा कार्षापण, अर्धकार्षापन, के लिए उपदेश देंगे, तब यह ऐसा ही होगा, जैसे लाख के मूल्य के चन्दन-सार को सडे, मट्ठे के बदले में बेचना। इस कारण से भी तुझे खतरा नही है। बारहवाँ (स्वप्न) कह।"

"भन्ते! खाली तूम्बो को पानी मे डूबते देखा। इसका क्या फल है?"

"इसका फल भी भविष्य में, अधार्मिक राजाओ के समय, लोक मे तब्दीली आने पर होगा। तब राजा कुलीन कुलपुत्रो को दर्जा (=यश) न दे, अकुलीनो को ही देंगे। वे (=अकुलीन) ऐश्वर्यशाली होगे तथा दूसरे दरिद्र। राजा के सन्मुख, राजद्वार में, अमात्यो के सन्मुख तथा न्यायालय में (उन) खाली तुम्बो के समान अकुलीनो का ही कथन, स्थल पर बैठ जाने की तरह, स्थिर, निश्चय तथा सुप्रतिष्ठित होगा। सघ-सम्मेलनो में, साधिक कर्म वा गणकर्म करने की जगहो में तथा पात्र, चीवर, परिवेण आदि के सम्बन्ध में (तथा) न्याय करने के स्थान पर भी, दुश्शील, पापी लोगो का ही कथन कल्याणकारी माना जायेगा, लज्जा-वान् भिक्षुओं का कथन नही। इस प्रकार सब जगह खाली तूम्बे के डूबने के समान होगा। इस कारण से भी, तुझे खतरा नही। तेरहवाँ (स्वप्न) कह।"

"भन्ते! बडी बडी, कूटागार (कोठे) सदृश, मोटी शिलाओ को, नौका की तरह पानी पर तैरते देखा। इसका क्या फल है?"

"इसका भी फल, वैसे ही समय मे होगा। उस समय अधार्मिक राजा अकुलीनो को यश देंगे, (जिससे) वह ऐश्वर्य शाली होगे तथा कुलीन (लोग) दरिद्र। उन (कुलीनो) के प्रति कोई गौरव प्रदर्शित न करेगा, दूसरो का ही गौरव होगा। राजा के सामने, अमात्यो के सामने तथा न्यायालय में, न्याय करने में समर्थ, घनी-शिला सदृश कुलपुत्रो का कथन प्रमाण न माना जायेगा। उनके कुछ कहने पर 'यह क्या बोलते है' करके, दूसरे लोग मखौल ही उडायेंगे। भिक्षुओ के सम्मेलन

---

[1] यह चारों उस समय के सिक्के थे।

में भी उक्त स्थानो पर, सदाचारी भिक्षुओ का सम्मान न होगा और उनका कथन भी प्रमाण न माना जायेगा। सो, वह शिलाओ के तैरने सदृश होगा। उससे भी, तुझे खतरा नही। चौदहवाँ (स्वप्न) कह।"

"भन्ते! छोटे मधुक पुष्प जितनी वडी मेडकियो को तेजी से वडे वडे काले साँपो का पीछा कर, उन्हें कँवल की नाल की भाँति तोड तोड कर, उनका मास निगलते देखा। इसका क्या फल है?"

"इसका फल भी, लोक की अवनति होने जाने के समय, भविष्य मे ही होगा। उस समय लोग तीव्र-रागी हो, विकारो का अनुकरण कर, अपनी तरुण भार्य्याओ के वशीभूत होकर रहेंगे। घर के नौकर-चाकर, गौ-भैंस, तथा हिरण्य-सोना आदि सव उन्ही के अधीन रहेगा। "अमुक हिरण्य-सोना अथवा मोती आदि कहाँ है?" पूछने पर "कही भी हो। तुम्हें इससे क्या मतलव? मेरे घर मे क्या है, और क्या नही है, यह तुम जानना चाहते हो?" कह, नाना प्रकार से गाली दे, मुख रूपी शक्ती (=आयुध) चुभा चुभा कर, (उन्हे) नौकर-चाकरो की तरह अपने वश में कर, अपना ऐश्वर्य चलायेंगी। सो यह मधुक पुष्प जितनी वडी मेडक की वच्चियो का, जहरीले, काले सर्पो को निगलने जैसा होगा। इसमे भी तुझे खतरा नही। पन्द्रहवाँ (स्वप्न) कह।"

"भन्ते! दस असद्धर्मो (=अवगुणो) से युक्त ग्रामचारी कौए को, कञ्चन-वर्ण होने से 'सुवर्ण' कहलाने वाले, सुवर्ण राज-हसो से घिरा देखा। इसका क्या फल है?"

"इसका भी फल, भविष्य मे दुर्वल राजाओ के समय मे होगा। भविष्य में राजा लोग हस्ती शिल्प में अकुशल (तथा) युद्ध में अविशारद होगे। वे अपने राज्य पर आपत्ति आने की आशंका से, (अपने) समान जातिक कुलपुत्रो को ऐश्वर्य न देकर, अपने चरणो में रहने वाले नाई, दरजी आदि को देंगे। जाति गोत्र सम्पन्न कुल-पुत्र राजकुल में प्रतिष्ठा न पाकर, जीविका चलाने मे असमर्थ हो, ऐश्वर्य्य शाली (किन्तु) जाति-गोत्र हीन, अकुलीनो की सेवा मे रहेंगे। सो यह, सुवर्ण-राजहसो के, कौओ के अनुयायी वनने के सदृश होगा। इस कारण से भी, तुझे खतरा नही है। सोलहवें (स्वप्न) को कह।"

"भन्ते! पहले (तो) शेर वकरियो को खाते थे, लेकिन मैंने वकरियो को शेर का पीछा कर, उसे मुरमुरे (करके) खाते देखा। और अन्य भेडिये वकरियो

(१.८.७७

को दूर से देख कर, त्रसित तथा भयभीत हो; वकरियों के भय से भाग कर, गहन जंगलों में घुस कर छिप रहे। ('हि' यहाँ निपात मात्र है)। सो मैंने ऐसा देखा इसका क्या फल है?"

"इसका फल भी, भविष्य में अधार्मिक राजाओं के ही समय में होगा। उस समय अकुलीन (मनुष्य) राज्य के स्वामी तथा ऐश्वर्य-शाली होंगे और कुलीन (मनुष्य) अप्रसिद्ध तथा दरिद्र होंगे। वे राज-स्वामी (लोग) राजाओं को अपना विश्वासी बना, न्यायालय आदि स्थानों में शक्ति-शाली हो, 'कुलीनों के परम्परागत खेत वस्तु आदि हमारी सम्पत्ति हैं' ऐसा अभियोग लगाकर, उन (कुलीनों) के 'यह तुम्हारे नहीं, हमारे हैं' करके न्यायालयों में आकर विवाद करने पर, (उन्हें) बेंतों से पिटवा, गरदन से पकड़ कर, धक्के दिलवा कर, "तुम अपनी हैसियत नहीं जानते? हमारे साथ विवाद करते हो? अभी, राजा से कह कर, हाथ पैर कटवा देंगे" कह, डरायगे। वह, उनसे डर कर, अपनी चीजों को 'लो, यह तुम्हारी ही हैं' कहके (उन्हें) सौंप, अपने अपने घर पर डर के मारे पड़ रहेंगे। पापी भिक्षु भी शीलवान् भिक्षुओं को जैसा चाहेंगे, वैसा तंग करेंगे। वे सदाचारी भिक्षु, कोई आश्रय न मिलने से, जंगल में जाकर घनी जगहों पर छिप रहेंगे। इस प्रकार हीन-जाति के (लोगों) का पीड़ित, (ऊँची) जाति-वाले कुलपुत्रों को और पापी भिक्षुओं का सदाचारी भिक्षुओं को भगा देना, वकरियों के शेर भगा देने के समान होगा। इस कारण से भी तुझे खतरा नहीं है। यह स्वप्न भी, तूने भविष्य के ही सम्बन्ध में देखा है। हाँ, ब्राह्मणों ने जो कहा, सो तेरे प्रति स्नेह से, धर्मानुकूल नहीं कहा। उन्होंने 'बहुत धन मिलेगा' सोच, लौकिक वस्तुओं पर नजर रख, जीविका के ही ख्याल से कहा।"

इस प्रकार बुद्ध ने सोलह महास्वप्नों का फल कह कर 'महाराज! न केवल तूने ही, अभी इन स्वप्नों को देखा है। पुराने राजाओं ने भी देखा है (उस समय भी) ब्राह्मणों ने, इन स्वप्नों को इसी प्रकार लेकर यज्ञ के सिर मढ़ दिया था। तब पण्डितों की सलाह के अनुसार, बोधिसत्व से जाकर पूछा। पुराने (राजाओं) ने भी (उनको) यह स्वप्न कहते समय, इसी प्रकार कहा'—यह कह, उनके याचना करने पर पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में बाराणसी में (राजा) ब्रह्मदत्त के राज्य करते समय, बोधिसत्त्व उदीच्च ब्राह्मण कुल में उत्पन्न हुआ। उमर होने पर, वह ऋषि प्रव्रज्या के अनुसार प्रव्रजित हो गया; अभिज्ञा तथा समापत्तियों को प्राप्त कर, हिमवन्त प्रदेश में ध्यान-क्रीड़ा में रत रह कर विचरता था। उस समय वाराणसी में (राजा) ब्रह्मदत्त ने इसी प्रकार इन स्वप्नों को देख, ब्राह्मणों को पूछा। ब्राह्मणों ने भी इसी प्रकार यज्ञ करना आरंभ किया। उनमें जो पुरोहित था, उसके बुद्धिमान्, स्पष्ट-वक्ता, माणवक-शिष्य ने आचार्य्य से निवेदन किया—"आपने मुझे **तीनों वेद** सिखाये। उनमें कहीं भी एक (जने) को मार कर, दूसरे को सुखी करने का उल्लेख नहीं है न?"

"तात! इस ढंग से हमें बहुत धन मिलेगा। मालूम होता है, तू राजा के धन की रक्षा करना चाहता है।"

"आचार्य्य! तो आप अपना काम करें; मैं आपके पास रह कर क्या करूँगा," कह, माणवक, घूमता घामता राजा के उद्यान में आ पहुँचा।

उसी दिन बोधिसत्त्व भी उस वृत्तान्त को जान, 'आज मेरे आबादी की ओर जाने से, जन (-समूह) की बन्धन से मुक्ति होगी' (सोच) आकाश से जाकर, उद्यान में उतर, मंगल-शिलातल पर स्वर्ण-प्रतिभा की भाँति बैठे। माणवक ने बोधिसत्त्व के पास पहुँच प्रणाम कर, एक ओर बैठ, कुशलक्षेम पूछा।

बोधिसत्त्व ने भी, उसके साथ मधुर बात-चीत करके पूछा—"माणवक! यह राजा धर्म से राज्य करता है?"

"भन्ते! राजा तो धार्मिक है, लेकिन ब्राह्मण उसे डुबो रहे हैं। राजा ने सोलह स्वप्न देख, ब्राह्मणों से निवेदन किया। ब्राह्मणों ने 'यज्ञ करेंगे' कह, यज्ञ करना आरम्भ किया। सो भन्ते! क्या आपका कर्त्तव्य नहीं कि आप राजा को इन स्वप्नों का फल बताकर जनसमूह को भय से मुक्त करें?"

"माणवक! हम राजा को नहीं जानते, और राजा हमें नहीं जानता। हाँ, यदि वह यहाँ आकर पूछे तो हम उसे कहेंगे।"

माणवक ने 'भन्ते! मैं लाऊँगा आप मेरे आने की प्रतीक्षा करते हुए, थोड़ी देर बैठें' (कह) बोधिसत्त्व को जतला, राजा के पास जाकर कहा—"महाराज

एक आकाश-चारी तपस्वी आपके उद्यान में उतरे हैं, और आपको बुलाते हैं कि आपके देखे हुए स्वप्नों का फल बतलायेंगे।"

राजा उनकी बात सुन, उसी समय बहुत से अनुयाइयों को साथ ले उद्यान में गया और तपस्वी को प्रणाम कर, एक ओर बैठ पूछा—"भन्ते! क्या आप मेरे देखे स्वप्नों का फल जानते हैं?"

"महाराज हाँ।"

"तो कहें।"

"महाराज! मैं कहूँगा। (पहले) मुझे स्वप्नों को जैसे जैसे देखा है, वैसे सुनाओ।"

"भन्ते! अच्छा" कह, राजा ने, राजा प्रसेनजित के द्वारा कहे गये स्वप्नों की ही तरह स्वप्न कहे—

उसभा रुक्खा गावियो गवा च
अस्सो कंसो सिगालो च कूम्भो
पोक्खरणी च अपाकचन्दनं।
लापनि सीदन्ती सिला प्लवति
मण्डूकियो कन्हसप्पे गिलन्ती
काकं सुवण्णा परिवारयन्ती
तसावका एलकानं भया हि

(अर्थ पहले कहा ही गया है।)

जैसे शास्ता ने इस समय, इन स्वप्नों का फल कहा, वैसे ही उस समय बोधिसत्व ने भी उन स्वप्नों का फल कह, अन्त में यह कहा—

विपरियासं वत्तति न इधमत्थी (=उलटा पड़ेगा, अब नहीं है)

"महाराज! यह, इन स्वप्नों की उत्पत्ति है। यह जो, उनके प्रतिघात के लिए यज्ञ-कर्म है, सो यह (विपरियासो वत्तति) विपरीप पड़ेगा, उल्टा पड़ेगा। किस लिए? उन (स्वप्नों) का फल लोक में तब्दीली होने के समय, अकारण (बात) को कारण मानने के समय, कारण को अकारण (समझकर) छोड़ने के समय, झूठ (=असत्य) को सत्य मानने के समय, सत्य को असत्य (समझ कर)

छोड़ने के समय; अलज्जी (=वेशर्मी) के उन्नति पर होने के समय, तथा लज्जियों
(=शरम वालों)की अवनति होने के समय ही होगा। न यिधमत्थि, इस समय,
मेरे वा तेरे समय में, इस पुरुष-युग में, यह फलीभूत न होंगे। इसलिए, इनके प्रति-
घात (=रोकने) के लिए किया जाने वाला यज्ञ-कर्म उलटा होगा। उसकी आव-
श्यकता नहीं। इन (स्वप्नों) के फल स्वरूप, तुझे कोई खतरा वा डर नहीं।

इस प्रकार महापुरुष, राजा को आश्वासन दे; जन-समूह को बंधन से मुक्त
कर (अपने) फिर आकाश में ठहर, राजा को उपदेश दे, (उसे) पाँच शीलों में
प्रतिष्ठित कर, 'महाराज! अव से ब्राह्मणों के साथ मिलकर पशु-घात (वाले)
यज्ञ-कर्मों को न करें'—ऐसा धर्मोपदेश कर, आकाश मार्ग से ही अपने निवास
स्थान को चले गये।

राजा भी उनके उपदेश के अनुकूल चल कर, दान आदि पुण्य-कर्म करके
(अपने) कर्मानुसार (परलोक) गया। शास्ता ने यह देशना ला, 'यज्ञ के कारण
से तुझे खतरा नहीं, इस यज्ञ को हटा' कह, उस यज्ञ को हटवा, जन (-समूह) को
जीवन दान दे, मेल मिला, जातक का सारांश निकाल दिया। उस समय के राजा
(अव के) आनन्द थे। माणवक (अव के) सारिपुत्र थे लेकिन तपस्वी मैं ही था।

भगवान् के परिनिर्वाण प्राप्त होने पर, सङ्गीति कारकों ने उसभा, रुकखादि
...ग्यारह शब्दों की अट्ठकथा (=टीका) कर, 'लापूनी' आदि पाँच पदों की
'गाथा' वना 'एकक निपात' में संगृहीत की।

७८. इल्लीस जातक

"उभो सञ्जा..." यह (गाथा) बुद्ध ने जेतवन में विहार करते समय, (एक) कंजूस कोसिय श्रेष्ठी के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

राजगृह नगर के समीप सक्खर नामक (एक) निगम था; उसमें कंजूस कोसिय नाम का एक अस्सी करोड़ की सम्पत्ति वाला सेठ रहता था। वह दूसरों को तिनके की नोक तर तेल की बूंद तक नहीं देता (और) न अपने ही खाता था। सो उसका वह धन न तो उसके स्त्री-बच्चों के काम आता था, न श्रमण-ब्राह्मणों के। राक्षस अधिकृत पुष्करिणी की तरह व्यर्थ पड़ा था।

एक दिन प्रातःकाल ही बुद्ध ने महा करुणा समापत्ति से उठ, सकल लोक-धातु में, उस दिन, अवबोध प्राप्त कर सकने वाले बंधुओं को देखते हुए, पन्तालीस योजन की दूरी पर रहने वाले सेठ और उसकी भार्य्या के श्रोतापत्ति फल प्राप्त कर सकने की सम्भावना को देखा। उससे एक दिन पहले वह (श्रेष्ठी) राजा के उपस्थान के लिए राज-भवन को गया। राजा की सेवामें जा, वापिस लौटते हुए, भूख से पीड़ित एक नागरिक को, कुल्माष (कुलथी) भरे पूड़े खाते देखा और उनमें तृष्णा उत्पन्न कर घर जाकर सोचने लगा—"यदि मैं कहूँगा कि मैं पूड़े खाना चाहता हूँ, तो बहुत से (लोग) मेरे साथ खाने वाले हो जायेंगे। इस प्रकार मेरा बहुत सा चावल, घी, तथा गुड़ आदि खर्च हो जायगा। सो, मैं किसी को नहीं कहूँगा।

वह तृष्णा को (मन ही मन) सहते हुए रहने लगा, (जिससे) समय गुजरने पर (वह) पाण्डु-वर्ण हो गया, गात्र धमनियों को लग गया। तब तृष्णा को (अधिक) न सह सकने के कारण, वह घर में घुस कर, चारपाई पर मुंह लपेट कर पड़ रहा। ऐसा होने पर भी धन हानि होने के डर से उसने, किसी को कुछ न कहा।

उसकी भार्य्या ने उसके पास जा पीठ मलते हुए पूछा—"स्वामी! क्या रोग है?"

"मुझे, कोई रोग नहीं।"

"क्या राजा क्रुद्ध हो गया है?"

"राजा, मुझ से क्रुद्ध नहीं हुआ है।"

"तो क्या तेरे बेटी-बेटा से अथवा नौकर-चाकरों से कुछ अपराध हो गया है?"

"ऐसा भी (कुछ) नहीं।"

"किसी (चीज़) में, तेरी तृष्णा (=इच्छा) है?" ऐसा पूछने पर, धन-हानि के भय से निशब्द हो, पड़ा रहा। तब उसे भार्य्या ने पूछा—"स्वामी तेरी तृष्णा किस चीज़ में है?

उसने शब्दों को निगलते हुए की तरह कहा—"मेरी एक तृष्णा है"

"स्वामी क्या तृष्णा है?"

"पूड़े (पूए) खाने की इच्छा है।"

"तो कहते क्यों नहीं? क्या तुम दरिद्र हो? अब इतने पूड़े पका दूंगी कि सारे सक्खर निगम-वासियों के लिए पर्य्याप्त हों।"

"तुझे उनसे क्या? वह अपने कमा कर खायेंगे।"

"अच्छा तो उतने ही पकाऊँगी, जो एक गली के लोगों के लिए पर्य्याप्त हों।"

"जानता हूँ, कि तू बड़ी धनवान् है।"

"अच्छा, तो उतने ही पकाऊँगी, जो इस घरवाले सब के लिए पर्य्यात हों।"

"जानता हूँ, कि तू बड़ी उदार है!"

"अच्छा, तो उतने ही पकाऊँगी, जो तेरे स्त्री-बच्चे भर के लिये पर्य्याप्त हों।"

"तुझे, इन से क्या?"

"अच्छा, तो उतने ही बनाऊँगी, तो तेरे लिए और मेरे लिए पर्य्याप्त हों।"

"तू क्या करेगी?"

"अच्छा, तो उतने ही बनाऊँगी, जो अकेले तेरे लिए पर्य्याप्त हों।"

"यहाँ पकाने से बहुत लोग आशा लगायेंगे। सो, तू और सब चावलों को छोड़ केवल कनियाँ (=टूटे चावल), चूल्हा, कड़ाही आदि और थोड़ा दूध, घी, मधु

तथा गुड़ ले, सात-तल प्रासाद के ऊपर महातल्ले पर चढ़ कर पका। वहाँ मैं अकेला बैठ कर खाऊँगा।"

उसने 'अच्छा' कह, स्वीकार कर, जो लेना था, वह लिवा कर प्रसाद के ऊपर चढ़ दासियों को हटा सेठ को बुलवाया ? पहले (दरवाजे) से लेकर सब दरवाज़ों को बन्द करते हुए सब द्वारों में ताले-कुण्डे लगा सातवें तले पर चढ़, वहाँ भी वह दरवाज़ा बन्द करके बैठा। उसकी भार्य्या ने भी, चूल्हे में आग जला, उसपर कड़ाही रख, पूए पकाने शुरू किये।

बुद्ध ने प्रातःकाल ही **महामोग्गल्लान** स्थविर को आमन्त्रित किया—"**मोग्गल्लान**! राजगृह के समीप के **सक्खर** निगम का **कंजूस कोसिय** नामक यह सेठ 'कड़ाही के पूए खाऊँगा' (करके) औरों के देख लेने के भय से, सात तलों वाले प्रसाद के ऊपर पूए पकवाता है। तू वहाँ जाकर, उस सेठ का दमन कर, उसे निर्विपकर, पति-पत्नी दोनों जनों से पूए और दूध-घी-मधु-गुड़ आदि लिवा कर, अपने बल से, उन्हें **जेतवन** ले आ। आज मैं पाँच सौ भिक्षुओं सहित विहार में ही रहूँगा, और पूओं का ही भोजन करूँगा।"

स्थविर 'भन्ते! अच्छा' शास्ता का कथन स्वीकार कर, उसी समय ऋद्धि-बल से, उस निगम में पहुँच उस प्रासाद के छज्जे पर, (अपने ठीक) से पहने, ठीक से ढके हुए आकाश में स्थिर होकर, मणि-मूर्ति की भाँति ठहरे।

स्थविर को देख, सेठ का हृदय काँपा। उसने 'मैं ऐसों के ही डर से, इस जगह आया, सो यह आकर खिड़की पर खड़ा हो गया है' (सोच) हाथ में लेने योग्य कुछ न ले सकने पर, आग में डाली निमक की डली की तरह, गुस्से से चिट चिट करते हुए कहा—"श्रमण; आकाश में खड़े रहने से तुझे क्या मिलेगा ? आकाश में जहाँ पैरों का चिन्ह नहीं है, वहाँ पैरों को दिखाते हुए चङ्क्रमण करने से भी कुछ न मिलेगा।" स्थविर उसी जगह इधर-उधर चङ्क्रमण करने लगे।

सेठ ने कहा—"चङ्क्रमण करने पर तो क्या मिलेगा ? आकाश में पलथी मार कर बैठने पर भी न मिलेगा।" स्थविर पालथी मारकर बैठ गये।

तब उसने (कहा)—"बैठने पर तो क्या मिलेगा ? आकर देहली पर खड़े होने से भी न मिलेगा।" स्थविर (आकर) देहली पर खड़े हो गये।

तब उसने (कहा)—"खड़े होने से तो क्या मिलेगा। धुआं निकालने से भी न मिलेगा।"

स्थविर ने धुआँ निकाला। सारा प्रासाद एक-धूम्र हो गया। सेठ की आँख में जैसे सूइयाँ चुभने लगी, लेकिन घर के जलने के डर से उसने 'जलने पर भी न मिलेगा' न कह, सोच—'यह श्रमण, अच्छा पीछे पड़ा है, विना लिए नहीं जायेगा। सो, इसे एक पूआ दिलवाऊँ।" (यह सोच) उसने भार्य्या को कहा—"भद्रे! एक छोटा सा पूआ पका, श्रमण को दे, इसे विदा कर।"

उसने कड़ाही में जरा सी पिट्ठी डाली। उसका एक वड़ा सारा, फूला हुआ पूआ वन कर, सारी कड़ाही में फैल गया। सेठ ने उसे देख, 'तू ने वहुत पिट्ठी ले ली होगी' (कह) अपने ही कड़छी के कोने पर ज़रा सी पिट्ठी लेकर, डाली। (यह) पूआ पहले पूए से भी वड़ा हो गया। इस प्रकार जैसे जैसे वह पकाता, वैसे वैसे वह पहले से भी वड़ा हो जाता।

उसने दुःखी होकर कहा—"भद्रे! दे इसे एक पूआ।" उसके टोकरी से एक पूआ निकालने के समय, सारे पूए एक साथ लग गये। उसने सेठ को कहा—"स्वामी! सव पूए एक साथ जुड़ गये। उन्हें पृथक् नहीं कर सक रही हूँ।" "मैं करूँगा" (करके) वह भी न कर सका; दोनों जने, दोनों सिरे पकड़ कर खैंचने पर भी पृथक् न कर सके। इस प्रकार व्यायाम करते हुए उसके शरीर से पसीना वहने लगा, और उसकी प्यास (=तृष्णा) वुझ गई।

तव उसने भार्य्या को कहा—"भद्रे! मुझे पूए नहीं चाहिए। उन्हें, टोकरी सहित, इस भिक्षु को दे दो।" वह टोकरी लेकर स्थविर के पास गई। स्थविर ने दोनों को धर्मोपदेश किया; त्रिरत्न के गुण कहे। दिये हुए का, यज्ञ का, दान आदि का फल आकाश में (प्रकाशित) चन्द्रमा की भाँति दिखाया। उसे सुन प्रसन्न-चित्त सेठ ने कहा—"भन्ते! आकर, इस पंलग पर वैठ कर, पूए खायें।"

स्थविर ने कहा—"सेठ जी! 'पूए खायेंगे' (करके) पाँच सौ भिक्षुओं सहित सम्यक् सम्वुद्ध विहार में वैठे हैं। यदि तेरी इच्छा हो तो अपनी भार्य्या सहित पूए और दूध आदि को लिवा चल। हम वुद्ध के पास जायेंगे।"

"भन्ते! इस समय शास्ता कहाँ हैं?"

"सेठ! यहाँ से पन्तालीस योजन की दूरी पर, जेतवन विहार में।"

"भन्ते! विना (भोजन के) समय[1] का उल्लंघन किये, हम इतनी दूर कैसे जायेंगे?"

[1] बौद्ध भिक्षुओं के लिए मध्यान्हान्तर भोजन करना निषिद्ध है।

"सेठ! तुम्हारी इच्छा रहने पर, मैं अपने ऋद्धि-बल से ले जाऊँगा। तुम्हारे प्रासाद (=महल) की सीढ़ी का आरम्भ तो (उसके) अपने स्थान पर ही होगा, (लेकिन) अन्त जेतवन द्वार के कोठे पर जा कर होगा। ऊपर के महल से, नीचे के महल पर उतरने भर की देरी में जेतवन ले जाऊँगा।"

उन्होंने 'भन्ते! अच्छा' कह, स्वीकार किया। स्थविर ने अधिष्ठान (=दृढ़ निश्चय) किया—"सीढ़ी का ऊपर का सिरा, वैसे ही होकर नीचे का सिरा, जेतवन द्वार के कोठे में जा लगे।" वैसे ही हो गया।

इस प्रकार स्थविर ने सेठ और उसकी भार्य्या को प्रासाद के ऊपर से नीचे उतरने के समय से भी कम समय में जेतवन पहुँचा दिया। उन दोनों ने बुद्ध के पास जा, (भोजन का) समय निवेदन किया। भिक्षु-संघ सहित बुद्ध, दान-शाला में प्रविष्ट हो, बिछे श्रेष्ठ बुद्धासन पर बैठे। सेठ ने बुद्ध प्रमुख भिक्षुसंघ को दक्षिणा का जल दिया। भार्य्या ने तथागत के पात्र में पूए रक्खे। बुद्ध ने उतने ही लिये, जितने (अपने लिए) काफी हों। पाँच सौ भिक्षुओं ने भी वैसे ही लिए। सेठ दूध, घृत, मधु तथा शक्कर देता गया।

पाँच सौ भिक्षुओं सहित बुद्ध ने भोजन समाप्त किया। सेठ ने भी भार्य्या सहित, आवश्यकता-भर खाये; लेकिन पूए खतम होते न दिखाई देते थे। सारे विहार के भिक्षुओं तथा भिखमंगों आदि को देने पर भी खतम होते न दिखाई देते थे। (उन्होंने) भगवान् से कहा—"भन्ते! पूए खतम नहीं होते!" "तो, उन्हें जेतवन द्वार के कोठे में फेंक दो।" सो, उन्होंने द्वारकोठे के समीप एक गढ़े में डाल दिये। आज भी वह स्थान कपल्लपूव-पब्भार ही कहलाता है। भार्य्या सहित महासेट्ठि भगवान् के पास जा, एक ओर खड़ा हुआ। भगवान् ने (दान) अनुमोदन[1] किया। अनुमोदन की समाप्ति पर, दोनों जने श्रोतापत्ति फल में प्रतिष्ठित हो, बुद्ध को प्रणाम कर, द्वार कोट्ठे से सीढ़ी पर चढ़कर, अपने प्रासाद में जा पहुँचे (=प्रतिष्ठित हुए)।

उस समय से वह अस्सी करोड़ धन, बुद्धशासन के ही लिए खर्च करने लगा। एक दिन, सम्यक् सम्बुद्ध श्रावस्ती में भिक्षा माँग, जेतवन आ, भिक्षुओं को सुगतोपदेश दे, गन्धकुटी में प्रवेश कर, ध्यानावस्थित रह, शाम को धर्म-सभा में आये।

[1] भोजनान्तर गृहस्थों को दिया जाने वाला उपदेश।

उस समय धर्म-सभा में इकट्ठे बैठे हुए भिक्षु (मोग्गल्लान) स्थविर की प्रशंसा कर रहे थे—"आवुसो! **महामोग्गल्लान** स्थविर का प्रताप देखो। वह, मच्छरिय (=कंजूस) सेठ को ज़रा सी देर में दमन कर निर्विषकर, पूए लिवा कर, **जेतवन** ले आया, और बुद्ध के सम्मुख (उपस्थित) कर, **श्रोतापत्ति** फल में प्रतिष्ठित कर दिया। अहो! स्थविर महा-प्रतापवान् हैं।" बुद्ध ने आकर पूछा—"भिक्षुओ! इस समय बैठे क्या बात-चीत कर रहे हो?" "यह (बातचीत)" कहने पर, बुद्ध ने, "भिक्षुओ! जिस भिक्षु को किसी कुल का दमन करना हो, वह बिना कुल को पीड़ा दिये, बिना तंग किये जैसे भ्रमर फूल से रेणु ग्रहण करता है उसी तरह (कुल के) पास जा, बुद्ध-गुणों का परिचय दे' कह स्थविर की प्रशंसा करते हुए, (यह गाथा कही)—

यथापि भमरो पुप्फं वण्णगन्धं अहेठयं,
पलेति रसमादाय एवं गामे मुनी चरे॥"[1]

[जिस प्रकार फूल के वर्ण या गन्ध को बिना हानि पहुँचाये भ्रमर रस को लेकर चल देता है, उसी प्रकार मुनि गाँव में विचरण करे।]

धर्मपद में आई हुई इस गाथा को कह, स्थविर की और भी प्रशंसा करने के लिए "भिक्षुओ! न केवल अभी मोग्गल्लान ने मच्छरिय सेठ का दमन किया, पहले भी उसका दमन कर, उसे कर्म-फल सम्बन्ध का ज्ञान (=परिचय) कराया है" कह, पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में **वाराणसी** में (राजा) **ब्रह्मदत्त** के राज्य करने के समय, वाराणसी में इल्लीस नाम का एक सेठ था। उसके पास अस्सी करोड़ धन था; (लेकिन) वह पुरुष के दुर्गुणों से युक्त लँगड़ा, लूला तथा बैंहगा; अश्रद्धावान् अप्रसन्न-चित्त तथा कंजूस; न किसी को देता, न अपने खाता था। उसका घर ऐसा ही था, जैसे राक्षस-गृहीत पुष्करिणी। हाँ, उसके माता-पिता सात पीढ़ी तक, दान-शील (=दाता) तथा दान-पति रहे थे। उसने कुलमर्यादा का नाश कर, दान-शाला को जला याचकों को पीट कर (बाहर) निकाल, केवल धन ही संग्रह किया।

---

[1] धम्मपद (पुप्फ वग्ग)।

एक दिन, राजा की सेवा में जाकर, अपने घर लौटते समय उसने रास्ते में एक थके हुए नागरिक को एक शराब की सुराही ले, पीढ़े पर बैठ, उस खट्टी शराब से कसोरे भर, सड़ी हुई मछली खा खा कर, पीते देखा। यह देख, उसके मन में शराब (=सुरा) पीने की इच्छा हुई, और वह सोचने लगा—"यदि, मैं सुरा पीऊँगा, तो मेरे पीने पर (और) बहुत (लोग) पीने की इच्छा करेंगे। इस प्रकार मेरा धन खर्च होगा।" तृष्णा को मन में रखकर घूमने से, कुछ समय बीतने पर, (उसे) न सह सकने के कारण, उसका शरीर धुनी हुई रूई की तरह सफ़ेद हो गया, और उसका गात धमनी को जा लगा।

सो, एक दिन, वह घर में घुस कर, चारपाई पर सिमट कर पड़ रहा ?

उसकी भार्य्या ने आकर पीठ मलते हुए पूछा—"स्वामी! क्या रोग (=कष्ट) है?" (इसके आगे) सब उक्त प्रकार से जानना चाहिए।

'अच्छा! तो उतनी शराब बनाऊँगी, जितनी तेरे अकेले के लिए काफी हो' कहने पर, 'घर में शराब बनवाने पर, बहुत लोग आशा लगायेंगे; दूकान से मँगवा कर भी यहाँ बैठ कर नहीं पी सकता' (सोच), उसने केवल एक मासक[1] दे, दूकान से शराब की सुराही मँगवाई। फिर नौकर से उठवा, नगर से निकल नदी के किनारे गया और महामार्ग के पास एक गुल्म (=घनी जगह) में घुस, सुराही को रखवाया, फिर 'तू जा' कह कर, नौकर को दूर बिठा, कसोरे भर भर कर, शराब पीनी शुरू की।

दानादि करने के कारण, इसका पिता देव-लोक में शक्र (=इन्द्र) होकर उत्पन्न हुआ था। उसने उस समय ध्यान लगा कर देखा, कि मेरा (चलाया हुआ) दान अभी भी दिया जा रहा है वा नहीं? उसका चालू न रहना, पुत्र का कुल-मर्यादा को नष्ट कर, दान-शाला को जला देना, याचकों को पीट कर निकाल देना तथा कंजूस बन, 'औरों को देनी पड़ जायगी' के भय से घने स्थान में घुस, अकेले बैठ कर शराब पीना, जान उसने सोचा—'मैं जाकर, उसे क्षुब्ध कर, (उसका) दमन कर, (उसे) कर्म-फल-सम्बन्ध का ज्ञान करा, (उसके हाथ से) दान दिलवा, (उसे) देव-लोक में उत्पन्न होने योग्य बनाऊँ।' यह सोच, वह, (मनुष्यों की) आबादी में उतर, ठीक इल्लीस सेट्ठी जैसा, लंगड़ा-लूला-बेढंग रूप बना राजगृह नगर में प्रविष्ट

---

[1] कार्षापण का बीसवाँ हिस्सा।

हो, राजा के निवासस्थान पर खड़ा हो, अपने आने की सूचना भिजवा, 'प्रवेश करो' कहने पर भीतर गया और राजा को प्रणाम कर, (एक ओर) खड़ा हुआ।

राजा ने पूछा—"सेठ जी! कहो अ-समय पर कैसे आये?"

"देव! मेरे घर में अस्सी करोड़ धन है, (मैं चाहता हूँ) कि आप उसे मँगवा कर, अपने ख़ज़ाने में भर लें।"

"रहने दो सेठ जी हमारे घर में तुम्हारे धन से कहीं अधिक धन है।"

"देव! यदि आप को आवश्यकता नहीं है, तो मैं उसे लेकर यथेच्छ दान देता हूँ?"

"सेठ जी दें।"

"देव! अच्छा" कह राजा को प्रणाम कर, निकल आया और इल्लीस सेट्ठी के घर गया। सब नौकर-चाकर घेर कर खड़े हो गये। कोई एक भी यह न जान सका कि यह इल्लीस नहीं है। उसने घर में प्रवेश कर, देहली के भीतर खड़े हो, द्वार-पाल को बुलवा आज्ञा दी—"यदि कोई ठीक मेरे जैसी शकल वाला आकर, 'यह मेरा घर है' करके प्रवेश करना चाहे, तो उसकी पीठ पर प्रहार दे, उसे निकाल देना।" यह कह, प्रासाद के ऊपर चढ़, अत्यन्त मूल्यवान् आसन पर बैठ, श्रेष्ठि भार्य्या को बुलवा, मुस्करा कर, कहा—"भद्रे! दान दें।" यह सुन सेठानी, लड़के-लड़कियाँ तथा नौकर चाकर कहने लगे। "इतने समय तक कभी दान देने का विचार तक नहीं आया। आज शराब पीने के कारण मृदु-चित्त हो, दान देने की इच्छा उत्पन्न हो गई होगी।"

सो, सेठानी ने कहा—"स्वामी! यथारुचि दें।" "तो मुनादी करने वाले को बुलवा कर, सारे नगर में मुनादी करवा दो कि जिस को चाँदी, सोना, मणि-मोती की आवश्यकता हो, वह इल्लीस सेठ के घर जावे।" उसने वैसा करवा दिया। लोग झोली, थैली लेकर द्वार पर आ इकट्ठे हुए। शक्र ने सात रत्नों से भरे हुए कमरों को खोल कर कहा—"यह सब तुम्हें देता हूँ। जितनी जरूरत हो, ले जाओ।" लोग धन को निकाल, महातल पर ढेर लगा, लाये हुए बरतनों को भर भर कर ले जाने लगे।

एक जनपदवासी, इल्लीस सेठ के बैल, इल्लीस सेठ के ही रथ में जोतकर, उसे सात रत्नों से भर, नगर से निकल, महा-मार्ग पर जाता हुआ, उस घने स्थान से कुछ ही दूर पर रथ को हाँकल हुआ सेट्ठी की प्रशंसा करता जाता था—"स्वामी!

इल्लीस सेठ तेरी सौ वर्ष की आयु हो। तेरे कारण, अब मैं जन्म भर, बिना काम किये भी जी सकता हूँ। तेरा ही रथ, तेरे ही बैल, तेरे ही घर के सात (प्रकार के) रत्न। न मां ने दिये, न बाप ने दिये, स्वामी! तेरे ही कारण मिले।" इल्लीस ने वह शब्द सुन भयभीत हो सोचा—"यह मेरा नाम लेकर, यह यह कहता है, क्या राजा ने मेरा धन लोगों में बाँट दिया है?" (यह सोच) घने-स्थान से निकल, बैलों तथा रथ को पहचान "अरे! चेटक! यह मेरे ही बैल और मेरा ही रथ" कह, जा कर बैलों की नकेल, पकड़ ली। गृहपति रथ से उतर, 'अरे! दुष्ट चेटक! इल्लीस महासेठ सारे नगर को दान देता है, तू क्या लगता (—होता) है'? झटक कर बिजली गिराते हुए की तरह, कंधे पर प्रहार दे, रथ लेकर चल दिया।

उसने कांपते हुए उठ कर, धूलि(=रेत) को झाड़, तेज़ी से जाकर, (फिर) रथ को पकड़ा। गृहपति (रथ से) से उतर, बालों से पकड़, झुका, बांस की चपटी की मार से मार, गले से पकड़, जिधर से आया था, उधर मुंह कर धक्का दे, (अपने) चल दिया।

इतने में उसका शराब का नशा उतर गया।

उसने काँपते काँपते जल्दी से घर जा, धन लेकर जाते हुए मनुष्यों को देख 'भो! यह क्या? राजा मेरा धन लुटवा रहा है?' कह, जिस किसी को पकड़ना शुरु किया। जिस किस को पकड़ता, वही उसे पीट कर, पैरों में गिरा देता। वेदना से पीड़ित हो, उसने घर में घुसना चाहा। द्वारपालों ने—"अरे! दुष्ट गृहपति! कहाँ घुसता है?' (कह) बाँस की चपटियों से पीट, गर्दन से पकड़ निकाल दिया।

'अब राजा को छोड़ कर, और मुझे, किसी की शरण नहीं' सोच, उसने राजा के पास जा कर पूछा—"देव! आप मेरा घर लुटवा रहे हैं?"

"सेठ जी! मैं नहीं लुटवा रहा हूँ। क्या तुमने ही अभी आकर नहीं कहा था कि यदि आप नहीं लेते तो मैं अपने धन को दान दूंगा, और नगर में मुनादी करा कर दान दिया?"

"देव! मैं आपके पास नहीं आया। क्या आप मेरे कंजूस होने की बात नहीं जानते? मैं किसी को तिनके के कोने से (एक) तेल की बूंद तक नहीं देता। देव! जो यह दान दे रहा है, उसे बुला कर परीक्षा करें।"

राजा ने शक्र को बुलवा भेजा। न तो राजा को ही, न मन्त्रियों को ही दोनों जनों में कुछ भेद दिखाई दिया। मच्छरिय सेठ ने पूछा—"देव! यह सेठ है, कि मैं सेठ हूँ?"

"हम नहीं पहचानते, तुझे कोई पहचानने वाला है?"

"देव! मेरी भार्य्या।"

भार्य्या को बुलाकर पूछा गया कि तेरा स्वामी कौन है?

वह 'यह' कह कर, शक्र के ही पास जा खड़ी हुई। लड़के लड़कियों नौकर-चाकरों को बुला कर पूछा गया। सब शक्र के ही पास जाकर खड़े हुए।

तब सेठ ने सोचा—'मेरे सिर में बालों से छिपी एक फुंसी है, उसे केवल नाई ही जानता है, सो उसे बुलवाऊँ।" (यह सोच) उसने कहा—"देव! मुझे नाई पहचानता है, उसे बुलवायें।" उस समय बोधिसत्त्व (ही) उसके नाई (होकर उत्पन्न हुए) थे। राजा ने उसे बुलवा कर पूछा—"इल्लीस सेठ को पहचानते हो?"

"देव! सिर को देख कर पहचान सकूंगा।"

"अच्छा! तो दोनों के सिर को देख।" शक्र ने उसी क्षण सिर में फुंसी पैदा कर ली। बोधिसत्त्व ने दोनों के सिर में फुंसी देख, "महाराज! दोनों के सिर में फुंसी है। इस लिए मैं इन दोनों में से किसी को नहीं कह सकता कि यह इल्लीस है" कह, यह गाथा कही—

उभो खञ्जा उभो कुणी उभो विसमचक्खुला,
उभिन्नं पिलका जाता, नाहं पस्सामि इल्लिसं॥

[दोनों लंगड़े (हैं), दोनों लूले (हैं), दोनों बैंहगे (हैं), और दोनों के (सिर में) फुंसियाँ हैं। मैं इल्लीस को नहीं पहचानता (=देखता)।]

उभो, दोनों जने। **खञ्जा**, लंगड़े (=कुण्ठकपाद), **कुणी**, लूले (=कुण्ठ-हत्था) **विसम चक्खुला**, जिनकी आँख की पुतलियाँ विषम हैं। **पिलका**, दोनों के सिर में एक ही जगह, एक जैसी फुन्सियाँ हो गई। **नाहं पस्सामि**, मैं इनमें यह इल्लीस है (करके) नहीं पहचानता, अर्थात् एक को भी 'इल्लीस' नहीं मानता।

बोधिसत्त्व की बात सुन, सेठ काँपने लगा, और धनशोक के कारण, अपने को न सँभाल सकने से वहीं गिर पड़ा। उस समय शक्र, "महाराज! मैं इल्लीस नहीं हूँ, मैं शक्र हूँ" कह, शक्र-लीला से आकाश में जा खड़ा हुआ। इल्लीस का मुंह पोंछ कर, उस पर पानी छिड़का गया। वह उठकर, देवेन्द्र शक्र को प्रणाम कर, खड़ा हुआ। तब शक्र ने कहा—"इल्लीस! यह धन मेरा है, न कि तेरा। मैं तेरा पिता हूँ, तू मेरा पुत्र। मैंने दानादि पुण्य कर्म करके शक्र की पदवी प्राप्त की, लेकिन तूने मेरे वंश (की मर्य्यादा) को तोड़, अदान-शीली हो, कंजूस बन, दानशाला को जला, याचकों को निकाल, (खाली) धन संग्रह किया। उसे, न तू आप खाता है, न दूसरे। वह ऐसे पड़ा है, जैसे राक्षस के अधिकार में हो। यदि, जैसा पहले था, वैसे ही मेरी दानशाला बनवा कर दान देगा, तो तेरा कुशल है, यदि नहीं देगा, तो तेरे सब धन को अन्तर्ध्यान कर, इस इन्द्र-वज्र से तेरा सिर फोड़, तेरी जान निकाल दूंगा?"

इल्लीस सेठ ने मरने के भय से संत्रसित हो, प्रतिज्ञा की कि अब से दान दूंगा। शक्र उसकी प्रतिज्ञा ग्रहण कर, आकाश में बैठे ही बैठे धर्मोपदेश दे, उसे (पञ्च) शीलों में प्रतिष्ठित कर, अपने स्थान को चला गया। इल्लीस भी दान आदि पुण्य-कर्म कर स्वर्ग-गामी हुआ।

बुद्ध ने 'भिक्षुओ! न केवल अभी मोग्गल्लान ने मच्छरिय सेठ का दमन किया है, पहले भी इसने इसका दमन किया है' कह, इस धर्मदेशना को ला, मेल मिला, जातक का सारांश निकाल दिया।

उस समय इल्लीस, मच्छरिय सेठ हुआ। देवेन्द्र शक्र, मोग्गल्लान। राजा, आनन्द। लेकिन नाई मैं ही था।

७६. खरस्सर जातक

"यतो विलुत्ता च हता च गावो. ." यह (गाथा) बुद्ध ने जेतवन में विहरते समय एक अमात्य के सम्बन्ध में कही।

क. वर्तमान कथा

कोशल-नरेश के एक अमात्य ने राजा को प्रसन्न कर प्रत्यन्त-ग्रामों की **राज-बलि**[1] ले, चोरों के साथ मिलकर 'मैं मनुष्यों को ले कर जंगल में चला जाऊँगा तुम गाँव को लूट कर, आधी (लूट) मुझे देना' (कह) मनुष्यों को इकट्ठा किया। फिर जंगल ले जा, चोरों के आ, गौवों को मार, मांस खा, गाँव लूट कर चले जाने पर, शाम को मनुष्यों को साथ लिये हुए आया। उसके कुछ ही देर बाद, उसका यह भेद खुल गया। मनुष्यों ने राजा से कहा। राजा ने उसे बुलवा अपराध का निश्चय कर, उसका अच्छी प्रकार निग्रह कर, (उसकी जगह) एक दूसरे ग्राम-भोजक (=मुखिया) को भेज, (अपने) जेतवन जाकर, भगवान् को वह समाचार कहा। भगवान् ने 'महाराज ! न केवल अभी यह ऐसा करने वाला है, पहले भी यह ऐसा ही करने वाला रहा है' कह, उसके याचना करने पर पूर्व-जन्म की क़था कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में **बाराणसी** में (राजा) **ब्रह्मदत्त** के राज्य करते समय, राजा ने एक अमात्य को एक प्रत्यन्त गाँव दिया।. . . . .सब उक्त प्रकार से। उस समय बोधिसत्त्व, वाणिज्य के लिए घूमते हुए, उस गाँव में ठहरे हुए थे। उन्होंने, शाम के समय, बहुत से लोगों के साथ भेरी बजाते बजाते, ग्राम-भोजक को आते देख 'यह

---

[1] राजा को प्राप्य राज-कर।

दुष्ट ग्राम-भोजक चोरों के साथ मिल, गाँव लुटवा कर, चोरों के भाग कर जंगल में घुस जाने पर, अब शान्त-स्वभाव की तरह, भेरी के बाजे के साथ आ रहा है सोच यह गाथा कही—

यतो विलुत्ता च हता च गावो
दड्ढानि गेहानि जनो च नीतो,
अथागमा पुत्तहताय पुत्तो
खरस्सरं देण्डिमं वादयन्तो ॥

[जब (चोर) गावों को लूट तथा गौवों को मार कर, घरों को जलाकर (और) आदमियों को बाँध कर ले गये, उस समय यह मृतपुत्र का पूत, इस कर्ण-कठोर ढोल को बजवाते आया है।]

यतो=जब। **विलुत्ता च हता च**, लूट कर ले गये तथा मांस खाने के लिए मार डालीं। **गावो**=गौवें। **दड्ढानि** आग लगाकर जला दिये। **जनो च नीतो**, कसकर, बांध बांध कर ले गये। **पुत्तहताय पुत्तो**, अपुत्ती (=मृतपुत्र का पुत्र) अर्थात् निर्लज्ज। जिसको लज्जा-भय नहीं, उसकी माता नहीं, सो वह उस (पुत्र) के जीवित रहते भी, अपुत्ती (=मृत-पुत्र) ही समझी जाती है? **खरस्सरं**, कठोर शब्द। **देण्डिमं**, ढोल (=पटह भेरि)।

इस प्रकार बोधिसत्व ने इस गाथा से, उसका परिहास किया। शीघ्र ही, उसका भेद खुल गया। राजा ने उसके अपराध के अनुसार उसे दण्ड दिया।

शास्ता ने, 'महाराज! न केवल अभी यह ऐसा करने वाला है, पहले भी यह ऐसा ही करने वाला रहा है' (कह) यह धर्म देशना ला मेल मिला, जातक का सारांश निकाल दिया।

उस समय का अमात्य ही, अब का अमात्य है। गाथा से उदाहरण देने वाला पण्डित मनुष्य, तो मैं ही था।

८०. भीमसेन जातक

"यं ते पविकत्थितं पुरे" यह (गाथा) शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय, एक आत्म-प्रशंसक भिक्षु के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

एक भिक्षु, 'आवुसो ! हमारी जाति सदृश जाति, हमारे गोत्र सदृश गोत्र, (कोई) नहीं। हम ऐसे. . महाक्षत्रिय कुल में पैदा हुए। गोत्र की या कुल-प्रदेश की दृष्टि से, हमारे सदृश कोई नहीं। हमारे यहाँ सोने चाँदी का कोई हिसाब (= अन्त) नहीं। हमारे नौकर-चाकर (तक) शालीमांसोदन खाते हैं, काशी का (बना) वस्त्र पहनते हैं; (और) काशी के चन्दन से विलेपन करते हैं। इस समय प्रव्रजित हो जाने से हम इस प्रकार के रूखे सूखे भोजन खाते हैं; रूखे सूखे चीवर पहनते हैं' कह वृद्ध-मध्यम-तरुण (=नवीन) भिक्षुओं के बीच, अपनी बड़ाई करते, जाति आदि का अभिमान दिखाते, (औरों को) ठगते हुए घूमता था।

एक भिक्षु ने उसके कुल-प्रदेश की परीक्षा कर, उसके गप्प मारने की बात भिक्षुओं से कही। धर्म-सभा में इकट्ठे हुए भिक्षु, उसकी निन्दा करने लगे—"आयुष्मानो ! अमुक भिक्षु, इस प्रकार के कल्याणकारी शासन में प्रव्रजित होकर भी, गप्प मारता, आत्म-प्रशंसा करता, (और) ठगता फिरता है।"

बुद्ध ने आकर पूछा—"भिक्षुओ ! इस समय बैठे क्या बातचीत कर रहे हो ?" "यह ! बातचीत" कहने पर, "भिक्षुओ ! न केवल अभी वह भिक्षु, (इस प्रकार) गप्प मारता, आत्म-प्रशंसा करता, ठगता फिरता है, पहले भी वह (इसी प्रकार) गप्प मारता, आत्म-प्रशंसा करता, ठगता फिरता रहा है" कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

(१.८.८०

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में **वाराणसी** में (राजा) **ब्रह्मदत्त** के राज्य करते समय, बोधिसत्त्व एक निगम-ग्राम में, (एक) प्रसिद्ध प्रब्राह्मण-कुल में उत्पन्न हो, आयु होने पर, **तक्षशिला** जा, लोक-प्रसिद्ध आचार्य के पास तीनों वेद तथा अठारह विद्यायें सीख, सब शास्त्रों (=शिल्पों) में सम्पूर्णता प्राप्त कर, **चुल्लधनुग्गह** पण्डित नाम से (प्रसिद्ध) हुआ। **तक्षशिला** से निकल, वह सब (दूसरे) समयों (=आगम, शास्त्र) तथा शिल्पों की परीक्षा करता हुआ **महिंसक राष्ट्र**[1] (=देश) को गया। इस जन्म में बोधिसत्त्व थोड़े छोटे (=ह्रस्व) क़द के, तथा झुके हुए थे। उन्होंने सोचा—"यदि मैं किसी राजा के पास जाऊँगा, तो वह कहेगा 'तू ऐसे छोटे क़द वाला हमारा क्या (काम) कर सकेगा।?' इसलिए मैं किसी डील-डौल वाले सुन्दर मनुष्य को आगे करके, (अपने) उसकी ओट में होकर जीविका कमाऊँ।"

सो, उसने, वैसे आदमी की खोज करते हुए, **भीमसेन** नामक एक जुलाहे के कपड़ा बुनने के स्थान पर जा उसके साथ कुशल-क्षेम की बातचीत कर पूछा—"सौम्य! तेरा क्या नाम है?"

"मेरा नाम **भीमसेन** है।"

"तू इस प्रकार के सौन्दर्य से युक्त हो, यह तुच्छ काम करता है?"

"जीविका (का और उपाय) न होने से।"

उसने "सौम्य! इस काम को मत कर। मेरे समान धनुषधारी सारे जम्बूद्वीप में नहीं है, (लेकिन) यदि मैं किसी राजा के पास जाऊँ, तो शायद वह क्रोधित हो जाये कि यह इतने छोटे कद वाला हमारा क्या (काम) कर सकेगा? तू राजा के पास जाकर कह कि मैं धनुषधारी हूँ। राजा, तुझे खर्चा दे, तेरी बँधी-वृत्ति लगा देगा। जो जो वह तुझे करने को कहेगा मैं उसे करता हुआ, तेरी ओट में रहूँगा। इस प्रकार (हम) दोनों जने सुखी रहेंगे' (कह) पूछा—"मानता है मेरी बात?" जुलाहे ने 'अच्छा' कह स्वीकार किया।

उसने उसे **वाराणसी** ले जा, अपने आप चुल्ल-धनु-उपस्थायक (=सेवक) बन, उसे आगे कर, राज-द्वार पर जा, राजा को कहलवाया। "आजाये" कहने

---

[1] नर्मदा के दक्षिण तट पर, इन्दौर से करीब चालीस मील महिष्मती।

पर, दोनों जने जा, राजा को प्रणाम कर, खड़े हुए। "किस लिए आये ?" पूछने पर, भीमसेन बोला—"मैं धनुष-धारी हूँ। सारे जम्बूद्वीप में, मेरे सदृश धनुष-धारी नहीं।"

"क्या मिलने पर हमारी सेवा में रहोगे ?"

"देव ! अर्ध-मास में हजार (मुद्रा) मिलने पर रह सकेंगे।"

"यह पुरुष, तेरा कौन होता है ?"

"देव ! चुल्ल उपट्ठाक (=छोटा सेवक)।"

"अच्छा ! तो सेवा में रहो।"

उस समय से भीमसेन, राजा की सेवा में रहने लगा; जो जो काम पड़ता, उसे बोधिसत्त्व ही करता।

उस समय काशी राष्ट्र के एक जंगल में बहुत से मनुष्यों के आने जाने का मार्ग (एक) व्याघ्र ने छुड़ा दिया था। वह मनुष्यों को पकड़ पकड़ कर खा जाता था। (लोगों ने) वह समाचार राजा को कहा। राजा ने भीमसेन को बुलाकर पूछा—"तात ! उस व्याघ्र को पकड़ सकेगा ?"

"देव ! तो मेरा नाम धनुषधारी ही क्या, यदि मैं उस व्याघ्र को न पकड़ सकूं।"

राजा ने उसे खर्चा दे कर भेजा। उसने घर जा कर बोधिसत्त्व को कहा। बोधिसत्त्व ने कहा—"अच्छा ! सौम्य ! जा।"

"लेकिन तू नहीं जायेगा ?"

"हाँ मैं नहीं जाऊँगा, लेकिन तुझे उपाय बताऊँगा।"

"सौम्य ! (उपाय) बता।"

"तू सहसा व्याघ्र के निवास स्थान पर अकेला न जाना। जनपद के मनुष्यों को इकट्ठा करवा, एक दो सहस्र धनुष (साथ) लिवा, वहाँ जाकर, 'व्याघ्र उठा है', मालूम होते ही भाग कर किसी घने-झाड़ (=गुम्ब) में घुस कर; पेट के बल लेट रहना। जन-पद के लोग ही व्याघ्र को मार कर, पकड़ लेंगे। उनके व्याघ्र को मार चुकने पर, तू दाँतों से एक बेल (=लता) काट, (उसके) एक सिरे को (हाथ में) ले, मृत व्याघ्र के पास जा, कहना, "भो ! इस व्याघ्र को किसने मार डाला ? मैं इसे लता से बाँध कर, बैल की तरह राजा के पास ले जाने के लिए, लता लाने को घने-झाड़ में गया था। मेरे लता लाने से पहले किसने इसे मार

डाला ?" तब डर के मारे, जनपद के लोग 'स्वामी ! राजा से मत कहना' (करके) बहुत धन देंगे। व्याघ्र को तू ही ले जायेगा, सो राजा से भी तुझे बहुत धन मिलेगा।"

उसने 'अच्छा' कह, जाकर बोधिसत्त्व के बताये उपाय से ही व्याघ्र को पकड़, जंगल को भय-रहित कर, बहुत से जनों के साथ **वाराणसी** को लौट, राजा को देख कर कहा—"देव ! मैंने व्याघ्र पकड़ लिया। जंगल निर्भय कर दिया।" राजा ने प्रसन्न हो, बहुत धन दिया।

फिर एक दिन एक भैंसे ने एक मार्ग छुड़ा दिया। (लोगों ने) राजा को कहा। राजा ने वैसे ही, **भीमसेन** को भेजा। वह, बोधिसत्त्व के बताये उपाय से, उसे भी व्याघ्र की तरह ले आया। राजा ने फिर बहुत सा धन दिया। (इससे) बहुत सम्पत्ति हो गई। ऐश्वर्य के मद से मत्त (=मस्त) हो, वह बोधिसत्त्व की अवज्ञा करने लगा। उसके कहने को न मानता। 'मैं कोई इस पर, निर्भर होकर जीता हूँ' सोच 'क्या तू ही आदमी है ?' आदि कठोर वाक्य कहता।

कुछ ही दिनों के बाद, एक शत्रु-राजा ने आकर **वाराणसी** को घेर, राजा के पास संदेश भेजा। "या तो राज्य दें, या युद्ध करें।"

राजा ने "जा, लड़" (करके), **भीमसेन** को भेजा। वह सब शस्त्र बाँध, योधा का भेष धारण कर, अच्छी प्रकार कसे हुए हाथी की पीठ पर बैठा। बोधिसत्त्व भी, उसके मरने के भय से, सब शस्त्र बाँध, **भीमसेन** के पीछे आसन पर बैठा। जन (-समूह) से घिरा हुआ हाथी, नगर द्वार से निकल संग्राम-भूमि में आया। भीमसेन ने युद्ध-भेरी का शब्द सुनते ही काँपना आरम्भ किया। बोधिसत्त्व ने 'अब यह हाथी की पीठ से गिर कर मरेगा,' सोच, **भीमसेन** को रस्सी से घेर कर बाँध रखा। **भीमसेन** ने लड़ाई की जगह देख, मरने से भयभीत हो, हाथी की पीठ को मल-मूत्र से खराब कर दिया। बोधिसत्त्व ने 'भीमसेन ! तेरा पहला (आचरण) और वर्तमान (आचरण) मेल नहीं खाता। तू पहले संग्राम-योधा की भाँति था, (लेकिन) अब हाथी की पीठ को खराब करता है' कह, यह गाथा कही—

यं ते पविकत्थितं पुरे
अथ ते पूतिसरा सजन्ति पच्छा,
उभयं न समेति भीमसेन!
युद्ध कथा च इदञ्च ते विहञ्ञं॥

[भीमसेन ! वह जो तेरी पहली बड़ाई थी, और यह जो अब पीछे मल-मूत्र बहा रहा है; वह युद्धकथा और यह कष्ट पाना, दोनों मेल नहीं खाते ।]

यं ते पविकत्थितं पुरे, जो तू ने पहले अभिमान पूर्वक कहा था कि 'क्या तू ही आदमी है, क्या मैं भी संग्राम-योधा नहीं हूँ?' यह तेरा कथन । **अथ ते पूति सरा सजन्ति पच्छा,** सो यह गन्दी (=पूति) होने से तथा बहने वाली (=सरति) होने से 'पूति- सरा' कही जाने वाली मल-मूत्र धारायें, वहती हैं, ढलकती हैं, चूती हैं। **पच्छा,** पहले कथन के वाद, अव इस संग्राम-भूमि में। **उभयं न समेति भीमसेन !** हे भीमसेन! यह दोनों मेल नहीं खाते। कौन! **युद्धकथा च इदं च ते विहञ्ञं** वह जो पहले कही थी, सो युद्ध-कथा; और यह जो अब तेरी पीड़ा=कष्ट पाना, हाथी की पीठ खराव करने जैसा विघात ।

इस प्रकार वोधिसत्त्व ने उसकी भर्त्सना कर, 'सौम्य! डर मत। मेरे रहते तुझे डर किस वात का?' कह **भीमसेन** को हाथी की पीठ से उतार, 'नहाकर, घर जा' कह, भेजा। फिर 'आज मुझे प्रगट होना चाहिए' (सोच) संग्राम में प्रवेश करके, उन्नाद किया, सेना का व्यूह तोड़ कर, शत्रु-राजाओं को जीवित ही पकड़ ले जाकर, **बाराणसी-नरेश** के पास गया। राजा ने सन्तुष्ट हो, वोधिसत्त्व को बहुत ऐश्वर्य दिया। उस समय से **चुल्लधनुग्गह पण्डित,** सारे **जम्बूद्वीप** में प्रसिद्ध हो गया। वह, **भीमसेन** को खर्चा दे, उसे (उसके) निवास स्थान पर भेज, दान आदि पुण्य कर्म करके, यथा-कर्म (परलोक) गया ।

बुद्ध ने 'भिक्षुओ! न केवल अभी यह भिक्षु अपनी बड़ाई करता है, (इसने) पहले भी की है' कह इस धर्म-देशना को ला, मेल मिला, जातक का सारांश निकाल दिया। उस समय का भीमसेन (अब का) गप्पी (=आत्म प्रशंसक) भिक्षु था। लेकिन **चुल्लधनुग्गह** पण्डित मैं ही था ।

पहला परिच्छेद

९. अपायिम्ह वर्ग

८१. सुरापान जातक

"अपायिम्ह अनच्चिम्ह. ." यह गाथा बुद्ध ने कोशाम्बी के पास घोसितराम में विहरते समय, सागत स्थविर के सम्बन्ध में कही।

क. वर्तमान कथा

भगवान् के श्रावस्ती में वर्षावास समाप्त कर, चारिका करते हुए भद्रवती नाम के निगम पर पहुँचने पर, ग्वालों, पशुपालों, कृषकों तथा राहियों ने शास्ता को देख, प्रणाम कर कहा—"भन्ते! भगवान् अम्बतीर्थ को मत जायें। अम्बतीर्थ में, जटिल के आश्रम में अम्बतीर्थक नामक (एक) नाग, विषैला सर्प, घोर विषैला सर्प (है) वह कहीं भगवान् को कष्ट (न) पहुँचाये।" भगवान्, जैसे उनकी बात सुनी ही न हो, वैसे, उनके तीन बार मना करने पर भी चले ही गये।

उस समय, भगवान् के भद्रवती से कुछ ही दूर एक वन-खंड में विहार करते समय, उस समय के बुद्ध उपस्थायक सागत नामक स्थविर, जो लौकिक ऋद्धि से युक्त थे, उस आश्रम में जा, उस नाग-राज के निवास स्थान पर तिनकों का आसन बिछा, पालथी मार कर बैठे। नाग ने हसद के मारे धुआँ निकालना आरम्भ किया। स्थविर ने भी धुआँ निकाला। नाग प्रज्वलित हुआ। स्थविर भी प्रज्वलित हुए। नाग के तेज से स्थविर को कष्ट नहीं होता था; लेकिन स्थविर का तेज नाग को कष्ट देता था। इस प्रकार वे (एक) क्षण में ही नाग-राज का दमन कर, उसे त्रि-शरण तथा पञ्चशील में प्रतिष्ठित कर, शास्ता के पास चले आये।

बुद्ध भी भद्रवतिका में यथा रुचि विहार कर कोशाम्बी चले गये। सागत स्थविर द्वारा नाग के दमन किये जाने की बात सारे जनपद में फैल गई । कोशाम्बी वासी (लोग) बुद्ध की अगवानी कर, बुद्ध को प्रणाम कर, सागत स्थविर के पास जा, प्रणाम कर, एक ओर खड़े हो कहने लगे—"जो आपको दुर्लभ हो, वह कहें । हम वही तैयार कर देंगे।" स्थविर चुप रहे । लेकिन छः वर्गीय (भिक्षुओं) ने कहा—"आवुसो ! प्रव्रजितों को कबूतरी शराब दुर्लभ होती है, और अच्छी लगती है । यदि तुम स्थविर पर प्रसन्न हो तो कबूतरी शराब तैयार करो।" उन्होंने 'अच्छा' कह स्वीकार कर बुद्ध को अगले दिन के लिए निमन्त्रण दे, नगर में प्रवेश कर 'अपना अपना घर स्थविर को दिखायेंगे' (सोच) कबूतरी शराब तैयार कर, स्थविर को निमंत्रित कर, घर में शराब दी । स्थविर पीकर शराब के नशे में मस्त हो, नगर से निकलते हुए, द्वार के बीच में ही गिर कर, (वहाँ) बकवास करते हुए पड़े रहे ।

बुद्ध भोजन समाप्त कर, नगर से निकलते समय, स्थविर को उस प्रकार पड़े देख, 'भिक्षुओ ! सागत को उठा लो', कह, उसे लिवा कर, आराम (=निवास स्थान) पर आये । भिक्षुओं न स्थविर का सिर तथागत के चरणों में करके, उसे लिटा दिया। वह पलट कर, तथागत की ओर पैर करके, लेट रहा । बुद्ध ने भिक्षुओं से पूछा—"भिक्षुओ ! सागत का जो पहले मेरे प्रति गौरव था, सो अब है ?"

"भन्ते ! नहीं ।"

"भिक्षुओ ! अम्वतीर्थ के नाग-राज का किसने दमन किया ?"

"भन्ते ! सागत ने ।"

"भिक्षुओ ! क्या सागत अब पानी के साँप का भी दमन कर सकता है ?"

"भन्ते ! नहीं ।"

"तो क्या भिक्षुओ ! ऐसी चीज का पीना उचित है, जिसे पीकर बेहोश हो जाय ?"

"भन्ते ! अनुचित ।"

सो भगवान्, स्थविर की निन्दा कर, भिक्षुओं को आमन्त्रित कर "सुरा-मेरय पान में पाचित्ति (=दोष) है[१]" (करके) शिक्षापद (=नियम) बना, आसन से उठ कर, गन्धकुटी में चले गये। धर्मसभा में एकत्र हुए भिक्षु शराब के दोष कहने

---

[१] प्रायश्चित करने योग्य दोष है (भिक्षु-प्रातिमोक्ष) ।

लगे—"आवुसो! शराव कितनी खराव है; जिसने प्रज्ञावान् ऋद्धिवान् सागत स्थविर को ऐसा कर दिया कि उसे तथागत के गुण तक की होश न रही।"

शास्ता ने आकर पूछा—"भिक्षुओ! इस समय वैठे क्या वात-चीत कर रहे हो?" उनके 'यह वातचीत' कहने पर, (शास्ता ने) 'भिक्षुओ! शराव पीकर न केवल अभी प्रव्रजित वेहोश होते हैं, पहले भी हुए हैं' कह, पूर्व जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में (राजा) ब्रह्मदत्त के राज्य करते समय, वोधिसत्त्व, काशी राष्ट्र के एक उदीच्य ब्राह्मण कुल में उत्पन्न हो, वड़े होने पर, ऋषि प्रव्रज्या के अनुसार प्रव्रजित हो, अभिञ्ञा और समापत्तियों का लाभ कर, ध्यान क्रीड़ा में रत रहते, हिमवन्त में निवास करते थे। उनके साथ पाँच सौ शिष्य थे। सो, वर्षा का समय आने पर शिष्यों ने पूछा—"आचार्य्य! आवादी में जा कर निमक-खटाई का सेवन करके आवें!"

"आवुसो! मैं तो यहीं रहूँगा। तुम जाकर शरीर को संतुष्ट करो। वर्षा (ऋतु) के वीतने पर चले आओ।"

वे 'अच्छा' कह, आचार्य को प्रणाम कर वाराणसी जा, (वहाँ) राजा के उद्यान में ठहरे।

अगले दिन, नगर के वाहर ही वाहर भिक्षा माँग, संतुष्ट हो, (उससे) अगले दिन नगर में प्रवेश किया। मनुष्यों ने प्रसन्नता-पूर्वक भिक्षा दी। कुछ दिन वीतने पर (लोगों ने) राजा को कहा—"देव! हिमवन्त से पाँच सौ ऋषि आकर उद्यान में ठहरे हुए हैं। वे घोर तपस्वी हैं, संयतेंद्रिय हैं, तथा शीलवान् हैं।" राजा उनकी प्रशंसा सुन, उद्यान में गया। उन्हें प्रणाम कर, कुशल क्षेम पूछ वर्षा ऋतु के चारों महीने वहीं रहने का वचन ले, निमन्त्रण दिया। उस दिन से वह राज-भवन में भोजन करते (और) उद्यान में रहते थे।

एक दिन नगर में शराव पीने का उत्सव था। 'प्रव्रजितों को शराव दुर्लभ होती है' सोच राजा ने उन्हें अत्युत्तम शराव दिलवाई। तपस्वी शराव पी, उद्यान में जाकर, शराव से वदमस्त हो, कोई कोई उठ कर नाचने लगे, कोई कोई गाने लगे। नाच कर, गाकर, खारी आदि फैला कर सो रहे। शराव के नशे के उतरने

पर उठकर अपने उस विकार को देख, 'हम ने प्रव्रजित जीवन के अनुकूल नहीं किया' (सोच) रोने पीटने लगे। फिर 'हमने आचार्य्य-रहित होने के कारण ही, ऐसा पाप किया' (सोच), उसी क्षण उद्यान को छोड़ हिमवन्त को जा, परिष्कारों (=चीवर आदि) को ठीक से कर, आचार्य्य को प्रणाम कर, उनके 'तात! आबादी में विना भिक्षा के कष्ट के सुख से तो रहे? आपस में मेल से तो रहे' पूछने पर 'आचार्य्य सुख से तो रहे। लेकिन हमने न पीने योग्य चीज पीकर, बेहोश हो स्मृति को न सँभाल सकने के कारण नाचा और गाया।" यह हाल कहते हुए इस गाथा को कहा—

अपायिम्ह अनच्चिम्ह अगायिम्ह रुदिम्ह च,
विसञ्ञकरणिं पीत्वा दिट्ठा ना हुम्ह वानरा ॥

[शराब पी, नाचे, गाये और रोये। खुशी इतनी है कि इस बेहोश बना देने-वाली को पीकर हम वानर नहीं बन गये।]

अपायिम्ह, सुरा पी। **अनच्चिम्ह**, उसे पी, हाथ पैरों को मटका मटका कर नाचे। **अगायिम्ह**, मुंह को खोल कर लम्बे स्वर से गाया। **रुदिम्ह**, फिर पश्चात्ताप से, 'हमने ऐसा किया' (सोच) रोये। **दिट्ठा ना हुम्ह बानरा**, इस प्रकार बेहोश होने पर **विसञ्ञकरणिं** (=बेहोश करने वाली सुरा) को पीकर, यही अच्छा हुआ कि हम वानर नहीं बन गये।

इस प्रकार उन्होंने अपने दुर्गुण कहे। बोधिसत्त्व 'आचार्य्य से पृथक् होने पर ऐसा होता ही है' कह, उन तपस्वियों की निन्दा कर 'अब फिर ऐसा न करना' कह, उनको उपदेश दे, ध्यान-युक्त रह, ब्रह्मलोकगामी हुए।

बुद्ध ने इस धर्मदेशना को कह जातक का सारांश निकाल दिया। इससे आगे 'मेल मिलाकर'—यह भी नहीं कहेंगे।

उस समय के ऋषि गण (अब की) बुद्ध-परिषद् थी। गण का गुरु तो मैं ही था।

८२. मित्तविन्द जातक

"अपिक्कम्म रमणकं.." यह (गाथा) बुद्ध ने जेतवन में विहार करते समय एक बात न मानने वाले भिक्षु के सम्बन्ध में कही।

क. वर्तमान कथा

इस जातक की काश्यप सम्यक् सम्बुद्धकालीन कथा दसवें निपात (=परिच्छेद) में महामित्तविन्दक जातक[1] में आयेगी।

ख. अतीत कथा

उस समय बोधिसत्त्व ने यह गाथा कही—

अतिक्कम्म रमणकं सदामत्तं च दूभकं,
स्वासि पासाणमासीनो यस्मा जीवं न मोक्खसि॥

["रमणकं", "समादत्तं" और "दूभकं"—इन तीनों प्रासादों को छोड़ कर, तू एक ऐसे पत्थर से चिमट गया, जिससे अपनेको जीते जी न छुड़ा सकेगा।]

रमणकं उस समय स्फटिक को कहते थे मतलब तू स्फटिक के प्रासाद को छोड़ आया। सदामत्तंच, "रजत" का नाम है, मतलब तू रजत के प्रासाद को छोड़ आया। दूभकं, मणि का नाम है, मतलब तू मणिमय प्रासाद को छोड़ आया। स्वासि, वह (=सो) है तू। पासाणमासीनो, उरचक्र पत्थर का होता है, चाँदी का होता है अथवा मणि का होता है, लेकिन वह पत्थर का था, सो वह उस पत्थर के उरचक्र से घर लिया गया। (=आसीनो, अभिनिविट्ठो=अज्जोत्थटो)।

[1] महामित्तविन्दक जातक (४३९)

पाषाण से धर लिये जाने (=आसीनता) के कारण **पासाणासीनो**। व्यंजन सन्धि के कारण 'म' का आगम कर, **'पासाणमासीनो'** कहा। अथवा पासाण को आसीन हो, अर्थात् उस उरचक्र को पहुँच—प्राप्त हो, खड़ा हुआ। **यस्मा जीवं न मोक्खसि**—जिस **उरचक्र**[1] से जब तक तेरे पाप का नाश न होगा, तब तक जीते जी मुक्त न होगा, सो वैसे पत्थर से चिमटा है।

यह (गाथा) कह, बोधिसत्त्व, अपने देवस्थान को चले गये।

मित्रविन्दक भी उरचक्र को धारण कर, महादुःख सहता हुआ, पापकर्म के क्षीण होने पर, कर्मानुसार गया।

बुद्ध ने यह धर्म-देशना कह, जातक का सारांश निकाल दिया। उस समय का **मित्रविन्दक** (अब का) बात न मानने वाला भिक्षु था। लेकिन देव-राजा मैं ही था।

८३. कालकण्णि जातक

"मित्तो हवे सत्तपदेन होति . . ." यह (गाथा) बुद्ध ने **जेतवन** में विहार करते समय, **अनाथपिण्डिक** के एक मित्र के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

वह **अनाथपिण्डिक** का लंगोटिया यार था। दोनों ने एक ही आचार्य्य के पास (इकट्ठे) शिल्प सीखा था। उसका नाम था **कालकण्णी** (=मनहूस)। समय बीतते बीतते वह दुर्गति को प्राप्त हो, (आसानी से) न जी सकने के कारण सेठ के पास चला आया। सेठ ने उसे आश्वासित कर, खर्चा दे, उसके परिवार का

---

[1] देखो मित्रविन्दक जातक (१०४)।

पालन किया। वह सेठ का उपकारी हो, उसके सब काम करने लगा। जब वह सेठ के पास आता, तो उसे कहा जाता—"कालकण्णी ! खड़ा हो; कालकण्णी ! बैठ; कालकण्णी ! खा।" सो एक दिन सेठ के दोस्तों ने सेठ के पास आकर कहा—"सेठ ! इसे अपने पास मत रखें। 'कालकण्णी ! खड़ा हो; कालकण्णी ! बैठ; कालकण्णी ! खा।' इस शब्द (को सुनने) से यक्ष भी भाग जाये। यह तेरे योग्य नहीं। यह दरिद्र है, कुरूप है—तुम्हें इस से क्या ?"

अनाथपिण्डिक (ने उत्तर दिया)—"नाम व्यवहार-मात्र है। पण्डित-जन उसका ख्याल नहीं करते। श्रुत-माङ्गलिक[1] नहीं होना चाहिए। केवल नाम के कारण, मैं अपने लंगोटिया-यार को नहीं छोड़ सकता।"

उनकी बात न मान, एक दिन वह अपने भोग-ग्राम में जाते समय, उसे अपने घर का राखा बना कर गया।

"सेठ गाँव गया है। इसका घर लूटें" (सोच) चोरों ने, हाथ में नाना प्रकार के आयुध ले, रात को आकर, घर घेर लिया। वह (=राखा) भी, चोरों के आने की आशंका से, जागता बैठा था। उसने, चोरों को आया जान, मनुष्य को जगा, 'तू शंख बजा', 'तू ढोल (=आलिङ्ग) बजा' कह महासमज्ज (=मेला) करवाते हुए की तरह, सारे घर को एक शब्द कर दिया। 'घर खाली है, यह हमारी खबर गलत है। सेठ यहीं है' (सोच) चोर पाषाण, मुद्गर आदि वहीं छोड़; भाग गये।

अगले दिन लोगों ने जहाँ तहाँ पड़े, पाषाण मुदगर आदि को देख,संविग्न-चित्त हो, "यदि आज इस प्रकार का बुद्धिमान् गृह-रक्षक न होता तो चोर घर में घुस, इसे यथारुचि लूट कर ले जाते। इस दृढ़-मित्र के कारण सेठ की हानि नहीं हुई, उन्नति हुई" । उसकी प्रशंसा कर, सेठ के गाँव से लौटने पर, उसे सब हाल कहा।

सेठ ने उन्हें उत्तर दिया—"तुम मेरे ऐसे गृह-रक्षक मित्र को निकलवाते थे। यदि, तुम्हारी बात मान, मैंने इसे निकाल दिया होता, तो आज मेरा कुछ भी (बाकी) न रहता। नाम नहीं चाहिए, हितैषी-चित्त ही चाहिए।" यह कह, उसे और

---

[1] माङ्गलिक शब्दों का श्रवणमात्र श्रेयस्कर मानने वाले को श्रुत-माङ्गलिक कहते हैं।

भी खर्चा दे 'अब मेरे पास यह कहने-योग्य बात है' सोच बुद्ध के पास जा कर आरम्भ से लेकर सब हाल कह सुनाया।

बुद्ध ने 'हे गृहपति! न केवल अभी कालकण्णी-मित्र ने अपने मित्र के घर के माल-असबाब की रक्षा की, पहले भी रक्षा की है' कह, उसके याचना करने पर पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में **वाराणसी** में (राजा) **ब्रह्मदत्त** के राज्य करने के समय, बोधिसत्त्व महान् ऐश्वर्यवान् सेठ था। उसका **कालकण्णी** नाम का मित्र था। शेष सब (कथा) प्रत्युत्पन्न (=वर्त्तमान)—कथा सदृश ही। बोधिसत्त्व ने भोग-ग्राम से लौट, वह समाचार सुन, 'यदि मैंने तुम्हारी बात मान, ऐसे मित्र को निकाल दिया होता, तो आज मेरा कुछ भी न रहता' कह, यह गाथा कही—

मित्तो हवे सत्तपदेन होति
सहायो पन द्वादसकेन होति,
मासद्धमासेन च ञाति होति
तत्तुत्तरिं अत्तसमोपि होति ॥
सोहं कथं अत्तसुत्तस्स हेतु
चिरसन्थुतं कालकण्णिं जहेय्यं ॥

[सात कदम साथ चलने से (आदमी) मित्र हो जाता है, बारह (दिन) साथ रहने से 'सहायक' हो जाता है, महीना आधा-महीना (साथ रहने) से, 'ञाति' (=रिश्तेदार) हो जाता है, और उससे अधिक (साथ) रहने से अपने जैसा (=आत्म-समान) भी हो जाता है। सो मैं अपने आत्मसुख के लिए, चिर काल तक साथ रहे, इस कालकण्णि (मित्र) को कैसे छोड़ दूं?]

हवे, निपात-मात्र है। मैत्री करने वाला मित्र है—अर्थात् (मित्र) मैत्री करता है, स्नेह करता है। सो यह (मित्र) **सत्तपदेन** होति, सात कदम इकट्ठे चलने से (भी) होता है, **सहायो पन द्वादसकेन होति**, सब कृत्यों को इकट्ठा करने से, सभी अवस्थाओं में साथ (=सह) जाने वाला, 'सहायक' सो यह, बारह दिन

इकट्ठे रहने से होता है। **मासद्धमासेन** च महीना या आधा महीना (साथ रहने) से। **जाति होति,** जाति (=रिश्तेदार)—सदृश होता है। **तत्तुत्तरिं,** उस से अधिक साथ रहने से **अत्तसमोपि** होति (=अपने जैसा भी होता है)। **जहेय्यं,** इस प्रकार के मित्र को कैसे छोड़ूं? मित्रता के रस की प्रशंसा करता है।

उसके बाद से फिर कोई भी, उनके बीच में कुछ बोलने वाला नहीं हुआ।

शास्ता ने यह धर्म-देशना कह जातक का सारांश निकाल दिया।

उस समय का **कालकण्णी,** (अब का) **आनन्द** था। **बाराणसी सेट्ठी** तो मैं ही था।

८४. अत्थस्सद्वार जातक

"**आरोग्यमिच्छे परमं च लाभं...**" यह (गाथा) बुद्ध ने **जेतवन** में विहार करते समय, एक 'अर्थ-कुशल' पुत्र के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

श्रावस्ती के एक अत्यन्त वैभवशाली श्रेष्ठी का एक पुत्र था, जिसकी आयु सात वर्ष की थी (और) जो अत्यन्त प्रज्ञावान् और 'अर्थ-कुशल' था। उसने एक दिन पिता के पास जाकर 'अर्थ का द्वार'—प्रश्न पूछा। वह उस प्रश्न (के उत्तर) को नहीं जानता था। उसने सोचा—"यह प्रश्न अत्यन्त सूक्ष्म है। सम्यक् सम्बुद्ध को छोड़ कर और कोई भी, ऊपर भवाग्र से लेकर, नीचे **अवीची** (नरक) तक के लोक में, इस प्रश्न का उत्तर नहीं दे सकता।" वह पुत्र को ले, बहुत सा माला-गन्ध-विलेपन साथ लिवा, जेतवन जाकर बुद्ध की पूजा-प्रणाम कर, एक ओर बैठ, भगवान् से कहने लगा—"भन्ते! यह बालक बुद्धिमान् है। अर्थ-कुशल है। इस ने मुझे

अर्थ के द्वार के विषय में प्रश्न पूछा है। मैं इस प्रश्न को न जानने के कारण, आपके पास आया हूँ। अच्छा हो, यदि भगवान्, मुझे इसका उत्तर दें।" बुद्ध ने 'उपासक! इस कुमार ने पहले भी मुझ से यह प्रश्न पूछा था, और मैंने इसे कह दिया था। उस समय यह इस प्रश्न का उत्तर जानता था; लेकिन जन्मान्तर की बात होने से अब इसे वह याद नहीं' कह, उसके याचना करने पर, पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में **बाराणसी** में (राजा) **ब्रह्मदत्त** के राज्य करने के समय, बोधिसत्त्व महावैभवशाली श्रेष्ठी हुए। उनका एक पुत्र था, जिसकी आयु सात वर्ष की थी, और जो प्रज्ञावान् तथा 'अर्थ-कुशल' था। उसने एक दिन पिता के पास जाकर 'तात! अर्थ का द्वार कौन सा है?' करके, अर्थ-द्वार-प्रश्न पूछा। उसके पिता ने उस प्रश्न (के उत्तर) को कहते हुए, यह गाथा कही—

आरोग्यमिच्छे परमं च लाभं
सीलं च वुद्धानुमतं सुतं च,
धम्मानुवत्ती च अलीनता च
अत्थस्स द्वारा पमुखा छलेते॥

[आरोग्यता, जो कि परम लाभ है, (सर्व प्रथम) उसकी इच्छा करे; शील (=सदाचार); ज्ञान-वृद्धों का उपदेश; (बहु) श्रुतता, धर्मानुकूल आचरण, अनासक्ति—यह छः अर्थ (=उन्नति) के प्रमुख द्वार हैं।]

आरोग्यमिच्छे परमं च लाभं, 'च' निपातमात्र है। तात! सर्व प्रथम आरोग्य नामक परम लाभ की इच्छा करे! इस अर्थ को इस प्रकार स्पष्ट किया गया है—'आरोग्य कहते हैं, शरीर तथा मन दोनों का आरोग्य होना, अनातुरता। शरीर के रोग से पीड़ित होने पर, न तो अप्राप्त लाभ प्राप्त किया जा सकता है, न प्राप्त (भोग) का उपभोग किया जा सकता है। लेकिन अनातुर (=स्वस्थ) होने पर यह दोनों कर सकता है। चित्तके क्लेश (=विकार) से पीड़ित होने पर न तो अप्राप्त ध्यान आदि लाभ प्राप्त किया जा सकता है, न प्राप्त ध्यान फिर समापत्ति-रूप से भोग किया जा सकता है। इसके अस्वस्थ रहने पर, अप्राप्त

लाभ प्राप्त नहीं होता, जो मिला है सो भी निष्प्रयोजन होता है। लेकिन इसके (आतूर) न होने पर, अप्राप्त लाभ होता है, प्राप्त लाभ सार्थक होता है। सो आरोग्य परम लाभ है, सर्व प्रथम उसकी इच्छा करनी चाहिए। उन्नति का यह एक (मुख्य) द्वार है। **सीलं च**, आचारशील इससे मतलब है लौकिक बरताव। **वुद्धानुमतं**, गुणवृद्धों की, पण्डितों की मति, मतलब है गुणियों का, गुरुओं का उपदेश। **सुतं च**, उपयोगी श्रुत, इससे स्पष्ट किया है कि इस लोक में अर्थनिश्चित-(=उपयोगी) वहुसच्चं (=वहुश्रुतता, ज्ञेय) है। **धम्मानुवत्ती च**, त्रिविध, सुचरित्र धर्म के अनुसार चलना, **अलीनता च**, चित्त की अलीनता, अनीचता, इससे चित्त का असंकुचित होना, श्रेष्ठ होना, उत्तम होना स्पष्ट किया है। **अत्थस्स द्वारा पमुखा छलेते** अर्थ=उन्नति, इस 'अर्थ' कहलाने वाली लौकिकि, लोकोत्तर उन्नति के यह ये मुख्य द्वार हैं, उपाय हैं, प्रवेप-मार्ग हैं।

इस प्रकार बोधिसत्त्व ने पुत्र के अर्थ-द्वार प्रश्न का उत्तर दिया। उस समय से वह, उन छः धर्मों के अनुसार आचरण करने लगा।

बोधिसत्त्व भी दान आदि पुण्य-कर्म करके (अपने) कर्मानुसार (परलोक) गये।

बुद्ध ने यह धर्म-देशना कह जातक का सारांश निकाल दिया। उस समय का पुत्र ही यह (अब का) पुत्र था। महासेठ तो मैं ही था।

८५. किम्पक्क जातक

"आयतिदोसं नाञ्ञाय.." यह (गाथा) बुद्ध ने जेतवन में विहरते हुए एक आसक्त-चित्त भिक्षु के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

एक कुल-पुत्र बुद्ध-शासन में अत्यन्त श्रद्धा से प्रव्रजित हो, एक दिन श्रावस्ती

में भिक्षा माँगते हुए, एक अलंकृत स्त्री को देखकर आसक्त हो गया। उसके आचार्य्य उपाध्याय उसे बुद्ध के पास लाये।

ख. अतीत कथा

वुद्ध ने पूछा—"भिक्षु ! क्या तू सचमुच उत्कण्ठित है ?" उसके "सचमुच" कहने पर वुद्ध ने कहा 'हे भिक्षु ! यह पाँच काम-गुण (=भोग) भोगने के समय सुन्दर लगते हैं। लेकिन, उनका भोगना निरय आदि में उत्पत्ति का कारण होने से, वह किम्पक्कफल सदृश हैं। किम्पक्कफल, वर्ण-गन्ध तथा रस से युक्त होता है, लेकिन खाने पर आँतों को टुकड़े टुकड़े कर, प्राणों का नाश कर देता है। पहले बहुत से आदमी उसके दोष को न जान (=देख), उसके वर्ण-गन्ध तथा रस में आसक्त हो उस फल को खाकर, प्राण गवाँ बैठे।' यह कह, पूर्व-जन्म की कथा कही—

पूर्व समय में **बाराणसी** में (राजा) **ब्रह्मदत्त** के राज्य करने के समय, बोधिसत्त्व ने सार्थवाह हो, पाँच सौ गाड़ियों के साथ **पूर्व** से **पश्चिम** को जाते हुए, एक जंगल के द्वार पर पहुँच, मनुष्यों को एकत्र कर, उपदेश दिया—"इस जंगल में विष-वृक्ष हैं। मेरे बिना पूछे, कोई किसी ऐसे फल को न खाये, जिसे उसने पहले न खाया हो।"

मनुष्यों ने जंगल को पार कर, उसके द्वार पर फलों से लदा हुआ एक **किम्पक्क** वृक्ष देखा। उसके टहने, शाखाएँ, पत्ते तथा फल, आकार, वर्ण, रस और गन्ध की दृष्टि से आम के सदृश ही थे। उनमें से कुछ (आदमियों) ने वर्ण, गन्ध रस की ओर खिंच, उन्हें आम के फल समझ कर खाया। कुछ जने 'सार्थवाह को पूछ कर खायेंगे,' (करके) लिये खड़े रहे। बोधिसत्त्व ने वहाँ पहुँच, जो फल लिये खड़े थे, उन से वह फल फेंकवा, जिन्होंने खा लिये थे, उन्हें वमन करा दवाई दी। उन में से कुछ तो निरोग हो गये, लेकिन जो बहुत पहले खा चुके थे, वे मर गये। बोधिसत्त्व सकुशल इच्छित स्थान पर पहुँच, (वहाँ) मुनाफा कमा, फिर अपने स्थान पर आकर, दान आदि पुण्य करके, कर्मानुसार (परलोक) गया। शास्ता ने वह कथा कह, अभिसम्बुद्ध हो, यह गाथा कही—

आयतिदोसं नाञ्ञाय यो कामे पतिसेवति,
विपाकन्ते हनन्ति नं किम्पक्कमिव भक्खितं॥

[जो (आदमी) काम-भोगों के भविष्य के दुष्परिणाम को बिना] ख्याल किये काम-भोगों का सेवन करता है, उस आदमी को, उसके काम-भोग, फल देने के समय वैसे ही मार डालते हैं, जैसे खाये हुए किम्पक्क-फल ने (मार डाला]।

आयतिदोसं नाञ्ञाय, अनागत (=भविष्य) के दुष्परिणाम को न जान कर। **यो कामे पतिसेवति,** जो (आदमी) वस्तुकामों तथा क्लेश-कामों का सेवन करता है। **विपाकन्ते हनन्तिनं,** वे काम-भोग उस आदमी को अपने विपाक (=फल) देने के समय अर्थात् अन्त में, निरय आदि में उत्पत्ति (तथा) नाना प्रकार के दुखों से युक्त कर मारते हैं। कैसे? **किम्पक्कमिव भक्खतिं** जैसे खाने के समय वर्ण-रस-गन्ध सम्पत्ति के कारण रुचिकर **किम्पक्कफलं,** यदि भविष्य का दुष्परिणाम न देख कर खा लिया जाये, तो अन्त में मार डालता है, प्राणों का नाश कर देता है; इसी प्रकार परिभोग के समय यद्यपि काम-भोग रुचिकर लगते हैं, तो भी विपाक देने के समय मार डालते हैं।

इस उपदेश को मेल मिलने तक पहुँचा, (आर्य-) सत्यों को प्रकाशित किया। (आर्य-) सत्यों (के प्रकाशन) के अन्त में उत्कण्ठित भिक्षु श्रोतापत्ति फल का भागी हुआ। शेष परिषद में से भी कुछ श्रोतापन्न हुए, कुछ सकृदागामी, कुछ अनागामी, कुछ अर्हत् हुए। बुद्ध ने भी यह धर्म-देशना कह, जातक का सारांश निकाल दिया। उस समय की परिषद् (अब की) बुद्ध-परिषद् थी। सार्थवाह (=कारवाँ का सरदार) तो मैं ही था।

८६. सीलवीमंस जातक

"**सीलं किरेव कल्याणं. .**" यह (गाथा) शास्ता ने **जेतवन** में विहरते समय, एक शील (=सदाचार) विचारक ब्राह्मण के सम्बन्ध में कही।

क. वर्तमान कथा

उसकी जीविका **कोशल** राजा पर निर्भर थी। वह त्रिशरण-गत, अखंड पचंशीली तथा तीनों वेदों में पारंगत था। यह शीलवान (=सदाचारी) है, (करके) राजा उसका विशेप सम्मान करता था। वह सोचने लगा—"यह राजा, अन्य ब्राह्मणों की अपेक्षा मेरा विशेष सम्मान करता है, विशेष रूप से गौरव प्रदर्शित करता है। क्या यह मेरा सम्मान मेरी जाति, गोत्र, कुल, प्रदेश, तथा शिल्प सम्पत्ति (=ज्ञान) के कारण करता है, अथवा शील-सम्पत्ति (=सदाचार) के कारण? अच्छा, इस की परीक्षा करूँगा।"

एक दिन उसने, राजा की सेवा में जा, वापिस घर लौटते समय, एक सराफ (की दुकान) के फट्टे पर से, विना उसे पूछे, एक कार्षापण उठा लाया। सराफ, ब्राह्मण के प्रति गौरव का भाव होने से, बिना कुछ बोले (चुप) बैठा रहा। अगले दिन, दो कार्षापण उठा लाया। सराफ ने वैसे ही सहन कर लिया। तीसरे दिन कार्षापणों की मुट्ठी उठा ली। 'आज तुझे राजकीय-माल लूटते तीसरा दिन हो गया है'–(करके) सराफ ने, 'मैं ने राजकीय-माल लूटने वाला चोर पकड़ा है'—तीन वार शोर मचाया। मनुष्य, इधर उधर से आकर 'बहुत देर से तू सदाचारी बना फिरता था' (करके) दो तीन प्रहार दे, राजा के पास ले गये।

राजा ने अफसोस करते हुए, 'ब्राह्मण! किस लिए ऐसा पाप-कर्म करता है' कह, आज्ञा दी, 'जाओ! इसको राजदण्ड दो।'

ब्राह्मण बोला—महाराज! "मैं चोर नहीं हूँ।"

"तो फिर किस लिए राजकीय सामान के अधिकारी के फट्टे पर से कार्षापण उठाये ?"

"तुम्हारे, मेरा अत्यन्त सम्मान करने पर, मेरे मन में सन्देह था कि यह जो राजा मेरा सम्मान करता है, वह मेरी जाति आदि के कारण, अथवा शील (=सदाचार) के कारण ? सो, इसकी परीक्षा करने के लिए, मैंने ऐसा किया। अब मुझे सम्पूर्णत: विश्वास हो गया कि तू ने जो मेरा सम्मान किया, वह (मेरे) शील के ही कारण किया, न कि जाति आदि के कारण। सो, इस कारण (=बात) से, मैं इस निश्चय पर पहुँचा कि लोक में शील (=सदाचार) ही उत्तम है, शील ही प्रमुख है,। घर में रह कर काम-भोगों का उपभोग करते हुए मैं इस शील के (नियमों के) अनुसार नहीं रह सकता। इस लिए, मैं आज ही जेतवन जा कर बुद्ध के पास प्रव्रजित होऊँगा। देव! मुझे प्रव्रज्या (की आज्ञा) दें।" यह कह, राजा की स्वीकृति ले, जेतवन की ओर चला गया।

उसके जाति-सुहृद-बन्धुओं ने उसे रोकने का प्रयत्न किया; लेकिन जब वह न रोक सके, तो लौट गये।

उसने बुद्ध के पास जा, प्रव्रज्या की याचना कर, प्रव्रज्या तथा उपसम्पदा पा, कर्मस्थान (=योग्याभ्यास) में लगे रह, विदर्शना (=ज्ञान) की वृद्धि से, अर्हत्व प्राप्त किया। तब बुद्ध के पास जा अञ्ञा (=अर्हत्व) का व्याकरण (=प्रकाशन) किया—"भन्ते! मेरी प्रव्रज्या का उद्देश्य पूरा हो गया।"

उसका यह 'अर्हत्व-प्रकाशन' भिक्षुसंघ में प्रगट हो गया। सो एक दिन धर्म-सभा में बैठे भिक्षु उसकी प्रशंसा कर रहे थे—"आवुसो! राजा का अमुक उपस्थापक ब्राह्मण, अपने शील का विचार कर, राजा से पूछ, प्रव्रजित हो, अर्हत्व में प्रतिष्ठित हुआ।"

शास्ता ने आकर पूछा—"भिक्षुओ! इस समय बैठे क्या बातचीत कर रहे हो?" "यह (बातचीत)" कहने पर, (शास्ता ने) कहा—"भिक्षुओ! न केवल अभी इस ब्राह्मण ने अपने शील का विचार कर, प्रव्रजित हो, अपनी प्रतिष्ठा (=अर्हत्व लाभ) की; पहले भी पण्डितों ने अपने शील का विचार कर, प्रव्रजित हो, अपनी प्रतिष्ठा की है।" यह कह, पूर्व-जन्म की कथा कही—

क. वर्तमान कथा

पूर्व समय में **बाराणसी** में (राजा) **ब्रह्मदत्त** के राज्य करने के समय, बोधिसत्त्व उसके पुरोहित थे। वे दानी थे, सदाचारी थे; तथा अखंड-पञ्च-शीली थे। राजा, अन्य ब्राह्मणों की अपेक्षा, उनका विशेष सम्मान करता था।.. ......सब पूर्व सदृश ही। लेकिन बोधिसत्त्व को बाँध कर, राजा के पास ले जाने के समय, रास्ते में सँपेरे साँप का खेल करते हुए, उसे पूंछ से पकड़ते, गरदन पर डालते तथा गले मे लपेटते थे। उन्हें देख, बोधिसत्त्व ने कहा—"तात! इसे पूंछ से मत पकड़ो; इसे गले में गरदन में मत लपेटो। अरे, यह डस कर, प्राणों का नाश कर देगा।" सँपेरे बोले—"ब्राह्मण यह सर्प, शीलवान है; सदाचारी है, वैसा दुशील नहीं है। तू अपनी दुशीलता अनाचार के कारण 'राजकीय माल लूटने वाला चोर' (कहकर), बाँध कर ले जाया जा रहा है।" वह सोचने लगा—"डसना छोड़ने पर, कष्ट देना छोड़ने पर, जब साँप भी 'शीलवान' कहलाते हैं; तो फिर आदमी का तो क्या कहना? लोक में शील ही उत्तम है। उससे बढ़कर और कुछ नहीं।"

(लोग) उसे राजा के पास ले गये।

राजा ने पूछा—"तात! यह क्या?"

"देव! राजकीय धन लूटने वाला चोर।"

"तो इसे राज-दण्ड दो।"

ब्राह्मण बोला—"महाराज मैं चोर नहीं हूँ।"

"तो फिर किस लिए कार्षापण उठाये?" पूछने पर, उक्त प्रकार से ही सब कहते हुए; कहा:"सो मैं इस कारण से इस निश्चय पर पहुँचा, कि इस लोक में शील ही उत्तम है, शील ही प्रमुख है,। और तो रहने दो, यह विशैला सर्प भी, न डसने पर, न कष्ट देने पर 'शीलवान्' कहलाता है। इस कारण से भी शील ही उत्तम है, शील ही श्रेष्ठ है।" इस प्रकार शील की प्रशंसा करते हुए, यह गाथा कही—

सीलं किरेव कल्याणं सीलं लोके अनुत्तरं,
पस्स घोरविसो नागो सीलवाति न हञ्ञति॥

[शील ही कल्याण-कर है; लोक में शील से बढ़ कर कुछ नहीं। देखो! यह घोर विषैला सर्प (भी) शीलवान् (है) करके, मारा नहीं जाता।]

"सीलं किरेव..." शरीर-वाणी तथा मन से सदाचार (के नियमों) का उल्लंघन न करना, आचार-शील। किर, परम्परा से कहा जाता है। कल्याणं, सुन्दरतर। अनुत्तरं, ज्येष्ठ, सब गुणों का दाता। पस्स, अपनी देखी बात को सामने करके कहता है। सीलवा'ति न हञ्ञति, घोर विषैला सर्प भी, केवल न डसने, न कष्ट देने भर से, 'शीलवान्' करके प्रशंसित होता है। न हञ्ञति, मारा नहीं जाता। इस कारण से भी, शील ही उत्तम है।

इस प्रकार बोधिसत्त्व, इस गाथा से, राजा को धर्मोपदेश कर, काम-भोगों को छोड़, ऋषि प्रव्रज्या के अनुसार प्रव्रजित हो, हिमवन्त में प्रवेश कर, पाँच अभिज्ञा, तथा आठ समापत्तियाँ प्राप्त कर, ब्रह्मलोकगामी हुए।

बुद्ध ने यह धर्म-देशना कह जातक का सारांश निकाल दिया। उस समय की राज परिषद् (अब की) बुद्ध परिषद् थी। पुरोहित तो मैं ही था।

८७. मंगल जातक

"यस्स मङ्गला समूहता..." यह (गाथा) बुद्ध ने वेळुवन में विहार करते समय, एक ऐसे ब्राह्मण के बारे में कही, जो वस्त्र में (अच्छे-बुरे) लक्षण देखता था।

क. वर्तमान कथा

राजगृह-वासी एक ब्राह्मण शकुनों में विश्वास करता था। वह त्रिरत्न (बुद्ध, धर्म, संघ) से अप्रसन्न तथा मिथ्या-विचार वाला था; (लेकिन) था धनी, महान धनी, बहुत भोग-सम्पत्ति वाला। उसके सन्दूक में रक्खे हुए वस्त्रों के जोड़े

को चूहे काट गये। (जब) नहा कर, 'वस्त्र ले आओ' कहा, तो बताया कि उन्हें चूहे काट गए।

उसने सोचा—"यदि यह चूहों का खाया कपड़ों का जोड़ा, इस घर में रहेगा, तो महाविनाश होगा। यह अमाङ्गलिक है, मनहूसीयत है; इसे लड़के-लड़की, नौकर चाकरों को भी नहीं दिया जा सकता, क्योंकि जो कोई इसे लेगा, उसका सब कुछ विनष्ट हो जायगा। इसे कच्चे-श्मशान में फिंकवाऊँगा। लेकिन इसे नौकर चाकरों के हाथ में नहीं दे सकता; कहीं वे लोभ के मारे इसे रख लें, और इस प्रकार विनाश को प्राप्त हों। इसे अपने पुत्र के हाथ भेजूंगा।" उसने अपने पुत्र को बुलवा, वह बात समझा कर भेजा—'लेकिन तात! तू भी इसे बिना हाथ से छुए, डण्डे पर डाल कर ले जा, और कच्चे-श्मशान में फेंक, सिर से नहा कर, लौट आ।"

वुद्ध भी उस दिन प्रातःकाल ही ऐसे बन्धुओं को देखते हुए, जिनके (आर्य) मार्ग पर आने की सम्भावना हो, पिता-पुत्र के **श्रोतापत्ति फल** प्राप्त करने की सम्भवाना देख, मृगों के शिकारी के मृगों की जगह जाने की तरह, कच्चे श्मशान के द्वार पर जाकर छः वर्ग की रश्मियों को विसर्जित करते हुए बैठे। माणवक (अपने) पिता की बात मान, उस जोड़े-वस्त्र को, घर में आ घुसे साँप की तरह लकड़ी पर डाल कर कच्चे-श्मशान के द्वार पर लाया।

वुद्ध ने पूछा—"माणवक! क्या करता है?"

"भो गौतम! यह चूहों का खाया हुआ जोड़ा-वस्त्र (है), (यह) मनहूसीयत है, (यह) हलाहल-विष के समान है। मेरे पिता ने इस डर से कि कहीं दूसरा (कोई) फेंकने जाकर लोभ के मारे ले न ले, मुझे (इसे फेंकने) भेजा है। मैं इसे फेंक कर, सिर से नहाने के लिए आया हूँ!"

"अच्छा! तो फेंक दें।"

माणवक ने फेंक दिया। शास्ता 'अब यह हमारे योग्य है' (कह) उसके सामने ही, उसके 'भो गौतम! यह अमाङ्गलिक है, यह मनहूसीति है; इसे मत लें, इसे मत लें' मना करते रहने पर भी, उठा कर **वेळुवन** की ओर चले गये। माणवक ने जल्दी से जाकर पिता को कहा—"तात! मैंने जिस जोड़े-वस्त्र को कच्चे-श्मशान में फेंका, उसे मेरे मना करने पर भी श्रमण गौतम 'हमारे योग्य है' (कह) ले **वेळुवन** चला गया।"

ब्राह्मण ने सोचा—"वह जोड़ा वस्त्र अमाङ्गलिक है, मनहूसियत है। उसे

पहनने से श्रमण गौतम भी नष्ट होगा, विहार भी नष्ट होगा। उससे हमारी निन्दा होगी। सो मैं श्रमण गौतम को और दूसरे वहुत से वस्त्र दे कर, वह वस्त्र फिकवाऊँ।"

वह वहुत से वस्त्र लिवा, पुत्र सहित वेळुवन जा, शास्ता को देख एक ओर खड़े होकर वोला—"भो गौतम! क्या तूने सचमुच, कच्चे-श्मशान में से जोड़ा-वस्त्र लिया है?"

"हाँ, ब्राह्मण! सचमुच"।

"भो गौतम! वह वस्त्र जोड़ा अमाङ्गलिक है। उसे पहनने से तुम नष्ट होगे; सारा विहार नष्ट होगा। यदि ओढ़ना, विछौना पर्य्याप्त न हो, तो इन वस्त्रों को लेकर, उसे फेंकवा दो।"

वुद्ध ने 'ब्राह्मण! हम प्रव्रजित हैं। कच्चे-श्मशान में, गली में, कूड़े में, नहाने के घाट (=तीर्थ) पर तथा महामार्ग में—ऐसी ही जगहों पर फेंके हुए या गिरे हुए चीयड़े हमारे योग्य हैं। और तू तो, न केवल अभी, किन्तु पहले भी इसी विचार का था' कह, उसके प्रार्थना करने पर पूर्व-जन्म की कथा कही——

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में मगध देश (=राष्ट्र) के राजगृह नगर में धार्मिक मगध-नरेश राज्य करते थे। उस समय वोधिसत्त्व एक उदीच्य ब्राह्मण कुल में उत्पन्न हुए थे। ज्ञान प्राप्त करने के वाद ऋषि प्रव्रज्या के अनुसार प्रव्रजित हो गये। अभिञ्ञा तथा समापत्तियाँ लाभ कर, हिमवन्त में रहते समय, एक वार हिमवन्त से निकल, राजगृह नगर में राजोद्यान में पहुँचे। वहाँ रह, दूसरे दिन भिक्षा माँगने के लिए नगर में प्रवेश किया। राजा ने उसे देख कर वुलवाया और प्रासाद में विठा, भोजन खिला, (उससे) राजोद्यान में ही रहने का वचन लिया। वोधिसत्त्व राज-भवन में भोजन करते हुए उद्यान में रहने लगे।

उस समय राजगृह नगर में एक ऐसा ब्राह्मण था, जो वस्त्रों में (अच्छे-वुरे) लक्षण देखता था। उसके वक्से में रक्खा हुआ जोड़ा वस्त्र...सव पूर्वोक्त सदृश ही। हाँ, माणवक के श्मशान को जाने के समय, वोधिसत्त्व पहले से ही जा कर, श्मशान-द्वार पर वैठे रह, उसका फेंका हुआ जोड़ा-वस्त्र लेकर उद्यान चले गये। माणवक ने जाकर पिता को कहा। पिता ने 'राजा का विश्वस्त तपस्वी नष्ट न

हो जाये' सोच बोधिसत्त्व के पास आकर कहा—"तपस्वी! जिन वस्त्रों को तू ने लिया है, (उन्हें) छोड़ नष्ट न हो।"

तपस्वी ने उत्तर दिया—"श्मशान में छोड़े हुए चिथड़े, हमारे अनुकूल (=योग्य) हैं। हम शकुन मानने वाले (=कौतूहल मङ्गलिका) नहीं। फिर बुद्ध, प्रत्येक-बुद्ध, बोधिसत्त्व, किसी ने शकुन मानने की प्रशंसा नहीं की। इस लिए बुद्धिमान् को शकुन मानने वाला नहीं होना चाहिए।" (यह) कह, ब्राह्मण को धर्मोपदेश दिया।

ब्राह्मण ने धर्म सुन, पूर्व-विचार (=दृष्टि) त्याग बोधिसत्त्व की शरण ग्रहण की। बोधिसत्त्व भी अविनष्ट-ध्यान रह, ब्रह्मलोकगामी हुआ। बुद्ध ने भी पूर्व-जन्म की इस कथा को ला, अभिसम्बुद्ध हुए रहने की अवस्था में, ब्राह्मण को धर्मोपदेश देते हुए, यह गाथा कही—

यस्स मङ्गला समूहता
उप्पाता सुपिना च लक्खणा च,
स मङ्गलदोसवीतिवत्तो
युगयोगाधिगतो न जातुमेति॥

[जिस (आदमी) के मंगल (माङ्गलिक, अमाङ्गलिक सम्बन्धी विश्वास) उत्पात (=सूर्य्यग्रहण, चन्द्रग्रहण आदि उत्पात); स्वप्न (शुभ स्वप्न, अशुभ स्वप्न आदि); तथा लक्षण (चिह्न, शुभ-अशुभ)—यह सब समूल नष्ट हो गये हैं; वह, इन मङ्गल-दोषों को लाँघ जाने वाला, इन द्वन्द धर्मों को जीत लेने वाला=, निश्चय पूर्वक (फिर) इस संसार में जन्म ग्रहण नहीं करता।]

जिस अर्हत्=क्षीणाश्रव के दृष्ट-मङ्गल, श्रुत-मङ्गल, मुत-मङ्गल—यह तीनों प्रकार के मङ्गल समूल उच्छिन्न हो गये हैं। **उप्पाता सुपिना च लक्खणाच** 'इस प्रकार का चन्द्रग्रहण होगा, इस प्रकार का सूर्य्य-ग्रहण होगा, इस प्रकार का नक्षत्र-ग्रहण होगा, इस प्रकार का तारा (=उल्का) गिरेगा, तथा इस प्रकार का दिशा-दाह (=दिशा में आग लगना) होगा' यह पाँच महा-उत्पात हैं; नाना प्रकार के स्वप्न; शुभ-लक्षण, अशुभ-लक्षण, स्त्री-लक्षण, पुरुष-लक्षण, दास-लक्षण, दासी-लक्षण, असि-लक्षण, वृषभ-लक्षण, आयुध-लक्षण, वस्त्र-लक्षण, इस प्रकार के लक्षण जिसके यह मिथ्या-विश्वास (=दृष्टि-स्थान) समूल नष्ट हो गये हैं, वह (आदमी) इन

उत्पात आदि से अपना मङ्गल (=कल्याण) होना वा अमङ्गल होना नहीं विश्वास करता। **स मङ्गल दोस-वीतिवत्तो,** वह क्षीणाश्रव, सब मङ्गलों के दोषों का अतिक्रमण कर गया, लाँघ गया। **युगयोगाधिगतो न जातुमेति इति,** क्रोध तथा उपनाह (=बद्ध-वैर), म्रक्ष[1] पलास[2] आदि करके दो-दो एक साथ आये हुए क्लेश (=चित्त विकार) 'युग' कहलाते हैं। काम-योग, भव-योग, दृष्टियोग अविद्या-योग, यह चारों, संसार में जोतने वाले (=योजन भावतो) होने से 'योग' कहलाते हैं। वे युग तथा योग, युगयोग, उन्हें अधिगत करने वाला, जीतने वाला, लाँघ जाने वाला, सम्यक् अतिक्रान्त कर जाने वाला, क्षीणाश्रव भिक्षु, न जातुमेति फिर जन्म-ग्रहण करके, निश्चय से इस लोक में नहीं आता।

इस प्रकार बुद्ध ने इस गाथा से ब्राह्मण को धर्मोपदेश कर फिर, (आर्य) सत्यों को प्रकाशित किया। (आर्य-) सत्यों (के प्रकाशन) के अन्त में, वह सपुत्र ब्राह्मण श्रोतापत्ति-फल में प्रतिष्ठित हुआ।

बुद्ध ने जातक का सारांश निकाला। उस समय (भी) यही (दोनों जने) पिता-पुत्र थे। तपस्वी तो मैं ही था।

८८. सारम्भ जातक

"कल्याणिमेव मुञ्चेय्य. . ." यह (गाथा) बुद्ध ने श्रावस्ती में विहार करते समय गाली सम्बन्धी शिक्षा-पद (=नियम) के बारे में कही।

---

[1] म्रक्ष—दूसरे के गुणों को नष्ट करना।

[2] पलास—अपना दूसरे गुणी के साथ तुलना करना।

क. वर्तमान कथा

दोनों कथायें, पूर्वोक्त **नन्दि विशाल**[1] जातक के समान ही हैं। लेकिन इस जातक में बोधिसत्त्व, गन्धार देश (=राष्ट्र) के तक्षशिला (नगर) में एक ब्राह्मण का सारम्भ नामक बैल हुए।

ख. अतीत कथा

बुद्ध ने पूर्व-जन्म की यह कथा कह, अभिसम्बुद्ध हुए रहने की अवस्था में यह गाथा कही—

कल्याणिमेव मुञ्चेय्य नहि मुञ्चेय्य पापिकं,
मोक्खो कल्याणिया साधु मुत्वा तपति पापिकं ॥

[कल्याणकर वाणी को (मुंह से) छोड़े। पापी वाणी को (मुंह से) न छोड़े। कल्याण कर वाणी का छोड़ना श्रेयस्कर (=साधु) है, पापी वाणी को (मुंह से) छोड़ने वाला (पीछे) तपता है।]

कल्यणिमेव मुञ्चेय्य..." असत्य, कठोर, व्यर्थ, चुगली (की बात) —इन चार दोषों से मुक्त, कल्याणकर, सुन्दर, दोष रहित वाणी ही (मुंह से) निकाले, छोड़े, बोले। **नहि मुञ्चेय्य पापिकं,** पापी, बुरी, दूसरों को अप्रिय, अरुचिकर, (वाणी) न निकाले, न बोले। **मोक्खो कल्याणिया साधु,** कल्याणकारी वाणी का बोलना ही, इस लोक में अच्छा है, सुन्दर है, भद्र है। **मुत्वा तपति पापिकं** पापी, कठोर वाणी को छोड़कर, निकाल कर, कह कर, वह आदमी संताप को प्राप्त होता है, सोचता है, दुःख पाता है।

इस प्रकार बुद्ध ने यह धर्म-देशना ला, जातक का सारांश निकाला। उस समय का ब्राह्मण (अब का) आनन्द था, ब्राह्मणी (अब की) **उत्पलवण्णा (भिक्षुणी)** थी, (लेकिन) **सारम्भ** तो मैं ही था।

---

[1] **नन्दिविशाल जातक (२८)।**

८९. कुहक जातक

"वाचाव किर ते आसि..." यह (गाथा) बुद्ध ने जेतवन में विहरते समय, एक ढोंगी=पाखण्डी के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

कुहक-कथा उद्दाल जातक[1] में आयेगी।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में बाराणसी में (राजा) ब्रह्मदत्त के राज्य करते समय, एक ग्राम के आश्रय में एक कुटिल-हृदय, ढोंगी जटिल तपस्वी रहता था। एक गृहस्थ (कुटुम्बी) उसके लिए, जंगल में एक पर्णशाला बनवा उसे वहाँ बसा, अपने घर में, उसकी प्रणीत-भोजन से सेवा करता था। उस (गृहस्थ) ने, उस कुटिल जटिल (=तपस्वी) को, 'यह सदाचारी है' विश्वास कर, चोरों के डर से, सोने के सौ सिक्के उसकी पर्णशाला में ले जाकर, वहाँ ज़मीन में गाड़ कर, कहा—"भन्ते! इसे देखते हैं?" तपस्वी बोला—"आवुस! प्रव्रजितों को इस प्रकार कहना अनुचित है। हमें पराई चीज़ में लोभ का नाम नहीं।" "भन्ते! अच्छा" कह उसकी बात पर विश्वास कर वह चला गया।

दुष्ट तपस्वी ने 'इतने से गुज़ारा चल सकता है' (सोच) कुछ दिन बिता कर, उस सोने को ले, रास्ते के बीच में एक जगह रख, आकर पर्णशाला ही में रह, फिर एक दिन उस (गृहस्थ) के घर में भोजन कर चुकने पर कहा—"आवुसो! हमने चिरकाल तक तुम्हारा आश्रय ग्रहण किया। चिरकाल तक एक ही स्थान पर रहने

---

[1] उद्दाल जातक (४८७)।

से मनुष्यों से संसर्ग (=लगाव) हो जाता है। प्रव्रजितों के लिए संसर्ग (=मोह) चित्त का मैल है। इस लिए, (अब) हम जाते हैं।"

वार वार आग्रह करने पर भी, उसने (अधिक) ठहरना स्वीकार न किया। 'ऐसा है, तो पधारें भन्ते!' कह, वह उसे ग्राम के द्वार तक छोड़ कर लौट आया।

तपस्वी थोड़ी दूर जाकर 'इस गृहस्थ को, मुझे धोखा देना चाहिए' (सोच) अपनी जटाओं के अन्दर एक तिनका रख कर लौट आया।

गृहस्थ ने पूछा—"भन्ते! क्यों लौट आये?"

"आवुसो! तुम्हारे घर की छत में से मेरी जटाओं में एक तिनका गिर पड़ा। विना दी हुई चीज़ लेना, प्रव्रजित के लिए मुनासिब नहीं। उस (तिनके) को लेकर आया हूँ।"

गृहस्थ ने 'भन्ते! छोड़ कर जायें' कह 'अहो! आर्य्य कितने सन्देहशील हैं; पराया तिनका तक नहीं लेते' (सोच) प्रसन्न हो, प्रणाम कर विदा किया।

उस समय बोधिसत्त्व ने, सामान के लिए प्रत्यन्त (=देश) को जाते हुए, उसी गृहस्थ के घर में निवास किया था। तपस्वी की बात सुन 'इस दुष्ट तपस्वी ने, अवश्य इस गृहस्थ का कुछ न कुछ उड़ाया होगा' सोच, पूछा—सौम्य! क्या तू ने इस तपस्वी के पास कुछ रक्खा है?

"सौम्य! है, सोने के सौ सिक्के।"

"तो जा, उन की खबर ले।"

उसने पर्णशाला जाकर, उन्हे वहाँ न देख, जल्दी से आकर कहा—"सौम्य! नहीं हैं।"

"तेरे सोने को और किसी ने नहीं लिया, उस कूट-तपस्वी ने ही लिया है, आ उसका पीछा करें, उसे पकड़ें।"

(दोनों ने) वेग से जाकर, कुटिल तपस्वी को पकड़, हाथों और पैरों से पीट कर, उससे सोना मँगवा कर, लिया।

बोधिसत्त्व ने सोने को देख 'सौ सिक्के ले जाते लज्जा नहीं आई, तिनके में शक हुआ' कह, उसकी निन्दा कर, यह गाथा कही—

वाचाव किर ते आसि सण्हा सखिलभाणिनो,
तिणमत्ते असज्जित्थो नो च निक्खसतं हरं॥

[प्रियभाषी ! तेरी वाणी भर हीं मधुर थी। तृण-भर ले जाते तो तुझे शक हुआ, लेकिन सौ सिक्के (सोना) ले जाते नहीं।]

वाचाव किर ते आसि सण्हा सखिलभाणिनो, 'प्रव्रजितों को बिना दिया तिनका भी लेना नामुनासिब है' इस प्रकार मृदु वचन बोलते हुए की, तेरी केवल बात चिकनी थी। तिणमत्ते असज्जित्थो, कुटिल तपस्वी ! एक तिनके में सन्देह (=कौकृत्य) करता हुआ, तू उसमें आसक्त (=लग्न) हुआ जाता था, नो च निक्खजतं हरं, लेकिन इन सौ सिक्कों को ले जाते हुए तू, अनासक्त निर्लग्न ही रहा !

इस प्रकार बोधिसत्त्व उसकी निन्दा कर, 'हे कुटिल जटिल (=तपस्वी) ! अब ऐसा मत करना' कह, उपदेश दे, स्वकर्मानुसार (परलोक) गया।

बुद्ध ने यह धर्म देशना ला 'भिक्षुओ ! न केवल अभी यह भिक्षु पाखंडी है, पहले भी पाखंडी ही रहा है', कह, जातक का सारांश निकाला। उस समयका कुटिल तपस्वी (अब का) पाखण्डी-भिक्षु था। पण्डित पुरुष तो मैं ही था।

९०. अकतञ्ञु जातक

'यो पुब्बे कतकल्याणो. . ." यह (गाथा) बुद्ध ने जेतवन में विहार करते समय, अनाथपिण्डिक के सम्बन्ध में कही।

क. वर्तमान कथा

प्रत्यन्त (-देश) वासी एक सेठ उसका अदृष्ट मित्र था। उसने प्रयन्त देश की पैदावार से पाँच सौ गाड़ियाँ भरकर, अपने आदमियों को कहा—"भो ! जाओ ! इस सामान को श्रावस्ती ले जाकर, हमारे मित्र बड़े सेठ अनाथपिण्डिक की उपस्थिति में बेच कर, उसके बदले में सामान ले आओ।"

उन्होंने 'अच्छा' कह, उसकी बात स्वीकार कर, श्रावस्ती जा, बड़े सेठ से मिल, उसे भेंट दे, वह बात कही।

बड़े सेठ ने 'स्वागत है' कह, उनको निवास-स्थान और खर्चा (=सीधा) दिलवा, मित्र का कुशल समाचार पूछ (उस) सामान को बेच उसके बदले में सामान दिलवाया। उन्होंने प्रत्यन्त-देश वापिस लौट, वह हाल अपने सेठ को कहा।

आगे चलकर, अनाथपिण्डिक ने भी, उसी तरह पाँच सौ गाड़ियाँ वहाँ भेजीं। मनुष्य वहाँ जाकर, भेंट दे प्रत्यन्त(-देश)के सेठ से मिले। उसने 'कहाँ से आये?' पूछा।

"श्रावस्ती से, तुम्हारे मित्र अनाथपिण्डिक के पास से।"

'होगा किसी आदमी का नाम अनाथपिण्डिक'—कह, (उसने) उनकी हँसी की। फिर भेंट लेकर, 'तुम जाओ' कहा और चलता किया। न निवास-स्थान ही दिया, न खर्चा। उन्होंने अपने आप सामान बेच उसके बदले में सामान ले, श्रावस्ती आकर, सेठ को सब हाल कह सुनाया।

उस प्रत्यन्त-वासी (सेठ) ने फिर एक बार उसी तरह पाँच सौ गाड़ियाँ श्रावस्ती भेजीं। मनुष्यों ने भेंट लेकर बड़े सेठ से भेंट की। उन्हें देख, अनाथपिण्डिक के घर के आदमी 'स्वामी! इनके निवास, भोजन तथा खर्चे का हम ख्याल रक्खेंगे' कह, उनकी गाड़ियों को नगर के बाहर ऐसे वैसे ही स्थान पर खुलवा कर 'तुम यहीं रहो। तुम्हारा यागु-भात और खर्चा यहीं होगा' कह, जाकर नौकर चाकरों को इकट्ठा कर, आधीरात के समय, पाँच सौ की पाँच सौ गाड़ियाँ लुटवा उनके ओढ़ने बिछवाने भी फाड़, बैलों को भगा, गाड़ियों को बिना पहिये की कर, ज़मीन पर डाल, पहियों तक को लेकर चले गये। प्रत्यन्तवासी, अपने वस्त्रों तक से हाथ धो, डर के मारे जल्दी से भाग कर प्रत्यन्त-देश पहुँचे। सेठ के आदमियों ने, बड़े सेठ को वह हाल कहा। उसने 'यह कहने योग्य बात है' सोच बुद्ध के पास जाकर, वह सब हाल, आरम्भ से सुनाया।

बुद्ध ने 'हे गृहपति! न केवल अभी वह प्रत्यन्त-वासी ऐसा है, वह पहले भी ऐसा ही था' कह पूर्व-जन्म को कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में (राजा) ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व

वाराणसी में महाविभवशाली सेठ हुआ। एक प्रत्यन्त-वासी सेठ उसका अदृष्ट मित्र था।......सारी अतीत-कथा, वर्तमान कथा के सदृश ही। अपने आदमियों द्वारा 'आज हमने ऐसा किया' कहने पर बोधिसत्त्व ने 'जो अपने पर पहले किये उपकार को नहीं याद रखते, उनको पीछे ऐसा ही (फल) मिलता है' कह, सम्प्राप्त मनुष्यों को धर्मोपदेश देते हुए, यह गाथा कही—

यो पुब्बे कतकल्याणो कतत्थो नावबुज्झति,
पच्छा किच्चे समुप्पन्ने कत्तारं नाधिगच्छति॥

[जो कोई उपकृत, पहले किये उपकार को याद नहीं रखता; उसको (फिर) पीछे काम पड़ने पर, (कोई) उपकार करने वाला नहीं मिलता।]

क्षत्रियादि (वर्णों) में **यो** (=जो) कोई आदमी **पुब्बे** (=पहले) प्रथमतर दूसरे से **कतकल्याणो** किये उपकार वाला (=उपकृत) **कतत्थो**, काम समाप्त होने पर, दूसरे का अपने पर किया उपकार और अर्थ न जानता है, वह **पच्छा** अपने **किच्चे समुप्पन्ने** (=काम पड़ने पर) उस काम का **कत्तारं** (=करनेवाला) **नाधिगच्छति** नहीं पाता है।

इस प्रकार बोधिसत्त्व, इस गाथा से धर्मोपदेश दे, दानादि पुण्यकर्म करके, कर्मानुसार (परलोक) गये। बुद्ध ने यह धर्म-देशना ला, जातक का सारांश निकाला। उस समय के प्रत्यन्तवासी ही अब के भी प्रत्यन्त-वासी हैं। लेकिन वाराणसी सेठ मैं ही था।

पहला परिच्छेद

१०. लित्त वर्ग

६१. लित्त जातक

"लित्तं परमेन तेजसा . . ." यह (गाथा) बुद्ध ने जेतवन में विहार करते समय विना सोचे विचारे उपयोग करने के सम्बन्ध में कही।

क. वर्तमान कथा

उस समय भिक्षुओं को, जो चीवर आदि मिलते थे, वे उन्हें प्रायः बिना सोचे विचारे ही उपयोग में लाते थे। (चीवर आदि) चारों प्रत्ययों[1] को बिना सोचे समझे उपयोग में लाने के कारण, वे निरय (=नरक) तिरश्चीन योनियों से मुक्त न होते थे। बुद्ध ने इस बात को जान, भिक्षुओं को अनेक प्रकार से धर्म-कथा कह, विना सोचे विचारे (किसी चीज़) के उपयोग में लाने के दुष्परिणाम दिखा कर कहा—"भिक्षुओ! एक भिक्षु के लिए, चारों प्रत्ययों के मिलने पर, उन्हें विना सोचे समझे उपयोग में लाना अनुचित है। इस लिए अब से, सोच विचार कर, उपयोग में लाया करो।" (यह कह) प्रत्यवेक्षणा (=सोच विचार) की विधि (=क्रम) स्पष्ट करते हुए—

"भिक्षुओ! यहाँ भिक्षु सोच विचार कर चीवर का सेवन (=उपयोग) करता है, शीत के प्रतिघात के लिए. . ."[2] को पाँति (तंति) करके 'भिक्षुओ! चारों प्रत्ययों का सोच विचार कर सेवन करना उचित है। विना सोचे विचारे

---

[1] चीवर (=वस्त्र), २. पिण्डपात (भोजन), ३. शयनासन (ओढ़न-बिछावन), ४. गिलान-प्रत्यय (=भैषज्य आदि)।

[2] इध भिक्खवे भिक्खुप टिसंखा योनिसो . . . . . . (खुद्दक पाठ)।

उपयोग में लाना हलाहल-विष को उपयोग में लाने के सदृश है। पुराने (समय में) आदमियों ने बिना सोचे विचारे उपयोग (=परिभोग) करने के दुष्परिणाम को न जान कर विष खा लिया, और उससे विपाक (=फल) मिलने के समय, महान् दुःख भोगा" कह, पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में, (राजा) ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय, बोधिसत्त्व, एक महान् धनवान् कुल में उत्पन्न होकर, आयु बड़ी होने पर जुआरी हो गये। एक दूसरा कुटिल जुआरी बोधिसत्त्व के साथ खेलते समय, जब उसकी अपनी जीत होने लगती, तब तो धांधली न करता लेकिन जब हार होती दीखती, तो गोटी को मुंह में डाल कर, गोटी खो गई (करके) खेल में धाँधली मचा चल देता।

बोधिसत्त्व ने उसका कारण जान 'अच्छा! इसका उपाय करूँगा' सोच, गोटियाँ ले, उन्हें अपने घर ले जाकर हलाहल विष से रंग, बार बार सुखा कर, उन्हें ले, उसके पास जाकर कहा—"सौम्य! आ जुआ खेलें।"

उसने "सौम्य! अच्छा' कह, क्रीड़ा-मण्डल तैयार कर, उसके साथ खेलते हुए, अपनी हार होती देख एक गोटी मुंह में डाल ली। बोधिसत्त्व ने उसे ऐसा करते देख, "निगल, पीछे पता लगेगा कि यह क्या है?" कह, उसे दोष देने के लिए यह गाथा कही—

लित्तं परमेन तेजसा
गिलमक्खं पुरिसो न बुज्झति,
गिल रे! गिल पापधुत्तक!
पच्छा ते कटुकं भविस्सति॥

[बड़े तेज (विष) से लिपटी हुई गोटी को निगलने वाला, उसे उस समय नहीं जानता। अरे! पापी धूर्त! निगल, निगल! पीछे तू इसका कड़वा फल भोगेगा।]

लित्तं, सानी हुई, रंगी हुई। परमेन तेजसा, उत्तम तेज़ हलाहल विष से। गिलं, निगलते हुए। अक्खं, गोली (=गोटी)। न बुज्झति, नहीं जानता कि यह निगलने से, मेरा क्या करेगी। गिल रे, अरे निगल। गिल, फिर कहता है ज़ोर,

डालने के लिए। पच्छा ते कटुकं भविस्सति, तेरे इस गोटी को निगलने के बाद यह विष तीक्षण होगा।

बोधिसत्त्व के कहते ही कहते, वह विष के जोर से मूर्च्छित हो, आँखें बदल, शरीर को झुका गिर पड़ा।

बोधिसत्त्व 'अब इसे जीवनदान देना चाहिए' (सोच) दवाई मिलाकर, उल्टी की औषधि दे, वमन करा, घी, गुड़, मधु शक्कर आदि खिला, अरोगी कर- 'फिर ऐसा न करना'—यह उपदेश दे, दान आदि पुण्य कर्म कर, अपने (कर्मानुसार) परलोक गये।

बुद्ध ने इस धर्म-देशना को ला "भिक्षुओ! बिना सोचे समझे, (प्रत्ययों का) परिभोग, वैसा ही होता है, जैसे बिना सोचे समझे हलाहल (विष) का परिभोग" कह जातक का सारांश निकाला।

उस समय पण्डित धूर्त मैं ही था। कुटिल धूर्त यहाँ नहीं कहा गया। जैसे यहाँ वैसे ही हर जगह। जो इस समय (=बुद्ध के समय) नहीं है, वह नहीं कहा गया है।

९२. महासार जातक

"उक्कट्ठे सूरमिच्छन्ति. . . ."यह (गाथा) बुद्ध ने जेतवन, में विहार करते समय, आयुष्मान् आनन्द के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

एक समय कोशल-नरेश की स्त्रियों ने सोचा—"(लोक में) बुद्ध का उत्पन्न होना दुर्लभ है। वैसे ही मनुष्य-जन्म का लाभ दुर्लभ है, और फिर सम्पूर्णेन्द्रियों वाला होना और भी दुर्लभ है। हम ऐसा दुर्लभ अवसर पाकर भी, अपनी रुचि के अनुसार न

विहार जाने पाती हैं न धर्म सुनने, न पूजा करने और न दान देने। ऐसे रहती हैं, जैसे सन्दूक में बन्द करके रक्खी गई हों। सो, हम राजा को कहकर, एक ऐसे भिक्षु को बुलवाकर जो हमें धर्मोपदेश देने के योग्य हो, उस से धर्म सुनें। उस से जो (ग्रहण) कर सकेंगी, करेंगी, दान आदि पुण्य-कर्म करेंगी। इस प्रकार हमारा यह सुअवसर सफल होगा।"

उन सब ने राजा के पास जा, अपना विचार कहा। राजा ने 'अच्छा' कह स्वीकार किया।

एक दिन राजा ने उद्यान क्रीड़ा खेलने की इच्छा से माली को बुलाकर कहा—"उद्यान साफ करो।" माली ने उद्यान साफ करते हुए एक वृक्ष के नीचे बुद्ध को बैठे देख, राजा के पास जाकर कहा—"देव! उद्यान साफ है। और एक वृक्ष के नीचे भगवान् बैठे हैं।"

राजा, 'सौम्य! अच्छा, बुद्ध के पास धर्म भी सुनेंगे' (कह) सजे रथ पर चढ़, उद्यान पहुँच बुद्ध के पास गया।

उस समय **छत्रपाणी** नामक एक **अनागामी** उपासक बुद्ध के पास बैठा धर्म सुन रहा था। राजा, उसे देख, कुछ देर संदिग्ध खड़े रह, 'यह बुरा आदमी न होगा, यदि बुरा होता, तो बुद्ध के पास बैठ धर्म न सुनता। सो यह अच्छा ही आदमी होगा' सोच, बुद्ध के पास जा, प्रणाम कर, एक ओर बैठ गया। उपासकने, बुद्ध का अगौरव होने के डर से राजा के आने पर खड़ा होना, वा प्रणाम करना, आदि कुछ नहीं किया। इससे राजा उसके प्रति असन्तुष्ट हुआ।

बुद्ध ने 'राजा असन्तुष्ट हुआ' जान, उपासक की प्रशंसा की—"महाराज! यह उपासक बहुश्रुत है, आगम (=धर्म) का ज्ञाता है, और कामभोगों में वीत-रागी है।"

राजा ने 'यह कोई ऐसा ही नहीं होगा, जिसकी बुद्ध प्रशंसा कर रहे हैं' सोच कर कहा—"उपासक! जिस किसी चीज़ की ज़रूरत हो, कहना।" उपासक ने 'अच्छा' कह, स्वीकार किया। राजा, बुद्ध के पास धर्मोपदेश सुन, बुद्ध की प्रदक्षिणा कर चला गया।

एक दिन प्रासाद के ऊपर खिड़की खोले हुए, खड़े उसने देखा कि प्रातःकाल का भोजन करके, छतरी हाथ में लिये वह उपासक, **जेतवन** जा रहा है। उसने

उसे बुलवा कर कहा—"उपासक ! तू बहु-श्रुत है। हमारी स्त्रियाँ धर्म सुनना और सीखना चाहती हैं। अच्छा हो, यदि तू उनको धर्म सुनावें।"

"देव ! राजा के अन्तःपुर में, गृहस्थों का धर्मोपदेश देना या बाँचना, मुनासिब नहीं; आर्यों (=भिक्षुओ) का ही मुनासिब है।"

राजा ने 'यह सत्य ही कहता है' (सोच), उसे भेज स्त्रियों को बुलवाकर पूछा—"भद्रे ! मैं तुम्हें धर्मोपदेश करने के लिए तथा बाँचने के लिए, बुद्ध के पास जाकर, एक भिक्षु माँगता हूँ। अस्सी महास्थविरों में से किसी भिक्षु को माँगूं ?" उन सब ने सलाह करके धर्म भाण्डागारिक आनन्द स्थविर को ही पसन्द किया।

राजा ने बुद्ध के पास जा, प्रणाम कर, एक ओर बैठ कर, कहा—"भन्ते ! हमारे घर की स्त्रियाँ आनन्द स्थविर से धर्म सुनना और सीखना चाहती हैं। अच्छा, हो, यदि स्थविर हमारे घर में उपदेश दें और बाँचें।"

बुद्ध ने 'अच्छा' कह, स्वीकार कर स्थविर को आज्ञा दी।

उस समय से लेकर राजा की स्त्रियाँ, स्थविर के पास धर्म सुनती और सीखतीं। एक दिन राजा की चूड़ामणि खो गई। राजा ने उसको खोया जान सुन, अमात्यों को बुला कर आज्ञा दी कि अन्तःपुर के सब आदमियों को पकड़ कर, उनसे चूड़ामणि निकलवाओ। अमात्य स्त्रियों से आरम्भ करके, चूड़ामणि खोजते हुए, उसके न मिलने पर, लोगों को तंग करने लगे। उस दिन आनन्द स्थविर राजभवन में गये। जैसे पहले स्त्रियाँ स्थविर को देखते ही हृष्ट-तुष्ट हो धर्म सुनती और सीखती थीं, उस दिन वैसा न कर वे सब दुःखित-चित्त ही रहीं।

स्थविर के 'आज तुम, ऐसी कैसे हो गई ?' पूछने पर, वे बोली—"भन्ते ! राजा की चूड़ामणि खो गई (करके) अमात्य स्त्रियों से लेकर राज-भवन के अन्दर के सभी आदमियों को तंग करते हैं। नहीं जानतीं कि उसका क्या होगा ? सो उसी से हम दुःखी हैं।"

स्थविर ने 'चिन्ता न करो' कह, उन्हें आश्वासन दे, राजा के पास जा, विछे आसन पर बैठ कर पूछा—"महाराज ! क्या तुम्हारी मणि खो गई ?"

"भन्ते ! हाँ।"

"महाराज ! क्या उसे खोजवा सके ?"

"भन्ते ! अन्दर के सभी लोगों को पकड़, कष्ट देकर भी, नहीं खोजवा सका।"

"महाराज बिना लोगों को कष्ट दिये ही, ढूंढ़ निकालने का एक उपाय है।"

"भन्ते ! कौन सा उपाय ?"

"महाराज ! पिण्ड-दान ।"

"भन्ते ! कैसा पिण्ड-दान ?"

"महाराज ! जिन जिन पर सन्देह हो, उन सब को गिन कर, एक एक के हाथ में एक एक पराल (=फूस) का गोला वा मिट्टी का गोला देकर, उन्हें कहा जाना चाहिए कि प्रातःकाल ही इन (गोलों) को लाकर अमुक स्थान पर डालें। जिसने (चूड़ामणि) लिया होगा, वह उस में डाल कर ले आयेगा। यदि पहले दिन ही लाकर डाल दें, तो अच्छा और यदि न डालें तो दूसरे दिन, तीसरे दिन भी वैसा ही किया जाना चाहिए। इस प्रकार लोगों को कष्ट भी न होगा, और मणि भी मिल जायगी।" ऐसा कह कर स्थविर चले गये।

राजा ने (स्थविर के) कथानानुसार तीन दिन डलवाये। (लोग) मणि नहीं लाये। स्थविर ने तीसरे दिन आकर पूछा—"महाराज ! क्या मणि डाल दी ?"

"भन्ते ! नहीं डालते।"

"तो महाराज ! (प्रासाद के) महान तल्ले पर ही, किसी छिपे हुए स्थान में पानी की भरी हुई मटकी रखवा कर, उसके गिर्द क़नात तनवा कर, राजभवन के स्त्री-पुरुषों को कहें कि, वह सब चादर ओढ़ ओढ़ कर एक एक करके क़नात के अन्दर घुस, हाथ धोकर आयें।" यह उपाय बता कर, स्थविर चले गये। राजा ने वैसा ही करवाया।

मणि चुराने वाले ने सोचा—"यह असम्भव है कि धर्म-भाण्डागारिक इस मुक़द्दमे को अपने हाथ में लेकर, बिना मणि निकलवाये रुक रहें। अब मणि डाल देनी चाहिए।" (यह सोच) वह मणि को छिपा कर ले जा क़नात के अन्दर घुस, चाटी में डाल कर निकल आया। सब के (बाहर) निकल आने पर, पानी फेंकने पर, मणि मिल गई।

राजा सन्तुष्ट हुआ कि स्थविर के कारण, बिना लोगों को कष्ट दिये ही मणि मिल गई। (महल) के अन्दर के आदमी भी प्रसन्न हुए कि स्थविर के कारण हम महादुःख से मुक्त हो गये। 'स्थविर के प्रताप से राजा की मणि मिल गई' (करके) स्थविर का प्रताप सारे नगर और भिक्षु-संघ में प्रसिद्ध हो गया। धर्म-सभा में बैठे भिक्षु (आनन्द) स्थविर की प्रशंसा करने लगे—"आवुसो ! आनन्द

स्थविर ने अपने बहु-श्रुतपन से, पाण्डित्य से, उपाय-कुशलता से, बिना लोगों को कष्ट होने दिये, ढंग से ही राजा की मणि खोजवा दी।"

बुद्ध ने आकर पूछा—"भिक्षुओ! इस समय बैठे क्या बातचीत कर रहे हो?" "यह बात-चीत" कहने पर (बुद्ध ने) "भिक्षुओ! न केवल अब आनन्द ही ने दूसरों के हाथ पड़ी हुई चीज़ निकलवाई, पूर्व समय में भी पण्डितों ने बिना लोगों को कष्ट दिये, ढंग (=उपाय) से ही तिरश्चीनों के हाथ में पड़ी हुई चीज़ निकलवाई थी" कह, पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में (राजा) ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय, बोधिसत्त्व सब शिल्पों (=शास्त्रों) में सम्पूर्णता प्राप्त कर, उसी (राजा) के अमात्य हुए। एक दिन राजा ने, अनेक अनुयाइयों के साथ, उद्यान में जा, (वहाँ) जंगल में घूम, जलक्रीड़ा करने की इच्छा से, मङ्गल-पुष्करिणी में उतर, अन्तःपुर की स्त्रियों को भी पुकारा। स्त्रियाँ, अपने अपने सिर के, तथा गले के गहनों को उतार (अपने अपने) ओढ़नों में डाल, (उन्हें) पटियों पर रख, दासियों को सौंप, पुष्करिणी में उतरीं।

उस बाग़ में रहने वाली, शाखा पर बैठी हुई एक बन्दरी देवी को, ज़ेवरों को उतार, चादर में डाल पेटी पर रखते देख, उसके मुक्ताहार को पहनने की इच्छा से बैठकर देखने लगी कि दासी कब गहनों की ओर से लापरवाह होती है। उनकी रखवाली करती हुई दासी इधर उधर देखती हुई, बैठी ही बैठी ऊँघने लगी। बन्दरी उसे लापरवाह देख हवा के वेग से उतर, महामुक्ताहार को (अपनी) गरदन में डाल, हवा की तेज़ी से उछल, एक शाखा पर जा, दूसरी बन्दरियों के देख लेने के डर से, उस (हार) को एक वृक्ष की खोल में छिपा, खुशी खुशी बैठकर, उसकी रखवाली करने लगी।

उस दासी ने भी जाग कर, मुक्ताहार को न देख, काँपते हुए और कोई उपाय न देख ज़ोर से चिल्लाना शुरू किया—"आदमी, देवी का मुक्ताहार ले कर भाग गया।"

पहरेदारों ने जहाँ तहाँ से इकट्ठे हो, उसकी बात सुन, राजा से निवेदन किया।

राजा ने कहा—"चोर को पकड़ो।" आदमी बाग़ से निकल 'चोर को पकड़ो', 'चोर को पकड़ो' करके, इधर उधर देखने लगे।

एक उगाही करने वाले दिहाती आदमी ने, उस शब्द को सुना, तो वह काँपता हुआ भागा। उसे देख, राजकीय आदमियों ने 'यही चोर होगा' सोच, उसका पीछा कर, पकड़, (उसे) पीटा—"अरे! दुष्ट चोर! इस प्रकार का महा-मूल्यवान् गहना (=कण्ठा) लिये जाता है।"

उसने सोचा—"यदि मैंने कहा कि मेरे पास नहीं है, तो आज मेरी जान न बचेगी। (यह लोग) मुझे पीट पीट कर ही मार देंगे। इसे स्वीकार कर लूं।" उसने कहा—"स्वामी! मैंने लिया है।" उसे बाँध कर राजा के पास ले गये। राजा ने भी पूछा—"लिया है तू ने महा-मूल्यवान् कण्ठा?"

"देव! हाँ।"

"अब, वह कहाँ है?"

"देव! मैंने कभी पहले, कोई क़ीमती मिंजा (=पलंग) भी नहीं देखा। सेठ ने मुझे (कहकर) मुझ से, महामूल्यवान् कण्ठे की चोरी कराई है। सो, मैंने वह लेकर उसे दे दिया। (अब) वह जानता है।"

राजा ने सेठ को बुलवा कर पूछा—"तूने इसके हाथ से महामूल्यवान् कण्ठा लिया है?"

"देव! हाँ।"

"वह कहाँ है?"

"मैंने पुरोहित को दे दिया।"

पुरोहित को भी बुलवा कर, वैसे ही पूछा। उसने भी स्वीकार कर कहा—"मैंने गन्धर्व को दिया।" उसे भी बुलवाकर पूछा—"तूने पुरोहित के हाथ से महा-मूल्यवान् कण्ठा लिया?"

"देव! हाँ।"

"वह कहाँ है?"

"मैंने चित्त-विकृति के कारण वर्ण-दासी (=वेश्या) को दे दिया।" उसे भी बुलवा कर पूछा—उसने कहा—"नहीं लिया।" उन पांच जनों को पूछते ही पूछते सूर्यास्त हो गया।

'अब विकाल हो गया, कल देखेंगे' (सोच) उन पांचों जनों को अमात्यों को

दे, राजा नगर को चला गया। बोधिसत्त्व ने सोचा—"यह कण्ठा अन्दर के आदमियों में खोया गया है, और यह गृहपति वाहर का आदमी है। द्वार पर कड़ा पहरा है, इस लिए अन्दर का आदमी भी उसे लेकर भाग नहीं सकता। इस लिए न तो बाहर के आदमी ने लिया है न अन्दर (घर) के। मालूम होता है उद्यान में ही घूमने वाले किसी ने उड़ाया है। इस दरिद्र आदमी ने 'मैंने सेठ को दिया' अपने को बचाने के लिए कह दिया होगा, और सेठ ने भी 'मैंने पुरोहित को दिया', इकट्ठे होकर मुक्त होंगे सोच, कह दिया होगा, और पुरोहित ने भी "मैंने गवैय्ये (=गन्धर्व) को दिया', कारागार में गवैय्ये के कारण सुख से रहेंगे, सोच, कह दिया होगा, और गवैय्ये ने भी 'मैंने वेश्या को दिया' (कारागार में) अनुत्कण्ठित रहेंगे, सोच, कह दिया होगा। यह पाँचों के पाँचों चोर नहीं होंगे। उद्यान में बन्दर बहुत हैं। कण्ठा, एक न एक बन्दरी के हाथ लगा होगा।"

उसने राजा के पास जा कर कहा—"महाराज! चोरों को मेरे जिम्मे करें। मैं चोरी का पता लगाऊँगा" राजा ने अच्छा! 'पण्डित! पता लगा' (कह) उसको चोर सौंपे।

बोधिसत्त्व ने अपने नौकरों (=दासों) को बुलवा कर आज्ञा दी कि उन पाँचो आदमियों को एक जगह रख, उन के चारों ओर पहरा लगा, जो वह एक दूसरे कों कहें, (उसे) कान देकर, (सुन) मेरे पास आकर कहें। यह कह बोधिसत्त्व चले गये। उन आदमियों ने वैसा ही किया।

तव, उन मनुष्यों के इकट्ठे होकर बैठने के समय, सेठ ने उस गृहपति से पूछा—"अरे दुष्ट गृहपति! तू ने मुझे, या मैंने तुझे इस से पहले कहाँ देखा? तू ने मुझे कण्ठा कव दिया?" "स्वामी! मैं महा-मूल्यवान् वृक्ष के पाँवों के मिंजे (=पलंग) तक को नहीं जानता। आप के कारण मैं छूट जाऊँगा। (सोच) मैंने ऐसा कहा। स्वामी! क्रोध न करें।" पुरोहित ने भी सेठ से पूछा—"सेठ जो तुझे इसने नहीं दिया, वह तूने मुझे कैसे दिया?"

"हम दोनों वड़े आदमी हैं; हम दोनों के इकट्ठे होने से काम जल्दी होगा, सोच कहा।" गवैय्ये ने भी पुरोहित से पूछा—"ब्राह्मण! तूने मुझे कण्ठा कब दिया?"

"मैं तेरे कारण, रहने की जगह सुख से रहूँगा, सोच, कह दिया।"

वर्ण-दासी (=वेश्या) ने भी गन्धर्व (=गवैय्ये) से पूछा—"अरे! दुष्ट

गन्धर्व ! मैं कब तेरे पास गई, या कब तू मेरे पास आया ? तूने मुझे कण्ठा कब दिया ?"

"भगिनि ! क्रुद्ध क्यों होती है ?" हमारे पाँचों के इकट्ठे रहने से गृहस्थी हो जायगी, अनुत्कण्ठित हो, सुख से रहेंगे' सोच, कह दिया ।"

बोधिसत्त्व ने अपने नियोजित आदमियों से यह बातचीत सुन, वह आदमी चोर नहीं हैं, यह निश्चय पूर्वक जान 'बन्दरी का लिया हुआ कण्ठा उससे ढंग से गिरवाऊँगा' सोच, लाल रंग की ऊन की बहुत सी कण्ठियाँ बनवा, उद्यान की बन्दरियों को पकड़वा, वे कण्ठियाँ, उनके हाथ, पैर गरदन आदि में पहनवा, उन्हें छोड़ दिया। वह बन्दरी कण्ठे की रखवाली करती हुई, उद्यान में बैठी ही रही ।

बोधिसत्त्व ने आदमियों को आज्ञा दी—"तुम बाग़ में जाकर, सब बन्दरियों की परीक्षा करो । जिस के पास वह कण्ठा देखो, उसे त्रास दिखा कर, उस से वह कण्ठा ले लो।" उन बन्दरियों ने भी, 'हमें कंठियाँ मिलीं' सोच प्रसन्न हो, उद्यान में घूमते घूमते उस बन्दरी के पास जाकर कहा—"देखो ! हमारे जेवर।" वह ईर्षा को सहन न कर सकने के कारण 'इस लाल रंग के धागे के जेवरों से क्या ?' कह, (अपना) मुक्ताहार पहन कर निकली।

उन आदमियों ने उसे देख, उस से कण्ठा छुड़वा, बोधिसत्त्व को लाकर दिया । उसने राजा के पास ले जाकर, दिखा कर कहा—"देव ! यह है तुम्हारा कण्ठा । वह पाँचों आदमी निर्दोष हैं। इसे, उद्यान की बन्दरी ने लिया था ।"

"लेकिन, हे पण्डित ! तूने कैसे जाना कि यह बन्दरी के हाथ लग गया, (और फिर) कैसे तू ने लिया ?"

उसने सब कह सुनाया ।

राजा ने सन्तुष्ट चित्त हो, 'संग्राम-भूमि आदि में शूर वीरों आदि की आवश्यकता पड़ती है' कहते हुए, बोधिसत्त्व की प्रशंसा स्वरूप यह गाथा कही—

उक्कट्ठे सूरमिच्छन्ति मन्तीसु अकुतूहलं,
पियञ्च अन्नपानम्हि अत्थे जाते च पंडितं॥

[संग्राम में शूर (आदमी) मिले, ऐसी इच्छा होती है, सलाह करने में अकुतूहल (= जो बात प्रगट न करे, ऐसा) आदमी मिले, ऐसी इच्छा होती है, खाने पीने की सामग्री रहने पर, प्रिय (=सम्बन्धी) आदमी मिले, ऐसी इच्छा

होती है, और कोई समस्या आ पड़ने पर, पण्डित (=वुद्धिमान) आदमी मिले, ऐसी इच्छा होती है।]

उक्कट्ठे, काम आ पड़ने पर (=उपकट्ठे)दोनों ओर से कट्ठ होने पर, संग्राम में, सम्प्रहार होते रहने पर। **सूरमिच्छन्ति,** माथे पर बिजली गिर पड़ने पर भी न भागने वाले शूर की इच्छा करते हैं, उस समय इस प्रकार के संग्राम योधा की आवश्यकता पड़ती है। **मन्तीसु अकुतूहलं,** कर्तव्याकर्तव्य के आ पड़ने पर, मन्त्रियों में जो अकुतूहल=मुंह न खोलने वाला=बात न प्रगट कर देने वाला हो, उसकी इच्छा करते हैं, वैसे की उस समय पर आवश्यकता पड़ती है। **पियञ्च अन्नपानम्हि,** मधुर खाने पीने की चीज़ पास होने पर, साथ खाने के लिए प्रिय आदमी की इच्छा करते हैं, वैसे ही उस समय आवश्यकता पड़ती है। **अत्थे जाते च पण्डितं,** गम्भीर अर्थ गम्भीर धर्म (=समस्या) किसी भी बात वा प्रश्न के उत्पन्न होने पर पण्डित, विचक्षण (वुद्धिमान्) आदमी की इच्छा करते हैं, वैसे समय पर उसी की आवश्यकता पड़ती है।

इस प्रकार राजा, बोधिसत्त्व की प्रशंसा कर, स्तुति कर, जोर की वर्षा बरसाने वाले बादल की तरह, सात (प्रकार) के रत्नों से पूजा कर, उसके उपदेशानुसार आचरण कर, दान आदि पुण्य कर्म करके, कर्मानुसार (परलोक) गया।

बोधिसत्त्व भी कर्मानुसार गये। शास्ता ने इस धर्म-देशना को ला, स्थविर की प्रशंसा कर, जातक का सारांश निकाला। उस समय, राजा (अब का) आनन्द था। बुद्धिमान् अमात्य तो मैं ही था।

९३. विस्सासभोजन जातक

"न विस्ससे अविस्सत्थे" यह (गाथा) बुद्ध ने जेतवन में विहार करते समय, विश्वस्त-भोजन के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

उस समय भिक्षु प्रायः 'यह हमें माता ने दिया है, यह पिता ने दिया है, यह भाई ने दिया है, यह बहन ने, चाची ने, चाचा ने, मामा ने (तथा) मामी ने दिया है' (करके) रिश्तेदारों के दिये हुए चारों प्रत्ययों में विश्वस्त होने के कारण, उन्हें बिना सोचे विचारे ही उपयोग में लाते थे। शास्ता ने, 'मुझे भिक्षुओं को उपदेश करना उचित है' सोच, भिक्षुओं को एकत्र करवा कहा—"भिक्षुओ! भिक्षु को चाहिए कि वह चारों प्रत्ययों को—चाहे वह रिश्तेदार के दिये हों, चाहे बे-रिश्तेदार के—सोच विचार कर ही उपयोग में लावे। बिना सोचे विचारे उपयोग करने वाला भिक्षु मरने पर यक्षयोनि वा प्रेतयोनि से नहीं छूटता। बिना सोचे विचारे करना, वैसे ही है, जैसा विष परिभोग करना। विष चाहे वह विश्वासी (=रिश्तेदार) ने दिया हो, चाहे अविश्वासी ने, वह मार ही डालता है। पूर्व समय में भी, विश्वस्त का दिया विष खा कर प्राण गँवाया।" यह कह, उनके याचना करने पर पूर्व जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में (राजा) ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय, बोधिसत्व (एक) महाधनवान् सेठ हुए। उनका एक ग्वाला (=गोपालक) घनी खेती के दिनों में गौओं को ले, अरण्य में जा, वहाँ मचान (=गोपल्लिक) बनाकर, गौओं की रखवाली करता हुआ रहने लगा। समय समय पर, वह सेठ के लिए गोरस (=दूध-घी) लाया करता था। उसके मचान से थोड़ी ही दूर पर एक सिंह

आकर रहा करता था। सिंह के त्रास से कुम्हलाने (=डरने) के कारण, गौओं का दूध कम हो गया। उसके एक दिन घी लेकर आने पर, सेठ ने पूछा—"क्यों सौम्य! गोपालक! घी कम (क्यों) है?" उसने कारण कहा। "सौम्य! क्या कोई ऐसा है, जिसपर वह सिंह आसक्त हो ?"

"स्वामी! हाँ! उसका एक हरिणी (=मृगमाता) के साथ संसर्ग है।"

"क्या उसे पकड़ा जा सकता है?"

"हाँ! स्वामी! (पकड़ा) जा सकता है।" "तो उसे पकड़ कर उसके सिर से पैरों तक के वालों को ज़हर से माख (=रंग) कर, उन्हें सुखा कर, दो तीन दिन गुज़ार कर, उस हरिणी को छोड़ देना। वह (सिंह) स्नेह के मारे उसके शरीर को चाटने से मर जायगा। तव उसका चमड़ा नाखून, दाढ़ें और चर्बी, यहाँ लेकर आना।" यह कह, उसे हलाहल विष देकर भेजा। उस ग्वाले ने जाल फेंक कर, ढंग से उस हरिणी को पकड़ कर, वैसा ही किया। सिंह, उसे देखते ही अत्यन्त स्नेह से उसके शरीर को चाट कर मर गया। ग्वाला भी चर्म आदि ले कर, बोधिसत्त्व के पास पहुँचा। वोधिसत्त्व ने उस वृत्तान्त को जान (कहा) दूसरों से स्नेह नहीं करना चाहिए। इस प्रकार का वलवान सिंह मृगराज भी विकार-युक्त चित्त से, संसर्ग करने के लिए मृगमाता का शरीर चाटते हुए विष चाट कर मर गया। यह कह, उपस्थित परिपद् को धर्मोपदेश देते हुए यह गाथा कही—

न विस्ससे अविस्सत्थे विस्सत्थेपि न विस्ससे,
विस्सासा भयमन्वेति सीहंव मिगमातुका॥

[अविश्वास करने योग्य में विश्वास न करे। विश्वास करने योग्य में भी विश्वास न करे। विश्वास करने से भय उत्पन्न होता है जैसे मृगमाता से सिंह को हुआ।]

जो पहले मित्र रहा हो लेकिन अब अविश्वसनीय हो उस **अविस्सत्थे** (=अविश्वसनीय में); और जिस से पहले भी भय नहीं रहा तथा जो अब भी विश्वसनीय है उसका भी विश्वास न करे। किस कारण से? **विस्सासा भयमन्वेति**; मित्र तथा अमित्र किसी में भी विश्वास किया जाए, उस से भय ही पैदा होता है। कैसे?

सीहंव मिगमातुका जैसे मित्रता के कारण मृग-माता का विश्वास करने से सिंह को भय ही उत्पन्न हुआ; अथवा विश्वास के कारण मृगमाता सिंह के पास गई।

इस प्रकार बोधिसत्त्व उपस्थित परिषद् को धर्मोपदेश दे दानादि पुण्य कर कर्मानुसार परलोक सिधारे।

शास्ता ने यह धर्मदेशना सुना जातक का सारांश निकाल दिया। उस समय महासेठ मैं ही था।

९४. लोमहंस जातक

"सो तत्तो सो सीनो[1]..." यह (गाथा) शास्ता ने वैशाली के समीप पाटिकाराम में विहार करते हुए सुनक्षत्र के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

एक समय सुनक्षत्र (नामक) भिक्षु शास्ता का उपस्थापक बन पात्र चीवर ले (शास्ता के साथ साथ) घूमता हुआ कोर-क्षत्रिय के धर्म को पसन्द कर बुद्ध का पात्र चीवर (उन्हें) सौंप कोर-क्षत्रिय के पास रहने लगा। फिर उसके कालकञ्जक असुर-योनि में पैदा होने के समय सुनक्षत्र गृहस्थ होकर वैशाली की तीनों प्राकारों के अन्दर घूमता हुआ शास्ता की यह कह कर निन्दा करता था कि श्रमण गौतम के पास मनुष्योत्तर कोई बात नहीं, विशेष आर्यज्ञान नहीं; श्रमण गौतम तर्क सिद्ध धर्मोपदेश करता है, विचार-सिद्ध तथा आत्मानुभव के आधार पर किन्तु

---

[1] मूल में सोती है, जो कि सिंहल अक्षरों में 'त' और 'न' की समानता के कारण प्रमाद वश आया है प्रतीत होता। देखें मज्झिम निकाय, १२ सूत्र।

जिन दुक्खों के क्षय करने के उद्देश्य से धर्मोपदेश दिया जाता है, धर्मानुसार चलने वाले को वह उन दुक्खों के एकान्त क्षय के उद्देश्य तक ले जाता है।

आयुष्मान् सारिपुत्र ने भिक्षा के लिए घूमते समय उसे उस प्रकार निन्दा करते हुए सुन भिक्षाटन से लौट कर भगवान् से निवेदन किया। भगवान् ने कहा—"सारिपुत्र! क्रोधी मूर्ख सुनक्षत्र ने क्रोध के मारे ऐसा कहा है। क्रोध के वशीभूत हो कर वह 'धर्मानुसार चलने वाले को दुक्ख क्षय तक ले जाता है' कहते हुए भी वह अनजाने में मेरी प्रशंसा ही करता है। वह मूर्ख मेरे गुणों को नहीं जानता। सारिपुत्र! मुझे छः अभिज्ञा प्राप्त हैं। यह भी मनुष्योत्तर धर्म है—दस बल हैं। चार वेशारद्य-ज्ञान हैं। चार प्रकार का योनि-परिच्छेदक ज्ञान है। पाँच प्रकार का गति-परिच्छेदक ज्ञान है। यह भी मेरा मनुष्योत्तर धर्म है। इस प्रकार मनुष्योत्तर-धर्मों से युक्त मुझे यदि कोई यूं कहे कि श्रमण गौतम मनुष्योत्तर-धर्म प्राप्त नहीं हैं, तो वह यदि उस कथन को न छोड़ दे, उस विचार को न छोड़ दे, उस मत को न छोड़ दे, तो वह ऐसा ही होगा जैसे नरक में उठा लाकर डाल दिया हो। इस प्रकार अपने में विद्यमान मनुष्योत्तर-धर्म की प्रशंसा करते हुए कहा—"सारिपुत्र! **सुनक्षत्र कोर** क्षत्रिय की दुष्कर क्रिया तथा मिथ्या-तप से प्रसन्न हो उसकी ओर आकृष्ट हुआ है। मिथ्या-तप से प्रसन्न होने वाले को, मिथ्या तप से आकृष्ट होने वाले को भी मेरी ही ओर आकृष्ट होना चाहिए। क्योंकि अब से इकानवे कल्प पहले 'इसमें कुछ सार है वा नहीं?" देखने की इच्छा से मैंने बाहरी मिथ्यातपों की परीक्षा करते हुए चारों अङ्गों से युक्त ब्रह्मचर्य-वास किया। उस समय मैं तपस्वियों में परम तपस्वी, रुक्ष जीवन व्यतीत करने वालों में परम् रूखा जीवन व्यतीत करने वाला, जिगुप्सा करने वालों में परम् घृणावान् तथा एकान्त-वासियों में परम् एकान्त सेवी था[1]। सारिपुत्र स्थविर के प्रार्थना करने पर बुद्ध ने पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

"इकानवे कल्प पूर्व बोधिसत्त्व 'बाहरी तप की परीक्षा करूँगा' सोच आजीविकों की प्रव्रज्या के अनुसार प्रव्रजित होकर निर्वस्त्र रहा, धूल लपेटे रहा। एकान्त प्रिय रहा, एकान्त-वासी—आदमियों को देख कर मृग की तरह भाग जाता।

---

[1] महासिंहनाद सुत्त (मज्झिम निकाय)।

महाविकट भोजन खाने वाला हुआ। बछड़े का गोवर आदि खाया। अप्रमाद-युक्त विहार करने के लिए जंगल में, एक भयानक वन-खंड में रहा। वहाँ रहते हुए, हिम गिरने के समय बीच के आठ दिनों में रात को वन-खंड़ से निकल खुले आकाश के नीचे विचर सूर्य्य के उदय होने पर वनखंड़ में प्रवेश करता था। जिस प्रकार रात को खुले आकाश के नीचे ओस से भीगता था, उसी प्रकार दिन में वन-खंड से पिघल कर गिरती हुई बून्दों से भीगता था। इस प्रकार रात दिन सर्दी का दुःख सहता। लेकिन गर्मी के अन्तिम महीने में दिन में खुले में घूमकर रात को वन-खंड में दाखिल होता। जिस प्रकार दिन में खुले में धूप में जलता, उसी तरह रात को वायु रहित वनखंड में जलता। शरीर से पसीने की धार बहती। तब यह अश्रुत-पूर्व गाथा सूझी—

सोतत्तो सोसीनो एको भिसनके वने।
नग्गो न चग्गीमासीनो एसनापसुतो मुनि॥

[वह तप्ता था। वह अत्यन्त भीगा था। वह भयानक वन में रहता था। वह नग्न रहता था (और) वह आग के पास नहीं बैठता था। इस प्रकार मुनि (सत्य की) खोज में लगा हुआ था।]

सोतत्तो, सूर्य्य ताप से सुप्त। **सोसीनो**, ओस के पानी से भीगा, अच्छी प्रकार भीगा हुआ। **एको भिसनके वने**, जहाँ प्रवेश करने पर प्रायः लोगों के रोम खड़े हो जाते हैं, उस प्रकार के भयानक वन में अकेला अद्वितीय ही प्रविष्ट हुआ। **नग्गो नचग्गिमासीनो**, उस प्रकार शीत से पीड़ित होते हुए भी न ओढ़ने बिछाने का वस्त्र लिया और न आग के ही पास बैठा। **एसनापसुत्तो**, उस अब्रह्मचर्य्य को भी ब्रह्मचर्य्य मान यही श्रेष्ठ-जीवन है, यही खोज है, यही गवेषणा है, यही ब्रह्मलोक का मार्ग है—इस प्रकार ब्रह्मचर्य्य की खोज में लगा था। **मुनि**, यह मुनि मौन का प्रयत्न कर रहा है, इस लिए लोगों द्वारा आदृत हुआ।

इस प्रकार चार अंगों से युक्त ब्रह्मचर्य्य का आचरण करके बोधिसत्व मरने के समय नरक का दृश्य दिखाई देने पर 'यह व्रत धारण निरर्थक है' जान उसी क्षण उस मत को छोड़ सम्यक् दृष्टि ग्रहण कर देव-लोक में उत्पन्न हुआ।

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला जातक का सारांश निकाल दिया। मैं ही उस समय वह आजीवक था।

९५. महासुदस्सन जातक

"अनिच्चा वत सङ्खारा..." यह (गाथा) शास्ता ने परिवनिर्वाण शय्या पर लेटे समय आनन्द स्थविर के "भन्ते! भगवान् इस छोटे से नगर में परिनिर्वाण को प्राप्त न हों" इत्यादि वचनों के सम्वन्ध में कही।

क. वर्तमान कथा

तथागत के **जेतवन** में विहार करने के समय **सारिपुत्र** स्थविर **कार्तिक** मास की **पूर्णिमा** के दिन **नालक ग्राम** में उत्पन्न होने के कोठे में ही परिनिर्वाण को प्राप्त हुए। **महामौद्गल्यायन** भी **कार्तिक** महीने में ही **कृष्ण पक्ष** की **अमावस्या** को। इस प्रकार दोनों प्रधान शिष्यों को परिवनिर्वाण प्राप्त होने पर 'मैं भी **कुसीनगर** में परिनिर्वाण प्राप्त होऊँगा' (सोच) भगवान् क्रम से चारिका करते हुए वहाँ (**कुसीनगर**) पहुँच जोड़े शाल वृक्षों के वीच उत्तर-दिशा की ओर बिछी शय्या पर फिर न उठने का संकल्प करके लेटे।

आयुष्मान आनन्द स्थविर ने कहा—"भन्ते! भगवान् इस क्षुद्र नगर में, इस विसम नगर में, इस जंगली नगर में, इस शाखा नगर में निर्वाण को प्राप्त न होवें। भगवान् दूसरे **चम्पा राजगृह**[1] आदि वड़े नगरों में से किसी एक नगर में परिनिर्वाण प्राप्त करें।"

भगवान् वोले—"**आनन्द**! इसे क्षुद्र-नगर, जंगली-नगर, शाखा-नगर मत कहो। मैं पहले **सुदर्शन** चक्रवर्त्ती राजा होने के समय इसी नगर में रहा हूँ। उस

---

[1] **चम्पा, राजगृह, श्रावस्ती, साकेत, कौशाम्बी, बाराणसी (महा परिनिर्वाण सुत्त, दीर्घनिकाय)।**

समय यह वारह योजन की रत्नों से सुसज्जित चार दीवारी से घिरा हुआ महानगर था।" यह कह स्थविर के याचना करने पर पूर्व-जन्म की कथा कहते हुए महासुदर्शन[1] सूक्त कहा।

ख. अतीत कथा

उस समय महासुदस्सन नाम का राजा सुधर्म प्रसाद से उतर कर नजदीक सात रत्नों से युक्त ताड़वन में विछी योग्य शय्या पर दाहिनी करवट से लेटा था। उसे फिर न उठने के संकल्प से लेटा देख सुभद्रा देवी ने कहा—"देव! यह तेरे चौरासी हजार नगर हैं, जिन में कुशावती; राजधानी प्रमुख है। इन को प्रेम करो।" महासुदर्शन ने उत्तर दिया—देवि! यह मत कहो! मुझे ऐसा उपदेश दो कि इन में प्रेम मत करो, इनकी अपेक्षा मत करो।" देवी ने पूछा "क्यों?" "आज मेरा मृत्यु-दिवस है।"

वह देवी रोती हुई, आँखें पोंछती हुई वड़ी कठिनाई से वैसे कह कर रोने पीटने लगी। बाकी चौरासी हजार स्त्रियाँ भी रोने पीटने लगीं। अमात्य आदि में कोई एक भी न सहन कर सका। सभी रोने लगे।

बोधिसत्व ने रोका—"भणे! शब्द मत करो।" फिर देवी को सम्बोधन कर कहा—"देवी! तू मत रो! तू मत पीट। तिल के फल जितना भी संस्कार नित्य नहीं है। सभी संस्कार अनित्य हैं। सभी संस्कार नाश होने वाले हैं।" इस प्रकार देवी को उपदेश देते हुए यह गाथा कही—

अनिच्चा वत संखारा उप्पादवयधम्मिनो,
उप्पज्जित्वा निरुज्झन्ति तेसं वूपसमो सुखो॥

[संस्कार अनित्य हैं। उत्पन्न होना, निरोध होना उनका धर्म है। वे उत्पन्न हो कर निरोध को प्राप्त होते हैं। उनका उपशमन सुख है।]

अनिच्चा वत संखारा, भद्रे! सुभद्रा देवी! जितने भी किन्हीं भी प्रत्ययों से बने हुए स्कन्ध आयतन आदि संस्कार हैं, वे सब अनित्य ही हैं। इन में रूप अनित्य

---

[1] महासुदस्सन (दीर्घ निकाय १७)।

है, (चक्षु-) विज्ञान अनित्य है, चक्षु अनित्य है, सब (धर्म=अस्तित्व) अनित्य हैं। जितने भी सविज्ञाण, अविज्ञाण रत्न हैं, वह सब अनित्य हैं। इस लिए 'सभी संस्कार अनित्य हैं', यही ग्रहण कर। क्यों **उप्पादवयधम्मिनो,** सभी उत्पन्न होने वाले हैं, सभी वय (खर्च) होने वाले हैं, सभी बनने वाले हैं, सभी बिगड़ने वाले हैं, इस लिए (वे) अनित्य हैं, यही जाना चाहिए। क्योंकि अनित्य हैं इसलिए **'उप्पज्जित्वा रनरुज्झन्ति'** उत्पन्न होकर, स्थिति को प्राप्त होकर भी निरोध को प्राप्त होते हैं। यह सभी बनने पर उत्पन्न हुए कहलाते हैं, टूटने पर निरुद्ध हुए कहलाते हैं। उनके उत्पन्न होने पर 'स्थिति' होती है, 'स्थिति' होने पर 'भङ्ग' होता है; जो उत्पन्न न हो उसकी 'स्थिति' नहीं, जिसकी 'स्थिति' है उसका भंग न हो ऐसा नहीं। इस प्रकार सभी संस्कार तीन लक्षणों वाले (उत्पत्ति, स्थिति, भङ्ग) होकर निरोध को प्राप्त होते हैं। इसलिए यह सभी अनित्य हैं, क्षणिक हैं, परिवर्तनशील हैं, अध्रुव हैं, भङ्ग होने वाले हैं, अस्थिर हैं, कंपनशील हैं. . .कुछ देर के लिए हैं निस्सार हैं, 'कुछ ही देर के लिए' इस अर्थ में माया के समान हैं, मरीचि के समान हैं, फेण के समान हैं। भद्रे! सुभद्रा देवी। इनको तू क्यों 'सुख' समझती है। इस प्रकार सीख कि **तेसं वूपसमो सुखो,** सब संसार चक्र का उपशमन होने से सब के उपशमन का अर्थ है निर्वाण। वही असल में केवल एक सुख है। और सुख नहीं।

सो **महासुदर्षन** अमृत-महा-निर्वाण सम्बन्धी उत्कृष्ट देशना कर बाकी जन-समूह को भी 'दान दो सदाचारी बनो, उपोसथ (=व्रत) करो' उपदेश दे देवलोक गया।

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला जातक का सारांश निकाल दिया।

उस समय की **सुभद्रादेवी** अब **राहुलमाता** हुई। **प्रधान अमात्य** राहुल था। शेष परिषद् बुद्ध-परिषद्। लेकिन **महासुदस्सन** मैं ही था।

९६. तेलपत्त जातक

"समितित्तकं अनवसेसकं. . ." यह (गाथा) शास्ता ने सुम्भ राष्ट्र में सेतक नामक निगम के पास एक वन-खण्ड में विचरते हुए जनपदकल्याणी सूत्र के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

उस सूत्र में भगवान् ने "भिक्षुओ! जैसे जनपद-कल्याणि, जनपद-कल्याणि नाम सुनकर जन-समूह इकट्ठा हो। वह जन-पदकल्याणि नाचने गाने में बहुत दक्ष हो। 'जन-पद कल्याणि नाचती हैं, जनपदकल्याणि गाती हैं' सुनकर और भी प्रसन्न होकर जन-समूह उमड़ आये। तब एक पुरुष आए, जो जीना चाहता हो, मरना न चाहता हो, सुख चाहता हो, दुःख न चाहता हो। उस आदमी को ऐसे कहें—'हे पुरुष! यह तेल का लबालब भरा हुआ पात्र है। इसे जनसमूह और जनपदकल्याणि के बीच से होकर ले चलो। तुम्हारे पीछे पीछे एक आदमी तलवार उठाए चलेगा। जहां जरा सा भी तेल गिरेगा, वहीं तेरा सिर काट डालेंगे।' 'तो भिक्षुओ! क्या समझते हो, वह आदमी उस तेल के पात्र को, लापरवाही से, प्रमाद-पूर्वक ले चलेगा?'

'नहीं भन्ते!'

'भिक्षुओ! यह मैंने अर्थ समझाने के लिए उपमा दी है। भावार्थ यह है। तेल से लबालब भरा हुआ पात्र, भिक्षुओ, कायानुस्मृति का दूसरा नाम है। इस लिए भिक्षुओ! यही सीखना चाहिए कि हमारी कायानुस्मृति की भावना अच्छी प्रकार बढ़ेगी।' इस प्रकार शास्ता ने जनपदकल्याणि सूत्र[1] की उसके शब्दों तथा अर्थों के साथ व्याख्या की।

---

[1] सतिपट्ठान संयुत्त (संयुत्त निकाय)।

जनपदकल्याणि का मतलब है जनपद भर में कल्याणि—उत्तम—छ: शरीर-दोषों से मुक्त और पाँच उत्तम-बातों से युक्त। वह न अधिक लम्बी, न अधिक छोटी, न अधिक पतली न अधिक मोटी, न अधिक काली, न अत्यधिक सफेद—मानुषी वर्णों से बढ़ कर लेकिन दैवी वर्ण तक नहीं पहुँची हुई। इस लिए छ: शरीर दोषों से मुक्त। उत्तम-चमड़ी, उत्तम-मांस, उत्तम नसें, उत्तम हड्डियाँ तथा उत्तम आयु (तरुण) इन पाँच उत्तम बातों से युक्त होने के काँरण पाँच उत्तम बातों से युक्त कही गई। उसे बाहरी चमक की जरूरत न थी। अपने शरीर की चमक से ही बारह हाथ की जगह को प्रकाशित करती थी। वह पियंगु-रंग की वा सोने के रंग की थी। यह उसकी चमड़ी की उत्तमता रही। उसके हाथ-पैर तथा मुंह लाख से चित्रित की तरह वा लाल मूंगे या लाल कम्बल की तरह थे। यह उसके मांस की उत्तमता रही। बीसो नाखूनों तक पहुँची हुई, मांस के साथ जहाँ जहाँ लगी हुई वहाँ वहाँ लाख के रस से भरी हुई सी, जहाँ जहाँ मांस से मुक्त वहाँ वहाँ दूध की धार के समान उसकी नसें थीं : यह उसकी नसों की उत्तमता रही। बत्तीस दाँत चिकनी सफेद व= पंक्ति की तरह चमकते थे। यह उसकी हड्डियों की उत्तमता रही। बीस वर्ष की होने पर भी सोलह वर्ष की सी ही प्रतीत होती थी। यह उसकी आयु की उत्तमता रही। **परमपासाविनि**—पसवनं=पसव=ढंग। जिसका परम (=उत्तम) ढंग है सो परमपासाविनि। नृत्य गीत में उत्तम ढंग अर्थात् उसका नाच, उसका गाना श्रेष्ठ ही था। **अथ पुरिसो आगच्छेय्य**—अपनी मरजी से नहीं आए। इस का मतलब है कि जनता के बीच में जनपदकल्याणि के नाचते हुए लोगों के 'साधु साधु'[1] कह कर चिल्लाने, अंगुलियाँ चटखाने, चोलियाँ उछालने का समाचार सुनकर राजा ने जेलखाने से एक आदमी को मँगवाया। उसकी बेड़ियाँ कटवा, तेल से लबालब भरा पात्र उसके हाथ में दे, एक आदमी को जिसके हाथ में तलवार थी आज्ञा दी 'इसे जहाँ **जनपदकल्याणि** का नाच हो रहा है वहाँ ले जाओ। यदि लापरवाही के कारण यह एक बूंद तेल भी गिरा दे, तो वहीं इसका सिर काट दो।' वह आदमी तलवार उठाकर उसको धमकाता हुआ वहाँ ले गया। उसने मरने के भय से भयभीत हो जीवित रहने की इच्छा के कारण, असावधानी से उसे भूल, एक बार भी आँख खोल कर **जनपदकल्याणि** को नहीं देखा। इस प्रकार यह

---

[1] वाह, वाह या हुर्रा-हुर्रा की तरह प्रसन्नता सूचक घोष।

भूतपूर्व कथा है। सूत्र में तो यह संक्षेप में आई है। **उपमा खो म्यायं,** यहाँ तेलपात्र की कायानुस्मृति से उपमा दी ही गई है। उसमें राजा को कर्म की तरह समझना चाहिए। तलवार की तरह चित्त की कलुपता। तलवार उठाए आदमी की तरह मार। तेल पात्र हाथ में लिए हुए आदमी की तरह कायानुस्मृति की भावना करने वाला विदर्शना-भावना में रत योगाभ्यासी।

सो इस प्रकार यह सूत्र लाकर भगवान् ने कायानुस्मृति, की भावना करने वाले मनुष्य के लिए हाथ में तेलपात्र लिए रहने वाले आदमी की तरह सावधान रह कर कायानुस्मृति, की भावना करने की आवश्यकता वताई। भिक्षुओं ने इस सूत्र और उसके अर्थ को सुनकर यूं कहा—"भन्ते' उस आदमी ने वहुत वड़ी वात की जो विना उस तरह की जनपदकल्याणि, को देखे तेलपात्र को लेकर चला गया।"

"भिक्षुओ, उस आदमी ने वहुत कठिन काम नहीं किया, यह तो आसान ही था। क्यों? क्योंकि उसे तलवार उठाए एक आदमी धमकाता हुआ ले जा रहा था। लेकिन पूर्व समय में पण्डित लोगों ने अप्रमाद से स्मृति को न भूल कर, वनाए हुए दिव्यरूप को भी इन्द्रियों को चंचल करके विना देखे जाकर राज्य प्राप्त किए। यह कठिन कार्य्य था" यह पूर्व समय की वात कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में राजा ब्रह्मदत्त के राज्य करते समय वोधिसत्त्व उस राजा के सौ पुत्रों में सब से छोटे होकर पैदा हुए। क्रम से वढ़ते वढ़ते वालिग हो गए। उस समय राजा के घर में प्रत्येक-बुद्ध भोजन किया करते थे। वोधिसत्त्व उनकी सेवा में रहते। एक दिन वोधिसत्त्व ने सोचा—"मेरे भाई वहुत हैं। मुझे इस नगर में अपने कुल का राज्य मिलेगा वा नहीं?" फिर उसे विचार हुआ कि यह वात प्रत्येक बुद्धों से पूछ कर जानूंगा।

दूसरे दिन प्रत्येक बुद्धों के आने पर उसने धम्मंकरक[1] ले, पानी छान, पाँव धो, तेल लगा, उनके भोजन कर चुकने पर, प्रणाम कर एक ओर वैठ वह वात पूछी।

---

[1] पानी छानने का वर्तन।

उन्होंने कहा—"कुमार! तुझे इस नगर में राज्य नहीं मिलेगा। लेकिन यहाँ से एक सौ वीस योजन की दूरी पर **गन्धार**, राष्ट्र में तक्कसिला (=तक्षशिला) नाम का नगर है। वहाँ जा सकने पर आज से सातवें दिन राज्य प्राप्त करेगा। लेकिन रास्ते में वड़े भारी जंगल में से जाने में खतरा है। उस जंगल को छोड़कर जाने से सौ योजन चलना होगा, सीधे (जंगल में से) जाने से पचास योजन। वह जंगल अमनुष्य-कान्तार है। उसमें रास्ते में यक्षिणियाँ ग्राम और शालायें बनाकर, ऊपर सुनहरे तारों से सजे हुए मँडुवे, उनके नीचे कीमती पलंग बिछवा, नाना प्रकार की रेशमी कनातें लगवा, अपने आप को दिव्य अलंकारों से सजाकर रहती हैं। जाते हुए आदमी को देखकर वह उसे मधुर वाणी से आमन्त्रित करती हैं "आप थके हुए मालूम देते हैं। यहाँ आकर, थोड़ा विश्राम करके, पानी पीकर जाएँ।" आदमी के आने पर, उसे आसन दे, अपने हास-विलास से मुग्धकर, अपने साथ रमण करने पर वहीं उसे खून निचुड़ते हुए खाकर मार डालती हैं। जिसका रूप के प्रति आकर्षण होता है, उसे रूप के द्वारा ग्रहण करती हैं। जिसका शब्द के प्रति आकर्षण होता है, उसे मधुर गाने वजाने के शब्द से, जिसका गन्ध के प्रति उसे दिव्य गन्धों से, जिसका रस के प्रति उसे नाना प्रकार के स्वादिष्ट भोजनों द्वारा और जिसका स्पर्श के प्रति आकर्पण होता है उसे दोनों ओर लाल रंग के तकियों वाले दिव्य-शयनासनों से ग्रहण करती हैं। यदि इन्द्रियों को विना चंचल किए, उनकी ओर विना ध्यान दिए, स्मृति को सावधान रख जाएगा, तो सातवें दिन राज्य लाभ करेगा।"

वोधिसत्त्व ने कहा—"भन्ते! वे रहें! अव मैं आपका उपदेश ग्रहण करके क्या उनकी ओर देखूंगा?" फिर प्रत्येक-वुद्धों से **परित्रण-धर्मदेशना**,[1] कहलवा परित्त की वालू, परित्त का पानी, तथा परित्त-सूत्र लेकर प्रत्येक बुद्धों तथा माता पिता को प्रणाम कर घर में जाकर अपने आदमियों को कहा—"मैं तक्षशिला में राज्य पाने जा रहा हूँ। तुम यहीं रहो।"

उसके आदमियों में से पाँच ने कहा—"हम भी जाएंगे।"

"तुम नहीं चल सकोगे। रास्ते में यक्षिणियाँ रूप आदि से आर्काषित होने वाले आदमियों को इस प्रकार रूपादि का लोभ दिखा फँसा लेती हैं। बड़ा खतरा है। मैं तो अपने वल को देख कर जा रहा हूँ।"

---

[1] कुछ विशेष सूत्रों का पाठ, जो आपत्ति में रक्षक होता है।

"देव ! क्या तुम्हारे साथ जाते हुए हमें जो रूप अच्छे लगेंगे हम उधर देखेंगे। हम भी आप की तरह ही चलेंगे।"

"तो अप्रमादी होकर रहना" कह बोधिसत्त्व उन पाँच आदमियों को ले रास्ते पर चल पड़े।

यक्षिणियाँ ग्राम आदि बनाकर बैठी थीं। उनमें जो रूप के प्रति आकर्षित होने वाला आदमी था, वह उन यक्षिणियों को देख उनके रूप पर मुग्ध हो थोड़ा रुका।

बोधिसत्त्व ने पूछा—"भो ! क्यों ? थोड़ा रुक क्यों गए हो ?"

"देव ! मेरे पाँव दरद करते हैं। थोड़ी देर शाला में बैठ कर आता हूँ।"

"भो ! यह यक्षिणियाँ हैं। इनकी इच्छा मत करो।"

"जो होना है सो हो, देव ! मैं तो अब चल नहीं सकता हूँ।"

"अच्छा तो पता लगेगा" कह बोधिसत्त्व बाकी चारों को लेकर चल दिए।

रूप पर आकर्षित हुआ वह आदमी उनके पास गया। यक्षिणियों ने उसे अपने साथ रमण करने पर उसी तरह मार कर आगे जाकर दूसरी शाला बनाई।

उस शाला में वह नाना प्रकार के बाजों को लेकर गाती हुई बैठीं। वहाँ शब्द के प्रति आकर्षित होने वाला रुका। उसे भी खाकर आगे जाकर नाना प्रकारके सुगन्धि से पूर्ण भाजनों की दूकान लगा कर बैठीं। वहाँ सुगन्धि के प्रति आकर्षित होने वाला रुका। उसे भी खाकर आगे जा नाना प्रकार के स्वादिष्ट भोजनों से बर्त्तनों को भर भोजन की दूकान लगाकर बैठीं। वहाँ रस के प्रति आकर्षित होने वाला रुका। उसे भी खाकर आगे जा दिव्य पलंग पिछा कर बैठीं। वहाँ स्पर्श के प्रति आकर्षित होने वाला रुका। उसे भी खा गईं। बोधिसत्त्व अकेले रह गये।

तब एक यक्षिणी ने सोचा—'यह बड़ा करारा आदमी है। मैं इसे खाकर ही लौटूँगी।" यह बोधिसत्त्व के पीछे पीछे चली।

जंगल के अगले हिस्से में, जंगल में काम करने वाले आदमियों ने यक्षिणी को देख कर पूछा "यह तेरे आगे आगे जाने वाला तेरा क्या लगता है ?"

"आर्य ! यह मेरे प्रिय हैं।"

लोगों ने बोधिसत्त्व से कहा—"भो ! यह सुकुमार, फूलों की माला सदृश, सुन्दर बालिका अपने घर को छोड़कर तुम्हारा ही आश्रय देख निकली। इसे बिना [illegible] साथ लेकर क्यों नहीं जाते ?"

"आर्य्यो ! यह मेरी भार्य्या नहीं है। यह यक्षिणी है। यह मेरे पाँच आदमियों को खा गई।"

"आर्य्यो ! जब पुरुष क्रुद्ध होते हैं, तो अपनी भार्य्या को यक्षिणी भी बनाते हैं, प्रेतिनी भी बनाते हैं।"

उसने चलते चलते गर्भिणी की शकल बना और फिर पुत्र की माँ होने का सा रंग-ढंग कर गोद में पुत्र को लिए लिए बोधिसत्त्व का अनुगमन किया। जो देखता वही पहले की तरह से पूछता। बोधिसत्त्व भी उसी तरह उत्तर देते हुए तक्षशिला पहुँचे।

वह यक्षिणी पुत्र को अन्तर्ध्यान कर अकेली ही पीछे पीछे चली।

बोधिसत्त्व नगर-द्वार में प्रवेश कर एक शाला में बैठे। वह बोधिसत्त्व के तेज के कारण प्रविष्ट न हो सकी और दिव्य रूप बना शाला के द्वार पर ठहरी।

उस समय तक्षशिला से निकलकर उद्यान जाते हुए राजा ने उसे देख, उस पर अनुरक्त हो एक आदमी को भेजा कि देखे कि उसका कोई स्वामी है वा नहीं ? उसने पास जाकर पूछा—"तेरा कोई स्वामी है?"

"हाँ, आर्य ! यह शाला में बैठे हुए मेरे स्वामी हैं।"

बोधिसत्त्व ने कहा, "यह मेरी भार्य्या नहीं है। यह यक्षिणी है। यह मेरे पाँच आदमियों को खा गई।" उसने कहा—"पुरुष जब क्रुद्ध हो जाते हैं, तब जो चाहते हैं बोलते हैं।"

राज-पुरुष ने दोनों की बात राजा से निवेदन की। राजा ने 'जिसका कोई स्वामी नहीं, वह वस्तु राजा की होती है' कह यक्षिणी को बुलवा उसे एक हाथी की पीठ पर चढ़वा, नगर की प्रदशिक्षा कर, महल में जा पटरानी बनाया।

शाम को स्नान और सुगन्धित लेपों के अनन्तर भोजन कर राजा सुन्दर पलंग पर लेटा। वह यक्षिणी भी अपने अनुकूल आहार खा, सज कर राजा के साथ पलंग पर लेटी। लेकिन राजा जब रति-सुख अनुभव करने लगा, तो वह एक तरफ पलट कर रोने लगी।

राजा ने पूछा—"भद्रे रोती क्यों है ?"

"देव ! तुम मुझे रास्ते में देखकर ले आए। तुम्हारे घर में बहुत स्त्रियाँ हैं। वे सपत्नीक स्त्रियाँ जब बात चलने पर मुझे कहेंगी 'तेरे माता, तेरे पिता, तेरे गोत्र, वा तेरी जाति को कौन जानता है ? तू तो रास्ते में देखकर ले आई गई है'

मैं सीस पकड़ कर दवा दी गई की तरह शर्मिंदा हो जाऊँगी। यदि तुम मुझे सारे राष्ट्र का ऐश्वर्य और हुकूमत दे दो, तो कोई मेरे चित्त को दुखी करके ऐसी बात न कह सकेगा।"

"भद्रे! सारे राष्ट्र के निवासियों पर मेरा कुछ अधिकार नहीं। मैं उनका स्वामी नहीं। हाँ, जो राजाज्ञा के विरुद्ध, नहीं करना चाहिए ऐसा कोई काम करते हैं, उन्हीं का मैं स्वामी हूँ। इसलिए मैं तुझे सारे राष्ट्र का ऐश्वर्य और हुकूमत नहीं दे सकता।"

"अच्छा देव! यदि राष्ट्र वा नगर का शासन मुझे नहीं सौंप सकते, तो जो घर के अन्दर के लोग हैं, घर के अन्दर रहने वाले हैं वे लोग मेरी हुकूमत में रहें, ऐसी आज्ञा दें।"

उसके दिव्य स्पर्श-सुख में बँधे हुए राजा की सामर्थ्य नहीं हुई कि अस्वीकार कर सके। उसने कहा—"भद्रे! अच्छा! मैं घर के अन्दर रहने वालों को तेरे अधीन करता हूँ। तू उनपर हुकूमत कर।"

वह "अच्छा" कह राजा के सो जाने पर यक्ष-नगर गई। वहाँ से यक्षों को बुला लाई। अपने राजा को मार कर हड्डी मात्र बाकी छोड़ सब नसें, चमड़ा, मांस तथा रक्त खा गई। बाकी यक्षों ने प्रधान द्वार के अन्दर जितने भी थे—मुर्गे और कुत्ते तक—सब को खाकर हड्डियाँ ही हड्डियाँ बाकी छोड़ीं।

अगले दिन लोगों ने दरवाजों को बन्द देख कुल्हाड़ियों से दरवाजों को तोड़, अन्दर घुस कर सारे घर को हड्डियों से भरा हुआ पाकर कहा—"वह आदमी ठीक ही कहता था यह मेरी भार्य्या नहीं है। यह यक्षिणी है। राजा ने बिना कुछ जाने ही उसे घर में ला अपनी भार्य्या बना लिया। वह यक्षों को बुलाकर सबको खाकर चली गई होगी।"

बोधिसत्व ने उस दिन उस शाला में परित्त-बालुका सिर पर रख परित्त-सूत्र से अपने आपको घेर, खड्ग लिए खड़े ही खड़े सूर्य उगा दिया।

आदमियों ने सारे राज-महल को शुद्ध कर, गोबर से लीप और उसके ऊपर सुगन्धित लेप कर फूल बिखेर, पुष्पमालाएँ टाँग नई मालाएँ बाँध सलाह की—"भो! जिस आदमी ने दिव्य रूप धारण करके पीछे पीछे आती हुई यक्षिणी को इन्द्रियों पर संयम कर देखा तक नहीं, वह बहुत ही महान् धृतिमान् तथा ज्ञानवान्

प्राणी है। उस तरह के आदमी के राजा बनने पर सारा राष्ट्र सुखी होगा। उसे राजा बनाएँ।"

तब सब अमात्यों तथा नगर-निवासियों ने एक राय हो बोधिसत्त्व के पास जा कहा—"देव! आप इस राज्य को सँभालें।" फिर उन्हें नगर में ले जा रत्नों के ढेर में बिठा, अभिषेक कर **तक्षशिला** का राजा बनाया। वह चार अगति-गामी कर्मों को छोड़, दस राज-धर्मों के विरुद्ध आचरण न कर धर्मानुसार राज्य करता हुआ दानादि पुण्य-कर्म कर कर्मानुसार परलोक सिधारा।

शास्ता ने यह पूर्व-जन्म की कथा कह बुद्ध होने पर यह गाथा कही—

समतित्तिकं अनवसेसकं
तेलपत्तं यथा परिहरेय्य,
एवं सचित्तमनुरक्खे
पत्थयानो दिसं अगतपुब्बं॥

[जिस प्रकार किनारे तक लबालब भरे हुए तेल के पात्र को ले चले, उसी प्रकार निर्वाण की इच्छा करने वाले को चाहिए कि अपने चित्त की रक्षा करे।]

समतित्तकं—किनारे तक भरा हुआ। **अनवसेसकं,** लबालब भरा हुआ। छानने के लिए कुछ बाकी न रख। **तेलपत्तं**—तिल का तेल डाला हुआ पात्र **परिहरेय्य,** हरण करे, लेकर जाए। **एवं सचित्तमनुरक्खे,** उस तेल भरे पात्र की तरह अपने चित्त को **कायानुस्मृति** तथा **सम्प्रयुक्तानस्मृति** के बीच में रख मुहूर्त भर के लिए भी वाहर (किसी दूसरे विषय की ओर) न जाने दे। उस तरह योगाभ्यासी पण्डित को चाहिए कि वह (अपने चित्त की) रक्षा करे, सँभाल कर रक्खे। क्यों? इसीलिए कि—

दुन्निग्गहस्स लहुनो यत्थकामनिपातिनो,
चित्तस्स दमथो साधु चित्तं दन्तं सुखावहं॥

[कठिनाई से निग्रह किये जा सकने वाले, शीघ्रगामी, जहाँ चाहे वहाँ चले जाने वाले चित्त का दमन करना अच्छा है। दमन किया गया चित्त सुख देने वाला होता है।]

इसलिए—

सुदुद्दसं सुनिपुणं यत्थकामनिपातिनं,
चित्तं रक्खेथ मेधावी, चित्तं गुत्तं सुखावहं ॥

[बुद्धिमान् मनुष्य दुष्करता से दिखाई देने वाले, अत्यन्त चालाक, जहाँ चाहे वहाँ जाने वाले चित्त की रक्षा करे। सँभाल कर रखा गया चित्त सुख देने वाला होता है ।]

यही—

दूरङ्गमं एकचरं असरीरं गुहासयं,
ये चित्तं सञ्ञमेस्सन्ति मोक्खन्ति मारबन्धना ॥

[जो दूरगामी, अकेले विचरने वाले, निराकार, गुह्याशय चित्त का संयम करेंगे, वे ही मार के बन्धन से मुक्त होंगे ।]

लेकिन दूसरे—

अनवट्ठितचित्तस्स सद्धम्मं अविजानतो,
परिप्लवपसादस्स पञ्ञा न परिपूरति ॥

[जिसका चित्त स्थिर नहीं, जो सद्धर्म को जानता नहीं, जिसका चित्त प्रसन्न नहीं वह कभी प्रज्ञावान् नहीं हो सकता ।]

लेकिन जिसका कर्मस्थान स्थिर है—

अनवस्सुतचित्तस्स अनन्वाहतचेतसो,
पुञ्ञपापपहीनस्स नत्थि जागरतो भयं ॥

[जिसका चित्त आसक्ति-रहित है, जिसका चित्त स्थिर है, जो पाप-पुण्य से परे है, उस जागरूक पुरुष के लिए भय नहीं ।]

इसलिए—

फन्दनं चपलं चित्तं दुरक्खं दुन्निवारयं,
उजुं करोति मेधावी उसुकारो वतेजनं ॥

[चित्त चंचल है, चपल है, दुर्-रक्ष्य है, दुर्-निवार्य है। मेधावी-पुरुष इसे ऐसे ही सीधा करता है, जैसे बाण बनानेवाला बाण को ।]

इस प्रकार सीधा करते हुए अपने चित्त की रक्षा करे। **पत्थयानो दिसं अगतपुब्बं**, इस कायानुस्मृति कर्मस्थान को आरम्भ करके बिना सिरे के संसार में अगतपूर्व दिशा की प्रार्थना करते हुए, उसे चाहते हुए अपने चित्त की रक्षा करे। लेकिन यह अगतपूर्व (=जहाँ पहले नहीं गये) दिशा कौन सी दिशा है—

मातापिता दिसापुब्बा आचरिया दक्खिना दिसा
पुत्तदारा दिसा पच्छा मित्तामच्चा च उत्तरा
दासकम्मकरा हेट्ठा उद्धं समणब्राह्मणा,
एता दिसा नमस्सेय्य अलमत्थो कुले गिही॥

[माता पिता पूर्व-दिशा हैं, आचार्य दक्षिण दिशा। पुत्र-स्त्री पश्चिम दिशा है, मित्र-अमात्य उत्तर दिशा। दास-कर्मकर नीचे की दिशा हैं, श्रमण-ब्राह्मण ऊपर की दिशा। हैसियत वाला गृहस्थ अपने कुल में इन दिशाओं को नमस्कार करे।]

यहाँ तो पुत्र स्त्री आदि दिशाएँ कहीं गईं।

दिसा चतस्सो विदिसा चतस्सो,
उद्धं अधो दसदिसा इमायो॥
कतमं दिसं तिट्ठति नागराजा,
यमद्दसा सुपिने छब्बिसाणं॥

[चार दिशाएँ, चार अनु-दिशाएँ, ऊपर और नीचे इस प्रकार यह दस दिशाएँ हैं। वह छः दाँतों वाला नागराजा किस दिशा में रहता है?]

यहाँ पूर्व आदि दिशाओं को दिशा कहा गया है।

अगारिनो अन्नदपाणवत्थदा
अव्हायिकानम्पि दिसं वदन्ति,
एसा दिसा परमा सेतकेतु!
यं पत्वा दुक्खी सुखिनो भवन्ति॥

[भोजन और वस्त्र देने वाले निमन्त्रण देने वाले गृहस्थ को भी 'दिशा' कहते हैं। लेकिन हे सेतुकेतु! वही दिशा परम दिशा है जिसे प्राप्त कर दुखी सुखी हो जाते हैं।]

यहाँ 'निर्वाण' को दिशा कहा गया है। यहाँ भी निर्वाण से ही मतलब है। वह क्षय तथा विराग में दिखाई देती है (दिस्सति) इसीलिए दिशा कहा है। इस बिना सिरे के संसार में कोई मूर्ख पृथक-जन स्वप्न में भी कभी उधर नहीं गया, इसलिए अगत-पूर्व दिशा कहा। उसकी इच्छा करने वाले को कायानुस्मृति का अभ्यास करना चाहिए।

इस प्रकार शास्ता ने अपने उपदेश को निर्वाण पर समाप्त कर जातक का सारांश निकाला।

उस समय की राज-परिषद अब की बुद्ध परिषद थी। राज्य-प्राप्त कुमार तो मैं ही था।

९७. नामसिद्धि जातक

जीवकञ्च मतं दिस्वा, यह (गाथा) शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय एक नाम-सिद्धि भिक्षु के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

एक तरुण का नाम ही था पापक। वह श्रद्धा से बुद्ध-शासन में प्रव्रजित हो गया। भिक्षु उसे बुलाते—"आयुष्मान् पापक आओ, आयुष्मान् पापक ठहरो।" वह सोचने लगा—"दुनिया में 'पापक' नाम बहुत खराब है, मनहूस है। मैं दूसरा अच्छा रखवाऊँगा।"

उसने आचार्य उपाध्यायों के पास जाकर कहा—"भन्ते! मेरा नाम अमांगलिक है। मुझे दूसरा नाम दें।"

उन्होंने कहा—"आयुष्मान्! नाम प्रज्ञप्ति-मात्र है। बुलाने भर को है। नाम से कोई अर्थ सिद्धि नहीं होती। जो नाम है उसी से संतुष्ट रह।"

उसने वार वार आग्रह किया। भिक्षु संघ में सभी जान गए कि इसे अच्छे नाम का आग्रह है।

अब एक दिन धर्मसभा में बैठे भिक्षुओं ने बात-चीत चलाई 'आयुष्मानो! अमुक भिक्षु नाम में सिद्धि समझता है और अच्छा नाम ढूंढ़ता है।'

तब शास्ता ने धर्म सभा में आकर पूछा—"भिक्षुओ, बैठे क्या बातचीत कर रहे थे?"

"यह बातचीत।"

"भिक्षुओ, यह केवल अभी नाम-सिद्धिक नहीं है, यह पहले भी नाम में ही सिद्धि समझता रहा है।"—यह कह पूर्वजन्म की कथा कही।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में तक्षशिला में बोधिसत्त्व अत्यन्त विख्यात आचार्य हुए। ये पाँच सौ शिष्यों को मन्त्र (=वेद) पढ़ाते थे। उनके एक शिष्य का नाम था **'पापक'**। उसे लोग बुलाते, "**पापक**! आ। **पापक**! जा।"

उसने सोचा—"मेरा नाम अमाङ्गलिक है। मैं दूसरा नाम रखवाऊँगा।"

वह आचार्य्य के पास जाकर बोला, "आचार्य्य! मेरा नाम अमाङ्गलिक है। मुझे दूसरा नाम दें।"

आचार्य ने कहा, "तात! जा, देश में घूम कर जो तुझे अच्छा लगे, ऐसा एक माङ्गलिक नाम ढूंढ़ कर ला। आने पर तेरा नाम बदल दूंगा।"

वह 'अच्छा' कह, रास्ते के लिए ख़ुराकी ले, निकल, एक गाँव से दूसरे गाँव घूमता हुआ, एक नगर में पहुँचा।

वहाँ, **'जीवक'** नाम का एक आदमी मर गया था। उसे, उसके रिश्तेदार जलाने के लिए ले जा रहे थे। उसने देख कर पूछा 'इसका क्या नाम रहा?

"इसका नाम **'जीवक'** था।"

"क्या 'जीवक' भी मरता है?"

"'जीवक' भी मरता है, और 'अजीवक' भी। नाम तो पुकारने भर को होता है। मालूम होता है कि तू मूर्ख है।"

यह बात सुन, वह नाम के प्रति कुछ उदासीन हो नगर में गया। वहाँ एक दासी

को उसके मालिक काम करके मजदूरी[1] न ला देने के कारण दरवाज़े पर बिठा कर रस्सी से पीट रहे थे। उस दासी का नाम था 'धनपाली'। उसने गली में से गुज़रते हुए उसे पिटते देख कर पूछा। "इसे क्यों पीट रहे हैं ?"

"यह मजदूरी नहीं ला कर दे सक रही है।"

"इसका नाम क्या है ?"

"इसका नाम है वनपाली ?"

"नाम से धनपाली है, तो भी मजदूरी मात्र भी (कमा कर) नहीं (ला) दे सकती है ?"

"धनपाली भी दरिद्र होती है, अवनपाली भी। नाम वुलाने भर को होता है। मालूम होता है तू मूर्ख है।"

वह नाम के प्रति कुछ और उदासीन हो नगर से निकला। रास्ते में उसने एक आदमी को देखा जो रास्ता भटक गया था। उसने पूछा "तुम क्या करते घूम रहे हो ?"

"स्वामी! मैं रास्ता भूल गया हूँ।"

"तुम्हारा नाम क्या है ?"

"पन्थक।"

"पन्थक भी रास्ता भूलते हैं ?"

"पन्थक भी भूलते हैं, अपन्थक भी भूलते हैं। नाम पुकारने भर के लिए है। मालूम होता है तू मूर्ख है।"

वह नाम के प्रति बिलकुल उदासीन हो, वोधिसत्त्व के पास गया। वोधिसत्त्व ने पूछा—"क्यों तात! अपनी रुचि का नाम ढूंढ़ लाये ?"

"आचार्य! जीवक भी मरते हैं अजीवक भी। वनपाली भी दरिद्र होती है अवनपाली भी। पन्थक भी रास्ता भूलते हैं, अपन्थक भी। नाम वुलाने भर को होता है। नाम से सिद्धि नहीं है। कर्म से ही सिद्धि होती है, मुझे दूसरे नाम की जरूरत नहीं है। मेरा जो नाम है, वही रहे।"

वोधिसत्त्व ने उसके देखे और किए को मिलाकर यह गाथा कही—

---

[1] पूर्व समय में दासियों को रखकर उनसे "मजदूरी" करवाते थे। भृति शब्द का यहां यही अर्थ है।

जीवकञ्च मतं दिस्वा धनपालिञ्च दुग्गतं,
पन्थकञ्च वने मूल्हं पापको पुनरागतो।।

[जीवक को मरा देख, धनपाली को दरिद्र देख, पन्थक को जंगल में भटकता देख, 'पापक' फिर लौट आया।]

पुनरागतो—इन तीन बातों को देख कर पुनः लौट आया। 'र' सन्धि के कारण है।

शास्ता ने पूर्व जन्म की यह कथा सुना 'भिक्षुओ, यह केवल इसी जन्म में नामसिद्धिक नहीं है, पहले भी नामसिद्धिक ही रहा है' कह जातक को मिलाया।

उस समय का नामसिद्धिक अब का नामसिद्धिक ही है। आचार्य की परिषद अब की बुद्ध-परिषद। आचार्य तो मैं ही था।

९८. कूटवाणिज जातक

साधु खो पण्डितो नाम, यह (गाथा) शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय एक ठग बनिये के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

श्रावस्ती में दो जने साझे में व्यापार करते थे। वे गाड़ियों में सामान लेकर देहात गए और वहाँ से नफा कमाकर लौटे। उनमें से ठग बनिए ने सोचा—"यह (बनिया) बहुत दिन तक भोजन और शय्या के ठीक ठीक न मिलने से कष्ट पाता रहा है। अब घर में नाना प्रकार के स्वादिष्ट भोजन पेट भर खा अजीर्ण से मरेगा। इसलिए मैं सब सामान के तीन हिस्से कर एक उसके बच्चों को दूंगा। दो हिस्से स्वयं लूंगा!"

वह 'आज बाँटता हूँ, कल बाँटता हूँ' करता हुआ सामान का बटवारा नहीं करना चाहता था। पंडित बनिये ने उस अनिच्छुक बनिए पर जोर डाल उससे बँटवारा कराया। तब वह विहार गया। वहाँ शास्ता को प्रणाम कर कुशल-क्षेम पूछे जाने पर शास्ता ने कहा—"तूने देर की। चिरकाल से आकर भी बुद्ध की सेवा में इतनी देर से उपस्थित हुआ।"

उसने वह सब बात बुद्ध से निवेदन की।

शास्ता बोले—"उपासक! यह बनिया केवल अभी ठग बनिया नहीं है। यह पहले भी ठग बनिया ही था। अब इसने तुझे ठगने की इच्छा की, पूर्व समय में भी पंडितों को ठगने का प्रयत्न किया।" यह कह पूर्व जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में राजा ब्रह्मदत्त के राज्य करते समय बोधिसत्त्व वाराणसी में बनिए के कुल में पैदा हुए। नाम रखने के दिन उसका नाम **'पण्डित'** रखा गया। आयु बढ़ने पर वह एक दूसरे बनिए के साथ साझे में व्यापार करने लगा। उस (दूसरे बनिए) का नाम अतिपण्डित था। वे वाराणसी से पाँच सौ गाड़ियों पर सामान लाद देहात में जा, व्यापार कर नफा कमाकर वाराणसी लौटे।

उनके सामान का बटवारा करते समय अतिपंडित ने कहा—"मुझे दो हिस्से मिलने चाहिए। क्यों? तू पंडित है। मैं अतिपण्डित। पंडित को एक हिस्सा मिलना चाहिए। अतिपंडित को दो।"

"क्या हम दोनों की पूंजी (भण्ड-मूल) और बैल आदि बराबर बराबर नहीं रहे हैं; फिर तुझे दो हिस्से क्यों मिलने चाहिए?"

"अतिपंडित होने के कारण।" इस प्रकार उन दोनों ने बात बढ़ाकर झगड़ा (कलह) किया। तब अतिपण्डित ने 'एक उपाय है' सोच कर अपने पिता को एक खोखले वृक्ष में रख कर कहा—"हमारे दोनों के आने पर, तू कहना कि अतिपंडित को दो हिस्से मिलने चाहिए।"

फिर उसने बोधिसत्त्व के पास जा कर कहा—"सौम्य! मुझे दो हिस्सा मिलना उचित है, या अनुचित, इस बात को यह वृक्ष-देवता जानता है। आ, उससे पूछें।" (फिर) उसे वहाँ ले जाकर कहा—'आर्य! वृक्ष-देवता! हमारे झगड़े का निर्णय आप करें।'

उसके पिता ने स्वर बदल कर कहा—"तो (झगड़ा) कहो।"

"आर्य! यह पंडित है, मैं 'अतिपंडित' हूँ। हमने साझा व्यापार किया है। सो किसे क्या मिलना चाहिए ?"

"पंडित को एक हिस्सा, अतिपंडित को दो हिस्से।"

बोधिसत्त्व ने झगड़े का यह फैसला सुन कर, "यहाँ देवता है कि अदेवता, जानना चाहिए" (सोच) पुआल (घास) ला, वृक्ष के खोखले में भर आग लगा दी। अतिपंडित के पिता ने आग लगनी शुरू होने पर अध-जले शरीर से (वृक्ष) के ऊपर चढ़ शाखा पकड़, लटकते हुए, पृथ्वी पर गिर कर यह गाथा कही—

साधु खो पण्डितो नाम नत्वेव अतिपण्डितो,
अतिपण्डितेन पुत्तेन मनम्हि उपकूलितो

['पंडित' अच्छा है, 'अति-पंडित' अच्छा नहीं। (इस) 'अति-पंडित' पुत्र ने मुझे, क्षण भर में जला ही दिया था।]

साधु खो पण्डितो नाम इस लोक में पाण्डित्य से युक्त, कारण अकारण का ज्ञाता आदमी अच्छा है, शोभा देता है। **अतिपण्डितो**, नाम मात्र से अतिपंडित, कुटिल आदमी अच्छा नहीं। **मनम्हि उपकूलितो**, (मतलब) थोड़े में और जल गया होता, अधजला ही छूटा हूँ।

उन दोनों ने बीच में से बाँट कर, बराबर बराबर का हिस्सा लिया। (फिर) यथा-कर्म (परलोक) गये।

शास्ता ने 'पहले भी यह कुटिल-व्यापारी ही था' कह पूर्वजन्म की इस कथा को ला, जातक का सारांश निकाल दिया।

उस समय का कुटिल-व्यापारी, अबका कुटिल-व्यापारी था। बुद्धिमान व्यापारी तो मैं ही था।

९९. परोसहस्स जातक

"परोसहस्सम्पि समागतानं" यह गाथा शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय, एक अज्ञ (पृथक्-जन) द्वारा पूछे गये प्रश्न के उत्तर में कही।

क. वर्तमान कथा

(इसकी) कथा (=वस्तु) सरभङ्ग जातक[1] में आयेगी।

एक बार धर्मसभा में एकत्र बैठे हुए भिक्षु 'आवुसो! बुद्ध के संक्षिप्त उपदेश को धर्म सेनापति सारिपुत्र ने विस्तार से कहा' करके (सारिपुत्र) स्थविर की प्रशंसा कर रहे थे। शास्ता ने आकर पूछा—"भिक्षुओ! इस वक्त बैठे क्या बात कर रहे थे?" उनके "यह (बात)" कहने पर, शास्ता ने, "भिक्षुओ! न केवल अभी सारिपुत्र, मेरे संक्षिप्त कथन की विस्तार से व्याख्या करता है, उसने पहले भी की थी', कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में (राजा) ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय, बोधिसत्त्व (एक) उदीच्य ब्राह्मण-कुल में उत्पन्न हुआ था। उसने तक्षशिला में सभी शिल्पों (विद्याओं) को सीखा; फिर विषय-भोगों को छोड़, ऋषि प्रव्रज्या के अनुसार प्रव्रजित हो, पांच अभिज्ञा और आठ समापत्तियों को प्राप्त कर, हिमालय में रहने लगा। पांच सौ तपस्वी, इसके अनुयायी थे; उसका प्रधान-शिष्य, वर्षाकाल में, आधे (ढाई सौ) ऋषि-गण को लेकर, लोणम्बिल (निमक-खटाई) खाने के लिए बस्ती (मनुष्य-पथ) में चला आया।

---

[1] सरभङ्ग जातक (५२२)।

उस समय बोधिसत्त्व का अन्तिम-समय समीप आ गया था। उसके (बाक़ी) शिष्यों ने 'अधिगम'[1] पूछा—"आपने कौनसा गुण प्राप्त किया?" 'कुछ नहीं' कह आभास्वर ब्रह्मलोक में उत्पन्न हुआ। (अरूप-) ध्यानलाभी होने पर भी, बोधिसत्त्व (अरूप-लोक) उनके अनुकूल न होने से अरूप-लोक में उत्पन्न नहीं होते।

शिष्यों ने आचार्य को 'अधिगम' नहीं है, सोच दाह करने के समय (विशेष) सत्कार नहीं किया। प्रधान शिष्य ने लौटकर पूछा—"आचार्य कहाँ हैं?"

"काल कर गये।"

यह सुन उसने कहा—"क्या आचार्य से 'अधिगम' पूछा?"

"हाँ! पूछा।"

"(आचार्य ने) क्या कहा?"

"उन्होंने कहा 'कुछ नहीं', सो हमने उनका (विशेष) सत्कार नहीं किया।" प्रधान शिष्य ने कहा—"तुमने आचार्य के अर्थ को नहीं समझा, आचार्य आकिञ्चञ्ञायतन ध्यान के लाभी थे।" उन्होंने उसके बार बार कहने पर भी विश्वास न किया। बोधिसत्त्व ने, यह बात मालूम होने पर 'यह अन्धे-मूर्ख, मेरे प्रधान शिष्य के कहने का विश्वास नहीं करते, इन्हें यह बात प्रगट करूँगा' (सोच) ब्रह्मलोक से आकर, आश्रम के ऊपर बड़ी शान से, आकाश में खड़े हो, (अपने) शिष्य को बुद्धि की प्रशंसा करते हुए यह गाथा कही—

परोसहस्सम्पि समागतानं
कन्देय्युं ते वस्ससतं अपञ्ञा,
एकोव सेय्यो पुरिसो सपञ्ञो,
यो भासितस्स विजानाति अत्थं॥

[सहस्राधिक भी अप्रज्ञावान (आदमी) आकर सैकड़ों वर्ष चिल्लाते रहें, उन सबसे (वह) एक ही प्रज्ञावान् अच्छा है, जो भाषित (=कहे) के अर्थ को समझता है।]

---

[1] ध्यान-विशेष की प्राप्ति-अप्राप्ति विषयक प्रश्न।

परोसहस्सम्पि, सहस्राधिक, समागतानं, इकट्ठे हुए हुओं का, कही बात के अर्थ को न समझ सकने वाले मूर्खों का। कन्देय्युं ते वस्ससतं अपञ्ञा, वे, इस प्रकार आये हुए, इन मूर्ख तपस्वियों की तरह, सौ वर्ष तक भी, हजार वर्ष तक भी चिल्लाते रहें, पीटते रहें, वे चिल्लाते हुए भी इस अर्थ (=मतलब) को नहीं जान सकेंगे। एकोव सेय्यो पुरिसो सपञ्ञो, इस प्रकार के सहस्राधिक मूर्खों की अपेक्षा पंडित आदमी अकेला ही श्रेष्ठ है, श्रेष्ठ-तर है। कैसा प्रज्ञावान्? यो भासितस्स विजानाति अत्थं, जो भाषित का अर्थ जानता है, जैसे यह प्रधान शिष्य।

इस प्रकार महासत्त्व (—बोधिसत्त्व), आकाश में खड़े ही खड़े, धर्मोपदेश दे, तपस्वी के गुण का बोध (—जानकारी) करवा, ब्रह्मलोक को चले गये। वे तपस्वी भी जीवन के अन्त में ब्रह्मलोकगामी ही हुए।

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला, जातक का सारांश निकाला। उस समय का प्रधान शिष्य (अब का) सारिपुत्र ही था। लेकिन महा-ब्रह्मा मैं ही था।

१००. असातरूप जातक

"असातं सातरूपेन" यह (गाथा) शास्ता ने (शाक्य देश के) कुण्डिय नगर के पास, कुण्डधान वन में विहार करते समय, कोलिय राज-कुमारी उपासिका सुप्पवासा के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

उस समय वह सात-वर्ष तक अपनी कोख में गर्भ-धारण कर, एक सप्ताह से गर्भ बिगड़ जाने के कारण (दुःखी थी)। उसको अत्यंत वेदना हो रही थी। लेकिन ऐसी पीड़ा होने पर भी 'वह भगवान् सम्यक् सम्बुद्ध हैं, वे इस प्रकार के दुःख के नाशार्थ धर्मोपदेश देते हैं; उन भगवान् का श्रावक संघ सुप्रतिपन्न है, जो इस

प्रकार के दुःख के नाश के लिए प्रयत्नशील है, निर्वाण (ही) सुख है जहाँ इस प्रकार का दुःख नहीं है'—इन तीन विचारों पर विचार कर, दुख को सहती रही। फिर उसने अपने स्वामी को बुला, शास्ता के पास भेजा ताकि वह (शास्ता से) उसका प्रणाम और हाल कहे।

शास्ता ने उसका प्रणाम करना सुनते ही कहा—"**कोलिय**-कुमारी **सुप्पवासा**, सुखी हो। (स्वयं) सुखी हो, वह अरोगी पुत्र को जन्म दे।"

भगवान् के (मुंह से) वचन (निकलने) के साथ ही, कोलिय-कुमारी **सुप्पवासा** सुखी हो गई और उसने स्वस्थ पुत्र को जन्म दिया। उसके स्वामी ने घर जाकर उसे प्रसूता देख, कहा 'भो! आश्चर्य है! अत्यन्त आश्चर्य है। तथागत के प्रताप से अत्यन्त आश्चर्य कर, अद्भुत तथा विचित्र बात हुई।'

सुप्पवासा ने पुत्र को जन्म दे (अपने स्वामी को) फिर शास्ता के पास भेजा ताकि वह बुद्ध-प्रमुख भिक्षुसंघ को एक सप्ताह के दान का निमन्त्रण दे आये।

उस समय **महामौद्गल्यायन** के उपस्थायक (=सेवक) ने बुद्ध-प्रमुख संघ को निमंत्रित किया हुआ था। शास्ता ने सुप्पवासा के लिए दान देने की जगह निकालने को, स्थविर को उस (उपास्थायक) के पास भेज, उसे सूचना दिलवा, सुप्पवासा का दान अपने और संघ के लिए स्वीकार किया। सुप्पवासा ने सातवें दिन **सीवली-कुमार** पुत्र को सजाकर उससे शास्ता और भिक्षु-संघ को प्रणाम कराया। उसे क्रम से **सारिपुत्र** स्थविर के पास ले जाने पर सारिपुत्र स्थविर ने उससे कुशल-समाचार पूछा—"क्यों **सीवली**! अच्छी तरह से तो हो?" उसने 'भन्ते! मुझे सुख कहाँ? मैं सात वर्ष तक लोह-कुम्भि (नरक) में रहा' कह स्थविर के साथ इस प्रकार बातचीत की।

उसकी बातचीत सुन 'मेरा सात दिन का जाया (=पुत्र) अनुबुद्ध, धर्म-सेनापति के साथ मन्त्रणा (=बातचीत) करता है' सोच (सुप्पवासा) अत्यंत प्रसन्न हुई। शास्ता ने पूछा—"सुप्पवासे! और भी इस प्रकार के पुत्रों की इच्छा है?"

"भन्ते! यदि इस प्रकार के और सात पुत्र मिलें, तो सातों को चाहूँगी।" शास्ता उदान कह, (दान का) अनुमोदन कर चले गये। सीवली-कुमार सात ही वर्ष की आयु में शासन में अत्यंत श्रद्धा-पूर्वक प्रव्रजित हुआ, (बीस) वर्ष पूरे होने पर, उपसम्पदा प्राप्तकर, पुण्यवान् (चीवर आदि) पाने वालों में अग्र हुआ और पृथ्वी को उन्नादित कर, अर्हत्पद प्राप्त कर, पुण्यवानों में प्रथम स्थान प्राप्त किया।

एक दिन धर्म-सभा में बैठे हुए भिक्षुओं ने बातचीत चलाई—"आवुसो ! सीवली स्थविर इस प्रकार के महापुण्यवान् हैं। उनकी इच्छा सम्पूर्ण हुई है। वह अन्तिम देह-धारी हैं ! (लेकिन फिर भी) वह सात वर्ष तक लोह-कुम्भि नरक में रहे, सप्ताह तक गर्भ के बिगाड़ में रहे, जिससे, अहो ! माता-पुत्र ने अत्यंत दुःख पाया। ऐसा उन्होंने क्या (पाप-) कर्म किया था ?"

शास्ता ने वहाँ जाकर पूछा—"भिक्षुओ ! इस समय बैठे क्या बातचीत कर रहे थे ?"

"यह (बात)" कहने पर शास्ता ने "भिक्षुओ ! सीवली, का महापुण्यवान् होना, सात वर्ष तक लोह-कुम्भि नरक में रहना, सप्ताह भर तक गर्भ का बिगाड़ रहना, यह उसके अपने किये कर्म का ही फल है; और सुप्पवासा, का भी सात वर्ष तक गर्भ ढोये फिरने का दुःख तथा सात दिन तक गर्भ के बिगड़े रहने का दुःख, उनके अपने किये कर्म का ही फल है' कह, उनके प्रार्थना करने पर पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी, में (राजा) ब्रह्मदत्त, के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व ने उनकी पटरानी की कोख में जन्म ग्रहण किया। सयाने हो तक्षशिला, में सब शिल्पों को सीखा; और पिता के मरने पर राज्य प्राप्त कर वह धर्मानुकूल राज्य करने लगा। उस समय कोसल-नरेश ने बड़ी भारी सेना के साथ आ, वाराणसी को जीत, राजा को मार डाला और उसकी ही पटरानी को अपनी पटरानी बनाया। वाराणसी राजा के पुत्र ने, पिता के मरने के समय, चोर-दरवाजे से भाग, सेना एकत्र कर, वाराणसी, पहुँच, (उससे) थोड़ी दूर पर बैठ, राजा के पास सन्देश भेजा कि मुझे युद्ध दो अथवा राज्य ? उसने प्रत्युत्तर भेजा—युद्ध दूंगा। राजा की माता ने उस खबर को सुन सन्देश भेजा—"युद्ध करने की आवश्यकता नहीं। सब रास्तों को रोक कर, चारों ओर से वाराणसी नगर को घेर लो। उससे लकड़ी, पानी, अनाज (=भात) की कमी होने से मनुष्य तंग आ जायेंगे। (फिर) तू बिना युद्ध के भी नगर को ले लेगा।"

उसने माता का सन्देश पा, रास्तों को रोक कर, सात दिन तक नगर को घेरे रक्खा। नगर-निवासियों ने रास्ता न पाने पर, सातवें दिन, उस राजा का सिर ले

जाकर कुमार को दिया। कुमार ने नगर में प्रवेश कर, राज्य ग्रहण किया। आयु समाप्ति होने पर वह कर्मानुसार (परलोक) सिधारा। उस समय के सात दिन तक (लोगों का) रास्ता बंद कर, नगर को घेर कर जीतने के कर्म-फल स्वरूप, वह इस समय, सात वर्षों तक लोह-कुम्भि नरक में रह कर, सात दिन तक गर्भ के विगाड़ में रहा। लेकिन जो पदुमुत्तर (पद्मोत्तर बुद्ध) के समय, महादान देकर मैं (प्रत्यय) लाभियों में अव्वल नम्बर होऊँ करके, उनके चरणों में प्रार्थना (=वलवती इच्छा)की, और जो, विपस्सी, बुद्ध के समय,नगर निवासियों सहित सहस्र के मूल्य का गुड़-दहि दे कर, प्रार्थना की, उसके प्रताप से, वह (वस्तु) लाभियों में प्रथम हुआ। शास्ता ने पूर्व-जन्म की यह कथा ला, बुद्ध हुए रहने पर यह गाथा कही—

असातं सातरूपेन पियरूपेन अप्पियं,
दुक्खं सुखस्स रूपेन पमत्तमतिवत्तति॥

[असात (=अमधुर) मधुर स्वरूप; अप्रिय प्रिय स्वरूप; दुःख सुख स्वरूप होकर, (प्रमादी आदमी को जीत लेता है।]

असातं सातरूपेन, अमधुर ही, मधुर से जो कि उल्टा है। पमत्तमतिवत्तति, अमधुर, अप्रिय, दुःख—इन तीनों को इस मधुर-स्वरूप आदि आकार से, स्मृति की अस्थिरता के कारण, प्रमादी (=आलसी) आदमी को लाँघ जाते हैं, जीत लेते हैं, नीचा दिखा देते हैं।

यह जो भगवान् ने कहा, सो यह, "माता-पुत्र के इस गर्भ-धारण या गर्भ-निवास नामक प्रतिकूल वेदना से पहले नगर को रोकने आदि की अनुकूल (वेदना) के दब जाने के सम्बन्ध में, और यह जो उपासिका ने उस असात (= प्रतिकूल), अप्रिय, दुःख, (स्वरूप) प्रेम-वस्तु-भूत पुत्र (के पाने की वेदना) के, अनुकूल-वेदना से दब जाने पर कहा, सो उसके सम्बन्ध में—इस प्रकार—इन सब के सम्बन्ध में कहा; ऐसा जानना चाहिए।

शास्ता ने इस धर्म देशना को ला, जातक का सारांश निकाल दिया। उस समय नगर को रोक कर राज्य प्राप्त करने वाला कुमार (अवट्ठका) सीवली था। माता, सुप्पवासा थी। लेकिन पिता वाराणसी-राजा तो मैं ही था।

सहायक ग्रन्थों की सूची

१. जातक पालि (सिंहल लिपि)——सात खंड; प्रकाशक, तिपिटक पब्लिकेशन प्रेस, कोलम्बु।

२. जातक (रोमन लिप)वी० फोसबोल द्वारा सम्पादित——सात खंड प्रकाशक ट्रूवनेर एण्ड कम्पनी, लन्दन।

३. जातक (वङ्गला)——छः खंड, अनुवादक श्री ईशान् चन्द्र घोष।

४. जातक (अंग्रेजी)——छः खंड, सम्पादक ई० बी० कौवेल।

५. जातक (स्यामी लिपि)——दो खंड।

६. पन् सिय पणस जातक पोत् (सिंहल)——पाँच सौ पचास जातक ग्रन्थ।

७. जातक गाथा सन्नय (सिंहल)——जातक गाथाओं पर टीका। आचार्य्य वद्देगम धर्मरत्न कृत।

८. महावंस (हिन्दी) ——अनुवादक, आनन्द कौसल्यायन।

९. दीघनिकाय (हिन्दी)——अनुवादक, रा० सांस्कृत्यायन तथा ज० काश्यप।

१०. मज्झिम निकाय (हिन्दी)——अनुवादक, राहुल सांकृत्यायन।

११. विनय पिटक (हिन्दी)——अनुवादक, राहुल सांकृत्यायन।

१२. विसुद्धिमग्गो——सम्पादक, धर्मानन्द कोसम्बी; प्रकाशक, भारतीय विद्या भवन, वम्बई।

१३. अभिधर्मकोश (वसुवन्धु प्रणीतः)——राहुल सांकृत्यायन विरचितया टीकया सहितः; प्रकाशक, काशी विद्यापीठ, बनारस।

१४. मिलिन्द-प्रश्न (हिन्दी)——अनुवादक, जगदीश काश्यप। प्रकाशक भिक्षु ऊ० कित्तिमा स्थविर, सारनाथ।

१५. भगवान् बुद्ध (मराठी)——लेखक, धर्मानन्द कोसम्बी; सुविचार प्रकाशन मंडल, पुणें।

१६. जातक माला (अंग्रेजी)—संस्कृत से जे० एस० स्पेअर द्वारा अनूदित।
१७. भरहुत शिलालेख (अंग्रेजी)—वरुआ एण्ड सिंह, कलकत्ता यूनिवर्सिटी प्रेस।
१८. ए गाइड टू साँची (अंग्रेजी)—जान मार्शल, गर्वनमेंट प्रिंटिंग इण्डिया।
१९. ए गाइड टू टैक्सिला (अंग्रेजी)—जान मार्शल, गवर्नमेंट प्रिंटिंग इण्डिया।
२०. वुद्धिस्ट वर्थ स्टोरीज (अंग्रेजी)—रीज़ डविड्स, ब्राडवे ट्रान्सलेशन सीरीज़।
२१. प्रि-वुद्धिस्ट इण्दिया (अंग्रेजी)—रति लाल मेहता, वाम्बे एक्ज़ामिनर प्रेस।
२२. भारतीय इतिहास की रूपरेखा (२ खण्ड)—जयचन्द्र विद्यालंकार, हिन्दुस्तानी एकेडमी, प्रयाग।
२३. भारतभूमि और उसके निवासी—जयचन्द्र विद्यालंकार, रत्नाश्रम, आगरा।
२४. जातक टेल्ज (अंग्रेजी)—एच० टी० फ़्रैंसिस, ई० जे० थामस, कैम्ब्रेज यूनिवर्सिटी प्रेस।
२५. माडर्न रिव्यू (अंग्रेजी)—अक्तूबर, नम्वर (१९१०)।
२६. भारतीय मूर्तिकला—रायकृष्ण दास, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी।
२७. भारतीय चित्रकला—रायकृष्ण दास, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी।
२८. इण्डियाज पास्ट (अंग्रेजी)—० मैकडानल।
२९. डिक्शनरी आफ पालि प्रोपर नेम्ज (अंग्रेजी)—मलल सेकर।
३०. बुद्धिस्ट आर्ट—ए० फुशेर, लंदन १९१७।
३१. अन्य कई ग्रन्थ जिनका यथास्थान उल्लेख हो गया है।